कुशललाभ के कथा साहित्य का लोक-तात्विक अध्ययन

डॉ० रुक्मिणी वैश्य एम. ए., पी.एच. डी.

पंचशील प्रकाशन, जयपुर

"This book has been published under the University Grants Commission's Scheme of Publication of learned/research work including doctoral thesis".

प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन
फिल्म कालोनी, जयपुर–302003

मूल्य : पचास रुपया

संस्करण : प्रथम, 1979

मुद्रक : जयपुर मान प्रिन्टर्स
चौड़ा रास्ता, जयपुर–302003

KUSHAL LABH KE KATHSAHITYA KA LOKTATWIK ADHYAN
By Dr. Rukmani Vaish Price Rs. 50.00

आमुख

मध्ययुगीन राजस्थानी कवियों में वाचक कुशललाभ का अपना विशेष स्थान है। यद्यपि कुशललाभ के कृतित्व के साहित्यिक पक्ष पर विद्वानों ने पर्याप्त विचार-विमर्श किया है तथापि उनके आख्यान काव्यों में गर्भित प्रभूत लोकतात्विक सामग्री के अध्ययन विवेचन की ओर अद्यावधि कोई प्रयास नही किया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध उसी दिशा में एक विनम्र प्रयास है। चूंकि ये पद्याख्यान स्वरूपतः कथात्मक अथवा आख्यान परक हैं। अतः इनके इस स्वरूप का बोध करने हेतु हमने इसे व्यापक अर्थ में कथा साहित्य' शीर्षक से अभिहित किया है। अतः उक्त प्रयोग को पद्याख्यानों के पर्याय रूप में ही ग्रहण किया जाये।

कुशललाभ के काव्याख्यान राजस्थान के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन से ओतप्रोत हैं। ये कथा काव्य राजस्थान के बडे भाग के जन-जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस विषय पर कार्य करने की प्रेरणा सर्वप्रथम मुझे लोकसाहित्य के ख्यातिलब्ध विद्वान् डा. सत्येन्द्र से मिली।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आठ अध्यायों मे विभक्त किया गया है। इस प्रबन्ध के प्रथम अध्याय मे कवि के युग की परिस्थितियो पर अवलोकन किया गया है। द्वितीय अध्याय में कवि का–जीवन परिचय, साहित्य निर्माण की रुचि, वैराग्य की ओर झुकाव तथा स्वर्गवास आदि पर विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय में–कवि के सम्पूर्ण कृतित्व का परिचय देते हुये उनका विषयगत वर्गीकरण किया गया है। चतुर्थ अध्याय में पात्रों का वर्गीकरण किया गया है तथा कुशललाभ के आख्यान काव्यों में आये हुये पात्रों का चरित्रांकन किया गया है।

पंचम अध्याय साहित्यिक मूल्यांकन का है। यह दो भागों मे विभाजित है— भाव पक्ष और कला पक्ष। भावपक्ष के अन्तर्गत शृंगार के दोनों पक्ष संयोग एवं वियोग शृंगार के अतिरिक्त कथा में प्रयुक्त अन्य रसों पर भी विचार किया गया है। कला पक्ष के अन्तर्गत भाषा, शैली, लोकोक्तियां एवं मुहावरे, अलंकार, छन्द प्रयोग, प्रकृति चित्रण एवं संवाद सौष्ठव आदि निरूपित हुये हैं।

षष्ठ अध्याय में कुशललाभ के पद्याख्यानों के मूल-स्रोतों पर विचार किया गया है। परम्परा से प्रचलित स्रोत को कुशललाभ ने नवीन ढंग से किस प्रकार संजोया है इसका यहाँ विवरण विश्लेषण है।

सप्तम अध्याय समाज एवं संस्कृति का है। इसमें पहले समाज के अन्तर्गत वर्ण व्यवस्था, पारिवारिक जीवन, सस्कार, समाज में नारी का स्थान, शिक्षा, पर्दा-प्रथा, वेश्यावृत्ति, रीति-रिवाज एव मान्यताएँ, रहन-सहन, आभूषण एवं शृंगार, खान-पान, मनोरजन, सार्वजनिक उत्सव, पर्व एव त्यौहार आदि का विवेचन करते हुये उस समय के आर्थिक एव राजनैतिक जीवन का अध्ययन किया गया है। संस्कृति के अन्तर्गत—ललित कलाये, संगीत एव नृत्य कला वास्तुकला काव्यकला पर विचार करते हुये धर्म एव दर्शन के स्वरूप निरूपित हुये हैं।

अष्ठम अध्याय मे कवि के पद्याख्यानो मे प्राप्त कथानक रूढ़ियों का उल्लेख करते हुये यह बताया गया है कि कवि इनमें नवीनता का समावेश कितने मौलिक और अनूठे ढग से करने मे सफल हुआ है। साथ ही डा सरीन व स्टिथ थामसन की अभिप्राय प्रणाली के आधार पर कथानक रूढ़ियो का वैज्ञानिक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है।

अन्त मे परिशिष्ट दिया गया है जिसमें उन पुस्तकों एव पत्र-पत्रिकाओं की सूची दी गई है जो अध्ययन मे सहायक हुई है। प्रकाशित पुस्तको के अतिरिक्त हस्त-लिखित ग्रंथो के नाम एव प्राप्ति स्थान भी परिशिष्ट में दिये गये हे।

शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने मे मुझे जिन विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ उनमे सर्वप्रथम स्थान मेरे शोध निर्देशक श्री सुरेन्द्र उपाध्याय का है। मैं उनकी सर्वाधिक आभारी हूँ।

शोध-प्रबन्ध के विषय के चुनाव के लिये मुझे जिन विद्वानों ने अपने अमूल्य परामर्श दिये उनमे मै अपने हिन्दी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं हिन्दी साहित्य में लोक साहित्य के महान् पारखी विद्वान् आदरणीय डा. सत्येन्द्र की आभारी हूँ। आपने अपने अमूल्य क्षणो मे भी बड़ी सहजता एव सरलता से विषय के बारे मे बताते हुये कहा था कि ये विषय अपने आप मे व्यापक एवं महत्वपूर्ण होगा। विषय के चुनाव के अतिरिक्त मुझे आपने समय-समय पर अपने अमूल्य सुझाव देकर मेरा मार्ग दर्शन किया। मैं उनके इस अपार वात्सल्य एव दिशा निर्देशन की आभारी हूँ।

श्री अगरचन्द जी नाहटा, श्री रामवल्लभ सोमाणी. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल, श्री गजसिंह जी राठोर एवं श्री आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भंडार के सभी महानुभाव तथा विशेष रूप से जालौर के मुनि श्री कल्याण विजय जी एवं मुक्तिविजय जो जिन्होने विश्वास के साथ अनेक हस्तलिखित ग्रथ मुझे भेजकर अपनी साधु प्रवृति का परिचय दिया, इन सभी विद्वानो की भी मैं आभारी हूँ।

राजस्थानी के महान् विद्वान् आदरणीय डॉ. शंभुसिंह मनोहर की सहजता एवं सरलता को क्या सहज ही भुलाया जा सकता है . उनकी मैं हृदय से आभारी हूँ ।

डा. ब्रजमोहन जावलियां जिन्होंने उदयपुर रहते हुये भी सदैव अपने अमूल्य सुझावों द्वारा मुझे अपार सहायता तो दी ही साथ ही अनेक हस्तलिखित ग्रंथों की प्रतिलिपियां करवा के मुझे जो सहज स्नेह दिया है उसे मैं कभी भुला नहीं सकती । कार्य में विलम्ब होने पर अनेक बार उन्होंने गति से कार्य करने के लिये मेरा उत्साह बढाया जिससे मुझे शोध कार्य पूर्ण करने में प्रेरणा और गति मिली । इन सबके लिये मैं डा जावलियां की हृदय से कृतज्ञ हूँ । साथ ही डॉ. रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ की आभारी हूँ जिन्होंने कथानक रूढ़ियों के वैज्ञानिक अध्ययन में अपार सहयोग दिया ।

हस्तलिखित ग्रंथों के संकलन के लिये क्षेत्रीय कार्य में मुझे अपने पति श्रीयुत् वैश्य साहब का सर्वाधिक सहयोग मिला है विज्ञान में रुचि रखते हुये भी आपने मेरे शोध-प्रबन्ध को सम्पूर्ण कराने मे अत्यधिक रुचि ली और मधुर झिड़कियों एवं सतत् प्रेरणा से प्रबन्ध पूर्ण करने में मेरा उत्साहवर्द्धन किया, उनके प्रति मैं किस प्रकार आभार प्रकट करूँ उनके लिये मेरे पास शब्दो की दरिद्रता के अतिरिक्त कुछ भी नही है ।

राजस्थान विश्वविद्यालय पुस्तकालय के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिन्होने समय-समय पर बाहर से हस्तलिखित ग्रंथ मगवा कर मुझे सहायता प्रदान की ।

अन्त मे. उन सभी विद्वानों एव महानुभावों के प्रति–जिन्होने प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से मुझे इस कार्य में सहायता प्रदान की है और जिनके उत्तम ग्रंथों का मैंने लाभ उठाया है–आभार प्रकट करना भी अपना कर्तव्य समझती हूँ । कदाचित मेरे अकिंचन प्रयास के द्वारा अन्य लोक साहित्य मर्मी विद्वानों की दृष्टि इस विषय के महत्व को स्वीकारते हुए इसके अध्ययन की ओर मुड़ सकेगीं, यदि ऐसा हो सका तो मैं अपने श्रम की सार्थकता अनुभव कर सकूंगी । अस्तु ।

—रुक्मिणी वैश्य

श्रद्धेय अम्मा को

जिनका वरद हस्त ही
मेरा पथ प्रदर्शक रहा ।

रुक्मिणी वैश्य

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

कुशल लाभ का युग

कुशललाभ के युग की परिस्थितियाँ

राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल सभी दृष्टियो से उत्थान एवं पतन का युग रहा है । इस युग की दीर्घ अवधि मे विभिन्न परिवर्तन हुये तथा विभिन्न वंशों के व्यक्ति राजगद्दी पर प्रतिष्ठित हुये, किन्तु सत्ता का यह परिवर्तन सामान्य वातावरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नही था । भारतीय जनता के लिए जाति धर्म एव सस्कृति की दृष्टि से ये परिवर्तन विशेष प्रभावशाली नही रहे । जनता के सामने अनेक कठिनाइया थी, फिर भी परिस्थितियो का सामना करने का साहस राजस्थानी जनता में अपार था ।

भौगोलिक परिस्थिति

राजस्थान के अधिकाश भाग रेतीले हैं । राजस्थान के दक्षिणी भाग में वनस्पति के नाम पर झाड़ियाँ व पहाड़ियाँ पाई जाती हैं, जिनमे पशुओं के चरने लायक चारा पैदा हो पाता है । रेत के टीलो का नैरन्तर्य कोसो का तक पाया जाता है जहाँ फोग व खेजड़ा नामक झाड उगते है, जिनका उल्लेख कुशललाभ ने अपने साहित्य मे किया है ।

राजस्थान के उत्तरी एव पश्चिमी भागो में पानी की कमी है क्योकि यहाँ वर्षा बहुत कम होती है । कुओ की गहराई 250 फुट से 400 फुट तक होती है । यहाँ की भूमि रेतीली एव बजर होने से खेती कम होती है । बाजरा, मूँग, ज्वार, मोठ, तिल, सरसो, कपास, गुवार आदि वर्षा के पानी से हो जाते है । परन्तु जहाँ कुओ से पानी प्राप्त होता है वहाँ चना, गेहूँ, अफीम, प्याज, मूली, बैंगन, धनियाँ, मिर्च, तरबूज, ककडी आदि भी पैदा होती है । कहीं-कहीं ऊटो से हल चला कर खेती की जाती है । अधिकतर लोग भेड, बकरी, गाय, ऊट आदि पशु पालते है । कभी-कभी अकाल पड़ने पर जनता को बड़ा कष्ट होता है । प्राचीन काल में अकाल पड़ने पर ऊचाले' की प्रथा थी अर्थात् राजा प्रजा सहित दूसरे राज्य में चला जाता था जैसा

कि ढोला मारू चौपई में राजा पिंगल पूगल में अकाल पड़ने पर सपरिवार नल के देश में चला जाता है और सुकाल होने पर ही वापस आता है।

यहाँ सर्प भी अधिक होते हैं विशेषकर 'पीना साँप' जो काटता नही है, कहते हैं कि जंगल मे सोने वाले व्यक्ति के वक्ष पर यह बैठ जाता है और उसके श्वास के साथ अपनी विषैली सांस छोड़ता रहता है जिससे मनुष्य मर जाता है। लहसन व प्याज की बदबू से यह आदमी के पास नहीं आता। इसीलिये यहाँ के लोग प्याज व लहसन का प्रयोग अधिक करते हैं।

रेगिस्तान होने से यहाँ की मुख्य सवारी ऊँट है। घोड़ों का प्रयोग भी सवारी के लिये किया जाता है। यहाँ ऊँट उत्तम जाति के होते थे जिसकी चाल के विषय मे 'घडिये जोइण जाय' अर्थात् एक घडी मे योजन भर चला जाय, कहा गया है। योजन वर्तमान गणना के अनुसार चार कोस के बराबर होता है। लोग दूर-दूर की यात्रायें ऊँट से ही करते थे। राजा लोगों की सवारी के लिये हाथी होते थे।

सामाजिक परिस्थिति

मध्य युग तक आते आते भारतीय सस्कृति बाह्य सस्कृतियो से पूर्णत प्रभावित हो चुकी थी। राजस्थान मे इन बाह्य सस्कृतियो से अप्रभावित रहने का बहुत कुछ प्रयत्न किया गया परन्तु यह सम्भव नही हो सका, विशेष रूप से सीमान्त राज्यों में। जैसलमेर सिन्ध के सीमान्त पर बसा हुआ नगर था। सिन्ध मे मुस्लिम सस्कृति पूर्णत: छा चुकी थी। अत: जैसलमेर पर भी इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। बाल विवाह, पर्दा प्रथा, वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक कुरीतियाँ सामान्य रूप से तो वैसे ही व्याप्त थी पर मुस्लिम सस्कृति के प्रभाव से उसने और भी अधिक जोर पकडा था। शासक मुगल या अन्य यवन बादशाहों के सम्पर्क मे आकर ऐशो आराम की जिन्दगी व्यतीत करने लगे थे। सुरा और सुन्दरी ही उनका जीवन बन गया था। क्षत्रिय का परम धर्म होता है प्रजा का पालन (क्षत्रियस्य परोधर्मं प्रजानामेव पालनम्) पर राजा लोग प्रजा का शोषण करने में ही अपना धर्म समझने लगे थे। उनका शौर्य और तेज अब दुर्बलो को सताना पर-नारियों का अपहरण करना आदि मे ही प्रदर्शित होने लगा था। ऐसे समय मे यदि उनको प्रभावित करके उनको सन्मार्ग पर लाया जा सकता था तो केवल साधुओ के प्रभाव से ही और जैन यति कुशललाभ ने भी वही सब कुछ किया जो एक साधु को उस समय करना आवश्यक था।

मद्यपान की भाँति मुस्लिम शासक अपनी नारी सम्बन्धी दुर्बलताओ के लिये प्रसिद्ध हैं। उन्होंने किसी की भी सुन्दर पत्नी, कन्या या बहन को प्राप्त करने के लिये अनेक युद्ध किये है। अलाउद्दीन के पद्मिनी को प्राप्त करने के लिये चित्तौड पर इसी उद्देश्य को लेकर आक्रमण किया था। अकबर जैसे सयमी शासक के हरम में पाँच हजार स्त्रियों का होना इसी बात का प्रमाण है। ऊमर सूमरा का मारवाणी को प्राप्त करने का षड्यन्त्र भी इसी बात का द्योतक है। इसका प्रभाव इनके सम्पर्क

में आने वाले हिन्दू लोगों एवं आश्रित कवियों पर भी पड़ा जिसका साहित्यिक परिणाम इस युग की शृंगारी कविता है।

धार्मिक परिस्थिति

मुस्लिम राज्य के शासको का आदर्श इस्लाम धर्म के विकृत हुए सिद्धान्तो से अनुप्राणित था। उनके अनुसार हिन्दू लोगो को मुस्लिम राज्य में जीने का अधिकार नही था। ये शासक हिन्दू जनता को इस्लाम या मौत दोनो मे से एक को स्वीकार करने के लिये बाध्य करते थे। 'जजिया' कर देकर वह मुसलमान बनने से छुटकारा पा सकते थे। जो लोग विरोध करते थे उन्हे हाथी से कुचलवा दिया जाता था। हिन्दुओ के धर्म एवं संस्कृति को कुचलने के लिये इन शासकों ने उनके धर्म स्थानो को नष्ट करवा दिया था। मुस्लिम शासकों के आठ सौ वर्षों के निरन्तर प्रयास से भी हिन्दू जाति, उसका धर्म एवं सस्कृति नष्ट नही हो सकी। मुस्लिम शासकों की धार्मिक दमन की नीति की प्रतिक्रिया एवं प्रतिरोध की प्रेरणा से ही उस स्वधर्म रक्षा आन्दोलन का सूत्रपात एव प्रसार हुआ जिसे साहित्य के क्षेत्र मे भक्ति आन्दोलन कहा जाता है।

धर्म की दृष्टि से समाज मानव धर्म के लक्षणों को सर्वथा विस्मृत कर चुका था। धार्मिक कर्म काण्डो के चक्कर में जनता बुरी तरह फंसी हुई थी। धर्म गुरुओं का प्रमुख कार्य जनसाधारण को और भी अधिक जटिलताओं में फंसाए रहना रह गया था। स्वयं धर्मगुरु जिन्हे धर्म के मूल सिद्धान्तो का ज्ञान भली-भांति होना चाहिये था, बाह्य आडम्बर, जादू, टोने, तन्त्र-मन्त्र और ऐसे ही अनेक अन्य विश्वासों से ग्रस्त हो रहे थे। उनका कार्य जन्म-कुण्डलिया बनाना, बाजार भाव बताना, मनुष्य के भाग्य का उल्टा सीधा निपटारा करना, भूत प्रेतों का आतंक लोगों मे फैलाना, मूर्ति-पूजा और ऐसे ही दूसरे दुर्गुणो का प्रचार करना मात्र रह गया था। वे स्वयं शृंगार रस और कामशास्त्रीय ग्रथो का अध्ययन अध्यापन करते और जनता को भी ऐसे काव्यो को पढ़ने के लिये प्रोत्साहित करते रहते थे। कुशललाभ भी इन प्रभावो से अछूते नही रह सके, फिर भी उनके अन्य धार्मिक ग्रथो को देखते हुये हम यह मान सकते हैं कि उनकी रचना में विवेकपूर्ण है।

प्रस्तुत कवि जैसलमेर का निवासी था। जैसलमेर के आसपास के प्रदेश व गुजरात में उसका भ्रमण होता रहता था। यह दोनों प्रदेश जैन धर्म से पूर्णतः प्रभावित थे। हिन्दू जनता और राजाओं पर नाथ सम्प्रदाय का पूर्ण प्रभाव था। पूर्व मे बताये गये जादू-टोने, तन्त्र-मंत्र आदि अष्ट सिद्धियो के वे स्वामी माने जाते थे। लगता है कुशललाभ जैसे प्रबुद्ध जैन साधु तक पर इनका प्रर्याप्त प्रभाव था। इसीलिये कुशललाभ ने अपने पात्रों को इन सिद्धियों से युक्त वर्णित किया है।

जैन साधुओं का प्रमुख उद्देश्य जैन धर्म का प्रचार करना था। अतः कुशललाभ ने भी मनोरंजन कथाओ के माध्यम से जैन धर्म का प्रसार जनता मे किया और

वे अपने इस प्रयास में काफी हद तक सफल भी हुये हैं। इन आरकान काव्यों में जैन धर्म के सिद्धान्तों के साथ-साथ दान, शील, तप संयम के महात्म्य का प्रमुख रूप से वर्णन किया है। जन्म जन्मान्तरवाद और पूर्व जन्म के पाप पुण्यो मे अटूट आस्था भी इन कथाओं मे व्यक्त हुई है। जैन मुनि ससार को नश्वर और क्षणिक मानते हैं अतः वे स्वय तो वीतराग होते ही है साथ अपने श्रावकों को भी वीतराग होने का उपदेश देकर अन्त मे दीक्षित करवा देते हैं। तेजसार रास मे तेजसार मुनि सुव्रत-स्वामी से दीक्षा ले लेता है।[1] राजा भीमसेन एवं हंसराज भी राजपाट का त्याग कर श्रीराम मुनि से दीक्षित होते हैं।[2]

पौराणिक एवं सनातनी धार्मिक भावनाओं के प्रति जनता की गहरी आस्था थी। जनता का पौराणिक अवतारो देवी-देवताओं मे विश्वास था। ब्रह्मा, विष्णु, महेश का वर्णन एव उनकी श्रद्धा पूर्वक भक्ति का वर्णन भी कवि ने किया है। मारु मनवांछित वर के लिये शिव मंदिर मे जाती है तो रूपमंजरी वर देने वाली चक्रेश्वरी देवी की, मन श्रद्धा एव भक्ति से पूजा आराधना करती है।[3] सामान्य जनता पूजा अर्चना आराधना तीर्थयात्रा, स्नान संध्या व्रत आदि मे विश्वास करती थी। तीर्थों मे स्नान करना आध्यात्मिक सुख का बोध कराता है।

आर्थिक परिस्थिति

उस युग के राजा एवं सामन्तो आदि उच्च वर्ग के लोगो का रहन-सहन आडम्बर पूर्ण था। किन्तु जनसाधारण का जीवन सरल एवं सादा था। राजाओ के विशाल महल होते थे जिनमे ऐशो आराम के सभी साधन सुलभ थे। महलो से आती हुई चदन गुलाब अरगजा आदि की खुशबू सम्पन्नता की सूचक है। राजकुमारियाँ अपनी सखियो के साथ उपवन या मन्दिर भ्रमण को जाती थी।

जैसलमेर और मारवाड़ का समस्त भूभाग आये दिन सदा से ही अकालो से ग्रस्त रहा है। ऐसी स्थिति में जनता घर द्वार छोड़ कर परदेशो मे चली जाती थी। ऐसी भयकर स्थिति भी होती थी कि अकाल के समय लोग अपने घर के सदस्यो को बेच देते थे। दुधारू गाये साथ ले ली जाती थी बाकी सभी पशु किसी ग्वाले के सुपुर्द कर बाहर के हरे भरे प्रदेशो मे भेज दिये जाते थे। मेवाड़, हाड़ौती और मालवा तथा गुजरात प्रमुख रूप से इनके गंतव्य स्थल थे जहाँ ये शरण पाते थे।

वर्षा के अभाव मे यह स्थिति होती थी तो सुकाल की अवस्था मे भी कभी-

---

1 श्री मुनि सुव्रतस्वामी पासि, चरित्रलीधउमन उल्हासि—401
तेजसार रास, रा प्रा वि प्र जोधपुर ग्रं. 26546
2. रिषि श्रीराम कत निजसही म.चइ भीमसेन रिषिमही—603
भीमसेनराजहंस चौपइ ला द ग्रन्थ 1217
3. दो. स 493 भीमसेनराजहंस चौपई
ला द. ग्रन्थ 1217

कभी अकाल की स्थिति हो जाती थी। टिड्डियो और चूहो का प्रकोप प्रतिवर्ष बना रहता था। आम जनता की यह स्थिति थी। दमनचक्र चलाकर अन्न और धन संग्रह करने वाले सामन्त वर्ग को भी पानी के अभाव से अपना देश छोड़ना पड़ता था। 'ढोला मारू चौपई' में पिंगल राजा की स्थिति से यह और भी स्पष्ट हो जाता है।

महाजन वर्ग दूर देशान्तरों से व्यापार करते रहते थे। ऊँट व घोड़े यात्रा व मालवाहक के रूप में प्रयुक्त होते थे। नित्य व्यवहार की चीजें और हथियार प्रमुख व्यापारिक वस्तुये थीं। घोड़ो का व्यापार भी प्रमुख रूप से होता था। घोड़ों के सोदागरो का कुशललाभ के काव्य मे वर्णन इस तथ्य की पुष्टि करता है।

तत्कालीन समाज आर्थिक दृष्टि से बड़ा सम्पन्न था और देश समृद्धशाली थे। नगरो का विस्तार विशाल था। इनमे कई मजिली ऊंची इमारतें एव भव्य अट्टालिकाये होती थी। उपवन सरोवर एव वाडी आदि होती थीं। विभिन्न चौरासी प्रकार के व्यवसायो के बाजार थे जिन्हे 'चौरासी चौहटे' कहा जाता था। नगर सभ्यता विकसित हो चली थी। 'अजनबीपन' की भावना को कुशललाभ ने भी व्यक्त किया है। माधव दिन भर घूमता रहता है, फिर भी कोई उससे बात नही करता।

राजनैतिक परिस्थिति

तत्कालीन युग मे विशुद्ध राजनीति जैसी कोई वस्तु हमे नही मिलती है। राज्य की सर्वोच्च सत्ता राजा होता था, वह निरकुंश होता था। राजा की आज्ञा ही कानून होती थी। राजा लोग अपना राज्य तक दहेज मे दे देते थे। राजा को राज्य कार्य में सहायता देने वाला प्रधान होता था। राजपुरोहित राजा से धार्मिक कार्य करवाता था। राजा की सवारी के लिये हाथी होता था। सामन्तवाद का बोलबाला था। राजा प्रजा का हाल जानने के लिये वेष बदल कर रात्रि मे निकला करते थे। सही सूचना प्राप्त करने के लिये राजा अपने नगर के प्रसिद्ध चोरो व जुआरियो से सम्पर्क रखते थे। राजा का यह कार्य वेश्याये भी करती थी।

दण्ड व्यवस्था बड़ी ही कठोर थी। इसमें अपराधी का सिर काटने से लेकर देश निकाला देना आदि प्रमुख दण्ड थे। सिर काटने के लिये 'खवास' व चण्डाल नियुक्त होते थे। प्रत्येक राजा के पास सुरक्षा के लिये अपनी-अपनी सेना होती थी। छोटी-छोटी बातो पर युद्ध हो जाते थे। युद्ध का प्रमुख कारण कोई सुन्दर स्त्री होती थी या प्रतिशोध की भावना। राजा और प्रजा के सम्बन्ध बड़े अच्छे थे। राजा प्रजा पालक होता था। उत्सवों में प्रजा भी राजा के साथ भाग लेती थी। राजा के प्रदेश में लौटने पर प्रजा ही उसका धूमधाम से स्वागत करती थीं।

राजा लोग लोभी भी होते थे। राज्य के लोभ में वे भांति-भांति के कुकर्म करते थे। राजा अपने पुत्र तक को राज्य से निष्कासित कर देता था। राज्य ब्राह्मण, स्त्री और बालक अवध्य माने जाते थे।

विक्रमादित्य प्रजा बालक की दृष्टि से एक आदर्श राजा माना जाता था।

उसका आदर्श प्रस्तुत कर साधु लोग राजाओं को सन्मार्ग पर लाने का प्रयास करते थे। राजाओं के सत्य संतुलन की परीक्षा युद्धों से होती थी। पराजित होने पर वे विपक्ष की शक्ति को स्वीकार करते हुये अपनी कन्यायें उन्हे ब्याह कर मैत्री सम्बन्ध स्थापित करते थे।

साहित्यिक परिस्थिति

साहित्यकार परिस्थिति की उपज होता है। जो परिस्थिति साहित्य को जन्म देती है, उसमे समाज व्यवस्था ही होती है। मध्यकाल के कवियो मे जनसाधारण का जीवन जीने वाला कवि कोई न था। अतः राजनीतिक हलचलो से वे दूर न थे। वे जनता की आवाज सुन सकते थे पर उन्हे वाणी देने की चिन्ता उन्हें न थी क्योंकि वे जनता के कवि न थे यदि वे जनता की बात कहते तो उनका आश्रय ही छिन जाता। अतः वे अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिये ही प्रशास्तियाँ लिखते रहते थे। वे जनसाधारण के बीच रहकर भी साहित्य सृजन भगवान के लिये करते रहे या अपने आश्रयदाता राजाओ के लिये।

इस युग मे अनेक चारण कवि भी हुये जिन्होंने वीरो को प्रोत्साहित करने के लिये काव्य सर्जना की। साहित्यिक दृष्टि से यह युग उन्नति के शिखर पर था। इस काल मे अनेक प्रमुख राजस्थानी कवि भी हुये। काव्य कला का समुचित विकास हुआ। अनेक भाषाओं मे काव्य लिखे गये। राजस्थानी भाषा की रचनाये तो 14 वी शताब्दी से ही मिलती है। इस काल के कवियों ने अपने आराध्य देव का अन्य देवो से बड़ा माना है जबकि जैन कवियों ने अपने आराध्य देव को सर्वोत्तम तो कहा है किन्तु अन्य देवो के प्रति कटु भी नही है।

तुलसी और जैन कवि दोनो ने भगवान के लोकरजनकारी रूप की महत्ता को ही स्वीकार किया है जिनेन्द्र मे राम के समान ही सौन्दर्य एवं शील की स्थापना हुई है, किन्तु शक्ति सम्पन्नता मे अन्तर है। जैन कवियो के काव्यो मे शांत भाव प्रधान रहा है। जैन आचार्यो ने नौ रसों मे शृंगार के स्थान पर शांत को रसराज कहा है। भाषा की दृष्टि से मध्य युग के जैन हिन्दी कवियो की रचनाओं को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। पहला भाग वि स 1400 से 1600 तक तथा दूसरा 1600 से 1800 तक। प्रथम भाग अपभ्रंश के अधिक निकट होने के कारण इसमे हिन्दी का विकास तो है ही साथ ही उन पर गुजराती और राजस्थानी का प्रभाव भी स्पष्टलक्षित है।

जैन कवि विविध छन्दो के प्रयोगो में भी निपुण थे। उन्होने अनेक नये छन्दों का प्रयोग किया। उनके पदो में यदि एक ओर भावुकता है, भक्ति है, कवित्व है तो दूसरी ओर संगीतात्मकता भी है। इनकी रचनाओ मे प्राकृतिक दृश्यो का जीवित चित्रण है, जिसका कारण जैन मुनियो का प्राकृति के लगाव व सानिध्य था। उनके प्रकृति वर्णन मे जो सौन्दर्य आ सका है वैसा सौन्दर्य इस युग की अन्य रचनाओ में ढूंढ पाना कठिन है।

अनुसंधान की आवश्यकता

राजस्थानी साहित्य का भण्डार अपार है। राजस्थानी के अनेक प्राचीन कवि-कथाकार तो अभी भी विद्वानों की दृष्टि से परे ही हैं। कुशललाभ भी राजस्थानी लोक साहित्य के ऐसे ही सशक्त विद्वान कवि हुये है। बहुत से लोग तो कुशललाभ नाम से ही परिचित नही है और जो विद्वान उनसे परिचित भी हैं, वे उनको ढोला मारू के लेखक के रूप में जानते हैं।

जैन कवि कुशललाभ अपने समय के राजस्थानी साहित्य के सशक्त कवि हुये है। आपके लिखे ग्रंथ बीस की संख्या मे अब तक प्राप्त हो चुके है परन्तु इन्ही को सब कुछ नही मान लेना चाहिये। मुझे ऐसा लगता है कि उनके अन्य ग्रंथ भी अवश्य मिलेंगे। कुशललाभ के साहित्य पर आज तक किसी ने कोई गम्भीर शोध कार्य नहीं किया है, जब कि उनके प्रमुख आख्यान काव्य-माधवानल कामकंदला, ढोला मारू, तेजसार के रास, भीमसेन राजहस चौपई, गुणसुन्दरी चौपई आदि अनेक ऐसे लोक कथात्मक काव्य ग्रथ है जो राजस्थानी साहित्य के प्रमुख अग माने जा सकते हैं। इन ग्रथों को प्रकाश मे लाना तथा उन पर कार्य करना मुझे बहुत ही अनिवार्य प्रतीत हुआ। दूसरे राजस्थानी वातावरण मे पोषित होने के कारण मुझमें राजस्थानी साहित्य के प्रति विशेष लगाव प्रारम्भ से ही रहा। कदाचित यही कारण था कि मैं अपने इस शोधप्रबन्ध को समर्पित होकर पूर्ण करने में सफल हो सकी।

द्वितीय अध्याय

कुशललाभ का जीवन परिचय

प्रसिद्ध अमरीकी चिन्तक एमरसन का कथन है कि---'महान व्यक्तियो का जीवन चरित प्राय. सक्षिप्त होता है। उनका वास्तविक जीवन तो उनकी कृतियो मे निहित रहता है।'[1] महान व्यक्तियो का जीवन-परिचय उनके कृतित्व में ही होता है और वही हमारा मार्ग दर्शन करता है। कवि कुशललाभ भी ऐसी ही महान् आत्मा है उनकी कृतियो के आधार पर ही हम उनका जीवन परिचय प्राप्त कर सकते है। जैसा कि कवि ने स्वय अपन ग्रथो की प्रशस्ति मे अपना परिचय दिया है उससे स्पष्ट होता है कि कवि खरतरगच्छ के उपाध्याय अभयधर्म के शिष्य थे। आप जिनभद्रसूरि सतानीय युग प्रधान जिनचन्द्र सूरि जी के आज्ञानुवर्ती थे।[2] आपकी कृतियो की भाषा से आपका जन्म राजस्थान (मारवाड़) मे होना सम्भव है। आपकी रचनाये सं. 1616 से स 1648 तक की प्राप्त हाती है। श्री अगरचन्द जी नाहटा ने आपका जन्म स 1580 के आसपास माना है।[3] राजस्थानी के अन्य विद्वानो ने भी आपका जन्म स. 1580 ही माना है। जन्म के सम्बन्ध मे ठोस प्रमाणो के अभाव मे कवि के साहित्य के आधार पर उनका जन्म स 1575 और स 1580 के बीच माना जा सकता है। 15 वी 16वी शताब्दी मे कई प्रमुख जैन सन हुये है जिन्होने उत्कृष्टतम काव्यो की सरचना की है। 16 वी शताब्दी के प्रारम्भ में हमे .कुशललाभ, समयसुन्दर आदि प्रमुख कवि और आचार्य मिलते है।

---

1. राजस्थानी साहित्य के ज्योतिषपुज डा० गोवर्द्धन शर्मा पृ. 22 से उद्धृत
2. श्री जिनभद्रसूरि सतान अभयधर्मउवझाय प्रधान
   तास सीस ऊलट अनि घणइ वाचक कुशललाभइ मभणइ
   भीमसेन राजहस सम्बन्ध चोाई प्र 1217-622
   आ. द. ग्रं. से प्राप्त
3. राजस्थान भारती श्री अगरचन्द नाहटा का लेख जनवरी 1947 पृ 22

कुशललाभ का सम्बन्ध हमें जैसलमेर से ही दिखाई देता है। उनके जन्म, जन्म स्थान और परिवार के सम्बन्ध मे हमे कोई जानकारी किसी भी स्रोत से उपलब्ध नही होती है।

परिवार

साधु समाज मे सदा से यह प्रवृति रही है कि वे अपना प्रमुख परिवार अपने गुरु के परिवार को ही मानते थे। गुरु के द्वारा दीक्षित होने की अवस्था ही उनकी जन्म की अवस्था थी। कुशललाभ की भी यही स्थिति है। उन्होंने प्रचुर मात्रा में लघु और वृहद् सामान्य से उत्कृष्टतम कोटि की रचनायें हमारे सामने प्रस्तुत की है पर उनमे कही भी उन्होने अपने जन्म के विषय मे, जन्मावस्था के विषय मे या अपने माता पिता भाई बहन अथवा कुल के विषय मे किसी प्रकार की सूचना नही दी है। हमे जो कुछ भी सामग्री मिलती है उसके आधार पर हम इनकी शिक्षा दीक्षा और वैराग्य की ओर झुकाव के विषय मे अवश्य कुछ मान्यताये स्थापित कर सकते है।

शिक्षा दीक्षा

कुशललाभ ने जिस साहित्य का निर्माण किया है उसमे, 'माधवानलकामकदला-चौपई' और 'ढोलामारूचोपई' ही ऐसी रचनाये है जो उनकी प्रारम्भिक रचनाओ के रूप मे मानी जा सकती हैं। ये रचनाये क्रमश. सवत् 1616 और 1617 मे रची गई थी। इस अवस्था मे वह हरराज के आश्रित रहते हुये गुरु पद पर आसीन थे। इससे स्पष्ट है कि इस अवस्था से पूर्व ही कभी उनकी शिक्षा दीक्षा पूर्ण हो चुकी थी। सवत् 1600 मे कुशललाभ के द्वारा स्वय अपने हाथ से लिखी हुई हंसदूत काव्य की एक प्रति उपलब्ध हुई है[1] जो उन्होने स्वय के पढने के लिये लिखी थी। इस प्रति मे उन्होने स्वय को मुनि उपाधि से अलकृत किया है और अपने गुरु नाम आदि का निर्देश किया है। इस ग्रथ की पुष्पिका, जिसमे उक्त सूचनाये मिलती है, निम्नलिखित रूप मे है :

1. कुशललाभ ने इस काव्य की प्रतिलिपि जिनमाणिक्यसूरि के विद्यमान होते हुए की थी।
2. इनके गुरु का नाम अभयधर्म था।
3. कुशललाभ उस समय मुनि अवस्था मे पण्डित उपाधिधारी बन चुके थे।

---

1 सवत् 1600 वर्षे माधव दि पंचम्यां दिने भौमवासरे हस्तनक्षत्रे श्री अमवर नगरे श्री खरतर-गच्छे श्री जिकमणिक्यसूरि विजयराज्ये श्री अभयधर्मोपाध्यायानां शिष्य पं० कुशललाभ मुनिना स्ववाचनार्थं विलिखे। शुभमस्तु लेखक पाठकयो. ;। श्री ॥
श्री अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर से प्राप्त फोटो कापी परिशिष्ट में।

प्रतिलिपि की विशुद्धता का ज्ञान लिपि की सुन्दरना और व्यवस्थित लेखन से ज्ञात होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि इस समय तक अवश्य ही बीस पच्चीस वर्ष का रहा होगा। यह प्रति उन्होने स्वय के पढ़ने के लिए लिखी है इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस अवस्था मे भी वह विद्यार्थी रहा होगा या विद्यार्थी जीवन से मुक्ति पाई होगी। उस काल मे सामान्यतः अध्ययन की अवस्था सात से अठारह वर्ष तक होती थी अतः उनका शिक्षा का प्रारम्भिक काल हम सात वर्ष की अवस्था में या स 1580 से 1585 के मध्य कही स्थिर कर सकते हैं और जन्म सवत् 1575 के लगभग।

गुरु

हसदूत काव्य मे जैसा कि ऊपर बताया गया है उनके गुरु का नाम अभयधर्म मिलता है। कुशललाभ ने अपने द्वारा विरचित लगभग सभी काव्यो मे अभयधर्म को गुरु मे स्मरण किया है। अभयधर्म का अन्य नाम अभयदेवाचार्य भी मिलता है। अभयधर्म के एक गुरु भाई का नाम जयधर्म था। इन दोनो भाइयो ने सवत् 1575 मे सखवाल गोत्रीय शाह भाखर की पुत्री श्रीमती अरधू श्राविका क द्वारा विहरात समय विपाक सूत्र की एक प्रति लिखकर पढी थी। विपाक सूत्र की एक प्रति मे कुशललाभ की गुरु परम्परा निम्न प्रकार दी गई है।

जिनभद्रसूरि

|

सिद्धान्तरुचि महोपाध्याय

|

वाचक विजय सोमगणि

|

नागकुमारगणि (राजवाचनाचार्य)

|

1. अभयधर्म 2. जयधर्म

कालान्तर में सवत् 1611 मे विणग्राम में सागरचंद्रसूरि संतानीय वा. साधुचन्द्रगणि के शिष्य भावहर्षोपाध्याय के शिष्य वा. हेमसार गणि ने स्ववाचनार्थ ग्रहण की। प्रति के एक पत्र पर सवत् 1615 मे ही हेमसागरगणि द्वारा दिये गये टिप्पण में अभयधर्म को अभयदेवाचार्य भी कहा गया है।

कुशललाभ अभयधर्म के शिष्य थे इसलिये उनकी भी यही गुरु परम्परा रही है। उक्त विज्ञप्ति लेख में एक बात दृष्टव्य है कि अभयधर्म ने इसमें कुशललाभ का नामोल्लेख नहीं किया है लगता है अभयधर्म और जयधर्म दोनों इस समय विद्यार्थी अवस्था मे थे। उन्होने अपनी शिष्य परम्परा नही चलाई थी। अतः कुशललाभ का अभयधर्म के शिष्यत्व में आना 1575 के बाद ही कभी रहा होगा और वह अवस्था संवत् 1580 और 1585 के मध्य या इसके बाद ही कभी मानी जा सकती है और यही अवस्था इनकी शिष्य के रूप मे दीक्षित होने की भी निर्धारित की जा सकती है।

जैन साधु परम्परा मे गुरु के द्वारा दीक्षित होने की कई श्रेणियाँ होती है उन्हें हम मुनि, वाचक, पाठक, उपाध्याय, महोपाध्याय और आचार्य रूप मे प्रस्तुत कर सकते है। जैसा कि पूर्व मे बताया जा चुका है सवत् 1580 व 1585 के बीच या इसके बाद कभी कुशललाभ शिष्य के रूप मे दीक्षित हुए होगे। सवत् 1600 मे प्रतिलिपित हसदूत की प्रति मे हम उन्हे मुनिपद पर सुशोभित पाते है। सवत् 1616 मे विरचित 'माधवानल कामकदला चौपई' से लगाकर सवत् 1644 मे विरचित 'शत्रुंजय तीर्थ यात्रा स्तवन' तक वह स्वय को वाचक पदवी से विभूषित करते है। अत विभिन्न पदो पर दीक्षा का काल इन्ही के आधार पर निश्चित किया जा सकता है। कोई निश्चित तिथि का स्पष्ट निर्देश उपलब्ध न होने से हमे अनुमान के आश्रय से ही यह तिथिया सवत् 1585 सवत् 1600 या उसके बाद और सवत् 1644 के आसपास माननी होगी।

वैराग्य की ओर झुकाव

जैन साधु के लिए प्रथमत. दीक्षित होने की अवस्था ही वैराग्य की ओर झुकाव होने की अवस्था मानी जानी चाहिये। पर तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुये हम निश्चित रूप से यह नही कह सकते कि कुशललाभ वैराग्य की ओर झुकाव के कारण ही अभयधर्म के शिष्य के रूप में दीक्षित हुए होगे। उस काल में अकाल की परिस्थितियो मे लोग अपने पुत्रो को जैन यतियो या जैन साधुओ को बेच देते थे, या सौप देते थे। अधिकांशतः यह प्रवृति गरीब श्रावकों या ब्राह्मणों व क्षत्रियों की थी। गरीब ब्राह्मण समाज जो जैन यतियो के प्रभाव मे थे बहुधा इस प्रकार का कृत्य किया करते थे। वे धनाढ्य श्रेष्ठी वर्ग भी जिन्हे जैन साधुओं या यतियो के आशीर्वाद से पुत्र की प्राप्ति होती अपनी प्रथम सन्तति को इन साधुओं की शरण में चेलों के रूप में बाल्यावस्था मे ही दे दिया करते थे। ऐसी अवस्था में जैन यतियों या साधुओ के शिष्यत्व का कारण वैराग्य की ओर प्रवृति ही रहती रही हो यह बात नहीं है।

कुशललाभ ने भी बाल्यावस्था मे ही अभयधर्म का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उन्होंने किसी वैराग्य के वशीभूत होकर या स्वेच्छा से यह स्थिति स्वीकार नहीं की। उनके माता पिता ने

ही उन्हें जैन साधुओं को सौंपा होगा। हिन्दु देवी देवताओं और हिन्दू धर्म की मान्यताओं के प्रति उनके ग्रथों में प्रदर्शित आदर के भावों से एवं विद्वता से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे किसी ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हुए होगे। 'माधवानल कामकंदला' और 'ढोलामारू चौपई' जैसे काव्यो को देखते हुये यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वैराग्य का लेशमात्र भी प्रभाव उनमे नही था। वे विलासी सामन्ती जीवन से पूर्णतः प्रभावित थे। उनमे वैराग्य की ओर झुकाव वृद्धावस्था मे ही दिखाई देता है। यह अवस्था 'स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवन' संवत् 1638 शत्रुजंय यात्रा स्तवन संवत् 1644 पार्श्वनाथ दशमव स्तवन या महामाई दुर्गासात्तसी आदि काव्यो से स्पष्ट होती है।

राज्याश्रय

कवि कुशललाभ के द्वारा विरचित 'माधवानलकामकदला चउपई' सवत् 1616 'ढोलामारू चौपई' सवत् 1617 और पिंगल शिरोमणि (रचना काल सवत् 1618 के पूर्व संकलन सपादन काल सवत् 1635) ही ऐसे ग्रथ हैं जिनसे कवि के राज्याश्रित होने की कल्पना की जा सकती है। इन ग्रथो से स्पष्ट है कि कुशललाभ राजकुमार हरराज के गुरु थे। उन्होने हरराज को छंद-शास्त्र, राजनीति, कामशास्त्र आदि की शिक्षा दी। 'पिंगल शिरोमणि' काव्य शास्त्र की शिक्षा के लिये रचा गया था जिसमे कुशललाभ की ही नही काव्य निर्माण मे हरराज की पटुता के भी दर्शन होते है।

राजकुमार का गुरु होने के कारण ही कुशललाभ को राज्याश्रित घोषित किया जाता है। यद्यपि यह स्पष्ट नही है कि उन्हे इस कार्य के लिए किसी प्रकार की वृत्ति मिलती रही हो। अपने नगर के योग्य विद्वानो के पास राजकुमारो की शिक्षा की परम्परा अति-प्राचीन काल से रही है। अत राजकुमार हरराज भी यदि कुशललाभ के पास उन्ही के उपासरे मे पढने जाता रहा हो तो भी आश्चर्य नहीं है। इन प्रमाणो के आधार पर तो यह घोपित करना कठिन ही है कि वह राज्याश्रित कवि रहे होगे, पर हमारे पास एक सूत्र अवश्य ही ऐसा है जिसके आधार पर हम कल्पना कर सकते है कि वह राज्याश्रित रहे, हो सकते है। एक सूत्र विपाक सूत्र की अभयधर्म और जयधर्म द्वारा लिखित प्रति ही है जिसमे अभयधर्म अपने गुरु नागकुमारगणि को 'राजवाचनाचार्य' उपाधि से विभूषित करते हैं। जिसका स्पष्टतः अर्थ यही लगाया जा सकता है कि वे साधारण सामान्य जनता के ही वाचक न रहकर राज-दरबार के भी धार्मिक या अन्य ग्रथो का वाचन करते रहे होंगे। यही कार्य परम्परा से नागकुमारमणि के उपरान्त अभयधर्म को और तत्पश्चात् कुशललाभ को प्राप्त हुआ होगा। कुशललाभ को हरराज का गुरु बनने का सौभाग्य, सम्भव है, इसी परम्परा मे विरासत मे मिला है। एक ही स्थान पर सुदीर्घ काल तक ठहर कर राजकुमारों के पठन-पाठन के कार्य से कुशललाभ और अभयधर्म जैन

यतियों की परम्परा के साधु प्रतीत होते हैं। अधिकांश जैन यतियों ने इस काल में राज्याश्रय ग्रहण कर लिया था, गृहस्थ धर्म को स्वीकार कर लिया था और सांसारिक प्रपंचों में पड़कर हिन्दू, जैन, आर्य और अनार्य सभी संस्कृतियों से चमत्कारिक बातों को लेकर सामान्य जनता और सामन्त वर्ग पर अपना प्रभाव जमाने का प्रयास किया था। कुशललाभ ने यह सब कुछ नहीं भी किया हो तो भी यति परम्परा में होने के कारण राज्याश्रय ग्रहण कर लिया था।

साहित्य निर्माण की रुचि

कुशललाभ एक योग्य गुरु के शिष्य थे और योग्य गुरुओं की परम्परा के एक विद्वान। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि परम्परा की धार्मिक ग्रथों के पठन-पाठन की लीक मे ही बँधे न रहकर वह स्वय भी स्वतन्त्र साहित्य की रचना में रुचि लेते। साहित्य के प्रति रुचि का स्पष्ट और सर्वप्रथम प्रमाण तो उनके द्वारा प्रतिलिपित 'हंसदूत काव्य' में ही मिल जाता है। पर हमे साहित्य निर्माण की ओर उनकी रुचि का सर्वप्रथम प्रमाण उनके द्वारा विरचित 'माधवानल कामकंदल चौपई' और 'ढोलामारू चौपई' तथा 'पिंगल शिरोमणि' (जो निश्चित रूप से उपर्युक्त दोनो काव्यों के काल की ही रचना है।) मे मिलता है। प्राप्त कृतियो के आधार पर साहित्य निर्माण का काल सवत् 1616 का निश्चित होता है। यह असम्भव-सा ही लगता है कि कवि अपने प्रारम्भिक प्रयास मे ही इतने उत्कृष्टतम काव्यो की सरचना करने मे सक्षम रहा हो। अवश्य ही उसने इससे पाँच दस वर्ष पूर्व ही इस प्रकार का अभ्यास प्रारम्भ किया होगा। यद्यपि हमारे सामने उस काल के प्रयासों का नमूना मौजूद नही है। ऐसी स्थिति मे प्राप्त कल्पना के आधार पर ही हम यह निर्णय ले सकते है कि कवि ने सम्यक् रूपेण अध्ययन और स्वाध्याय के पश्चात् सवत् 1600 के उपरान्त सवत् 1605 या सवत् 1610 तक साहित्य निर्माण मे रुचि को जन्म दिया होगा। प्रारम्भिक रचनायें धार्मिक भी हो सकती है या अन्य विषयो की स्फुट रचना रचनाये भी और वे रचनाये सामान्य कोटि की लघु काव्य रचनाये रही होगी।

प्राप्त रचनाओ मे कई एक रचनाये ऐसी हैं जिनका कोई निश्चित रचना काल हमे नही मिलता है। सम्भव है ये रचनाये इसी काल की रही हों।

स्वर्गवास

कुशललाभ के स्वर्गवास व परिस्थितियो क विषय मे भी उनके आख्यान काव्यो मे हमे कोई विशेष जानकारी नही मिलती है। इसके लिये भी हमे अनुमानो का ही आश्रय लेना पड़ेगा। हमने कवि के जन्म की तिथि पूर्व मे सवत् 1575 और 1580 के आसपास निश्चित की थी। उनकी अन्तिम रचना हमे सवत् 1648 की 'गुणसुन्दरी चौपई' मिलती है। इसके बाद का कोई साहित्य अद्यावदि उपलब्ध

नहीं है। संवत् 1575 जन्म काल मान लेने पर 'गुणसुन्दरी चौपई' के रचना काल संवत् 1648 तक उनकी आयु 68 से 73 वर्ष की हो जाती है। वैसे तो हमारे यहाँ मनुष्य की आयु सौ या एक सौ बीस वर्ष की भी मानी जाती है और एक साधु के लिये इतनी आयु प्राप्त कर लेना कोई आश्चर्य की बात नही। पर साधारण रूप से 60 व 80 वर्ष की अवस्था मे लोगों को मरते देखा जाता है। सवत् 1648 के पश्चात् कुशललाभ की किसी रचना का उपलब्ध न होना यही सकेत देता है कि कुशललाभ या तो इतने वृद्ध और अशक्त हो चुके थे कि वे इससे आगे किसी कृति की रचना नही कर पाये या फिर उनका देहावसान हो गया होगा। अतः जब तक कोई प्रमाण इस विषय मे उपलब्ध न हो जाये हम 'गुणसुन्दरी चौपई' की सरचना के उपरान्त ही संवत् 1650 से संवत् 1655 मे उनकी मृत्यु की तिथि निश्चित कर सकते हैं।

तृतीय अध्याय

कुशललाभ का कृतित्व

जैन कवि कुशललाभ खरतरगच्छीय उपाध्याय अभयधर्म के शिष्य थे।[1] ये अपने समय के एक सशक्त कवि एव उच्चकोटि के विद्वान हुये हैं। अपने साहित्यक जीवन के उषाकाल में ये जैसलसेर के राजकुमार हरराज के आश्रित थे—यह कवि की 'ढोलामारू चौपई'[2] माधवानल कामकन्दला चौपई[3], एव 'पिंगल शिरोमणि'[4] आदि कृतियों की पुष्पिका (प्रशस्तियों) से स्पष्ट है। कुशललाभ की रचनायें वि. सं. 1616 से 1648 तक की मिलती है। इससे कवि का लम्बे अर्से तक साहित्य सेवा करना प्रमाणित होता है।

कुशललाभ की अब तक प्राप्त कृतियाँ—

1 माधवानल कामकंदला चौपई[5]	वि स 1616
2 ढोलामारू चौपई[6]	वि स 1617

---

1 क) आनन्द काव्य महोदधि मो 7 पृ 143
(ख) तेजसाररस—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रथाक 26546
(ग) गुडी पार्श्वनाथ स्तवन, एल. डी. इन्स्टीट्यूट, अहमदाबाद—राजस्थान विश्वविद्यालय पुस्तकालय द्वारा प्राप्त हुई।

2 डा श्री ब्रजमोहन जावलिया के निजी सग्रह से प्राप्त प्रति—प्रतिलिपि काल स 1639 चौ 736

3 गायकवाड ओरियन्टल सीरिज पृष्ठ 441 चौ 661

4 पिंगल शिरोमणि परम्परा भाग 13

5 (क) श्री आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार लाल भवन जयपुर पुष्टा संख्या 13615-20
(ख) गायकवाड ओरियन्टल सीरिज बडौदा प्रथम भाग 1942

6. (क) वही-
(ख) ढोलामारू रा दूहा—संपादकत्रय तृतीय सस्करण 2019 परिशिष्ट 2
(ग) पृ. 266 से 315

3. जिनपालित जिनरक्षित रास[1]	वि. सं' 1621
4. तेजसार रास[2]	वि. सं. 1624
5. अगड़दत्त रास[3]	वि. सं. 1625
6. पिंगल शिरोमणि[4]	वि. सं. 1635
6. स्तभंन पार्श्वनाथ स्तवन[5]	वि. सं. 1638
8. भीमसेन राजहंस चौपई[6]	वि. सं. 1643
9. शत्रुजंय यात्रा स्तवन[7]	वि. सं. 1644
10. गुण सौन्दर्य चौपई[8]	वि. सं. 1648
11. नवकार छन्द[9]	
12. गौडी पार्श्वनाथ[10]	
13. श्री पूज्यवाहणगीत[11]	
14. पार्श्वनाथ दशभवस्तवन गाथा[12]	
15. दुर्गा सात्तसी[13]	
16. भवानी छन्द[14]	

---

1 (क) महिमा भक्ति जैन ज्ञान भंडार—बडा उपाश्रय—बीकानेर ग्रथाक 2570
(ख) वही—द्वितीय प्रति ग्रंथाक 2569

2. (क) मुनि श्री कल्याण विजय भडार—जालौर ग्र थाक 1126
(ख) वही ग्र थाक 44
(ग) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्र थाक 26546
(घ) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्टान, बीकानेर ग्रंथाक 1245
(ङ) वही, ग्रथाक 1566
(च) वही, ग्रंथाक 2039
(छ) श्री अभयजैन ग्रंथालय बीकानेर ग्रंथाक 3712

3. भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा ग्रथाक 665

4. परम्परा भाग 13

5 श्री आचार्य विनय चन्द्र ज्ञान भण्डार —लालभवन, जयपुर पु सं. 37/80

6. एल. डी इन्स्टीट्यूट अहमदाबाद ग्रथाक 1217

7. श्री अभयजैन ग्रंथालय बीकानेर ग्रथाक 7744

8. दि, जैन मदिर दीवानजी कामा भरतपुर बस्ता न. 270

9. आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार जयपुर पुष्ठा स 3731

10. (क) राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्टान जयपुर ग्रथाक 6060
(ख) कुञ्ज शकर तिवारीजी के निजी सग्रह से प्राप्त ग्रथाक 300

11 ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—अगरचन्द नाहटा

12. एल डी इन्स्टीट्यूट अहमदाबाद ग्रथाक 975

13. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ पेलेस बीकानेर ग्रंथाक 68 (घ)

14. (क) रा. प्र वि. प्र उदयपुर ग्रथाक 602 2423
(ख) श्री पूज्य जी का उपाश्रय बीकानेर—ग्रंथाक नही है (अव्यवस्थित है)

17. स्थूलिभद्र छत्तीसी[1]
18. कवित्त सवैया[2]

कृतियों का वर्गीकरण

आख्यान काव्य

लोक आख्यान
1 ढोलामारू चौपई
2. माधवानल चौपई
3. तेजसार रास
4. अगड़दत्त रास
5 भीमसेन राजहंस चौपई
6 गुण-सुन्दरी चौपई

धर्म आख्यान
1. जिनपालित जिन रक्षित रास
2 स्तंभन पार्श्वनाथ
3. शत्रुंजय यात्रा स्तवन
4. नवकार छन्द
5. गौड़ी पार्श्वनाथ
6 श्री पूज्यवाहण गीत
7. पार्श्वनाथ दशभव स्तवन
8. छदुर्गासातसी
9. भवानीछन्द
10 स्थूलिभद्र छत्तीसी

अन्य
1. पिंगल शिरोमणि
2. कवित्त सवैया

लोक आख्यान कृतियों का सामान्य परिचय

ढोलामारू का कथासार—

कथा का प्रारम्भ मंगलाचरण के साथ हुआ है (प्रस्तावना के बाद राजा पिंगल का उमादेवड़ी के साथ घात-प्रतिघात युक्त विवाह का तथा ढोला व मारवणी के जन्म का वर्णन है। पूगल के राजा पिंगल अकाल पड़ने पर पुष्कर जाते हैं। नरवर *के राजा नल मनौती के लिए तीर्थयात्रा निमित्त वहाँ आते हैं)*

किसी समय पूगल मे राजा पिंगल राज्य करते थे। राजा पिंगल का विवाह बहुत ही घात प्रतिघात के बाद सोलह वर्ष की आयु मे आबू के अधिपति सामंतसिंह देवड़ा की पुत्री उमादेवडी के साथ हुआ। उस समय उमा देवड़ी की आयु बारह वर्ष की थी। इनके एक पुत्री हुई जिसका नाम मारवणी था। मारवणी जब डेढ़ वर्ष की थी तब पूगल मे भयंकर अकाल पड़ा। राजा पिंगल उस दुष्काल से बचने के लिए पुष्कर आये।

---

1. श्री अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर ग्रंथांक 87/4509
2 वही, बीकानेर ग्रंथांक 32870

उस समय नरवर में राजा नल राज्य करते थे। उनके कोई संतान नहीं थी। राजा रात दिन चिंतित रहता था और संतान हेतु देवी देवता तंत्र-यंत्र औषध आदि किया करता था। एक दिन एक परदेशी ने पुष्कर यात्रा से पुत्र प्राप्ति की बात बताई। राजा ने यात्रा का संकल्प किया। सौभाग्य से राजा को पुत्र प्राप्त हुआ और उसे साल्हकुमार नाम दिया गया। मृत्यु के भय से माता ने उसे ढोला नाम दिया। कुमार जब तीन वर्ष का होता है तब पुत्र मनौती पूरी करने पुष्कर यात्रा के लिए आते हैं। राजा पिंगल व राजा नल एक दूसरे से मिलकर बहुत प्रसन्न होते हैं। राजा नल मारवणी को देखकर ढोला से उसका रिश्ता करके विवाह कर देते हैं। देश मे सुकाल पड़ने पर पिंगलराय पूगल लौटते है। मारवणी अभी अल्प आयु सुकुमार बालिका ही थी अतः उसे ससुराल न भेजकर पिंगल अपने साथ ही उसे ले आते हैं।

मालवा मे राजा भीम राज्य करते थे उनकी सुन्दर कन्या मालवणी है। राजा नल पूगल के मार्ग सकटो को देखते हुए ढोला का विवाह मालवणी से कर देता है। ढोला के विवाह के समय भी मारवणी की बात नही बताई गई। मालवणी सास के द्वारा दिए गए उपालम्भ से मारवणी के बारे मे जानती है और वह ढोला से पूगल से आने वाले प्रत्येक पथिक को अपने अधिकार में रखने का वचन ले लेती है।

समय व्यतीत होता रहा और पन्द्रह वर्ष व्यतीत हो गये। एक घोडो का सौदागर नरवर से पूगल घोड़े बेचने आता है। वह मारू को देखकर पिंगल राजा के खवास से उसके बारे मे पूछता है। खवास उसे मारू के बारे मे सब बात बताता है। सौदागर पिंगलराय को ढोला की दूसरी पत्नी मालवणी के बारे मे बताता है। मालवणी छुप कर यह सब सुनती है और वह विरह व्यथित हो जाती है। मारू की विरह व्यथा छुपी नही रहती माता उसकी दशा देखकर राजा को बताती है। राजा को सौदागर बताता है कि मालवणी पूगल से जाने वाले प्रत्येक पथिक को मरवा डालती है और ढोला तक सन्देश पहुँच ही नही पाते है। राजा पिगल को जब यह बात ज्ञात होती है तो वे पुरोहित को भेजना चाहते है परन्तु मारवणी के कहने से राजा ढाढियो को भेजने के लिए तैयार हो जाते है। मारू ढाढियो को अपना विरह से दग्ध प्रेम संदेश ढोला तक पहुँचाने के लिए कहती है और सुध न लेने पर ढोला को उपालम्भ पर उपालम्भ देती है। ढाढी भाट वेश मे नरवर के लिए प्रस्थान करते है। मालवणी उन्हे याचक जानकर छोड देती है। ढाढी नरवर मे पहले भाऊ भाट से मिलते हैं और सब कुछ बता देते है। भाऊ भाट अवसर देखकर उन्हे ढोला मे मिलवा देता है और इस प्रकार ढोला को मारवणी से पूर्व विवहिता होने की बात ज्ञात होती है। ढोला ढाढियों को इनाम आदि देकर उनके साथ भाऊ भाट को भी भेज देता है। ढाढी व भाट पूगल पहुँच कर पिंगल राजा को ढोला के सब समाचार विस्तार पूर्वक कहते हैं।

ढोला मारू के लिए चिंतित है। मालवणी प्रिय को उदास देखकर खवास से कारण पूछती है तब खवास पूगल से आने वाले पथिकों एवं भाऊ भाट के घात के

बारे में बताता है। मालवणी ढोला को उदासी का कारण पूछती है। ढोला बहाने बनाता है तथा परदेश गमन की इच्छा व्यक्त करता है। परन्तु मालवणी के सामने उसके बहाने नहीं चलते अन्ततः ढोला मारू के बारे मे बताता है और उसे लाने की इच्छा भी व्यक्त करता है। इस अप्रत्याशित एवं आगत विरह की कल्पना से वह मूच्छित हो जाती है। होश में आने पर वह भयानक गर्मी का, वर्षा की कीचड़ एवं शीत की कठोरता का स्मरण करा कर ढोला को चार मास तक रोके रखती है। ढोला मालवणी से अपार प्रेम होने के कारण रुक तो जाता है परन्तु मारवणी को भुला नहीं पाता। ढोला का धैर्य का अन्त हो जाता है और वह पूगल प्रस्थान का दृढ़ निश्चय कर लेता है तब मालवणी कहती है कि उसकी सुप्तावस्था मे प्रस्थान करे। पन्द्रह दिन तक मालवणी सोती नहीं। आखिर प्रकृति की ही विजय होती है एक रात मालवणी को नीद आ ही जाती है और ढोला पूगल की राह लेता है। ऊँट की आवाज से मालवणी जाग पड़ती है परन्तु तब तक ढोला बहुत दूर निकल जाता है। मालवणी प्रिय वियोग मे दुखित हो करुण क्रन्दन करती है। वह शुक को ढोला को लौटा लाने के लिये भेजती है किन्तु वह भी निराश लौट आता है। ढोला पूगल की ओर बढता है। रास्ते मे उसे एक बनिया मिलता है वह उसे पत्र देना चाहता है पर ढोला रुकना नही चाहता वह वणिक को ऊँट पर बैठा लेता है। वणिक पत्र लिखकर खत्म करता है वही उसका गन्तव्य स्थान आ जाता है। वणिक भी ऊँट की गति देखकर आश्चर्य करता है।

मार्ग मे ढोला को ऊमर सूमरा का एक चारण मिलता है। वह ढोला को मारू सम्बन्धी भ्रामक सूचनाएँ देता है। ढोला मारू की ओर से खिन्न हो जाता है। ऐसी मानसिक ऊहापोह मे उसे मारू का एक चारण और मिलता है वह ढोला को वास्तविकता से परिचित कराता है। ढोला उसकी बातें सुनकर प्रसन्न होता है और पूगल की ओर आगे बढ़ता है।

उधर मारू को स्वप्न मे प्रिय मिलता है और यह वृतांत वह माता से कहती है। अगले दिन वह सखियो के साथ शाम को कुये पर जाती है तब उसके शरीर मे शुभ शकुन उत्पन्न होते हैं। कुयें पर ढोला भी पानी पीने आता है। वही दोनो का प्रथम साक्षात्कार होता है। मारवणी ढोला की बातों से, उसे पहचान जाती है और तुरन्त ही वापस घर आती है। पश्चात् ढोला की आगवानी के लिये आदमी भेजे जाते है ढोला के आने पर सखियाँ मारवणी को सजाती है। तरह-तरह के सुख भोगता हुआ ढोला पन्द्रह दिन ससुराल मे रहता है। तत्पश्चात् ढोला के कहने पर राजा पिंगल मारू व ढोला को दहेज देकर नरवर के लिए आनन्द एव उत्साह के साथ विदा करते है। चलत-चलते मार्ग मे रात्रि होने पर ढोला ने पडाव डाला। यहाँ एक अप्रत्याशित घटना घटती है। मारवणी को 'पीणा' साँप पी जाता है। ढोला विलाप करता है लोग मारू की बहिन चपावती मे विवाह करने के लिए समझाते है पर वह नहीं मानता तथा मारू के साथ ही चितारोहण के लिए तैयार हो जाता है। संयोग से

उसी समय एक योगी योगिन उधर से आ निकलते हैं। योगिनी मारू को जीवित करने के लिए योगी से अनुरोध करती है। योगी अभिमन्त्रित जल छिड़ककर मारवणी को पुनः जीवित कर देता है। मारवणी के पुन जीवन पाने की खुशी मे ढोला योगिन को नौसर हार तथा योगी को वस्त्र आभूषण देता है।

ढोला शीघ्र ही नरवर पहुँचना चाहता है परन्तु दुर्भाग्य अभी उसका पीछा नहीं छोड़ता। मारू पर अनुरक्त ऊमर सूमरा घात लगाकर ढोला मारू का पीछा करता है। ढोला ऊमरा सूमरा को नही जानता अतः उनके निमंत्रण पर वह मद्यपान के लिये रुक जाता है। मारू के पीहर की डूमणी गीत के माध्यम से मारू को अमगल की सूचना देती है। मारवणी चिंतित होती है और ऊँट को छडी से मारती है। ढोला ऊँट को संभालने आता है तब मारू ऊमर के षडयत्र के बारे मे बताती है। ढोला मारू ऊँट पर चढकर वायुवेग से चल देते हैं। ऊमर सूमरा भी घोडो से उनका पीछा करता है और अन्त मे निराश हो वापस लौटता है।

ढोला सकुशल नरवर पहुँचता है। पुत्र के पहुंचने पर राजा नल बहुत उत्सव मनाते हैं और ढोला दोनों पत्नियो के साथ सुख से रहने लगता है कि एक दिन दोनो सपत्नियो मे अपने अपने प्रदेशो को लेकर वाद-विवाद हो जाता है। ढोला के हस्तक्षेप से वह कटु वाद-विवाद समाप्त हो जाता है। दोनो पत्नियो के भेद-भाव मिट जाते हैं और वे सभी सुख से रहने लगते है।

माधवानल कामकंदला कथासार

एक समय इन्द्रपुरी मे राजा इन्द्र ने प्रसन्न होकर अप्सराओ को नाटक खेलने का आदेश दिया। अप्सराओ मे सबसे सुन्दर अप्सरा जयन्ती को अपने रूप और कला पर बड़ा घमड हो गया था इसलिये उसने यह सोचकर कि उसके बिना नाटक हो ही नही सकता, नाटक मे भाग ही नही लिया। इन्द्र ने क्रुद्ध होकर जयन्ती को शाप दे दिया और वह शाप के फलानुसार मृत्युलोक मे शिला के रूप मे अवतरित हुई। इन्द्र ने शाप देने के बाद जयन्ती के विनती करने पर यह वरदान भी दे दिया था कि जब माधव ब्राह्मण उसका वरण करेगा तब वह शाप मुक्त हो जायेगी।

जयन्ती शिला रूप में पुष्पावती नगरी मे अवतरित हुई। कैलाश पर्वत पर योगिराज शकर बारह वर्ष की समाधि मे अविचल बैठे थे। एक दिन समाधिस्थ अवस्था मे ही उनका मन उमा रमण के लिये चचल हो उठा और उसी अवस्था मे वह इस विचार से स्खलित हो गये। शकर के वीर्य के पृथ्वी पर गिरने की आशका तथा उसके द्वारा होने वाले संभाव्य उत्पात के विचार से प्रेरित होकर विष्णु ने प्रगट होकर उस बिन्दु को अपनी अजली में ले लिया और उसे एक कमलिनी की नाल मे रख दिया।

गगातट पर पुष्पावती नगरी मे राजा गोविंद चन्द राज करता था। इस राजा के पुरोहित शकरदास के कोई पुत्र नही था इसलिये वह बहुत दुखी रहता था। एक रात उसे शिव ने स्वप्न में बताया कि गगातट पर जाओ वहां तुम्हें एक पुत्र मिलेगा। दूसरे दिन प्रातः काल ब्राह्मण अपनी पत्नी के साथ गगातट पर गया और

एक बड़े ही सुन्दर बालक को पाया । ब्राह्मण ने इसका नाम माधवानल रखा, जो बड़ा बुद्धिमान एवं तेजस्वी था । एक दिन बारह वर्षीय बालक माधव अपने मित्रों के साथ नदी तट पर पहुचा । वहाँ शिलारूपिणी नारी को देखकर बालकों ने खेल ही खेल में माधवानल को दूल्हा बनाकर शिलारूपी नारी से विवाह कराया । माधवानल से विवाह के बाद वह शिलारूपी नारी अप्सरा बनकर आकाश में उड़ गई और सभी बालक भयभीत हो देखते रह गये ।

इंद्र लोक में पहुच कर जयन्ती बहुत दु.खी रहने लगी । उसे बार-बार माधव का ध्यान आता था, वह सोचती थी कि माधव ने उसका उपकार किया है और वह माधव की विवाहिता है । एक रात वह माधव से मिलने आई और व्यथा प्रकट की । इसके बाद रोज वह माधव से छुप कर मिलने लगी । एक दिन जयन्ती सो गई अत: उसे इन्द्रलोक पहुचने मे देरी हो गई जिसके कारण अन्य अप्सराओं ने जयन्ती के भेद को पा लिया और उन्होंने इन्द्र से जाकर शिकायत कर दी । इन्द्र के शाप भय से जयन्ती ने थोडे दिन आना बन्द कर दिया । उसके न आने से माधव बड़ा दु:खी रहने लगा । कुछ दिन बाद जयन्ती माधव के पास आई और उसे अपनी विवशता बताई । उस दिन से माधव स्वय इन्द्रपुरी जाने लगा । एक रात इन्द्र ने फिर अपने यहाँ नाटक का आयोजन किया । जयन्ती बड़े संशय में पड गई अन्त मे उसने माधव को भ्रमर का रूप देकर अपनी कचुकी मे रख लिया । सभा में नृत्य करते समय वह अपने अंगो को विशेष रूप से इसलिये नही मोड़ती थी कि कहीं कचुकी के बीच मे अवस्थित भ्रमर रूपी माधव दब न जाये । इन्द्र ने जयन्ती की इस दशा को बडे ध्यान से देखा और माधव रूपी भ्रमर को कचुकी मे देख बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने जयन्ती को वेश्या के रूप मे मृत्यु-लोक मे जन्म लेने का शाप दिया । इस शाप के कारण कामावती नगरी मे कन्दला वेश्या के रूप मे जयन्ती ने जन्म लिया । इधर माधव अप्सरा के प्रेम मे व्याकुल रहने लगा । अनजान में माधव का रूप उसके लिये घातक था । नगर की सारी स्त्रियाँ उसके रूप पर मोहित थी तथा अपने घर का काम छोडकर उसकी याद मे समय व्यतीत किया करती थी और अपने पति की ओर भी ध्यान नही देती थी । एक दिन कुछ आदमियो ने राज दरबार मे माधव के ऊपर स्त्रियों को दुश्चरित्रा बनाने का अभियोग लगाया और उसके निष्कासन की प्रार्थना की । राजा ने माधव के रूप का प्रभाव देखने के लिये उसे अपने यहाँ बुलाया जहाँ उसकी रानियाँ एव अन्य स्त्रियाँ भी थी । माधव के रूप को देखकर स्त्रियाँ विह्वल हो गई और कुछ तो अपने आपको सभाल भी न सकी । स्त्रियो की इस दशा को देखकर राजा ने माधव को निष्कासन की आज्ञा दी । माधव पुष्पावती को छोड़कर घूमता हुआ कामावती पहुंचा ।

इन्द्र महोत्सव के दिन राजा कामसेन के यहाँ नाटक खेला जा रहा था । मृदंग आदि बाजे बज रहे थे । माधव भी राजद्वार पर पहुँचा किन्तु अन्दर से आते हुये तंत्रीनाद एवं मृदग की धुन को सुनकर अपना सिर धुनने लगा । द्वारपाल के

पूछने पर उसने बताया कि पूर्व की ओर मुँह किये जो पखावज बजा रहा है उसके अगूंठा नही है इसलिये स्वर भग हो रहा है। द्वारपाल के द्वारा राजा को यह बात मालूम हुई तब उन्होंने माधव को बुलाया और बड़ा सत्कार किया। माधव ने कामकंदला को देखा और कामकंदला ने माधव को। दोनो एक दूसरे को परिचित से जान पड़े। माधव सोचने लगा कि संभवत यह वही अप्सरा तो नहीं है जिसने मुझे कुचों के बीच रख लिया था और कन्दला यह सोचने लगी कि कभी मैंने इसे अपने कुच के बीच स्थान दिया था कब दिया था स्मरण नही आता। इतने मे कदला का नृत्य प्रारम्भ हुआ और एक भ्रमर कदला के कुच के अग्र भाग पर आ बैठा। उस भ्रमर के बैठते ही स्मरण शक्ति जागृत हो गई और उसने माधव को पहचान लिया। ऐसा याद आते ही भ्रमर ने कुच पर दशन किया और कदला ने उसे पवनस्रोत से उड़ा दिया। नर्तकी की इस कला की ओर माधव को छोड़कर किसी ने ध्यान नही दिया। अतएव माधव ने नर्तकी को पास बुलाकर राजा द्वारा प्रदत्त आभूषण कदला पर निछावर कर दिये। माधव के इस व्यवहार को राजा ने अपना अपमान समझा और उसे देश निकाले का दण्ड दे दिया। कामकदाला उसे अपने घर ले गई माधव कुछ समय तक कदला के साथ रहा और फिर कामावती छोड़कर चला गया।

कदला के वियोग मे भटकता हुआ माधव राजा विक्रमादित्य के राज्य उज्जैन पहुचा और अपने वियोग दुःख से छुटकारा पाने हेतु शिव मन्दिर मे गाथा लिखी जिसे पढकर विक्रमादित्य बडा दुखी हुआ। विक्रमादित्य की आज्ञा स इस विरही को ढूंढा जाने लगा। गोप विलासनी वेश्या ने शिव मन्दिर मे माधव को ढूंढ निकाला। राजा ने वेश्या से प्रेम त्यागने को कहा लेकिन माधव के न मानने पर विक्रमादित्य ने कामावती पर चढाई करदी। कामावती मे विक्रमादित्य ने कदला की परीक्षा लेते समय माधव की मृत्यु का झूठा सन्देशा कहा जिसके कारण कदला की मृत्यु हो गई। कदला की मृत्यु का हाल जानकर माधव भी मर गया। बेताल की सहायता से अमृत प्राप्त कर विक्रमादित्य ने दोनो को पुन. जीवित किया और उसके उपरान्त विक्रमादित्य के कहने पर कामसेन ने कदला को माधव को सौंप दिया। इस प्रकार कंदला को प्राप्त कर माधव अपने पिता के यहाँ पुनः लौट आया।

तेजसार रास का कर्त्ता

कुशललाभ के द्वारा विरचित कथा-साहित्य में 'तेजसार रास' का भी प्रमुख स्थान है। इस रचना को प्रकाश मे लाने का सर्वप्रथम श्रेय जैन गुर्जर कवियो-भाग—1 के सम्पादक श्री मोहनलाल दूलीचद देसाई को है।[1] डॉ. हीरालाल माहेश्वरी[2] और डॉ मोतीलाल मेनारिया[3] ने भी अपनी 'राजस्थानी भाषा और साहित्य'

1. जैन गुर्जर कविओ-भाग-1 पृ० 214-15। क. सं 249
2. राजस्थानी भाषा का साहित्य—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० 259
3. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृ० 141

पुस्तकों में कुशललाभ की उक्त रचना का उल्लेख किया है। श्री प्रेमसागर जैन ने इस रचना को दीप-पूजा से सम्बन्धित काव्य मानते हुये कहा है कि कुशललाभ ने इसकी रचना अपने गुरु अभयदेव से प्रेरणा पाकर की थी।[1] श्री जैन द्वारा इस काव्य को दीप-पूजा से सम्बन्धित मानने के आधार 'जैन गुर्जर कविओं' भाग—1 मे उल्लिखित तीन प्रतियो मे से प्रथम स. 1644 वि. पौष शुक्ला 14 को राजपुर (अहमदाबाद) मे तपागच्छीय सहजविमल द्वारा प्रतिलिपि प्रति है, जिसकी अतिम पुष्पिका मे इसे 'दीप-पूजा विषये रास' सज्ञा दी गई है। श्री अगरचन्द नाहटा ने भी कुशललाभ के कृतित्व के परिचय विषयक अपने एक लेख मे उक्त रचना 'तेजसार रास' का भी उल्लेख किया है।[2] पर सामान्य सूचना को छोड़कर इस रचना पर अद्यावधि कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला गया है।

415 छन्दो मे विरचित यह लघु काव्य काल्पनिक पात्र और घटनाओं से युक्त जैन-दर्शन के प्रचार-प्रसार का साधनरूप एक आख्यान है। इसमे मुख्य पात्र बनारस के राजकुमार तेजसार के जन्म और जीवन से सम्बन्धित चमत्कारी वर्णन प्रस्तुत किया गया है और अनन्त ऐश्वर्य और भोगों के उपभोग के उपरान्त तेजसार को दीक्षा दिलाकर कथा की सुखप्रद समाप्ति की गई है। सरल सहज-प्रवाहमयी राजस्थानी भाषा मे विरचित इस आख्यान मे भाव-सौष्ठव, मार्दव, ऋतुता, सहज अभिव्यक्ति, धार्मिक अभिव्यजना के साथ-साथ भारतीय आर्य सस्कृति और लोक तत्त्वों का सम्यक् समावेश मिलेगा।

अपने अनुसधान कार्य के लिये यात्रा करते समय मुझे कुशललाभ कृत उक्त काव्य की कई एक प्रतियाँ प्राप्त हुई है। पर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब मुझे जालौर स्थित इतिहासवेत्ता मुनि श्री कल्याणविजय जी के ग्रन्थ भडार का अवलोकन करते समय इस भण्डार मे वही ग्रथ रचयिता के रूप मे वृहत्तपागच्छीय वाचक जयमदिर के नाम से मिला।[3] प्रारम्भिक वदना एव अन्तिम प्रशस्ति मे रचयिता के नाम, रचना स्थान, गुरू नाम और गच्छ-नाम मे अन्तर के अतिरिक्त कथा भाग में प्रारम्भ से अत तक भाषा, शैली या छन्दक्रम आदि किसी मे भी कोई अन्तर नहीं मिलता है। इसी भण्डार मे कुशललाभ विचरित सस्करण की भी एक प्रति प्राप्त हुई है।[4]

उक्त जयमदिर सस्करण को दो और प्रतियाँ मुझे राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के बीकानेर स्थित शाखा कार्यालय में भी मिली हैं[5] इनमें से एक का लिपि-

1. हिंदी जैन भक्ति काव्य और कवि —डॉ० प्रेमसागर जैन, पृ० 118
2. राजस्थान भारती—भाग 1, अंक 4, जनवरी 1947, पृ० 22
3. मुनि कल्याणविजय-ग्रन्थ भण्डार—जालोर-ग्रन्थांक 194/1126 (पत्र सं० 13)
4. मुनि कल्याणविजय-ग्रन्थ भण्डार, जालोर-ग्रन्थाक 194/1124 (पत्र स० 1223)
5. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, शा. का. बीकानेर
(1) ग्रन्थांक 1544 (तेजसार नृपरास), (2) ग्रन्थांक 1569 तेजसार चौपई।

काल सं. 1675 वि. है—

कुशललाभ संस्करण की प्रतियों मे अन्तिम प्रशस्ति निम्नांकित है—

श्री खरतगछि सहि गुरुराय, गुरु श्री अभयधर्म उवझाय।
सोलहसइ चौवीसि सार, श्री वीरमपुर नयर मझारि ।।15

अधिकारे जिन पूजा तणइ, वाचक कुशललाभ इम भणइ।
जे वाचइ नइ जे सांभलइ, तेहना सहु मनोरथ फलइ ।।16

उपर्युक्त प्रशास्ति से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलता है :

1—वाचक कुशललाभ खरतगच्छ के साधु थे।
2—उनके गुरु का नाम उपाध्याय अभयधर्म था।
3—कुशललाभ ने उक्त तेजसार रास की रचना सवत् 1624 मे की।[1]
4—आपने इस ग्रथ की रचना वीरमपुर नगर में की।

जबकि जयमदिर संस्करण की अन्तिम प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

श्री बड़तपगछ सहिगुरूराय, गुरू श्री जयप्रभ उवझाय।
सवत् पनरसइ बाणू सार, श्री अबावती नयर मझारि ।।13

अधिकारि जिन पूजा तणइ, वाचक जयमदिर इम भणइ।
जे वाचइ नइ जे साभलइ, तेहना सकल मनोरथ फलइ ।।14

1—वाचक जयमदिर बड़तपगच्छ (वृहद्तपागच्छ) मे सबंधित था।
2—उसके गुरू का नाम उपाध्याय जय-प्रभ था।
3—जयमंदिर ने तेजसार रास को रचना स. 1592 मे की।
4—ग्रथ की रचना अंबावती मे की गई।

दोनों सस्करणो मे प्राप्त रचयिता के नाम रचना सवत्, रचना स्थान, रचयिता के सम्प्रदाय (गच्छ) और उनके गुरुनामों से युक्त सूचनिका मे अन्तर ने हमारे सामने एक विकट समस्या उत्पन्न कर दी है। 'तेजसार रास' नाम की इस रचना का रचयिता ऐसी स्थिति में किसे माना जाय—कुशललाभ को या जयमदिर को ?

यश अथवा अर्थ-प्राप्ति की लालसा से अन्यों की कृतियो मे अनधिकृत रूप से अपनी छाप लगाकर की जाने वाली तस्करी सदा से होती आई है—पहले भी होती थी और आज भी होती है। द्रुतगामी यातायात के साधनों के कारण आज के युग मे प्रकाशित सामग्री मे की जाने वाली तस्करी का पता सम्यक् अनुशीलनशील पाठको मे से किसी न किसी को तत्काल लग ही जाता है—जबकि पूर्वकाल मे दूरस्थ स्थानो से

1. तेजसार रास के कुशललाभ सस्करण की कुछ प्रतियां ऐसी भी मिली हैं जिनमे रचना काल स० 1634 वि० दिया गया है।

चुराकर अन्यत्र लिपिबद्ध की जाने वाली कृतियो का उपभोग निश्चितता से किया जा सकता था। ऐसी कई एक रचनाओं का पता चला है जिनकी ख्याति अब तक तस्करों के नाम के साथ सम्बद्ध थी—पर आज के अन्वेषकों ने वास्तविक रचयिताओं का पता लगाकर पुन: सत्य की स्थापना की है। महाराणा कुम्भकर्णकृत 'संगीतराज' को हम उदाहरण के रूप मे रख सकते है, जो अनूप सस्कृत पुस्तकालय में प्राप्त एक परिवर्तित पाठयुक्त प्रति के आधार पर किन्ही महाराजा कालसेन के नाम से ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। डॉ. ब्रजमोहन जावलिया ने 'महाराणा कुम्भकर्ण कृत संगीतराज और कालसेन' शीर्षक एक शोधपूर्ण लेख में इस रहस्य का उद्घाटन किया है।[1] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित टॉड कृत 'पश्चिमी भारत की यात्रा' का श्री गोपालनारायण बहुरा कृत हिन्दी अनुवाद का उदाहरण आज के युग की तस्करी के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है—जिसकी सामान्य परिवर्तन के साथ एक प्रसिद्ध इतिहासकार के अनुवाद के रूप मे इलाहाबाद के एक प्रकाशक ने प्रकाशित किया है। इस प्रकार की तस्करियो मे ऐसी कुछ स्खलन अवश्य रह जाती हैं—जो कभी न कभी तो सत्य का उद्घाटन अवश्य कर ही देती है। इन ग्रंथो मे भी ऐसी रचनाएँ रह गई है।

उक्त तेजसार रास के साथ भी ऐसी ही समस्या है। यह तो स्पष्ट है कि कुशललाभ या जयमदिर दोनो में किसी एक पर चोरी का आरोप लगाया जा सकता है—पर यह आरोप किस पर लगाया जाय—यह विचारणीय है। दोनो संस्करणो के अन्तिम प्रशस्ति छन्दो मे ऐसी कोई रचना हमे दृष्टिगोचर नही होती जो निर्णय लेने मे सहायक हो सके। दोनो ही रचनाओ मे रचना सवत् के साथ न तो तिथि दी गई है और न ही वार का निर्देश, जिन्हें पचाग (एफेमेरीज) से सवत् मिलाकर किसी को जाली घोषित करने मे हम सक्षम हो सकें। ऐसी स्थिति मे रचना-तिथि की प्राचीनता के आधार पर कोई भी पाठक जयमदिर की प्रति को मूल और कुशललाभ संस्करण को जाली कहते हुए नही हिचकिचाएगा। पर यह कुशललाभ के प्रति अन्याय होगा। जयमदिर सस्करण की कोई प्रति जब तक कुशललाभ सस्करण के रचना सवत् से पूर्व की नहीं मिल जाय—इस आधार पर सत्य का अन्वेषण कर पाना कठिन ही नही असम्भव कार्य है।

फिर भी कुछ सिद्धान्त अवश्य स्थापित किये जा सकते हैं, जिनके आधार पर रचयिता का पता लगाया जा सके। वे है—रचना की भाषा, शैली तथा रचयिताओ की इस ग्रथ के रचनाकाल से पूर्व की प्रतिभा और समाज मे प्रतिष्ठा। जयमदिर और जयप्रभ नाम के साधुओं का उल्लेख हमे अवश्य मिलता है—पर प्रस्तुत ग्रंथ को छोडकर न तो कहीं उनके मध्य गुरु-शिष्य संबंध का पता लगता है और न वृहद्तपागच्छ से ही उनके संबंध का। उक्त जयमदिर रचित और कोई प्रति भी हमें नहीं मिली,

---

1. विश्वम्भरा–रेऊ विशेषांक–वर्ष 4 अंक 1-2-3 और वर्ष 5 अंक 1 (1967-68)

जिसके आधार पर उसकी प्रतिभा का परिचय मिल सके। इसके विपरीत कुशललाभ ने इस रचना के रचनाकाल सं. 1624 से पूर्व विरचित अपनी रचनाओ पिंगल शिरोमणि (र. का. 1575 वि.) माधवानल कामकंदला चौपाई (र. का. सं. 1616 वि.), ढोलामारू री चौपाई (र. का. स. 1617 वि.) आदि उनके प्रौढ़ रचनाओं के आधार पर राज्य और समाज में पर्याप्त सम्मान और यश तथा सभवतः अर्थ की भी प्राप्ति कर चुका था। ऐसी स्थिति मे यह सम्भव प्रतीत नही होता कि उसने 'तेजसार रास' जैसी रचना की, जो उत्कृष्ट कोटि की होते हुए भी माधवानल कामकंदला चौपाई और ढोला मारू की चौपाई के स्तर की नही ठहरती, कुशललाभ ने चोरी की हो विशेष रूप से यह इसलिए भी असंभव था कि यह रचना उसी के काल की थी और सं. 1624 तक के 32 वर्ष के जीवन मे इस रचना ने अवश्य ही जनता में प्रसार पा लिया होगा। त्रंबावती से नातिदूर वीरमपुर तक इस रचना ने इस अवधि मे प्रसार न पाया हो और सदा भ्रमणशील रहने वाले जैन साधुओं की दृष्टि से यह अस्पृष्ट रह पाई हो—यह सभव नही लगता। ऐसी अवस्था मे कुशललाभ जैसे प्रतिष्ठा सम्पन्न व्यक्ति पर आरोप लगाते समय हमे कुछ सोचना पड़ेगा।

जो व्यक्ति ढोला मारू री चौपाई मे भी प्राचीन दोहो का उपयोग करते समय स्पष्ट निर्देश कर सकता है कि दोहे उसके द्वारा विरचित नही, 'घणा पुराणा अछइ', वह तेजसार रास मे ऐसी अनीति का व्यवहार क्यो करता। यह विचारणीय है। रचना की भाषा और शैली मे भी माधवानल कामकदला चौपाई आदि रचनाओ से कोई विशेष अन्तर नही लगता। दोनो सस्करणो के अतिम प्रशस्ति छन्द ही वास्तविक रचयिता के अन्वेषण मे निर्णायक सिद्ध हो सकते है। सूक्ष्मावलोकन से हमे पता चलेगा कि कुशललाभ सस्करण के प्रशस्ति-छन्द मे किसी प्रकार का छन्दो भग अथवा त्रुटि नही है, जबकि जयमदिर सस्करण के प्रशस्ति-छन्द स 13 मे 'श्रीबड़तप-गच्छ सहि गुरुराय, गुरू श्री जयप्रभ उवझाय' मे ऐसा प्रतीत होता है जैसे 'जयप्रभ' नाम बलात् जोड़ा गया हो। यही स्थिति 'बड़तपगछ' शब्द की है। लगता है अपने सम्प्रदाय और परम्परा के आचार्यों को ख्यातिदान के मोह के वशीभूत किसी ने कुशललाभ की रचना के प्रशस्ति-छंद मे उक्त परिवर्तन कर दिया होगा—जो कालान्तर मे परिवर्तित सस्करण से की जाने वाली प्रतियो मे भी हो गया और उपलब्ध हुई प्रतियाँ भी इसी का परिणाम है। अतः यही मानना उचित होगा कि 'तेजसार रास' का वास्तविक रचयिता कुशललाभ ही रहा होगा—जयमदिर नहीं।

फिर भी इस अनुभूति के आधार पर कि राज्याश्रय प्राप्त व्यक्तियो मे अर्थ और यश लिप्सा हेतु अनैतिकता का समावेश हो जाता है—कुशललाभ ने भी राज्याश्रय प्राप्त कर प्रमादवश दूसरों की रचना पर अपनी छाप छोड़ दी हो—स्वल्पांश मे इस तर्क पर विचार किया जा सकता है— और उसका निर्णय स. 1624 से पूर्व की जयमंदिर-विरचित किसी प्रामाणिक प्रति के मिल जाने पर ही हो सकता है।

तेजसार रास का कथासार

किसी समय बनारस नगरी मे वीरसेन राजा राज्य करता था। एक रात उसकी रानी पद्मावती स्वप्न में प्रज्वलित दीपक देखती है, स्वप्न निमेषी बताते हैं कि रानी तेजस्वी पुत्र को जन्म देगी। समय पूर्ण होने पर रानी पुत्र को जन्म देती है जिसका नाम तेजसार रखा जाता है। तेजसार जब सात वर्ष का था माता का देहांत हो जाता है और राजा दूसरा विवाह कर लेता है। उस रानी से विक्रमसिंह नामक पुत्र होता है वह तेजसार से द्वेष रखता है। राजा को भी मंत्री, पुत्र आदि तेजसार के विरुद्ध भड़काते है जिससे वीरसेन तेजसार से रुष्ट हो जाता है और तेजसार एक रात महल छोड़कर निकल जाता है और त्रबावती नगरी पहुँच जाता है।

त्रबावती में त्रंबकसेन राज्य करता था। तेजसार गुरु के पास रहकर विद्या प्राप्त करने लगा। एक बार तेजसार जगल से खड़पूले लाते समय मार्ग भूल जाता है। मार्ग मे उसे एक भयकर राक्षस मिलता है जो तेजसार को देख अपना भक्ष्य जान बड़ा प्रसन्न होता है। राक्षस के पैर कोमल तथा दृष्टि तीव्र थी। तेजसार इसका कारण जानकर राक्षस के चगुल से बच निकलता है, बदले मे राक्षस उसे विद्या सिखाता है। वह वापस अपने गुरू के पास आ जाता है और सोचता है कि प्रति दिन पाँच सौ गठ्ठर घास के लाये जाते है घर मे कोई पशु नही है अतः यह घास कहाँ जाता है। एक दिन वह देखता है कि पडयाणी मध्य रात्रि को वस्त्र उतारकर घास मे लोटते ही रासभी होकर सारा चारा चर जाती है। कुमार जान जाता है कि यह सिकोत्तरी है अतः वह सभी विद्यार्थियो को अपनी बुद्धि से राक्षस द्वारा दी गई विद्या के प्रयोग से बचा लेता है। सिकोत्तरी से छूट कर वह अपने आपको जंगल मे पाता है। वन में ही वह एक सुन्दर नारी को बधी हुई देखता है जिसे जोगी ने अपनी सिद्धि हेतु बाँधा है राजकुमार उस योगी से कन्या को छुडाता है। बदले मे योगी उसे रूप परिवर्तन और अदृश्य होने की विद्या सिखाता है।

राजकुमारी का नाम विजयश्री है, वह केवली द्वारा की गई भविष्यवाणी द्वारा तेजसार को पति रूप मे पाने की बात बताती है और तेजसार को सामने देख प्रसन्न होती है। मार्ग मे विजयश्री को प्यास लगती है, कुमार उसे शीतल-मधुर जल पिलाता है और दोनो जलक्रीड़ा भी करते है विजयश्री थकी होने के कारण सो जाती है, कुमार तलवार ले उसकी रक्षा हेतु इधर-उधर घूमता हुआ हिरणों के झुण्ड के साथ जाती एक सुन्दर कन्या एणामुखी को देखकर उसे पत्नी रूप में पाने की इच्छा करता है, देखते-देखते वह कन्या अदृश्य हो गई, इधर विजयश्री भी उसे नदी किनारे नही मिलती। राजकुमार चिंतित हुआ उनकी खोज में निकलता है। एक जगह वह पाँच सुन्दर कन्याओं को देखता है जिसमे विजयश्री भी होती है, वह उन पांचों से विवाह कर लेता है और विद्याधरी को पटरानी बना लेता है।

वह सुख से रहने लगता है कि एक दिन विद्याधरी का भाई विद्याधर खस-

नायक के रूप मे आता है और तेजसार को अपनी अलौकिक शक्ति से युद्ध करवाता है और उसे नदी में गिरा देता है।

नदी से निकल कुमार अपनी पांचो नारियो के वियोग मे दुखी हुआ वन मे घूमता रहता है कि उसे एक नारी तथा कुमारी रोती हुई दिखाई देती है। यह कुमारी पद्मावती है जिसके लिए पडितो ने कहा था कि इसका होने वाला पति सारे राज्य का अधिकारी होगा। राज्य प्राप्त करने के लिए ही इस नगर में भयकर युद्ध हो रहा था--उसी समय सेना राजकुमारी को घेर लेती है लेकिन तेजसार अपनी मंत्र विद्या से सेना को स्तम्भित कर सहार कर देता है। कन्या का पिता व्रजकेसरी बहुत प्रसन्न होता है और वह पुष्पावती का विवाह तेजसार से कर देता है। वज्रकेसरी का शत्रु सूरसेन भी उसकी वीरता से प्रसन्न हो अपनी कन्या भी उसे ब्याह देता है।

इधर विद्याधर अपनी बहन को मार चारो कन्याओं से विवाह करना चाहता है, परन्तु विजयश्री विद्याधर को मारकर सभी को बचा लेती है और वे सभी तेजसार का पता लगाकर उसके पास आ जाती है। तेजसार सातो रानियों के साथ सुख से रहने लगता है कि एक रात व्यतरी श्रीदत्ता उसे उठा ले जाती है और अपनी पुत्री एणामुखी से उसका विवाह कर देती है यह वही कन्या थी जिसे तेजसार ने मृगो के साथ देखा था।

उसी समय आकाश से नारी रूपा व्यतरी उतरी जो तेजसार की ही माता होती है माता पुत्र मिलकर प्रसन्न होते है। तेजसार की माता और एणामुखी की माता दोनो ही व्यतरियां है और वे अपनी अलौकिक शक्ति से वहाँ एक भव्य एव सम्पन्न नगर का निर्माण करती है। तेजसार का दुश्मन समरसेन युद्ध मे पराजित होता है। तेजसार अपनी सातो रानियो को भी वही तेजलपुर मे बुला लेता है। तेजसार की माता पुत्र को सुखी एव सम्पन्न देख अपने स्थान को चली जाती है।

कुछ समय बाद तेजसार के पिता वीरसेन अपने पुत्र को बुलवा भेजते हैं। तेजसार अपने पिता के पास सकुटुम्ब एव ससैन्य आ जाता है और सुख से राज्य सचालन करता हुआ रहता है। उसी समय मुनि सुव्रतस्वामी आते है। तेजसार के पिता मुनि से दीक्षा ले लेते है और तेजसार श्रावक हो जाता है। तेजसार की आठो रानियों से आठ पुत्रो का जन्म हुआ, उन आठों का विवाह अति उमग से किया गया और सभी को अलग-अलग स्थानो का राज्य सौप दिया गया। मुनि सुव्रत के आने पर तेजसार अपना पूर्वभव जानकर सयम की महिमा जानता है. धर्मज्ञान सुनकर तेजसार ने ससार को अस्थिर जाना और घर आकर वैराग्य धारण किया और सुव्रत-स्वामी से 'चरित्र' लिया। दूसरे जन्म मे 'सिद्ध' हुआ, बाद में श्रावक कुल मे जन्म लेकर केवल ज्ञान प्राप्त किया और शिवपुर को गया।

भीमसेन राजहंस चौपाई कथासार :

किसी समय श्रीपुर नगर में भीमसेन राजा राज्य करता था। उनकी रानी प्रीतम मजरी थी। राजा ने एक वन (नदनवन) बनवाया उसमें विविध फलों के वृक्ष

लगवाये। राजा के मंत्री का नाम सुमति था उसका पाँचवा पुत्र हितसागर राजा का मित्र था। राजा व हितसागर रनिवास सहित नन्दनवन में आता है और वृक्षो की विशेषताएँ पूछता है और इस प्रकार आनन्द से रहता है।

उसी समय विशालपुरी में राजा रिणकेसरी था, रानी कमलावती की पुत्री मदनमंजरी रूप यौवन मे अद्वितीय है। माता पिता को उसके विवाह की चिन्ता है। उसी समय एक सन्यासी आया जिसके पास एक शुक है। वह शुक बहुत ज्ञानी था और रानी के पूछे जाने पर वह रूपमजरी का वर राजा भीमसेन बताता है। रानी यह सब बात राजा को बताती है पर राजा पुत्री को इतनी दूर नहीं देना चाहता है। रूपमंजरी यह सब सुनती है और वह मन ही मन अपने पति को प्रणाम करती है। कुमारी सन्यासी से उस शुक को ले लेती है और उससे भीमसेन के रूप सौन्दर्य के बारे में पूछती है।

राजा रिणकेसरी पुत्री का रिश्ता सिंघल द्वीप के सगरराय से कर देता है। महोत्सव देख दासी के द्वारा अपने रिश्ते की बात सुनकर वह दु.खी होती है और कहती है कि मै तो भीमसेन से ही विवाह करूंगी। धावी यह सब बात माता को कहती है, राजा को जब यह बात ज्ञात होती है तो कुमारी को बालिका समझ कर कोई ध्यान नहीं देता, कुमारी भी लज्जावश पिता से कुछ नही कह पाती राजा उसी लज्जा को स्वीकृति समझ लेता है। मदनमंजरी शुक को भीमसेन को बुला लाने के लिये कहती है। यही नही वह त्रिपुरा देवी जो मनोवांछित वर देने वाली है उसकी भी पूजा करके यही वर मागती है। शुक से वह शीघ्र संदेश ले जाने के लिये विनती करती है।

एक दिन राजा भीमसेन एक वृक्ष के नीचे बैठे थे तभी शुक आकर रूपमजरी का वह पत्र राजा को देता है और राजा से आग्रह भी करता है कि शीघ्र ही उस देश जाकर कुमारी के प्राणो की रक्षा करे। राजा, हितसागर को साथ ले शुक के साथ रवाना होते है शुक उन्हे मार्ग बताता चलता है। रास्ते मे शुक को वही सन्यासी मिलता है जो उसे बचपन मे पालता है, सन्यासी पर विपत्ती है शुक राजा से विनय कर उसे छुडवाता है, सन्यासी भी राजकुमारी से पूर्व परिचित होता है अत राजा उससे उनका रूप सौन्दर्य पूछता है।

राजा भीमसेन विशालपुरी पहुंच जाता है पर रात्रि होने के कारण वह त्रिपुरा देवी के मन्दिर मे ठहर जाता है और देवी से अपने मनोरथ पूर्ण करने के लिये प्रार्थना करता है। इसी बीच शुक राजकुमारी से सब बात जाकर कह देता है और राजकुमारी पूजा हेतु त्रिपुरा देवी के मन्दिर मे आती है। सगरराय भी कुमारी से शादी हेतु दलबल सहित आ पहुंचता है। धावी से उसके आगमन की बात सुनकर रूपमंजरी मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाती है। होश आने पर भीमसेन को वरण करने अन्यथा अग्नि प्रवेश की बात कहती है। रानी सगरराय से अपने भाई की पुत्री का विवाह करने को कहती है। रूपमंजरी पिता के समझाने पर भी नही मानती और

रात्रि को धावी के सो जाने पर वह घर से निकल कर देवी मन्दिर मे आकर देवी को उसकी इच्छा पूर्ण न करने के लिये उपालम्भ देती है और उसी के सामने अपनी वेणी से पेड़ की शाख के साथ फंदा लगा लेती है। धावी कुमारी को अपने पास न देख वन में उसे खोजने निकलती है कन्या को देख वह उसे बचाने के लिये शोर करती है जिसे सुनकर भीमसेन आते हैं और कन्या के बधन काटते है भीमसेन के पूछे जाने पर धावी सब वृतांत बताती है। शुक भी राजा भीमसेन को वर बताता है जिससे सभी प्रसन्न होते हैं और त्रिपुरा देवी की साक्षी में भीमसेन रूपमजरी से विवाह कर लेता है। राजा रिणकेसरी पुत्री को जीवित देख प्रसन्न होता है और सगरराय से अपनी पत्नी के भाई की लडकी का विवाह कर देता है। सागरराय इस धोखे से क्रोधित होता है और वे भीमसेन से बदला लेने के लिये अटवी मे घात लगा कर बैठ जाते हैं। मदनमंजरी व भीमसेन विदा होकर उसी अटवी मे आकर विश्राम करते हैं और सगर की सेना द्वारा घेर लिये जाते है। भीमसेन अकेले ही युद्ध के लिये चल देते हैं रानी रथ से उतर कर वृक्ष पर चढकर सेना को देख भयभीत हो वन मार्ग से चली जाती है। भीमसेन विजय प्राप्त कर रानी को न देख दुखी होता है। शकुन प्रमाणी राजा को बताते है कि तुम्हे आज से सातवें दिन रानी मिल जायेगी। रानी भी विरह व्यथित भयग्रस्त तथा तृषाकुल हुई वन में इधर-उधर घूमती हुई एक सरोवर के पास पहुंचती है वहाँ से एक तपस्विनी उसे अपने आश्रम मे ले आती है। तरुवर के विष फल वृक्ष के बारे मे जानकर रानी तपस्विनी के चले जाने पर उसे खा लेती है। तपस्विनी उसे बचाने के लिये सहायतार्थ पुकारती है तपस्वी आकर उसका विष दूर करते है, इतने मे वहाँ अमरसेन आकर सूचित करता है कि भीमसेन कुशल है। भीमसेन अपनी रानी को देख हर्षित होते है। वह तपस्वी राजा और रानी को जमाई मानकर दस दिन उन्हें आश्रम मे रखते है और तपस्वी राजा को अदृश्य होने तथा विषधर का विष दूर करने की विद्या सिखाता है। भीमसेन विदा होकर अपने नगर श्रीपुर मे आकर आनन्द से रहने लगते है।

एक दिन राजा रानी सो रहे थे कि हस व हसी महल के ऊपर आकर बाते करते हैं। हस कहता है कि मैं रानी के गर्भ से अवतार लूंगा। गर्भावस्था मे रानी की दोहद पूर्ण करने के लिये जाते समय कठिनाईयो मे पड कर राजा वन मे पहुचता है वहाँ एक सन्यासी मिलता है और कनकलता कुमारी से उसका विवाह करता है। मदनमजरी अमृतफल का आहार करने की दोहद करती है जिसे हसी पूर्ण करती है। समय पूर्ण होने पर रानी को पुत्र प्राप्त होता है रानी उसका नाम राजहस रखती है। हंसी अपने पूर्व पति अर्थात् राजहस से समय समय पर मिलती रहती है। राजकुमार बड़ा हुआ और घोडे फेरने लगा। एक दिन वह वन मे बहुत दूर निकल गया और सरोवर देख पानी पीकर वृक्ष के नीचे विश्राम के लिये बैठा। उस वृक्ष पर एक कपि रहता था वह कुमार को सुकोमल जानकर सिह के बारे मे बताता है और पेड़ पर चढने का आग्रह करता है। कुमार शेर को मारता है जिससे कपि व सभी

वन चर प्रसन्न होते हैं। राजा भीमसेन अपने पुत्र को ढूंढते हुये वन में आते हैं और पुत्र को पाकर और शेर को मारा गया जान कर प्रसन्न होते हैं। राजहस अमृतफल के प्रभाव के कारण सब भाषायें (सार्विज भाषा पशु पक्षी की भाषा) जानने के कारण फेतकारी की बात सुन अर्द्ध रात्रि मे नदी में गिरी हुई स्त्री को निकाल कर बहुत सा धन प्राप्त करता है और श्रीपुर आकर भीमसेन राजहंस को युवराज बना देता है।

अवंतीपुर के राजा शंधराज की पुत्री रूपमति के स्वयंवर में राजहंस को भी बुलाया जाता है। राजहंस हसी की सहायता द्वारा रूपमती को प्राप्त करने मे सफल होता है। कुमार एक मास अवतीपुर रहकर श्रीपुर के लिये रवाना होता है। मार्ग में मुनि श्री राम से धर्म उपदेश प्राप्त करता है और मुनि श्री को श्रीपुर के लिये आमन्त्रित करता है। मुनि श्रीराम श्रीपुर आते हैं। धर्म व्याख्या सुनने से भीमसेन को वैराग्य उत्पन्न होता है और वे युवराज को राज्य सौंप कर सयम भार ले लेते हैं और राजहस को शुद्ध भाव की महिमा कई उदाहरणो द्वारा समझाते है धर्म में भी भावना प्रधान है। राजहस के पुत्र जयभद्र तथा बलिभद्र थे। जयभद्र को राज्याधिकारी बनाकर राजहस अपना अन्त समय जान कर शुद्ध ध्यान मे सथारा करते हुये केवली होकर निर्वाण को प्राप्त हो जाते है।

जिनपालित जिनरक्षित रास[1]

इस ग्रथ की रचना स 1621 श्रावण सुदि पचमी को हुई जैसा कि कृति के अन्त मे लिखा है

> श्री खरतरगच्छि सद्गुरु राय, श्री जिनचद्र सूरि सुपसाय
> सोलहसइ इकवीसइ वरसि, श्रावण सुदि पाचमि शुभ दिवसि—85

जिनपालित जिनरक्षित एक छोटा कथा काव्य है इसमे 87 चौपाईयों में कथा निबद्ध है। कथा सक्षेप मे इस प्रकार है:

किसी समय समृद्ध चपानगरी मे शत्रुओ को जीतने वाला राजा राज्य करता था। उसी ग्राम मे माकदी सेठ एव भद्रा सेठानी रहते थे। इनके दो पुत्र जिनरक्षित और जिनपाल थे। ये माता पिता से आज्ञा ले व्यापार के लिये देशाटन करते हैं। समुद्र मे तूफान आने से पोत नष्ट हो जाता है और वे दोनो बडी कठिनाई से तीन दिन बाद किनारे पर पहुचते हैं। जल और फलों का आहार करते हुये दिन व्यतीत करते है कि उन्हे दूर से आती हुई एक नारी दिखाई देती है तुरन्त विकराल रूप धारण कर वह उनकी बलि करना चाहती है परन्तु उन दोनों भाईयों के विनती करने पर उन्हें मारती नही और अपने आवास पर ले आती है। वह रयणा देवी सोलह

---

1. (क) महिमा भक्ति जैन ज्ञान भण्डार बड़ा उपाश्रय बीकानेर ग्रन्थाक—2569 और 2570
(ख, रा. प्रा. वि. प्र. जोधपुर ग्रन्थाक 27266

श्रृंगार कर उन दोनों से भोग विलास के लिये आग्रह करती है और वे सब मन-वांछित सुखों का भोग करते हुये रहने लगते है।

इसी अवसर पर सुरपति के आदेश से वह चिंतित होती है। दोनो व्यक्तियों को वह सीख देती है कि तुम्हारा घर मे मन न लगे तो पूरब, उत्तर व पश्चिम दिशा के वनों में घूम लेना परन्तु दक्षिण दिशा में विषधर हैं अतः वहां मत जाना ऐसा कह देवी चली जाती है। रात दिन उन वनों में घूमते हुये एक दिन वे दक्षिण वन में आते हैं वहां विष की दुर्गंध तथा मानव अस्थियां दिखाई दी। वहां एक पुरुष को सूली पर क्रंदन करते देख कर वे पूछते है कि किसने तुम्हारे साथ ऐसा किया है। तब वह कहता है कि तुम वणिक हो और पोत के नष्ट हो जाने से इस दिशा में आये हो तुम अभी तो देवी से सुख भोग रहे हो किन्तु किसी भी दिन वह बिना अपराध के तुम्हें भी यहा लाकर यही करेगी। यह वृतांत सुनकर वे भयभीत हो जाते हैं। मरने के समान भय नही यह जान कर वे बचने का उपाय पूछते हैं। वह कहता है कि पूर्व दिशा में वन मे एक सेलग जक्ष रहता है यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो जाकर उसकी सेवा पूजा करो उसके वचन सत्य प्रमाण होते है।

दोनो भाई सेलग जक्ष के पास आकर भक्ति पूजा कर प्रार्थना करते है कि हमे सकट से उबारो। एक दिन वह सेलग प्रगट होकर पूछता है कि किसका पालन करू और किसकी रक्षा करूं तब वे दोनो अपनी रक्षा के लिये तथा चपापुरी पहु-चाने के लिये कहते हैं। वह उन्हे बचने के उपदेश देता है। सीख लेकर वे सेलग की पूंछ पर चढ़कर सागर पार करने लगे। रयणा देवी पुरुषो को न देखकर उन्हें सेलग की पीठ पर देख खडग हाथ मे ले क्रोध मे भर कर तीनो का अन्त करने चलती है मन में सेलग की सीख को सोचते हुये वे कहते है कि यह सेलग तो हमारा शत्रु है हमे तो तुम्ही से प्रेम है। तब देवी हसी और जिन रक्षित से कहने लगी कि हमे तुमसे सच्चा नेह है। जिन रक्षित को सेलग ने पूछ से नीचे गिरा दिया। देवी की खडग के टुकडे कर दिये और सेलग जिनरक्षक को चपापुरी पहुचा कर अपने घर आ गया।

जिनरक्षक अपने घर पहुच कर सब वर्णन सुनाता है। मृत भाई के लिये शोक किया गया। इसी समय वर्द्धमान स्वामी विहार करते हुये चपानगरी आये उनसे अग चरित्र व जिन अनशन आदि को पालते हुये प्रभु को नमन करता हुआ जिनपालक के लिये पूछता है कि वह कहां अवतार लेगा। तब वर्द्धमान स्वामी विदेह क्षेत्र मे केवली होना बताते हैं। इस प्रकार जिनपाल का वृतात सुन ससार को समुद्र के समान जानकर, सेलग के समान गुरु और जैन धर्म जैसा धर्म दिखाने वाला शिव-पुरी को प्राप्त होता है।

अगड़दत्त कुमार रास

दो प्रतिया उपलब्ध—(1) प्राच्यविद्या मदिर, बड़ौदा ग्र 14289 और द्वितीय भण्डार कर प्राच्य विद्या शोध संस्थान पूना ग्रंथांक 605 प्रथम प्रति 10

पत्रों में —पंचम पत्र लुप्त। आकार 25·३ सें. मी.×10·5 सें. मी. लिपिकाल 1805। दूसरी का लिपिकाल 1653। दूसरी प्रति रचना के अति-निकट है। अतः अध्ययन का आधार यही प्रति है।

रचना काल—मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने कृति के अंतिमांश के आधार पर 1625 कार्तिक सुदि 15 गुरुवार रचना तिथि दी है। (गूर्जर कविश्रो—भाग 3; खण्ड 1–पृ. 687 बड़ौदा वाली प्रति में)—

"संवत बाण ख सिणगार, कातिक सुदि पूनिम गुरुवार" पाठ है। इसके आधार पर 1605 कार्तिक सुदि पूनिम गुरुवार स्थिर होता है। पर यह तिथि वार एफेमेरीज से मेल नही खाती। पूना की प्रति मे भी 1625 कार्तिक सुदि 15 रविवार ही रचना तिथि दी गई है। बड़ौदा की प्रति मे संभवत पक्ष या रद के स्थान पर ख हो गया है। रद होता तो उसका अर्थ 2 हो जाता–शून्य के स्थान पर और तिथि ठीक बैठ जाती। अतः इस कृति का रचना काल वि. स. 1625 कार्तिक शुक्ला (पूर्णिमा) गुरुवार ही ठीक बैठता है। कुशललाभ ने इसकी रचना वीरमपुर मे की—

श्री वीरमपुर नगर मझारि, करी चउपई मति अनुसार ॥318॥

कथासार

बसंतपुर का राजा भीमसेन—उसकी पटरानी सोहाग सुन्दरी (सौभाग्य सु दरी)। सूरसेन उसका बलशाली सामंत। उसके पुत्र का नाम अगड़दत्त। पुत्र अति रूपवान। सूरसेन के वीरत्व की ख्याति सुन कर एक योद्धा आता है। राजा को प्रणाम कर आने का कारण भी बताता है। वृतान्त सुन राजा ने अपने सामंत सूरसेन को बुलाया। योद्धा और सूरसेन मे युद्ध हुआ। सूरसेन मारा गया। सुभट को राजा ने सेनापति बना लिया। नाम उसका अभगसेन रखा।

सूरसेन की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी अगड़दत्त का पोषण करने लगी। कुमार की भोजन बेला मे माँ रोने लगी। कुमार ने कारण पूछा—माँ ने बताया कि उसके पिता का हत्यारा उसे हानि पहुँचाना चाहता है। माँ ने उसे अपने पति के मित्र सोमदत्त के पास पढाने के लिए चपापुरी भेज दिया। सोमदत्त ने एक व्यवहारी (बोहरे) के पास उसके भोजन और निवास की व्यवस्था कर दी। कुमार पढने लगा। एक दिन उसने गवाक्ष मे मदनमंजरी नाम की कन्या को देखा—वह व्यवहारी की पुत्री थी। एक दिन जब कुमार वृक्ष की छाया मे सो रहा था—मदनमजरी गवाक्ष से वृक्ष की डालियों पर होती हुई उसके पास आई और अपना प्रणय निवेदन किया। उसने बताया—उसका पति परदेश गया हुआ है—अब अगड़दत्त ही उसका प्राण है। नारी के आग्रह पर उसने अध्ययनोपरान्त उसके साथ विवाह का वचन दिया।

सोमदत्त इस घटना से परिचित था। जब अगड़दत्त ने अपने घर लौटने की आज्ञा चाही तब उसने राजा के पास जाकर कुमार के विवाह की बात चलाई। राजा ने उसका समस्त परिचय प्राप्त कर उसे सम्मान दिया। इसी समय नगर के

सभी लोग एकत्र हुए। एक महाजन ने कहा—नगर के सभी महाजन चोरों से संतप्त हैं और निर्धन बने जा रहे हैं। राजा ने पान का बीड़ा रखा और कहा जो चोर को पकड़ कर लायेगा—उसे सवा लाख का पारितोषिक दिया जायगा। अगड़दत्त ने बीड़ा झेला और सात दिन में चोर को ढूंढ लाने का वचन दिया।

वह 6 दिन तक चोर को वेश्याओं और जुवारियों के घर ढूंढता रहा। सांतवे दिन वह चिंतित वृक्ष के नीचे बैठा था—तभी उसने एक योगी को देखा। योगी के पूछने पर उसने बताया कि वह जुवारी है और सारा धन जुए में हार गया है। अब वह चोरी के लिये निकला है। योगी ने उसको सुना और साथ ले लिया। कुंवर ने समझ लिया—वही चोर है। अतः वह उसके साथ काम करने लगा।

योगी ने कुमार को दूर खड़ा रखा। खुद वेश बदलने गया। तत्पश्चात् दोनों चोरी करने निकले। योगी ने सागरसेवी नामक व्यवहारी के घर डाका डाला। लौटने पर योगी ने कुंवर को विश्राम के लिए कहा। वह तलवार लेकर वृक्ष की कोटर मे जा सोया। अब योगी ने अपनी तलवार से वहाँ सोये मजदूरों की हत्या करना प्रारम्भ किया। योगी का आचरण देख कुंवर ने उस पर प्रहार किया। योगी ने कुंवर को अपना खजाना बताते हुये आदेश दिया—यह करवाल मेरी बहन को दे देना और उससे विवाह कर लेना। बहिन की यही प्रतिज्ञा थी कि जो उसके भाई का वध करेगा उसी के साथ वह विवाह करेगी।

योगी के कथनानुसार अगड़दत्त सामने खडे पर्वत पर लगे पीपल के वृक्ष की ओर बढा। वही गुफा मे योगी की बहिन वीरमती को पाया। वीरमती ने अपने भाई की हत्या का बदला लेने की दृष्टि से उसे पलंग पर बिठाया और चली गई। कुमार त्रियाचरित्र का पारखी था—अतः एक ओर हट गया। जब वह ऊपर से शिला गिराकर नीचे आई तो कुंवर को जीवित देख स्तम्भित रह गई। उसने कुमार पर प्रहार किया। कुंवर वीरमती और उसके खजाने को लेकर राजा के पास उपस्थित हुआ।

कुंवर ने मदन मंजरी से विवाह किया। विदा हो जब वह ससैन्य बसन्तपुर के लिए चला तो मार्ग भूल गया। गोकुल नगर मे उसे मार्ग मे आने वाली नदी, केसरीसिंह, सर्प और चोरो का सामना करने के सकटो के विषय मे बताया गया।

मदन मंजरी के रोकने पर भी वह उसी मार्ग से बढा। चारो सकट एक-एक कर सामने आये। व्यवहारी रूप मे चोर आया, और उसने उसकी सेना को विषाक्त दूध पिलाया। कुंवर के रथ को रोक उससे धन और स्त्री का अपहरण करना चाहा। वैरी के वार्तालाप के साथ ही मदनमजरी ने उसे वीरमती के दाम्पत्य का स्मरण दिलाया। आगे एक मस्त हाथी चिंघाडता आया। कुंवर ने उसे मार

गिराया। आगे सिंह की गर्जना सुनने पर सारथी ने चकमक से प्रकाश किया और कुंवर ने सिंह को मार डाला।

थोड़ा आगे बढ़ा तो उन्हें काला सांप मिला। कुंवर ने उसे बचाकर रथ को मोड़ लिया। इस प्रकार इन आपत्तियों से बच कर जंगल पार किया। आगे एक सुन्दर सरोवर दिखाई दिया। वहाँ अर्जुन नामक चोर का गिरोह रहता था। अपने वैरी को देख अर्जुन के दो भाइयो ने अगड़दत्त का मार्ग अवरोध किया। उन्होंने मदनमंजरी को हरना चाहा पर अगड़दत्त ने प्रहार से उन्हें दूर कर दिया।

कुमार बसन्तपुर के समीप आया। उसके परिजनों ने उसका स्वागत किया। मार्ग में सरोवर के समीप उसने अमंगसेन को बुलाया। उससे द्वन्द्व युद्ध किया। अगडदत्त ने उसे मार डाला। सबने कुमार की प्रशसा की।

कुमार ने माता पिता को विदा किया। स्वयं मदनमंजरी के साथ बीच में ही ठहर गया। एक विद्याधर आकाश मार्ग से उड़ रहा था। उसने एक नारी को परपुरुष के साथ संभोग करते देखा। विद्याधर उसका घात करना चाहता था—पर उसी औषध के चूर्ण के साथ सर्प ने उसे डस लिया। इस घटना को देख विद्याधर नीचे उतरा। उसे अगडदत्त मिला। वह भाग्य को कौसता हुआ विलाप करता हुआ सर्पदंशित नारी को उठाकर ला रहा था। अगड़दत्त मदनमंजरी के साथ अग्नि-प्रवेश कर रहा था। तभी विद्याधर वहाँ आया। उसने कुमार से कहा—नारी के लिये मरना व्यर्थ है। पर उसने इस बात को स्वीकार न कर मदनमंजरी को जिलाने की विनती की।

विद्याधर ने मंत्र तंत्र द्वारा नारी को जीवित किया और कहा तेरा यह प्रेम अवर्णनीय है—पर नारी जाति पर कैसा विश्वास। इसी के साथ उसने पूर्ण घटना कुंवर को कह सुनाई। कुंवर ने विद्याधर को नवसर हार अर्पित कर विदा किया।

विद्याधर के जाने के पश्चात् मदनमंजरी ने कुंवर को कहा रात काफी है—अतः सामने वाले देहरे में चल कर विश्राम करना चाहिए। देहरे में पहुच मदनमंजरी ने प्रकाश करने की इच्छा करते हुए अग्नि लाने का आग्रह किया। कुंवर जब अग्नि लाने गया—देहरे मे तीन चोरों की आवाज सुनाई दी। कुवरी ने उनका परिचय प्राप्त करते हुए अपने पति को मारकर उनके साथ चलने का आग्रह किया। चोरों ने पहले संशय किया पर बाद मे स्वीकृति दे दी। स्वीकृति पर नारी ने दीपक जला दिया। जब अगड़दत्त अग्नि लेकर आया उसने प्रकाश का कारण पूछा। मदनमजरी ने कुंवर द्वारा जलाई अग्नि का प्रतिबिंब दिखाकर उसके संशय को दूर किया। अगड़दत्त ने मदनमजरी की बात मानकर खड़ग उसे दे दिया। स्वयं अग्नि प्रज्वलित करने लगा। मदनमंजरी ने कुंवर पर खड़ग का वार किया। पर वह कुंवर से दूर जा गिरा। कुमार के पूछने पर उसने बताया मैंने उसे उलटा पकड़ लिया था।

चोरों ने वृतान्त देखा। मन में भयभीत हो सोचने लगे संसार कैसा स्वार्थी है। पत्नी भी पति की हत्या कर देती है। इस घटना ने उन्हें वैरागी बना दिया। वे वहां से रवाना हुए। उन्हें मार्ग में मुनि मिले। उन्होंने उनके पास दीक्षा ली।

अगड़दत्त पत्नी सहित घर पहुँचा। पुत्रवान हुआ। एक दिन अगड़दत्त प्रधान के साथ घूमता हुआ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ भुजंगम नामक चोर अपने साथियों सहित तपस्या कर रहा था। अगड़दत्त ने वैराग्य का कारण पूछा। उसने बताया यह अगड़दत्त का उपकार है। अगड़दत्त ने उस अगड़दत्त का परिचय पूछा। भुजंगम चोर ने मदनमंजरी और अगड़दत्त की सारी कथा सुना दी। चोर यति से घटना सुन अगड़दत्त दुखी हुआ। अगड़दत्त भुजंगम चोर के पास दीक्षित हो गया और नवम् गवाक्ष को पार कर शिवपुरी को पहुँचा।

धर्म आख्यान

लोकआख्यानों के अतिरिक्त कुशललाभ ने कुछ धर्म आख्यान भी लिखें हैं जिनमें गीत स्तवन, संधि रास आदि है। ये सब स्तुति परक काव्य हैं। इन्हे स्तुति, स्तोत, सज्झाय वीनती और नमस्कार भी कहते हैं।[1] इन सब धर्म काव्यो का परिचय संक्षेप में इस प्रकार है :—

श्री पूज्य वाहण गीत

यह गीत ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह में संकलित है।[2] यह गीतिकाव्य सरस है भाव सुन्दर और भाषा रम्य है। कवि ने भक्तिपूर्ण भावो से श्री पूज्यवाहण के चरणों मे अपनी पुष्पाजलि अर्पित की है। कवि ने गुरु के स्तवन को ही भवसागर से पार उतरने का वाहन माना है और उसी के अनुसार इस गीत का नाम श्रीपूज्य-वाहण गीत दिया गया है।

गुरु के आगमन पर प्रवचन होता है। उनके प्रवचन को वृक्षो ने समझा है और उसी मे मस्त हो मानो वे झूम उठे हैं। कामिनी कोयल मधुर स्वर में गुरु के ही गीत गा रही है। गुरु की देशना से प्रभावित होकर मानो गगन बार-बार गर्जना कर रहा है। मयूरो के नृत्य और चकोरों के नैत्रो मे गुरु उपदेश का भाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है :

प्रवचन वचन विस्तार अरथ तरवर घणा रे।
कोकिल कामिनी गीत गायइ श्री गुरु तणा रे।।
गाजइ गाजइ गगन गभीर श्री पूज्यनी देशना रे।
भवियण मोर चकोर थायइ शुभवासनारे।।—63

गुरु का ध्यान करते ही ऐसा लगता है कि शीतल मंद सुगन्धित वायु चल

---

1. डा० हीरालाल महेश्वरी 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पृष्ठ 245.
2. अगरचन्द नाहटा—'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह', कलकत्ता वि० सं० 1994 पृ० 110–117.

रही है, सम्पूर्ण विश्व सुगन्धी युक्त हो गया है। वह सुगन्धी ही गुरु का उपदेश है। गुरु की महिमा का कवि ने इस गीत में वर्णन किया है। इस गीत में कवि ने राग आसावरी ढाल सामेरी, ढाल रामगिरी, राग केदार गौड़ी, राग गुडमल्हार का प्रयोग किया है जिससे कवि की छन्द प्रियता का ही नहीं अपितु तत्कालीन समाज की संगीत के प्रति रुचि का भी अच्छा परिचय मिलता है। कवि ने इसमे जिन श्रावकों के नामोल्लेख किये हैं इससे यह गीत काव्य ऐतिहासिक रचना बन गई है। कवि ने इसमे रचना काल का उल्लेख नहीं किया। भाषा और गीत निर्वाह की दृष्टि से यह कवि की प्रारम्भिक रचनाओ में से एक है।

स्थूलिभद्र छत्तीसी

इसका रचना काल अज्ञात है। इसमें कुल 37 पद्य हैं।[1] यह काव्य आचार्य स्थूलभद्र की भक्ति मे लिखा गया है। इसकी भाषा मे सरसता एव भावों मे स्वाभाविकता है। प्रारम्भ मे ही 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' कहने की प्रतिज्ञा करते हुए कवि ने लिखा है—

शारद शरद चंद्रकरि नीर्मल ताके चरण कमल चित्तलायकइ
सुनत संतोष हुइं श्रवणणकुं, नागर चतुर सुनहु चित चायकइ
कुशललाभ वुल्लभि आनदभरि सुगुरुप्रसाद परम सुख पाइक
करिउ थूलभद्र छतीस अति सुन्दर पदबधवनाइक 1

यह काव्य गुरु महिमा का है। गुरु की महिमा अपार है। शिष्य कितने ही अपराध करे किन्तु उसको विश्वास रहता है कि गुरु उदार हैं और वे उसे अवश्य ही क्षमा कर देंगे—

वइसा वाइक सुणी भयउलज्जित मुषि
सोचकरि सुगुरु कइ पास आवइ
चूक अब मोहि परी चरण तलि सिरधरि
आप अपराध आपइ खमावइं—37

कथासार

पूर्व देश का प्रसिद्ध नगर पाडली रिद्धि सिद्धियों से पूर्ण था। उस नगर के मन्त्री के दो पुत्र स्थूलिभद्र एवं श्रीवंत थे। स्थूलिभद्र नगर वेश्या कोशा पर आसक्त था। सोलह वर्ष की अल्प आयु में ही वह संभूति विजय से दीक्षा लेकर श्रावक बन गया। गुरु की आज्ञा से स्थूलिभद्र ने अपना चतुर्मास कोशा वेश्या की चित्रशाली में बिताया। वेश्या के घर रहते हुये भी स्थूलिभद्र पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

1. श्री अभयजन ग्रंथालय बीकानेर ग्रंथांक 87/4209

चतुर्मास पूर्ण होने पर सभी शिष्य पुनः आश्रम में आये। गुरु ने स्थूलिभद्र का विशेष स्वागत किया। इस व्यवहार को देख अन्य श्रावकों को ईर्ष्या हुई। अगले वर्ष एक श्रावक ने गुरु के बार बार समझाने पर भी उसी वेश्या की चित्रशाली मे चतुर्मास बिताने की आज्ञा ली और प्रथम रात्रि को ही उसने अपने आपको कोशा को समर्पित करना चाहा। किन्तु कोशा ने समपर्ण के लिये एक शर्त रखी कि वह नेपाल से रत्नजडित कंबल लाकर उसे दे। श्रावक ने शर्त स्वीकार की और कंबल लाकर कोशा को दिया। कोशा ने कबल से अपना शरीर पौंछा और उसे गदी नाली में फेंक दिया। श्रावक द्वारा आपत्ति किये जाने पर कोशा ने उसे समझाया कि तुमने भी तो अपने रत्न जड़ित शरीर को गंदी जगह फैंकना चाहा है। वेश्या के वचन सुन श्रावक अत्यन्त लज्जित हुआ और गुरु के चरणो मे नतमस्तक हो क्षमा याचना की। कवि ने इस रचना के माध्यम से ब्रह्मचर्य का महात्म्य बताया है।

थंमण पार्श्वनाथ स्तवन

कुशललाभ ने इस स्तवन की रचना खंभात मे विक्रम सवत् 1653 में की थी।[1] डा. प्रेमसागर जैन ने भी संवत् 1653 ही दिया है। उनकी मान्यता का आधार यही ग्रंथ रहा होगा।[2]

जिनवर सब मनोकामनाओ को पूर्ण करने वाले राम लक्ष्मण द्वारा प्रभू की स्तुति करने से सात महीने और नौ दिन में समुद्र का पानी रुक गया, यह आश्चर्य-जनक घटना देखकर उस स्थान को थमणा नाम दिया और उसी वन मे थमण पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित की। उस तीर्थ की महिमा भी अपार है श्रीकृष्ण ने द्वारकापुरी मे जिणवर की स्थापना की। कुंतनगर मे तथा सेढका नदी के किनारे खाखरा (पलास या ढाक) के पेड़ के नीचे जिनवर की प्रतिमा स्थापित की। उस पर बालू आने से प्रतिमा ढक गई। एक गाय रोज आकर अपना दूध वहाँ डालती थी जिससे वहाँ की भूमि चिकनी हो गई। गुरु अभयदेव को रक्त पित्त का रोग हो गया था। सेढ नदी के जल मे स्नान करने एव जिनवर की पूजा व स्थापना करने से वे नीरोग हो गये। जिनवर का स्मरण करने से रोग कभी नही आते। खभात मे जिनवर की मूर्ति स्थापित की वहॉ की यात्रा करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।

संस्कृत में स्तम्भन पार्श्वनाथ को लेकर अनेक स्तुति-स्तोत्रों की रचना होती रही है। तरुण प्रभाचार्य और जिन सोमसूरि के स्तमंन पार्श्वनाथ स्तवनों का

---

1. (क] श्री दिगबर जैन मंदिर बधीचन्दजी जयपूर गुटका न० 92
   (ख) श्री आचार्य विनयचद्र ज्ञान भण्डार जयपुर ग्रंथांक 37/80
2. डा० प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि—पृ० 119

संकलन 'मन्त्राधिराज कल्प' में हुआ है। हिन्दी में कुशललाभ का थंमण पार्श्वनाथ स्तवन उसी परम्परा मे आता है।

इसमे रचना सम्बन्धी कोई छन्द दृष्टिगत नहीं होता है, किन्तु जैन गुर्जर कविओं, भाग 3, खण्ड एक के सम्पादक ने आदि और अन्त प्रस्तुत कर 'संवत् 1638 चैत्र सुदी 11 भीमे खभायते मध्ये खरतरगच्छे वा. कुशललाभगणि लि.' लिखा है।[1] इन पक्तियो से कृति की रचना तिथि वि स. 1638 चैत्र सुदि 11, मंगलवार निर्धारित होती है, जो एफरमैरिज से भी प्रमाणित होती है। इसके अतिरिक्त यह प्रति स्वय कुशललाभ की स्वलिखित होने के कारण अपने आपमे प्रमाणिक एवं महत्वपूर्ण है।

गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन्[2]

कवि के यह कृति अभी अप्रकाशित है। इसकी कई प्रतियाँ उपलब्ध हैं। कही-कही यह गौड़ी पार्श्वनाथ छंद के नाम से भी मिलती है।

गोड़ी पार्श्वनाथ की बहुत सी प्रतिमाएँ हैं। उनके दर्शन मात्र से रोग शोक दूर हो जाते हैं। श्री यशोविजय का सस्कृत मे लिखा हुआ 'गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन्' अत्यधिक प्रसिद्ध है। कुशललाभ की यह रचना जैन शैली में विरचित राजस्थानी भाषा की रचना है। इसमें 23 पद्य हैं।[3] स्तवन में गौडी पार्श्वनाथ की भक्ति ही मुख्य है। कवि ने प्रारम्भ मे उस सरस्वती की हाथ जोडकर वन्दना की है, जो सुराणी है, स्वामिनी है और वचन विलास की ब्रह्माणी है वह एक ऐसी ज्योति है जो समूचे विश्व मे व्याप्त है—

सरसति सामनी आप सुराणी, वचन विलास विमल ब्रह्माणी
सकल ज्योति संसार सामाणी पाय प्रणमु जोडि जुग पाणि—1

गौडी पार्श्वनाथ की वन्दना केवल नर ही नही, किन्तु असुर इन्द्र देव व्यंतर और विद्याधर आदि सभी करते है। भगवान पार्श्वनाथ संसार के नाथ हैं। भगवान के दर्शन उस चिन्तामणि के समान है जो सभी मनोवाछनाओ को पूरा कर देती है। जिनके दर्शनो मे ऐसी शक्ति हो, उसकी महिमा अपरम्पार है।[4]

---

1. सपादक मोहनलाल दलीचद देसाई, पृ० 687
2 (क) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जयपुर ग्रथांक 6060
(ख) कृपाशंकर तिवाड़ी जी के निजी संग्रह से प्राप्त ग्रथाक 300
(ग) लूणकरणजी का मन्दिर जयपुर गुटका नं० 66
3. (क) जैन गुर्जर कविओं पहला भाग पृष्ठ 216
(ख) रा. प्रा. वि. प्र. जयपुर ग्रथाक 6060
4. जगनाथ पास जिणवर जयो, मनकामत चिंतामणी
कवि कुशललाभ सपतिकरण सोधवल धीग गौडीधणी—22
अन्तिम कलश

नवकार छन्द[1]

इसमें कुल 19 छन्द हैं। यह भक्तिपरक रचना है। कवि ने जैन धर्म के अनुसार भगवान जिनेश्वर की वन्दना की है। जैन धर्म का महामन्त्र नवकार मन्त्र है। कवि ने इससे पंचपरमेष्ठी की वन्दना की है। यह मन्त्र सब मनोरथों को सिद्ध करने वाला है

वाछित पूरण विविधरे श्री जिणसासणसार
निहचेसु नवकार जप, नित जपतां जयकार—1

पंचपरमेष्ठी का नित्य जाप संसार की सुख सम्पत्तियों को प्राप्त कराता है और सिद्धि भी प्रदान करता है। एकचित्त से पचपरमेष्ठी की आराधना करने से अनेक अभिलषित ऋद्धियां प्राप्त हो जाती हैं।

नित्य जपी ये नवकार सार सपत्ति सुखदायक
सिद्ध मत्र ए शाश्वतो इम जप श्री जग नायक

× × ×

नवकार सार संसार छे कुशललाभ वाचक कहे
एकचित्त आराधता विविध रिद्ध वाछित लेहे—18

भवानी छंद :[2]

यह प्रति राजस्थान प्राच्च विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर से प्राप्त हुई है। यही प्रति भवानी छद के नाम से भी प्राप्त है,[3] दोनो मे कोई महत्वपूर्ण अन्तर नही है। यह देवी का स्तुति परम काव्य है। इस पृथ्वी पर शिव से प्राप्त सिद्धि से छद शास्त्रीय नियमों के आधार पर रचना करने वाले अनेक कवि हुये है। कवि अपने आपको मूर्ख मतिहीन एवं तुच्छतर मानता है परन्तु अपनी जिह्वा को पवित्र करने के लिये देवी के गुणगान करता है। देवी की भक्ति से राज्य रिद्धि, सौभाग्य एवं मनोहर भक्ति प्राप्त होती है—

राज रिद्धि सोभागरस महुत मनोहर मत्ति
परिघल सुपरिपद पांभीइ जु सेवीइ सगति ।।3।।

कवि ने उंकार को सबका सार बताया है—

उकार सार अपरंपार नांद भेद निरभेद निरंतर
सकल रुप जोति सहसंकर नमो निरजंन नाथ निरंतर–1–

---

1. श्री आचार्य विनयचद्र ज्ञान भण्डार जयपुर ग्रंथांक 37/31
2. (क) रा. प्रा. वि. इ. उदयपुर ग थांक 602/2423
   (ख) श्री पूज्य जी का उपाश्रय बीकानेर
3. श्री पूज्यजी का उपाश्रय बीकानेर

मनुष्य ही नहीं इंद्रादिक देव भी भगवती की सेवा करके स्वर्ग में अपना अविचल राज्य पाते हैं:

इद्रादिक सुर असुर सदा तुझ सेवा सोरें
स्वर्ग मृत्यु पाताल अचल तुम चि आधारें।

देवी सब सुख सम्पत्ति और संतान देने वाली है—

मुझ मन तुम आधार कृपा अम्ह ऊपर कीजं
सुष सम्पति संतान दान मन वछित दीजै ।

कृति में रचना काल से संबधित कोई छंद नहीं है। उदयपुर वाली प्रति में एक कलस अधिक है।[1]

शत्रुजंय यात्रा स्तवन

इसकी एक ही प्रति अपूर्ण प्राप्त हुई है।[2] इस प्रति के दो पत्र है जिसमें 75 गाथायें हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे यात्रा सदर्भ मे निम्न पंक्तियां मिलती हैं—

सोलचम्माला वछरइ माघमास सुदि पष्यइ
दसमी दिनि रविवारह सहू लोक समष्यइ ।। 18।।

ये पंक्तियां रचना तिथि की ओर संकेत करती हैं तथा 'एफरमरिज' से मिलाने पर यह तिथि प्रामाणिक भी सिद्ध होती है। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि सं. 1644 की माघ सुदि 10, रविवार को यात्रा प्रारम्भ की तथा चैत्र सुदि पंचमी को यात्रा पूर्ण हुई हो :

चित्री सुदि पंचकि विरचि पूज विसाल
सहू संघ समुखइ तिहा पहिरी इंद्र माल ।।74।।

कवि ने शत्रुजय यात्रा का महत्व इस कृति मे बताया है। इसमें खरतर-गच्छीय जिनचन्द्र के साथ शत्रुजंय तीर्थ की यात्रार्थ निकाले गये संघ का वर्णन निहित है :

संघ साधु चोरासी गच्छना आ मिल्या जात्र अधिका रइ
खरतर साथइ सुख घणु मिल्यातेण प्रकारइ ।।24।।

---

1. इंद्रादिक सुर असुर सदा तुझ सेवा सोरें।
स्वर्ग मृत्यु पाताल अचल तुमचि आधारें ।।
गिरि गुह्वर वर निवर नगर पुरवर जिक चाचर।
आय छंवि आणंद शक्ति खेलै सचराचर ।।
शिव सगति युगति खेलि सदा विविध'रूपविश्वेरी
कवि कुशललाभ कल्याण करि जय जय जगदीश्वरी—48
इति श्री सर्वव्यापी जगदंबाजी छंद समाप्तं ।।श्री।।
2. श्री अभयजैन ग्रंथालय बीकानेर ग्रंथांक 7744

कवि ने शत्रुजंय यात्रा की महत्ता प्रतिपादित करते हुये यह भी बताया है कि मार्ग मे मुगलों के साथ युद्ध मुगल शासकों की लूटमार की प्रवृत्ति का परिचायक है। इसके साथ ही कवि ने जैन समाज की संपन्नता का परिचय यह कह कर किया है कि सघ ने स्वर्ण मुद्रायें देकर मुगलों से अपना पीछा छुड़ाया।[1]

दुर्गा सात्तसी :[2]

दुर्गा सात्तसी कुशललाभ की स्तुति परक रचना है। इसकी दो प्रतियां प्राप्त हैं जिनमें एक अपूर्ण है। रचना मे कही भी रचना काल का सकेत नहीं मिलता। इसमे कुल 366 छद है। प्रथम 362 छंदों मे कवि ने भवानी का जन्म तथा उनके द्वारा किये गये कार्यों का वर्णन किया है, अतिम चार छन्दों मे दुर्गा सात्तसी का महत्व बताया है।

संस्कृत की, 'दुर्गा सप्तशती' की परम्परा मे ही कुशललाभ की 'दुर्गा सात्तसी' है। देवी की शक्ति अजय है वही देवताओं की रक्षा करने वाली तथा असुरों का संहार एव मानव कल्याण करने वाली हैं। जो एक मन से देवी की आराधना करता है उसे दुख विघ्न नही व्यापते–

जं मुनि सांभलै एकणिमन्न विघ्न वीचरित दाषु वृन्नं
नरपत एकताइ सारथ नांम गजीयातास दाणवेगाम

कुशललाभ की 'दुर्गा सात्तमी' का मूल स्रोत मार्कण्डेय पुराण का दुर्गा महात्म्य है। कवि ने इस पौराणिक आख्यान को बिलकुल उसी रूप मे प्रस्तुत नही किया है बल्कि आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किये है।

सस्कृत की दुर्गासप्तशती अध्यायो मे विभाजित है जबकि कवि ने कोई अध्याय निरुपित नही किया। दुर्गा सात्तसी मे हमे मूल कथा जैसा रणकौशल और और दैवी महात्म्य विस्तार से नही मिलता।

राजा सुरथ और वैश्य 'जगल मे मिलते अवश्य है किन्तु वे अपना परिचय एक दूसरे से नही लेते और ना ही कवि ने उनके अन्तर के द्वन्द्व को दर्शाया है। इसमे कथा स्वय कवि कहता है। मार्कण्डेय तो मात्र सकेत करते है की वैश्य और राजा देवी की कथा सुनना चाहते हैं। आलोच्य कृति मे मधु और कैटभ का जन्म कान से होता है कान के मैल से नही। देवताओं और राक्षसो के बीच सौ वर्ष तक हुए युद्ध का वर्णन नही है। मधु कैटभ वध के बाद कवि ने महिषासुर और देवताओं का युद्ध वर्णन किया है।

---

1. तिहा थकी संघ सभाचर चाल्या, मुगलजीत द्रव्य नखाल्या
   पेषउ पुण्य तणु परमाण सकट भागा बधा मंडाण—49
   श्री अभयजैन ग्रथालय बीकानेर ग्रंथाक 7744
2. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ पैलेस बीकानेर ग्रंथाक 68 (ब)

दुर्गा सप्तशती में शुंभ का कहा संदेश ही सुग्रीव देवी को सुनाता है जबकि इस कृति में शुंभ सुग्रीव को चतुर और योग्य मानकर देवी के पास भेजता है और सुग्रीव अपनी मति अनुसार देवी से बात करता है । यह कवि की मौलिक कल्पना है ।

प्रस्तुत कृति में देवी ने विष कन्या के रूप में शुंभ का वरण किया और राक्षसो के स्वामी शुभ की आज्ञा से ही रक्तबीज को मारा । यह भी कवि की अपनी नवीन दृष्टि है ।

राजा सुरथ और वैश्य की देवी की स्तुति तथा देवी द्वारा प्रदत्त वरदानों का उल्लेख भी इस कृति में नहीं मिलता है । अन्त में कवि ने देवी के विभिन्न रूपो की वन्दना की है । यह कथा सक्षिप्त होते हुये भी रोचक है ।

अन्य

पिंगल शिरोमणि

पिंगल शिरोमणि कुशललाभ का सदिग्ध ग्रन्थ माना गया है । श्री नारायणसिंह भाटी ने इसका सम्पादन परम्परा में किया है । पिंगल शिरोमणि के रचनाकाल एवं रचयिता के बारे में विद्वानों मे मतभेद है । कवि ने प्रशस्ति—

"पांडवमुनिसर मेदनी शुक्लपक्ष नभमास
तिथ नवमी रविवार तिम, जैसल हरिचंदवास"

इन पंक्तियो के आधार पर पिंगल शिरोमणि का रचना काल स. 1575 श्रावण शुक्ला नवमी रविवार निर्धारित होता है । जो एफरमरिज से प्रमाणिक नही बैठता । श्रीमनमोहन स्वरूप माथुर ने नभ के बजाय नभस्य पाठ की कल्पना करके उसकी रचना तिथि ठीक बैठाने की कोशिश की है ।[1] जो उचित नही है ।

डॉ० ब्रजमोहन जावलिया पिंगल शिरोमणि का रचनाकाल 1635 मानते है । उन्होंने पाडव मुनिसर मेदनी मे पाडव 5 मुनि 3 तथा सर के स्थान पर रस पाठ मानते हुय 6 और मेदिनी से 1 अर्थ ग्रहण कर यह तिथि निश्चित की है । ये तिथि एफरमरिज से भी सही प्रमाणित होती है ।[2]

डा. मोतीलाल मेनारिया, नारायणसिंह भाटी इस ग्रंथ को अभयधर्म के शिष्य कुशललाभ की रचना नहीं मानते । उनकी मान्यता है कि किसी लिपिकार ने प्रमादवश कुशललाभ की प्रशस्ति जोड़ दी है । श्री भाटी ने प्रमुख आधार तो ग्रंथ को ही माना है तथा बार बार प्रयुक्त –कहै एम हर राज कवि' तथा .दीनों सुधार हरराजकवि' का उल्लेख कर इसे हर राज की ही कृति मानते है ।[3]

---

1. मनमोहन स्वरूप माथुर—शोध पत्रिका वर्ष 22 अंक 3 वाचक कुशललाभ रचनायें और रचना काल पृ. 10
2. डा. ब्रजमोहन जावलिया —कुशललाभ और पिंगल शिरोमणि -
3. निजी पत्र 21. 8. 71 में व्यक्त विचार

श्री अगरचंद नाहटा भी संदेह करते हुये रचना काल तो 1575 मानते है परन्तु रचनाकार कुशललाभ को ही मानते हैं । [1]

पिंगल शिरोमणि को यदि हरराज की रचना मानते हैं, तो भी रचनाकाल सही नहीं बैठता । हरराज का शासनकाल सं. 1618 से 1634 माना गया है ।[2] रचना इस अवधि से पूर्व की है जबकि हर राज कुवर ही था । ऐसी स्थिति में हरराज का जन्म वि. सं. 1598 के पहले मानना पडेगा ।[3]

,पिंगल शिरोंमणि' छंदशास्त्र है जिसे कुशललाभ ने ने अपने ,शिष्य और आश्रयदाता हरराज को पढाने हेतु लिखा था और सं. 1635 के श्रावण शुक्ला नवमी रविवार को इसे ग्रथ का रूप दिया गया है । यही उचित जान पड़ता है ।

कवित्त सवैया[4]

कुशललाभ की अन्य फुटकर रचना एक कवित्त सवैया मिलता है । कवि ने इसमें नायक नायिका की सयोगानुभूति का चित्रण किया है । ऐसे वर्णन कवि की लोकआख्यान रचनाओं मे भी मिलते हैं । संभव है कि यह कवित्त किसी आख्यान के लिये रचा गया हो और वह सम्मिलित न हो पाया हो । कवित्त इस प्रकार है—

विण पावस भाद्रवो, माह विण अंबौ मौहरै ।
फूल पखै विण फल भयो, केलि लगी (बिन बीजोरै ।
मात पिता विण पूत, पख विण पंखी उडै ।
रामहस ढिलरै नीर विण गैबर बूडै ।
उगमै दीह दीणयर पखै, दान पखै नव षड जस ।
कवि कुशललाभ वाचक कहै, जोग सिंगार कवित्त रस ।

---

1. कुशललाभ और उनका पिंगल शिरोमणि राजस्थान भारती, भाग 1, जनवरी 1947
2. राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग, जगदीश सिंह गहलौत पृ. 670
3. वही पृ. 647
4. श्री अभयजैन ग्रंथालय बीकानेर ग्रंथांक 32870

चतुर्थ अध्याय

पात्र एवं चरित्र चित्रण

आख्यान काव्यों में पात्रों की अनिवार्यता असंदिग्ध है। ये पात्र ही हैं जो कथा को जन्म देते हैं और उनके ही सहारे कथावस्तु आवश्यक विस्तार पाती है। पात्र ही कथानक में अलौकिकता लाते हैं और ये ही कथावस्तु में नये मोड़ लाकर पाठको के सम्मुख जीवन की सभी परिस्थितियों को रखते है। यदि वास्तविक रूप मे देखें तो ज्ञात होगा कि पात्र ही कथा की वह आधार शिला है जो कथा के निर्माण मे योग देते है। दूसरे शब्दो मे हम ये भी कह सकते हैं कि पात्रो के अभाव मे कथा की रचना-प्रक्रिया असम्भव होती है। कथाकार समाज से प्राप्त अनुभवों को पात्रो के माध्यम से ही व्यक्त करता है।

कल्पना के माध्यम से पात्रों मे जिन विशेषताओ का उल्लेख किया जाता है वे कथा के चरित्र विकास को मुखर करती हैं। पात्रों की विविधता कथावस्तु मे रोचकता एव नवीनता लाती है। "पात्र, कथात्मक साहित्य का अन्यतमतत्व, एवं चरित्र वे व्यक्ति है जिनके द्वारा कथा की घटनाएँ घटती है अथवा जो उनसे प्रभावित होते है। इन्ही व्यक्तियो के क्रिया-कलापो से कथानक और कथावस्तु का निर्माण होता है। अतः भले ही किसी कृति मे घटनाओ की बहुलता और प्रधानता हो पात्रों या चरित्रो का उसमे अभाव नहीं हो सकता। कथा की कल्पना मे ही पात्रों की विद्यमानता निहित है।"[1]

कथा की घटनाये तो प्रायः पात्रो के स्वभाव और प्रकृति से ही प्रसूत होती है। उसके वातावरण या देशकाल का निर्माण चरित्रों को स्वाभाविकता और वास्तविकता प्रदान करने के लिये ही किया जाता है। कथनोपकथन घटनाओं से भी अधिक चरित्र को ही व्यंजित और प्रकाशित करता है तथा कथा के उद्देश्य की महत्ता भी

1; जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन—लेखक श्रीचन्द्र जैन प्रथम संस्करण 1971

चरित्र में ही निहित होती है ।[1] कथा के पात्रों को किस प्रकार उपस्थित किया जाय, यह कथाकार की रुचि और उद्देश्य पर निर्भर है ।

पात्रों का वर्गीकरण

- पात्र
  - लौकिक
    - मानव
      - स्त्री
      - पुरुष
      - ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक
    - मानवेतर
      - पशु पक्षी
      - वृक्ष लता आदि
  - अलौकिक
    - दिव्य पात्र
      - देवी, देवता यक्ष, विद्याधरी, अप्सराएँ
    - अदिव्य पात्र
      - वेताल, भूत, राक्षस व्यतरी आदि

ढोला मारू के पात्र और चरित्र चित्रण

मानव पात्र

मानव पात्रों में प्रमुख रूप से ढोला, मारवणी, मालवणी व ऊमर-सूमरा आते हैं ।

ढोला

ढोला कथा का नायक है, जिसका वास्तविक नाम साल्ह कुमार है । कथा का समस्त कथानक ढोला के इर्द-गिर्द घूमता है । ढोला नरवर के राजा नल का पुत्र है । तीन वर्ष की अल्पायु में उसका विवाह पिंगल पुत्री मारवणी से होता है । मार्ग के सकटो को जानते हुए तथा ढोला को इस विवाह से अनभिज्ञ रखते हुये, उसके माता पिता उसका दूसरा विवाह मालवा कुमारी मालवणी से कर देते है ।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार नायक दाता, कृतज्ञ, पण्डित, कुलीन लक्ष्मीवान, लोगों के अनुराग का पात्र, रूपवान युवा एव उत्साह युक्त तेजस्वी चतुर, सुशील

---

1 हिन्दी साहित्य कोष भाग 1 पृष्ठ 488 ।

पुरुष होता है ।[1] नायक चार प्रकार के बताये गये हैं—धीरोदात्त, धीर ललीत, धीरोद्धत, धीर प्रशांत ।[2] धीर ललीत नायक निश्चित, अति कोमल स्वभाव वाला और सदानृत्य गीतादि कलाओं मे अनुरक्त रहता है ।[3] ढोला मे इन गुणो की विद्यमानता है, अतः वह नायक पद के सर्वथा योग्य है । इसमें प्रणय विलासिता, गुण ग्राहता, कला प्रेम, कोमल स्वभाव, जीवन को सुख से भोगने की लालसा, उत्साह आदि गुणों का भडार है । इस दृष्टि से ढोला को धीर ललीत नायक के रूप में हम पाते हैं ।

ढोला के प्रेम का स्वरूप उस समय तक नही निखरता जब तक ढाढियों द्वारा प्रेषित मारवणी का सन्देश नही प्राप्त हो जाता, यहीं से उसका व्यक्तित्व नवीन मोड़ लेकर निखरता है । सन्देश प्राप्त होने से पूर्व तक वह एक आदर्श पति के रूप मे अपनी पत्नी मालवणी के साथ आनन्द पूर्वक रहता है । मारू का प्रेम सन्देश उसके हृदय मे अपूर्व उत्साह का सचार करता है ।

ढोला धीर पुरुष है उसमे उतावलापन नही है । मालवणी के अपार प्रेम के वशीभूत हो वह चार माह रुक जाता है परन्तु वह मारवणी को नही भुला पाता । मारवणी से दूर रहकर बिताये जीवन को वह अपने जीवन का सर्वाधिक निरर्थक अंश मानता है इसी से वह कहता है—

जे दिन मारू विण गया, दई न ज्ञान गिणंत ।

ढोला के प्रेम मे गम्भीरता, एकनिष्ठता गहराई, सच्चाई एवं उत्सर्ग की भावना है । मारू के पीना साप से दंशित होने पर वह उसी के साथ मरने को उद्यत हो जाता है ।

प्रेम के उद्वेग मे उसे पूगल का कठिन मार्ग भी सरल लगने लगता है । प्रेम का यह प्रेरक रूप केवल ढोला मारू की ही विशेषता नही, बल्कि जहाँ कही भी प्रेम का चित्रण किया गया है, प्रेमी मे अदम्य उत्साह को चित्रित किया गया है । 'लैला मजनू'' मे भी मजनूं लैला के दरवाजे तक बड़ी सरलता से पहुँच जाता है, परन्तु जब उसे लैला नही मिलती तो वही रास्ता दुर्गम लगने लगता है । हिन्दी के सूफी कवियो के नायक जब भी प्रेम पथ पर निकलते है बाधाओ की चिन्ता नही करते ।

ढोला भी मालवणी को सुपुप्तावस्था में छोड़कर पूगल के लिये प्रस्थान करता है । मालवणी ढोला को लौटा लाने के लिये शुक को भेजती है । लेकिन ढोला मालवणी के त्रिया चरित्र की गहनता का सहज ही अनुमान कर लेता है और अपने मार्ग

1 साहित्य दर्पण विश्वनाथ 3-30 ।
2. साहित्य दर्पण विश्वनाथ 3-31 ।
3 साहित्य दर्पण विश्वनाथ 3-34 ।

पर बढ़ता है। मार्ग में भ्रामक सूचनाओं द्वारा चिंतित अवश्य होता है किन्तु उनका निराकरण कर दिया गया है।

पूगल से लौटते समय वह ऊमर सूमरा के विश्वासघाती षड़यन्त्र को न समझ कर उसी के साथ मद्यपान करने बैठ जाता है। परन्तु मारवणी द्वारा रहस्योद्घाटन पर वह उस षड़यंत्र से बच निकलता है।

उसके प्रेम में अनन्यता और लक्ष्य प्राप्ति की अपूर्व लगन है। वह क्रिया निष्ठ नायक है। पवित्र प्रणय का पुजारी है। विषम परिस्थितियो से जूझते हुये अपना लक्ष्य पूरा करना उसके चरित्र की विशेषता है। प्रेम की अग्नि परीक्षा मे वह खरा उतरता है। उसके चरित्र मे कर्तव्य निष्ठा का भी सुन्दर सामंजस्य है। मारू से वह पहले अपरिचित था परन्तु मारू के प्राप्त सन्देशो से वह अपना कर्तव्य निश्चित कर लेता है।

मारू को बात बताकर ढोला मालवणी के हृदय को दुखी करना नहीं चाहता है अत: वह देशाटन का बहाना बनाता है और अन्त मे अपना रहस्य भी खोल देता है। मालवणी आगत विरह की कल्पना मात्र से मूर्छित हो जाती है तो वह उसे होश में लाने के प्रयास करता है और अन्त मे उसे सुषुप्तावस्था में ही छोडकर पूगल के लिए प्रस्थान करता है। यह सब कार्य उसकी कर्तव्य निष्ठा के द्योतक हैं।

ढोला गृहस्थी को सुचारू रूप से चलाने मे भी सफल हुआ है। दोनो पत्नियों मे हुये वाद विवाद को वह बडे ही सहज ढग से सुलझा देता है। ढोला की व्यवहार कुशलता से ही मारवणी और मालवणी का आपसी द्वेष और मनोमालिन्य दूर होता है।

ढोला कला पारखी भी है। ढाढियो द्वारा विरह सन्देश सुनकर वह उन्हें सम्मान सहित बुलाता है और दान आदि देता है। मारवणी से सयोग के समय प्रहेलिका आयोजन ढोला का साहित्य प्रेम प्रदर्शित करता है। वह दानवीर भी है—

रूपई रूडइ ते राजान, कुमर न कोई साल्ह समान
परचइ लाषलाष दिद्रवे लाषे कोडे लेषा हुवइ—212

ढोला मे भी सामन्तवादी समाज की विलासी प्रवृत्ति दिखाई देती है। उसकी बहुपत्नी वाद मे आस्था है। मारू का रूप ढल जाने की बात सुनकर उसका मन निराश हो जाता है और रूप की प्रशसा सुनकर वह पुन. मुग्ध हो जाता है। उसकी इस चंचल मन: स्थिति से उसकी अतृप्त विलास भावना प्रकट होती है। याचकों को दान देना, मद्यपान कराना, सगीत सुनना, दास दासियां रखना, ऊट घोड़े रखना एक ओर ढोला की सामन्ती प्रथाओ की ओर झुकाव प्रदर्शित करती है तो दूसरी ओर ढोला को उच्चकुलीन सामत सिद्ध करती हैं।

सक्षेप से कहा जा सकता है कि ढोला एक योग्य, सरल, निष्कपट, चतुर, व्यवहार कुशल, कर्तव्यशील, कलाप्रिय प्रेमी तथा पति है। इन गुणों के अतिरिक्त

सौन्दर्य, साहस, धैर्य, दानशीलता, गुणग्राह्यता आदि अनेक गुण उसके व्यक्तित्व की विशेषतायें हैं।

मारवणी

मारवणी इस काव्य की नायिका है। मारू राजा पिंगल और रानी उमा देवी की कन्या है। उसका विवाह पुष्कर मे डेढ वर्ष की अल्पायु में, जबकि वह अबोध थी, ढोला के साथ हो जाता है।

मारवणी स्वकीया, मुग्धा, नवोढा, ज्ञात-यौवना है और पद्मिनी नायिका है। ढोला से उसका विवाह हुआ है, इसलिये वह स्वकीया है। नवयौवन संचार एवं लज्जाशील होने के कारण वह मुग्धा है, यौवन का ज्ञान होने के कारण ज्ञात यौवना है और अपने रूप-सौन्दर्य एव शारीरिक सुगन्धि के कारण वह पद्मिनी है। मारू यौवन, रूप, गुण, शील, प्रेम, कुल वैभव तथा अन्य 32 लक्षणों से युक्त नायिका है।

मारवणी के जन्म से माता पिता बहुत प्रसन्न है। यही नहीं नगर मे बधावे व मंगलाचार भी होते है—

माता पिता मनि आणंद घणऊँ जनम हुआ मारुवणी तणउ
कीया बधावा नगर मझारि, पुत्र तणी परि मंगलचार–134

मारवणी अप्सरा के समान सुन्दर है, वह हसगामिनी, कोयल जैसी मधुर वाणी, खजन नेत्र, अनार के दाने जैसे श्वेत दांत और झीणीलक वाली स्त्री है। वीसू चारण गुणो की भण्डार इस नारी का वर्णन करते नही अघाता। पर वह इसका पार भी नहीं पाता। अन्तत. वह थका सा कहता है—

तेता मारू मांही गुण जेता तारा अंभ
उज्वलचिता साजणा कहि क्यऊ् दाखऊं संभ–505

सौदागार से अपने बिवाहित पति ढोला के विपय में सुनने के उपरान्त ही उसे प्रियतम का विरह सताने लगता है—

सउदागर सदेसड़ा. सामलिया स्त्रवणहि
मारुवणीते मन दहइ मूक्यउ जलनयणेहि–217

पपीहे की 'पीउ-पीऊ' रटन से उसे प्रियतम का स्मरण होता है[1] कुरझो[2] एवं बिजली से किये गये आत्म-निवेदन[3] आदि मे मारू के विरही मन की अनूठी उद्-भावनाये व्यक्त हुई है। उसका प्रियतम उससे दूर और बेखबर है। वह कुरझों से पंख मांगती है जिससे अपने प्रियतम से जाकर मिल सके—

---

1 दो. सं. 220
2 दो. सं. 228
3. दो. सं. 223, 224

कुंझड़ी देश्रने पंषड़ी, थांको वनो वहेस
सयर उलंघि प्रीय मीलु, प्रीय मीलि पाछिदेस–228

ढाढ़ियों से संदेश प्रेषण में तो मारू ने अपनी समस्त वेदना को साकार कर दिया है। यदि प्रियतम मिले तो उनसे कहना कि शरीर में प्राण नहीं है केवल उसकी लौ जल रही है।[1] उसका शरीर चाहे दूर हो आत्मा तो उसी के पास है। आँखों की नींद हराम हो रही है।[2] यदि तुम नहीं आये तो मारू स्वय घोड़े पर जीन कस कर आ जायेगी[3] मारू का यौवन रूपी हाथी मदमस्त है तुम्ही अकुश लेकर उसे वश में करो।[4] ऐसे समय पर भी प्रियतम न आये तो बाद मे आकर क्या उसके अस्थि पंजर पर कौए उड़ायेंगे।[5]

प्रियतम का संदेश आ भी गया तो नयन उसे पढ़ने नहीं देंगे।[6] प्रियतम की याद करती हुई और उसका मार्ग देखती हुई मारवणी लंबी गरदन वाली हो गई है।[7]

मारू एकनिष्ठ प्रेमिका और पत्नी है। उसकी सारी कामनाये ढोला मे ही निहित [है। मारू प्रत्युत्पन्नमति है। प्रथम मिलन पर ढोला सशय से उससे पूछता है—

काया झबूकें कनक जुं सुंदर केहें सुष
तेह सुरंगा कीम हुई जे बहुदाधा दुष–568

मारू मी हसकर उसका तत्काल उत्तर देती है—

पहुर हुवउ ज पधारियाँ, मौ चाहती चित्त
डेडरिया खिण-भइ हुवइ, धण बूठइ सरजित्त–570

ऊमर सूमरा के षडयंत्र से छुटकारा पाने का संकेत भी मारवणी ही ढोला को करती है। वह मालवणी से भी प्रथमतः कटु वाद-विवाद नही करती। ढोला द्वारा समझाये जाने पर शाति से रहती है। राजकुमारी होने के कारण घुड़सवारी मे निपुण है, चर्चरी नृत्य मे पारंगत है। ढोला से प्रथम मिलन के समय ही वह कोई गाथा, पहेली, गीत, अथवा कथा कहने का प्रस्ताव करती है जो कि उसकी कला प्रियता का द्योतक है। मारू को अपनी जन्म भूमि से भी प्यार है। मालवणी को दिये गये प्रत्युत्तर मे उसका जन्म भूमि के प्रति प्रेम झलकता है।

---

1. दो सं 276
2. दो सं 136
3. दो स. 296
4. दो. स 297
5. दो सं. 294
6. दो. सं. 300
7. दो. सं. 280

संक्षेप में मारू नारीरत्न है। वह अप्सरा के समान रूपमती, कुलवती तथा उज्ज्वल चरित्र वाली है। उसमे क्षमा, लज्जा, सच्ची लगननिष्ठा साहस आदि गुणों के होने से उसका चरित्र और भी निखर कर सामने आया है।

मालवणी

मालवणी मालवा देश की राजकुमारी है। वह काव्य में मुग्धा एवं उप-नायिका के रूप मे चित्रित की गई है। यह ढोला की द्वितीय पत्नी है। ढोला अपनी प्रथम पत्नी मारवणी से अपरिचित रहता हुआ इससे अत्यन्त घनिष्ठ एव प्रगाढ प्रेम रखता है। मारवणी के समान कवि ने मालवणी का नख शिख वर्णन नहीं किया है परन्तु सौदागर के कहे गये कथन से ढोला की उससे अनुरक्ति एव घनिष्ठता का पता लगाया जा सकता है—

इणि प्रस्तावे साल्ह कुमार, मालवणी सु ँ प्रीति अपार
बे पहरे उन्हाला तणै पोढयउ छे मदिर आपणे ।। 254 ।।

इस अनुराग मे मालवणी का रूप सौन्दर्य ही प्रमुख रहा होगा। मालवणी की प्रीतिवश होकर ही ढोला चार माह तक रुक जाता है।

मालवणी ढोला को उदास नही देख सकती और ढोला को उदास देखकर खवास से कारण जान लेने के बाद भी ढोला से बार-बार कारण पूछती है और ढोला की हठधर्मी देखकर सुप्तावस्था में छोड़कर जाने को भी कह देती है—

चालु चालु मत करो हीआ वहीम देसी
जो सांचाहि चालसो तो सुता पलाणेस ।। 398 ।।

मालवणी के इस निश्चय मे त्याग की भावना है। आगत विरह की आशंका से मालवणी पन्द्रह दिन तक सोती नही।[1] मालवणी के उज्ज्वल चरित्र की झाकी हमे उसकी विरह दग्धावस्था मे मिलती है। ढोला के पूगल को प्रस्थान कर देने पर उसका विरह जागृत हो उठता है। उसका शरीर शिथिल हो जाता है, विरह जन्य कृशता से हाथों की चूड़ियाँ खिसक पड़ती है।[2] ढोला के बिना उसे तालाब की लहरे काले नाग के समान दिखाई देती है—

ढोला हुतो बाहिरी, झीलण गई तलाई
सो जल काला नाग जु ं हेला दे दे खाय ।। 443 ।।

मारवणी के समान मालवणी को भी अपनी मातृभूमि मालवा से विशेष अनुराग है। वह मारू प्रदेश की निन्दा करती हुई मालवा की अच्छाईयो का ही वर्णन करती है।[3]

---

1. दोहा संख्या 425
2. दोहा संख्या 429
3. दोहा संख्या 712 से 719

मालवणी में चतुराई और व्यवहार कुशलता कूट-कूट कर भरी है। ढोला को मारू सम्बन्धी कोई भी सूचना न मिले इसलिये पूगल से आने वाले प्रत्येक पथिक को अपने अधीन करने का वचन माँगती है—

जे पुगलथ्यी आवइ कोई, ते पथी नित मो बस होई
ढोलइ तेहजि कियो पसाव, मालवणी इम मांड्या दाव ।। 261 ।।

ढोला को उदास देखते ही वह शकित हो उठती है और ढोला के मन की बात जानकर ही रहती है। ढोला को रोकने के लिये वह अपनी व्यवहार कुशलता का परिचय देती है। कभी ऊँट से लगडा होने की अनुनय विनय करती है तो कभी गधे के डाभ लगवाती है। ढोला के सुप्तावस्था मे छोडकर जाने का वचन लेने पर भी ढोला के चले जाने पर शुक द्वारा अपनी मृत्यु का संदेश भेजकर[1] उसे चतुराई से लौटाना चाहती है।

मालवणी मे सपत्नी द्वेष भी है जो कि नारी स्वभाव का विशिष्ट अंग है। पूगल से आने वाले प्रत्येक पथिक को मरवा देना और ढोला को चार मास पर्यन्त रोके रखना आदि मे ईर्ष्या प्रवृत्ति ही परिलक्षित होती है। मालवणी अपने प्रेम का विभाजन नही चाहती। इससे उसके स्वार्थ की भावना भी स्पष्ट होती है। देश निन्दा के समय ढोला मारवणी का ही पक्ष लेता है। इस प्रकार मालवणी का चरित्र दयनीयता की सीमा का स्पर्श करता है। मालवणी के चरित्र मे स्त्री सुलभ दुर्बलताओ का यथार्थ चित्रण हुआ है इसी कारण पाठक की सर्वाधिक सहानुभूति मालवणी को प्राप्त होती है।

पति द्वारा प्रवंचित और प्रताडित होने पर भी मालवणी का प्रेम हिमालय की भांति अचल तथा सागर की भांति गभीर रहता है। उसे अपने पति मे पूर्ण श्रद्धा है। वह चतुर, व्यवहार कुशल, सपत्नी से शातिपूर्ण द्वेष रखने वाली, कर्तव्य-निष्ठ, पतिपरायण एवं दुःख और सुख मे धैर्य और सतोष से कार्य करने वाली नारी रत्न है। विरह और दुःख से दग्ध होने के कारण मालवणी का चारित्रिक पक्ष मारवणी की अपेक्षा अधिक उज्ज्वल और निर्मल हो सका है।

ऊमर सूमरा

ढोला मारू मे ऊमर सूमरा खल-नायक के रूप मे चित्रित किया गया है। खल-नायक का कार्य कथानक मे सघर्ष उत्पन्न करना है। वह ढोला के प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे आता है। वह दुष्ट प्रवृत्ति का प्रतीक है। वह मारवणी पर आसक्त है और मारवणी को हस्तगत करना ही उसका लक्ष्य है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह छल और कपट का सहारा लेता है।

---

1. दोहा संख्या 448
ढोला मारवणी चौपइ ह. प्र. डा. जाबलिया से प्राप्त प्रति

ऊमर सूमरा सैनिक शक्ति एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न है। ढोला मारू के भाग निकलने पर वह उनका पीछा अपनी चतुरंगिनी सेना के साथ करता है। वह षडयंत्र करने में कुशल है। ढोला को मारवणी से विमुख करने के लिये चारण द्वारा भ्रामक सूचनाएँ दिलवाता है कि मारू के अंग शिथिल हो गये है एवं केश श्वेत हो गये हैं—

ढोला तु उमाहिया जीणि धण सुंदरि सेस
तीणि मारू रा तन षीस्या पंडर हुआ केस ।। 473 ।।

परन्तु वीसू चारण के प्रयत्न से ऊमर सूमरा का कुचक्र विफल हो जाता है। दूसरी बार वह ढोला को मद्यपान के लिये आमन्त्रित कर षडयंत्र रचता है, किन्तु डूमणी द्वारा षडयत्र की सूचना मिलने पर ढोला मारू बच निकलते हैं। अपने षडयत्र को असफल होता देख ऊमर सूमरा के क्रोध की सीमा नही रहती और वह उनका पीछा करता है किन्तु मारवणी की सतर्कता से उसका चक्रव्यूह छिन्न-भिन्न हो जाता है। पूरी कथा मे ऊमर सूमरा एक स्थल पर आता है। उसकी उपस्थिति द्वारा कथानक मे विशिष्ट कौतूहल का सृजन होता है। वह हमारे समक्ष रूपासक्त, शक्ति ऐश्वर्य सम्पन्न, षडयत्रकारी, कपटी, उग्र, एव हिंसात्मक प्रवृत्ति वाला, झूँठा एव विश्वासघाती खल-नायक के रूप मे आता है।

गौण पात्र

ढोला मारू की कथा के मुख्य पात्रों को छोड़कर अनेक गौण पात्र भी आये है। गौण पात्रो का महत्व चरित्र गठन की दृष्टि से इतना नही है जितना कथानक मे गतिशीलता लाने, नाटकीयता का सृजन करने, कौतूहल बनाये रखने और घटनाओं के नियोजन मे है।

उपर्युक्त पात्रो के अतिरिक्त राजा पिंगल व रानी उमा देवडी दो ऐसे पात्र कथा मे आये हैं जो नायिका मारवणी के माता पिता है। ढोला के पिता राजा नल व माता चपावती है। ढोला का विवाह मारू के साथ होने से इनके सम्बन्ध हो जाते है। घोड़ों का सौदागर, ढोला के समाचार कह कर कथा में नवीन मोड़ लाता है। खवास राजा पिंगल का सेवक है जो सौदागर को ढोला मारू के विवाह की सूचना देता है। ढाढी मारू का सन्देश वाहक बन कर ढोला को पूगल लाने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। रेबारी ढोला के लिये तीव्रगामी ऊँट तैयार करता है। व्यापारी प्रेम मार्ग मे बाधा बन कर आता है पर ढोला उसके लिये समय खराब नही करता। ऊमर सूमरा का चारण मारवणी के बूढी होने की भ्रामक सूचना देता है जिससे ढोला का मन चचल व अस्थिर हो जाता है। वीसू चारण ढोला के चंचल मन को मारू के रूप सौन्दर्य का वर्णन कर शान्त करता है। इसके अतिरिक्त मारवणी की सखियाँ, दीवाधारिणी, डूमणी आदि नारी पात्र भी कथा में बीच-बीच में प्रकट होकर कथानक को नवीन मोड़ दे जाते हैं।

मानवेतर पात्र

पशु-पक्षी पात्र

ढोला मारू चौपई में ऊंट, शुक, गधा, कुरझां, पपीहा आदि मानवेतर प्राणी भी कथानक में नवीनता लाने या गति के अवरोध को दूर करने मे सहायक हुये हैं। ऊंट कष्ट सहकर भी ढोला के कार्य में सहायक होता है, ढोला के निराश होने पर वह उसे परामर्श भी देता है। शुक सन्देश वाहक के रूप में कथा में आया है, जैसा कि परम्परा से होता आया है। गधा मारवणी के षडयंत्र मे बेमौत मारा जाता है। उसे मालवणी दाग लगवाती है। पपीहा अपनी पीउ-पीउ की रट से मारवणी के विरह में तीव्रता ला देता है। कुरझां मारवणी के विरह दुख में सहयोगिनी बनती है।

प्रकृति पात्र

प्रकृति पात्रों का समावेश विरह के उद्दीपन रूप को प्रस्तुत करने के लिये किया गया है। इसमे 'जाल' वृक्ष का उल्लेख हुआ है।

अलौकिक पात्र

अलौकिक पात्रों के आविर्भाव से कथानक में नया मोड़ लाया जाता है। मारू को पीना साप के द्वारा डस लिये जाने पर योगी-योगिनी का आविर्भाव होता है। योगिनी के आग्रह से योगी मंत्राभिषिक्त जल से मारू को सचेत करता है। इस घटना से कथा अचानक नया मोड़ लेती है। ऐसी घटनाओ के समायोजन का उद्देश्य प्रेम की एक निष्ठता दिखाना और उसमे अलौकिक शक्तियो के योगदान को प्रकट करना है।

माधवानल कामकंदला के पात्र

प्रस्तुत प्रबन्ध मे मुख्य पात्र चार है—माधवानल, कामकदला, काममेन तथा विक्रमादित्य। राजा गोपीचन्द, पुरोहित शकरदास, गोप विलासनी वेश्या, महाजन आदि गौण पात्र हैं।

माधवानल

माधवानल कथा का नायक है। नायक का जन्म अति-प्राकृत ढग से हुआ है। भगवान शकर बारह वर्ष की समाधिस्थ अवस्था में उमारमण के लिये चंचल होने पर स्खलित हो गये। शंकर के वीर्य को विष्णु ने कमलिनी की नाल में रख दिया। पुरोहित शकरदास को गगातट पर यह मिलता है अत. उसे वह पुत्र रूप में पालता है और उसका नाम माधवानल रखता है।

माधवानल बुद्धिमान एवं तेजस्वी है। माधव कंदला के विरह में दुखित होता हुआ उज्जेन पहुँचता है और विक्रमादित्य को पर-दु.खभंजन जानकर शिव मन्दिर में

गाथा लिखता है और अपनी बुद्धिमानी से ही अपना दुःख विक्रमादित्य तक पहुँचाता है और दुःख से छुटकारा पाने मे सफल होता है।

माधव रूपवान है। उसका रूप अनजान में उसी के लिये घातक है। नगर की सारी स्त्रिया उसके रूप पर मोहित हैं और अपने पतियों की ओर भी ध्यान नही देती।[1]

उसका रूप सौन्दर्य ही उस पर स्त्रियों को दुश्चरित्रा बनाने का आरोप लगवाता है। राजा की रानियां भी माधव के रूप को देखकर अपने आपको सम्भाल नही सकी। स्त्रियों की दशा देखकर राजा ने उसे देश निकाले की आज्ञा दे दी। माधव बत्तीस गुणों से युक्त कलाओं में निपुण इन्द्र कुमार के समान सुन्दर है।[2]

माधव कला पारखी भी है। कामसेन के यहां होने वाले तन्त्रीनाद एव मृदग की धुन को सुनकर वह बता देता है कि परवावज बजाने वाले के अगूठा नही होने से स्वर भग हो रहा है. राजा उसे कला पारखी जानकर बहुत सम्मान करता है। कंदला के नृत्य करते समय भ्रमर का कुच पर दशन और कन्दला का उसे पवन स्रोत से उडाना, इस कला को केवल माधव ही जान पाया और वह नर्तकी की कला से प्रसन्न होकर उस पर वस्त्राभूषण आदि न्यौछावर कर देता है—

राज पसाउ पहिलु लीयु, ते माधव वेस्यानइ दीयउ
वेस्या बोलइ, पुरुष प्रधान चऊद्दह विद्यातणु विधान ।। 219 ।।

माधव साहित्यानुरागी है। अपने वियोग दुःख से छुटकारा पाने की अभिलाषा हेतु शिव मन्दिर मे मार्मिक गाथाये लिखता है। जिन्हे पढकर विक्रमादित्य दुखी हो जाता है और उसे सकट से मुक्त कराता है। कामावती मे जब माधव कन्दला के घर पर रहता है तब कन्दला अवशेष सुदीर्घ रात्रि को देखकर गाहा, गीत और कहानियाँ छेडने के लिये कहती है।[3] शेष रात्रि मे माधव और कदला के मध्य प्रश्नोत्तर का आदान-प्रदान होता है। यह सब माधव के साहित्यानुरागी होने का द्योतक है।[4]

माधव मे प्रेम जन्य निष्ठा है। प्रेम का सबल पाकर वह विघ्न बाधाओं से जूझता रहता है। पुष्पावती नगरी से निकाल दिये जाने पर वह कदला के वियोग से दुःखी हुआ कामावती पहुचता है। कामावती से भी उसे देश निकाला दिये जाने पर वह उज्जेन पहुँच कर विक्रमादित्य की सहायता से कदला को प्राप्त

---

1. दोहा सख्या 131 : माधवानल कामकदला प्रबन्ध; गायकवाड़ ओरियन्टल सीरिज, बड़ौदा—पृ. 392
2. दोहा संख्या 2 वही पृ. 381
3. दोहा संख्या 260 वही पृ. 404
4. दोहा संख्या 265 से 339, वही पृ. 405 से 413

करने में सफल होता है। विक्रमादित्य उनके प्रेम की परीक्षा करके यही कहता है—

कामकंदला कामिणी, माधव विप्र सुजाण
साचू नेह स्यूं जाणिइ, जे इम छंडइ प्राण ? ।। 590 ।।

कदला के मरण की बात सुनकर माधव के प्राण निकल जाते है।[1] यह माधव के सच्चे प्रेम का प्रतीक है। माधव के प्रेम मे पर्याप्त गभीरता, एकनिष्ठता, गहराई, सच्चाई और उत्सर्ग की भावना है। विक्रमादित्य उसे गणिका प्रेम को छोड़कर सुन्दर से सुन्दर स्त्री से विवाह करने के लिये प्रेरित करता है।

"रे मूरिख ! केणि कारणि, लुबधउ वेस्या जीव ?
मनवाछित वनिता दीउ रहि तू इहां सदैव" ।। 502 ।।

तब माधव राजा से कहता है—

माधव कहइ, सुणउ राजान, नारी सगली नही समान
त्रिण्णि भवन मइ जोया सही, कामकदला उपमा नही ।। 518 ।।

माधव के इस कथन से उसके प्रेम की एक निष्ठता स्पष्ट होती है। वह पथिक के हाथ कदला को पत्र भेजता है उसमे अपनी सारी व्यथा ही उडेल देता है। दूर रहने से यह मत जानो कि प्रीति ही खत्म हो गई। नयनो का विछोह हो जाने पर भी मन तो तुम्हारे ही पास है।[2] मनुष्य का सच्चा नेह मछली जैसा है जो पानी से अलग करते ही प्राण त्याग देती है।[3] दिन मे तो तुम मन से भुलाई नही जाती हो और रात्रि मे स्वप्न मे आकर लुभाती हो।[4] बीच मे घने जगल और पर्वत है और प्रियतम दूर है यदि विधाता पख दे दे तो प्रतिदिन प्रिय से मिल आऊ।[5] मेरे हृदय मे विरह की आग जल रही है परन्तु धुआ प्रकट नही होता और विरह मे मै उसी तरह पीला हो रहा हूं जैसे बेल से अलग किये हुये पत्ते दिन-प्रतिदिन पीले पड़ते रहते है।[6] प्रेमी हृदय की कैसी अनूठी याचना है।

माधवानल के प्रेम मे अनन्यता है और लक्ष्य प्राप्ति के लिये अपूर्व लगन। वह क्रिया-निष्ठ नायक है। मार्ग के अनेक सकटो और आपत्तियो से जूझता हुआ अंततः वह सघर्षों के पश्चात् अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है। वह प्रेम की अग्नि परीक्षा मे कचन सा खरा उतरता है।

इस प्रकार इस कथा काव्य का नायक माधवानल इन्द्रकुमार के समान सुन्दर व्यक्तित्व वाले आदर्श प्रेमी के रूप मे कथा में आया है। वह उच्चकुलीन एव उत्कृष्ठ

---

1. दोहा सख्या 585 वही पृ. 435
2. दोहा संख्या 394 वही पृ. 418
3. दोहा सख्या 401 वही पृ. 418
4. दोहा सख्या 406 वही पृ. 419
5. दोहा संख्या 415 वही पृ. 420
6. दोहा संख्या 419 वही पृ. 420

गुणों से युक्त एक आदर्श पति, सच्चा गुण-ग्राहक, कलाप्रिय, विद्वान और धीर-ललित नायक है।

कामकंदला

कामकदला इस आख्यान काव्य की नायिका है। यह नायक का फल है जिसकी प्राप्ति के लिये नायक समस्त प्रयत्न करता है और अपने प्रयासों मे सफल होकर उस फल को पाने का अधिकारी होता है। कथा में कंदला को माध्यम बनाकर ही घटनाएँ चलती हैं। सभी घटनाये कामकदला के इर्द-गिर्द चलती हुई स्पष्टतः प्रतीत होती है। कामकदला का पूर्व नाम जयती है। जयन्ती इन्द्र के दरबार की नर्तकी अप्सरा है—

एक तिहा–माँहि अभिराम, अपछर तणउ जयंती नाम
चपकवर्ण सुकोमल गात्र, प्रेम संपूरित नाचइं पात्र ।। 14 ।।

जयती को अपने रूप और कला पर बड़ा अभिमान हो गया था इसी कारण उसे इन्द्र के शाप का भागी बनना पडा। जयती शिला-रूप मे पुष्पावती नगरी मे अवतरित होती है। उसकी मुक्ति तभी सम्भव होती है जब माधव खेल ही खेल मे उस पाषाण प्रतिमा से विवाह रचा लेता है। शाप मुक्त होने पर जयती का वास्तविक रूप हमारे सामने आता है। माधव से उसका विवाह हुआ है अत. वह स्वकीया नायिका है। वह चपकवर्णी सुकोमल शरीर की स्वामिनी है। उसके नेत्र प्रेम से प्लावित है। वह इन्द्र की सब अप्सराओ मे सुन्दर है और कुशल नर्तकी है।[1]

कदला के आचरण मे हिन्दू नारी की सती भावना का चरम उत्कर्ष है। शाप मुक्त होने के पश्चात् जब वह स्वर्गलोक पहुँचती है तो उसे माधव का ध्यान बार-बार आता है। माधव की वह विवाहिता पत्नी है। अत एक रात वह माधव के पास आती है और अपनी व्यथा प्रकट करती है। इसी तरह हर रात वह माधव से मिलने आती है। इन्द्र को जब यह ज्ञात हो जाता है तो कदला पुनः शाप के भय से माधव के पास नही जाती और माधव ही इन्द्र लोक मे आने लगता है। कामकदला उसे भ्रमर रूप में कायापरिवर्तन करके अपनी कचुकी मे छिपा कर इन्द्र के दरबार में ले जाती है। कचुकी स्थित भ्रमर-रूप माधव को देख इन्द्र क्रोधित हो उठता है और जयती को वेश्या के रूप मे जन्म लेने का शाप दे देता है। इसी शाप के कारण जयती कंदला वेश्या के रूप मे कामावती नगरी में जन्म लेती है।[2]

कंदला रूपवान, तेजस्वी तथा चौसठ कलाओ में निपुण नारी है।[3] रूप

---

1. दोहा सख्या-14 : माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, गायकवाड आरियन्टल सीरिज पृ० 382
2. दोहा स ख्या 115 वही पृ० 391
3. (क) दोहा स ख्या 118 वही पृ. 391
   (ख) दोहा संख्या 166 वही पृ० 396

और यौवन में रंभा से समता करने वाली कंदला आभूषणों में अनुरक्ति रखने वाली शृंगार प्रिय नायिका है। कामी भ्रमर, वणिक पुत्र एवं राजा आदि उसके पास घूमते रहते हैं पर कदला इन सबसे सर्वथा अनासक्त रहती है। उसे कुछ अच्छा नही लगता।[1]

शाप मुक्त होने के बाद उसे माधव का विरह सताने लगता है। अपने प्रियतम के प्रति उसकी भक्ति का उत्कृष्टतम चित्र इस स्थल पर और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। माधव उसे कामावती नगरी मे छोड़ उज्जेन पहुँचता है। उज्जेन से माधव का प्रेम-पत्र पाकर कामकदला का हृदय खिल उठता है। कवि द्वारा प्रस्तुत कदला की अवस्था का यह सामान्य भाव चित्र देखने योग्य है।[2] पत्रोत्तर देते समय तो विरहणी के हृदय की सच्ची व्यथा ही उमड़ पडी है। पति के बाहर रहने से उसने रो रो कर नेत्र गवा दिये हैं और आसुओ से भी वस्त्र निचोड़ते-निचोडते हथेलियों मे भी छाले पड़ गये है।[3] ऐसी विरहावस्था मे वस्त्र यदि निचोड़ने लायक बन जाये तो कथन मे ऊहात्मकता आ सकती है पर व्यजना की एकरूपता से इकार नही किया जा सकता है। उसकी यौवन रूपी कलियाँ विकसित हो गई है अत वह माधव रूपी भ्रमर का आह्वान करती है।[4] पति विहीना कदला उस वेल की तरह कुम्हला गई है जिसे पानी न मिला हो। उसे बनजारे की भट्टी के समान जलने के लिये छोड़ दिया है।[5] कदला अपने यौवन के उपभोग के लिये माधव को निमंत्रण देती है।[6] सेज प्रिय वियोग मे सूली के समान दुखदायी प्रतीत होती है।[7]

कामावती से माधव चलने को होता है तो कदला आगत विरह की व्यथा से मूर्छित हो गिर पड़ती है—

बात सुणी वेश्या धडहडइ मूर्छा आयी धरणी पडइ
छटइ पाणी वीजइ वाइ, खिणइ सचेती सुदरी थाइ ॥ 323 ॥

अपने हृदय को कोसती हुई कहती है कि यह हृदय वज्र का बना है या पाषाण का, जो पति विछोह पर भी टूक टूक नही हुआ।[8] माधव के वियोग मे कदला ने दक्षिणी चीर और सोलह शृंगार छोड़ दिये है।[9] तिलक, काजल, तबोल,

---

1. दोहा सख्या 167 वही पृ० 396
2. दोहा सख्या 42? वही पृ० 420
3. दोहा संख्या 437 वही पृ० 421
4. दोहा सख्या 438 वही पृ० 421
5. दोहा सख्या 440 वही पृ० 422
6. दोहा सख्या 450 वही पृ० 422
7. मुखि नीसासा मेहलीइ, नयणे नीर प्रवाह
   सूली सरिखी सेजड़ी, तुझ विण जाणीइ नाह ॥ 451 ॥
8. दोहा संख्या 357 वही पृ० 414
9. दोहा संख्या 365 वही पृ० 415

मज्जन व सरस आहार का भी त्याग कर दिया है।[1] वह विरहिणी विधवा वेस में रहने लगी है और उसकी देह भी दुर्बल हो गई है।[2] विरह जन्य दुख का कवि ने सच्चा चित्रण कंदला के रूप में किया है।

कामकंदला एक वेश्या है, फिर भी वह पतिव्रता नारी है। उसमे भारतीय नारी के आदर्श की गरिमा है। वह पर-पुरुष को अपनाने के पक्ष मे नही है। माता के बार-बार समझाने पर भी वह यही कहती है—

माता ! म करि घणउ वेसास, आण्यउ पुरुष मज्झ आवास
अंगथिकी राखिसि वेगलां, गीत नाद देखाडिसुकला ।। 369 ।।

माता के बहुत आग्रह पर भी वह अपना शील खंडित नहीं होने देती है।[3] कदला एकनिष्ठ पत्नी है। उसकी सारी कामनाएँ और आशायें माधव मे ही निहित हैं। कदला कामावती मे माधव के सहवास के समय अपने सरल निष्कपट और शीतल व्यवहार से माधव का हृदय जीत लेती है। कामकदला यद्यपि एक गणिका है किन्तु उसमे जो चारित्रिक उच्चता मिलती है, उससे वह सीता सावित्री के पवित्र चरित्रो के समक्ष जा बैठती है।

भारतीय समाज मे पति से विलग नारी का अपना कोई महत्व नही होता। कदला भी अपने पति को प्राप्त करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रही और अन्तत: उसने अपना लक्ष्य पा ही लिया। कामसेन जब माधव को निष्कासन की आज्ञा देता है तो भी वह अपना धैर्य नही छोड़ती। माधव को अपने घर ले जाती है और सुख भोगती है—

जिमि मधुकर नइ कमलिणी गगा सागर वेलि
तेणी विधि माधव रमइ काम कुतूहल केलि ।। 252 ।।

कामकंदला कला निपुण होने के साथ-साथ साहित्य मे भी अनुराग रखती है। माधव के साथ सयोग के समय उसकी इसी चारित्रिक विशेषता से परिचय होता है .

कामकदला इम कहइ, अजी अछइ बहु राति
गाहा गूढा गीयरस कहइ को नवली बात ।। 260 ।।

और माधव प्रश्न पूछता है कन्दला उत्तर देती है। इन प्रश्नोत्तरों में कन्दला का साहित्यानुराग झलकता है। माधव को प्रेषित पत्र मे भी वह अपने विरह हृदय की अन्तर व्यथा को उडेलती है, जिसे विरहीजन ही समझ सकते है। इन भावो में कंदला के चरित्र की शुचिता परम उत्कर्ष पर पहुँची है। इस वियोग दशा की व्यंजना द्वारा माधव के प्रति गूढ गम्भीर प्रेम की व्यंजना हुई है।

---

1. दोहा स ख्या 366 वही पृ० 415
2. दोहा संख्या 367 वही पृ० 415
3. दोहा संख्या 370 वही पृ० 416

इस प्रकार कामकंदला के हृदय की विशालता, पवित्रता और संवेदनशीलता का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है। जिसमें कर्तव्यनिष्ठा की भावना का समावेश है। वह माधव की एक-निष्ठा पुजारिन है। उसका चरित्र आदर्श भारतीय नारी के उज्जवल चरित्र का द्योतक है। प्रबल प्रेम के आवेग में ही वह इन्द्र से दो बार शापित होती है।

कामसेन

कामसेन कामावती नगरी का शासक है। कामकदला कामसेन के यहाँ नर्तकी है।कामसेन कला प्रेमी है। राज दरबार मे नर्तकियो को रखना और उनका सम्मान करना वह खूब जानता है। इन्द्र महोत्सव पर कामसेन नाटक करने का आदेश देते हैं। राजा अपने प्रधान पुरोहितों एव मत्रियो के साथ राज सभा में नाटक देखने के लिये बैठा है।[1] माधव द्वारा ताल भंग होने का कारण बताने पर राजा उसे कला-पारखी जानकर उसे सभा मे ही बुलता है और अपना मुकुट छोडकर अन्य सब आभूषण माधव को दे देता है-

मुगट टालि बीजउ सिणगार, दीधउ माधवनइ तिणिवार
चतुराइ–विद्या परिमाणि, देसि-विदेसि हुउ बहुमाण ।। 187 ।।

कामसेन अभिमानी भी है। वेश्या से माधव की प्रशसा सुनकर राजा क्रोधित हो जाता है। माधव राजा के दिये हुये वस्त्राभूषण कंदला को देता है तो इसे वह अपना अपमान समझ कर उसे मूर्ख और घमडी बताता है। वह कुपित होकर तलवार उठा उसका वध करना चाहता है लेकिन लोग ब्राह्मण हत्या का बोध कराकर उसे रोकते है—

अवध्या ब्राह्मणा गाव:, स्त्रियो बालास्तपस्विन: ।
तेषा चान्नं न भु जीत ये चान्ये शरण गता· ।। 223 ।।

क्रोध के कारण राजा इतना विवश हो जाता है कि वह माधव को देश छोड़ने को कहता है।[2]

कामसेन दूसरो का आदर करना भी जानता है। विक्रमादित्य जब कामसेन से कामकंदला को माधव के लिये मागते है तो कामसेन राजा विक्रमादित्य को अपने घर बुलाते है, नगर मे उत्सव मनाया जाता है और कामकदला को बुलाकर कामसेन उसे माधव को दे देते है—

नगरी माहि महोच्छव कीयउ, राजा विक्रम घरि तेडीयउ
कामकंदला तेडी करी, माधव नइ दीधी सुन्दरी ।। 616 ।।

---

1. दोहा संख्या 176, 177 वही पृ॰ 397
2. चढी रीस बोलीउ नरेस, माधव । छडउ अम्हारू देस ।। 224 ।। पृ. 401

विक्रमादित्य

राजा विक्रमादित्य हमारे सामने दुःख भजक और प्रेमी-प्रेमिका के मिलन मे सहायक के रूप में कथा काव्य मे आते हैं। ये उज्जेन के शासक हैं।

माधव जब अपनी प्रेमिका गणिका कामकंदला को प्राप्त करने में असफल रहता है और उसके वियोग में दु:खी होकर उज्जेन में महाकाल के मन्दिर मे अपनी प्रेम-पीड़ा को व्यक्त करने वाला दोहा लिखता है तब राजा विक्रमादित्य को उस विरही का पता लगता है और वह दोनों प्रेमी-प्रेमिका को मिलाने के लिये तत्पर हो जाते है।

विक्रमादित्य दूरदर्शी भी है। अतः पहले उनके सच्चे प्रेम की परीक्षा लेने के लिये उनको एक दूसरे की मृत्यु के झूठे समाचार सुनाता है, जिसे सुनकर दोनों प्रेमियों का प्राणात हो जाता है। राजा को अपने इस कृत्य पर बड़ी ग्लानी होती है और वह स्वय आत्म-हत्या के लिये तत्पर हो जाता है। किन्तु उसी समय उसका चिर सहचर वेताल आकर उसे ऐसा करने से रोकता है और कारण पूछता है। कारण जानकर वह पाताल से अमृत लाकर राजा को देता है—

पातालइ पहुतउ वेताल आण्यउ अमृत रस असराल
लेई माधवनइ मुखि, दीयउ, तिसइ विप्र माधव जीधीयउ ।। 598 ।।

राजा इसी तरह कदला को भी जीवित करता है। माधव और कंदला की परीक्षा लेने के बाद ही राजा विक्रमादित्य कामसेन से मिलकर कामकंदला को माधव को दिलवाते है। इस प्रकार राजा विक्रमादित्य का चरित्र पर दुःख कातर, क्षत्रियोचित गुणों वाले वीर राजा के रूप मे चित्रित किया गया है।

गोण पात्रो मे राजा गोपीचन्द, पुरोहित शकरदास, गोग विलासिनि वेश्या, महाजन पथी आदि है—

राजा गोपीचन्द पुष्पावनी नगरी के शासक के रूप मे हमारे सामने आते है। राजा का पुरोहित शकरदास भी इसी प्रकार का पात्र है। जो माधव का पिता है। दैवयोग से पुत्र प्राप्त होने पर वह पुत्रोत्सव मनाता है। महाजन लोग माधव पर आरोप लगाते है कि वह स्त्रियो को आचरणहीन बनाता है। इससे कथा में एक नया मोड आता है। राजा महाजनो के कहने से माधव की परीक्षा लेता है और रानियो की दशा देख कर वह क्रोधित होता है।[1] कवि अति प्रत्येक चीज को बुरी बताता है—

अति रूपइ सीता अपहरी, अति दानइ बलि बध्यउ हरि
अति गर्वइ रावण गंजिउ अति सर्वत्र सदा वरजीउ ।। 152 ।।

1. दोहा संख्या 150-151 वही पृ. 394

विरही माधव का सन्देश कवि कंदला के पास पहुँचाना चाहता है। उसने इस कार्य के लिए एक पथिक को सन्देशवाहक का रूप दिया है। माधव को पंथी रूप मे एक पुरुष मिलता है —

एक पुरुष तिणि अवसरि, दठिउ पथी रूप
माधव पूछइ "कवण तू ? कहइ ताहरउ स्वरूप" ॥ 386 ॥

और यही पथी कामावती की यात्रा करता है और माधव का सन्देश कामकंदला तक पहुँचाता है। वहाँ से लौटते समय यही पथिक कदला का प्रेषित विरह सन्देश माधव को देता है। विरही माधव को ढूंढने का कार्य गोग विलासनी वेश्या करती है।[1] राजा विक्रमादित्य उसे एक लाख दीनार पुरस्कार स्वरूप देकर सम्मानित करते है।[2]

अदिव्य पात्र

अलौकिक पात्रो में अदिव्य पात्र के रूप मे वेताल कथा को सुखात बनाने का कार्य करता है। वेताल राजा विक्रमादित्य का सहायक है। वह 'विक्रम चक्र की कथाओ' मे अपने मित्र राजा को सहायता करने के लिए प्रसिद्ध चरित्र रहा है। अन्य काव्यों मे वेताल शव मे प्रविष्ट होकर अपना कौशल दिखाता है। 'सदयवत्स वीर प्रबन्ध' मे वेताल शव मे प्रविष्ट होकर सदयवत्स को जुआ खेलने के लिए आमन्त्रित करता है।[3] 'मलय सुन्दरी कथा' मे भी वर्णन है कि वह शव में प्रविष्ट होकर महाबल के साहस की परीक्षा लेना है। मृत चोर के शव मे प्रविष्ट होकर वेताल रानी वीरमती की नाक खा जाता है।[1]

माधवानल कामकंदला चौपई मे वेताल का नवीन रूप हमारे सामने आया है। वह विक्रमादित्य को आत्म-हत्या करने से रोकता है तथा कारण जानकर वह पाताल मे अमृत लाकर नायक-नायिका को पुनर्जीवित करके कथा को सुखान्त बनाने मे सहयोग देता है। उसी के बाद कथा फल प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है।

इस प्रकार 'माधवानल कामकदला चौपई' के सभी पात्रो, चाहे वे प्रमुख हो अथवा गौण, सभी का चरित्र उज्जवल है। वे किसी न किसी रूप मे कथा को अग्रसर करने मे सहायक हुये है।

तेजसार रास के पात्र

तेजसार

तेजसार कथा का नायक है। माता का नाम पद्मावती एव पिता का नाम वीरसेन है। तेजसार का जन्म स्वप्न विशेषज्ञो द्वारा पहले ही बता दिया जाता है।

1. दोहा संख्या 499 वही पृ. 427
2. दोहा सख्या 501 वही पृ 427
3. सदयवत्स वीर प्रबन्ध पृ सख्या 96
4. मलय सुन्दरी कथा ह. लि. प्र. श्री जैन श्वेताम्बर मन्दिर, अजमेर।

माता द्वारा स्वप्न में घृत से परिपूर्ण प्रज्वलित दीपक देखने से तेजसार का जन्म हुआ था। अतः उसका नाम दीपक के तेज के समान तेजस्वी होने के कारण तेजसार रखा।

तेजसार कष्ट सहिष्णु एक साहसी नायक है। वह स्वयं कष्ट झेलना पसन्द करता है, पर और किसी को कष्ट देना उचित नहीं समझता। सात वर्ष की अबोध आयु मे ही माता का देहान्त हो जाने पर सौतेली माता एवं भाई विक्रमसिंह के कुचक्र और राजा के कोप का भाजन होकर एक रात तेजसार घर से निकल पड़ता है। वह लक्ष्यहीन हो साहस और निडरता से आगे बढता जाता है।

वह एक रूपवान कुमार है। एणामुखी नाम की सुन्दरी उसके रूप को देखकर मोहित हो जाती है।[1] तेजसार इतना रूपवान है कि उसे देखकर एणामुखी के अग काम से परिपूर्ण हो जाते हैं। वह सोचती है कि यदि यह मेरा स्वामी हो जाये तो बहुत ही अच्छा हो।[2]

तेजसार चतुर एव बुद्धिमान भी है। मार्ग मे राक्षस के मिलने पर वह बचने की युक्ति सोच लेता है और बच निकलता है।[3] अपनी चतुराई से ही वह रासभी रूप पडयाणी अर्थात् सीकोत्तरी से स्वय भी बच जाता है एव अन्य विद्यार्थियों को भी बचा लेता है। वह रक्षस द्वारा प्रदत्त विद्या से ही उसका हनन करता है—

तेजसार चीतारे सोइ, राक्षस दीधी विद्या दोइ
मत्र भणी ने बाधी मूठि, प्राण रासभी हणी इक मूठि ॥ 72 ॥

तेजसार क्षत्रिय कुमार है। विजयश्री को योगी से छुडा कर उसकी प्राण रक्षा करने मे उसकी शक्ति शौर्य का परिचय भी हमे मिल जाता है।[4] तेजसार का दयालु एव उदार रूप हमारे सामने उस समय आता है जब वह वन मे रोती हुई नारी के शब्द के पीछे जाता है और उसके रोने का कारण पूछता है एव नगर मे हो रहे युद्ध के बारे मे जानना चाहता है। कारण जानकर वह कुमारी को आत्म-हत्या से बचाने का उपाय सोचता है। तेजसार विद्याबल से सारी सेना को स्तम्भित कर कन्या को बचा लेता है—

कुमरे विद्या मत्र प्रमाणि, थंम्बउकटक रहयउ तिणठामि
तेजसार ऊगारी बाल रिपु सेना भांजि ततकाल ॥ 194 ॥

---

1. दोहा संख्या / 284-85 तेजसार रास चौपई ग्रं. 26546 रा. प्र. वि. प्र. जोधपुर
2. दोहा संख्या 125 वही
3. दोहा संख्या 142 वही
4. दोहा संख्या 190 वही

विजयश्री के अचानक गायब हो जाने पर तेजसार का विरही रूप हमारे सामने आता है। विजयश्री को न पाकर वह सोचता है—

नविलायै चितवै कुमार, किसुंए की धुं करतार
देवनारि रतन मुझ दीउं अण चींतव्यु उदाली लीउ ।। 129 ।।

यही नही जिस तरह दशरथ राम सीता के वियोग मे दुःखी थे उसी तेजसार भी विजयश्री के वियोग मे दु.खी हैं।[1] वह अपने प्राणो को भी दुत्कारता है कि तुम्हारा हस उड क्यो नही गया।[2] आखिर में यही सोचकर धैर्य धारण करता है कि ईश्वर ने जिसको-जिसके लिये बनाया है उसे वही मिलता।[3] इसमे तेजसार का आत्म सन्तोष झलकता है।

तेजसार का बहुपत्नीत्व मे विश्वास है। उसमे रूप लिप्सा है एणामुखी सुन्दरी को देखकर वह कहता है—

पेरवी कुमर विभामै हीयै किय एकली वसै वनइ एह
के ए नागलोक नी नारि कै काई रुडी राजकुमारि ।। 124 ।।

विजयश्री को ढूंढता हुआ वह जाता है और वहाँ उसे विद्याधरी सहित चार राजकुमारियाँ मिलती है। उन पाँचो से वह विवाह कर लेता है।[4] इसी प्रकार वह एणामुखी, पुष्पावती एवं सूरसेन की कन्या से भी विवाह कर लेता है। एणामुखी उसकी आठवी रानी होती है परन्तु प्रिय के लिये सभी समान है—

आवी साते अतेउरी, सासू प्रणमी आणद धरी
नारि आठमी एणामुखी, प्रीय नै मन सबली सारखी ।। 339 ।।

तेजसार एक कुशाल प्रशासक भी है। वह अवतीपुर, चपापुरी, तेजलपुर एवं बनारस का शासक है। चार राज्यो का शासक होना उसके कुशल प्रशासक होने का प्रमाण है। चपापुरी के शासक वज्रकेसरी के कोई पुत्र नही था। अतः पुत्र के अभाव मे वह तेजसार को राज्य दे देता है—

वयरि केसरि राजा भणै नहीं पुत्र सतान अम्ह तणै
हाथ मेलवा लक्ष्मीयणी एह राज दीधउ तुझ भणी ।। 306 ।।

तेजसार को अपने पिता वीरसेन का बनारस का राज्य भी मिल जाता है। वीरसेन अपने पुत्र को बुलवाकर अच्छा दिन देखकर बहुत उत्सव मनाता है और तेजसार को वहाँ का शासक बना देता है।[5] इस प्रकार तेजसार अपने पुण्य के प्रमाण

1. दोहा संख्या 130 वही
2. दोहा संख्या 131 वही
3. दोहा संख्या 132 वही
4. दोहा संख्या 152 वही
5. दोहा संख्या 358 वही

से हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सेना तथा अपार धन सहित चौथा राज्य प्राप्त कर लेता है—

एतलै पाम्यो च्यारे राज, हयगय रथ पायक दल साज
अरथ गरथ अगणित आण, जो वो पुण्यतणो परमाण ।। 359।।

तेजसार अपने वानप्रस्थ आश्रम में तीन पुत्रों को तीन जगह का राज्य सौंप देता है—

जेहनी माता पुष्पावती, तेहनी नगरी चंपावती
एणामुखी माता जस तणी ते कीधु अवंती धणी ।। 369 ।।

विजयश्री नु नंदन जेह, तेजलपुर नृप थार्प्यो तेह
तीन पुत्र थापीया नरेस अणगल राव रिद्धिवर देश ।। 370 ।।

कुशल प्रशासक होने पर भी उसे राज्य से मोह नही है। चौथे आश्रम में आते ही वह मुनि सुव्रत स्वामी से अपना पूर्वभव जानकर और ससार को अस्थिर जानते हुये श्रीमती के पुत्र को राज्य सौप कर वैराग्य ले लेता है और शुद्धमन से ध्यान धरते हुये उत्तम श्रावक कुल मे जन्म लेकर निर्मल ध्यान के प्रमाण से केवल ज्ञान को प्राप्त होता है।

इस प्रकार तेजसार एक शात नायक के रूप मे कथा फलक पर दिखाई देता है।

समरसेन

समरसेन कथा मे खलनायक के रूप मे हमारे सामने आया है। वह अवतीपुर के शासक जयप्रभ का भानजा है। राजा की मृत्यु हो जाने पर वह अवतीपुर का शासक बनता है।

समरसेन लोभी व्यक्ति है। वह राज्य को हडपना चाहता है। उसे भय रहता है कि मामा की होने वाली संतान यदि लड़का होगा, तो उसका राज्य छिन जायेगा। अत वह भविष्य-वेत्ताओं से उदर स्थित बालक के बारे मे जानकर संतोष प्राप्त करता है। वहाँ वे ज्योतिषि यह भी बताते हैं कि कन्या का होने वाला पति ही तेरा दुश्मन होगा और वही राज्य का भोग करेगा।

अपने राज्य को बनाये रखने के लिये वह अपनी गर्भवती मामी को यात्रा के बहाने बाहर भेजकर चांडालों से उसकी हत्या करवा देता है।[1]

परन्तु दुर्भाग्य समरसेन का साथ नहीं छोड़ता। रानी की हत्या कर दी जाती है पर गर्भस्थ बालिका फिर भी जीवित रह जाती है और माता व्यंतरी हो जाती है जो तेजसार से अपनी पुत्री का विवाह कर देती है।[2]

1. दोहा संख्या 273
2. दोहा संख्या 306

समरसेन शक्ति सम्पन्न होने के साथ-साथ कायर व डरपोक भी है । समरसेन को जब ज्ञात होता है कि राजा जय की पुत्री जीवित है और तेजसार के अन्त.पुर में है[1], तो वज्राघात के समान उसे आघात लगता है । वह अपने मंत्री से मिलकर विचार करता है और गुप्त रूप से तेजसार की गतिविधि एवं सैन्य शक्ति आदि का पता लगाने के लिये गुप्तचर भेजता है ।[2] जब उसे ज्ञात होता है कि तेजसार अपने अन्तपुर मे अकेला ही है तो वह अपनी चतुरंगणी सेना सहित शत्रु से बदला लेने चलता है ।[3]

समरसेन क्षमाप्रार्थी के रूप मे भी हमारे सामने आता है । वह तेजसार से पराजित होकर बंदी बना लिया जाता है । व्यतरी रूप भाभी जब अपने वास्तविक रूप में प्रकट होती है तो वह उससे क्षमा माँगता है । तेजसार समरसेन को अवतीपुर से निकाल देता है ।

इस प्रकार समरसेन एक खल-नायक के रूप में हमारे सामने आता है । वह प्रमुख नायक का प्रतिद्वन्द्वी है । हर सम्भव प्रयत्न के उपरान्त भी असफलता ही उसके हाथ लगती है । वह स्वार्थी एवं पापी है । वह अपनी घृष्टता के कारण ही बन्दी बनाया जाता है और पाश्चाताप की अग्नि मे जलता हुआ राज्य पद से वचित कर दिया जाता है ।

सूरसेन

सूरसेन गौड देश का शासक है । वह चपावती की राजकुमारी पद्मावती को प्राप्त करना चाहता है परन्तु पद्मावतो का पिता वज्रकेसरी इसके लिये राजी नही होता है अत' सूरसेन वज्रकेसरी का दुश्मन हो जाता है ।

सूरसेन शक्ति सम्पन्न शासक है । वह असख्य दल साथ लेकर चंपावती को घेर लेता है । नगर के बाहर घमासान युद्ध के उपरान्त सूरसेन नगर मे प्रवेश करता है और गढ़ को घेर लेता है । लगातार सात दिन के घेरे से और सूरसेन की सैन्य शक्ति से वज्रकेसरी भी घबरा जाता है ।[4]

सूरसेन की सेना में गुप्तचर भी हैं । पद्मावती को रात्रि मे गुप्त मार्ग से निकाल दिया जाता है, परन्तु सूरसेन उस बाला को घेर लेता है ।[5]

परन्तु तेजसार के अकथनीय प्रयत्नों द्वारा वह कुमारी (पद्मावती) बचा ली जाती है । तेजसार की अलौकिक शक्ति से सूरसेन प्रभावित हुये बिना नही रहता । सूरसेन तेजसार को जुहार करता है और अपनी पुत्री के साथ विवाह के लिये तेजसार

1. दोहा स ख्या 317
2. दोहा संख्या 322
3. दोहा स'ख्या 325
4. दोहा स'ख्या 182 से 185
5 ते तसै दल आव्यो भूपाल सैन सहित वीटी ते बाल—193

से निवेदन करता है—

सूरसेन बोलें भूपति, सांभली तेजसार वीनती
मुझ पुत्री छे सुरसुंदरी परणों तुम्हें आणंदधरी ।। 200 ।।

गौड़ देश का शासक सूरसेन युद्ध करने के बजाय अपनी पुत्री सुरसुन्दरी का तेजसार से विवाह कर देता है। इसके अतिरिक्त वह तेजसार का उपकार मानता है जिसने उसे तथा सेना को बचा लिया।[1]

प्रमुख नारी पात्र

श्रीमती

श्रीमती तेजसार की पटरानी है। वह सर्वप्रथम हाथ में एक विशेष प्रकार के लोहे से निर्मित तलवार लिये हुये द्वार पर बैठी हुई दिखाई देती है। यह कथा का फल है जिसे नायक प्राप्त करता है। सभी पात्र प्रमुख पात्र के इर्द-गिर्द घूमते है।

श्रीमती आगत यौवना, अतिसुन्दर अप्सरा के समान है।[2] नव-यौवना होने के कारण पुरुष को देखने मात्र से उसका शरीर काम संतप्त हो जाता है।[3]

वह विद्याधर जाति की कन्या है। उसके पिता विजयसिंह भूपाल सुरपुर के शासक है तथा माता जयमाला है। वह अपने माता-पिता की कनिष्ट सतान है।

विद्याधर जाति की कुमारी होने के कारण आकाश मे उड़ने की विद्या से वह भिज्ञ है। स्त्री सुलभ लज्जा को त्याग कर वह तेजसार से कहती है—

जउ पटराणी थापउ मुज्झ, तउ च्यारे परणावुं तुज्झ
कुमर बोल बध तस कीयउ, विद्याधरी नु रज्यउ हीयु ।। 151 ।।

और इस प्रकार वह स्वयं पटरानी बन कर अन्य चार कन्याओ का विवाह भी तेजसार से करा देती है। इससे ज्ञात होता है कि वह सपत्नी द्वेष की भावना से शून्य है। पटरानी बनने के बाद वह सुख भोगती रहती है। एक दिन अचानक उसका भाई विद्याधर आता है और वह पर-पुरुष को अपनी बहिन के साथ देखकर क्रोधित हो उठता है।[4] भाई के पूछे जाने पर वह उस पुरुष का, स्त्री सुलभ लज्जा से विद्याधर के बहनोई के रूप मे परिचय देती है।[5] बड़े भाई के सामने अपने पति का इस रूप मे परिचय प्रदर्शन एक भारतीय कन्या के गौरव के रूप मे प्रतिष्ठापित

1. दोहा संख्या 201
2. ,, ,, 136
3. ,, ,, 137
4. दोहा संख्या 157
5. ,, ,, 158

किया जा सकता है । यह वर्णन हमें, ग्राम वधुओं को सीता द्वारा राम के दिये गये परिचय का स्मरण दिला देता है ।

चारों नारियाँ श्रीमती से विनती करती हैं कि तुम प्रिय की खोज करो । वे उसे सच्ची स्वामिनी मानती हैं ।[1]

श्रीमती विद्याबल से एक आवास का निर्माण करती है तथा उसमें सभी आवश्यक वस्तुयें रखकर वह निश्चित अवधि तक आने के लिये कह कर प्रिय की खोज के लिये चल देती है । श्रीमती एक पतिव्रता नारी के रूप मे हमारे सामने आती है । यदि उनका पति जीवित होगा तो वह इस स्थान पर पुन. आयेगी और यदि स्वामी परलोक पहुँच गया होगा तो स्वय भी आत्म-दाह कर लेगी ।[2] उसकी कैसी सच्ची लगन है अपने प्रिय मे । आकाश मे उड़ने की विद्या के प्रभाव से आकाश मार्ग द्वारा वह अपने प्रिय को ढूढने निकलती है और पुरुष वेश बनाकर चपापुर निवासियों को वहाँ के राजा के विषय मे पूछती है तथा अपना कार्य पूर्ण हुआ जान कर मन मे प्रसन्न होती हुई अन्त:पुर मे जाती है और राजा से कहती है—

जाण्यु ं नवि नारी ए किसी, एणतेड़ी आवी उल्हसी
तिसै श्रीमति हसी नै कहयउ, भलु थयु ं प्रिय राजा थयो ।। 232 ।।

प्रिय से मिलकर सब प्रकार से कुशल मंगल जान कर वह अन्य चारो रानियो को लाने के लिये आकाश मार्ग से उड़कर आती है और उन्हे बधाई देती हुई कहती है कि चलो तुम्हे तुम्हारे प्रिय से मिला दूँ । प्रिय चपापुरी मे राज्य करता है मैं तुम्हे बुलाने ही आई हूँ । यहाँ हमे उसके चरित्र की उच्चता एव महानता दिखाई देती है ।

कवि ने श्रीमती को विमान विद्या की जानकार के रूप मे भी प्रस्तुत किया है । श्रीमती एक सुन्दर विमान की रचना करती है जो इन्द्र के विमान के समान सुन्दर है । उसमे पाँचो रानियाँ बैठकर अपने प्रिय पति तेजसार के पास पहुँचती है ।[3] सातो रानियो के साथ खरी प्रीति है परन्तु तेजसार ने पटरानी विद्याधरी अर्थात् श्रीमती को ही बनाया है ।[4] पटरानी श्रीमती है अत. उसका पुत्र ही उत्तराधिकारी होगा । अत. राजा तेजसार श्रीमती के कुमार को अपना राज्य सौंपता है—

पटराणी श्रीमतीय कुमार
ते थाप्यो निजपाट अपार ।। 400 ।।

1. दोहा स ख्या 223
2. ,, ,, 226
3. ,, ,, 243
4. ,, ,, 244

इस प्रकार श्रीमती (विद्याधरी) तेजसार की पटरानी के रूप में कथाफलक पर अवतरित हुई है। अलौकिक विद्या से सम्पन्न होने पर भी उसमें लेश मात्र का भी गर्व भाव नहीं है। वह नारी के साधारण गुणों से ऊपर है। सपत्नी द्वेष इर्ष्या आदि अवगुणों से उसका दूर का नाता भी नहीं है। दूसरों की भलाई करना ही उसका कर्तव्य है। वह कर्तव्यशीला, पतिपरायणा भारतीय नारी के रूप में चित्रित की गई है।

गौण पात्र

गौण पुरुष पात्रों में तेजसार के पिता वीरसेन जो .वाराणसी के शासक हैं। अपनी दूसरी रानी के पुत्र विक्रमसिंह के कहने से तेजसार से द्वेष करने लगते हैं। बाद में वीरसेन को अपनी भूल का ज्ञान होता है तब वह तेजसार को बुलवाता है और तेजसार अपने मन मे आनन्दित हुआ पिता से मिलने जाता है।[1]

त्रंबावती नगरी में त्रबक-सेन शासक है वहाँ गंगदत्त ओझा है, उसकी पंडिताइन सिकोत्तरी है। वह तेजसार के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती है। योगिनियों द्वारा बलि के आयोजन मे वह सभी विद्यार्थियों की बलि करना चाहती है परन्तु तेजसार की बुद्धिमत्ता से सब बच निकलते है। तेजसार गंगदत्त ओझा के घर रहकर विद्या सीखता है, गुरु की सेवा करता है और अपना पेट भरता है।[2]

दूसरी बाधा काल वर्ण क्रूर राक्षस है। वह तेजसार का भक्षण करना चाहता है परन्तु तेजसार वहाँ से बच निकलता है और राक्षस को जीवन दान देकर प्रतिदान में दो विद्यायें प्राप्त करता है।[3]

चौसठ योगनियाँ बालको का भक्ष्य लेने के लिये 'पिंडयाणी' के पास आती हैं, परन्तु तेजसार अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से राक्षस प्रदत्त विद्या द्वारा उसका वध करता है।[4]

जोगी कन्या को बाध कर अपनी सिद्धि हेतु बलि देना चाहता है।[5] तेजसार द्वारा नारी हत्या के पाप से सचेत कर दिये जाने पर भी जब वह किसी तरह इस दुष्कृत्य से विरत नही होना चाहता तो तेजसार मन्त्र पढ़कर उस पर मुष्ठि प्रहार करता है योगी मूर्च्छित हो जाता है।[6] प्राण बचाने के बदले में योगी तेजसार को दो विद्या देता है।[7]

---

1. दोहा संख्या 347
2. ,, ,, 22
3. ,, ,, 51, 52
4. ,, ,, 73
5. ,, ,, 85
6. ,, ,, 90
7. ,, ,, 94

सुरपुर नगर के शासक विजयसिंह भूपाल है। उनकी रानी जयमाला है। उनकी छोटी पुत्री श्रीमती है। विद्याधर जाति की यह कुमारी है। इसका भाई विद्याधर एक खलनायक और गौण पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। विद्याधर दस विद्याधरी सुन्दरियों का पति है, फिर भी मानवी भोग की इच्छा रखने वाला है।[1] आकाश में उड़ने की विद्या का ज्ञाता होने के कारण वह आकाश मे उड़ता है। तेजसार को अपना बहनोई जानकर उससे द्वेष करता है। वह अपनी बहिन को ही पापिनी बताता है और उसे मारने की सोचता है।[2] विद्याधर तेजसार से तत्र-मंत्र युद्ध भी करता है। रूप परिवर्तन की विद्या से वह कभी हाथी और कभी सर्प बन कर तेजसार से युद्ध करता है।[3] अन्त मे वह शक्ति देवी का स्मरण करके तेजसार से अपना पिंड छुडवाता है। परन्तु विजयश्री उसका सिर काटकर सबकी रक्षा करती है।[4] इस प्रकार पापी का अन्त कराकर कथाकार एक सुन्दर आदर्श प्रस्तुत करता है।

चंपापुरी का राजा वज्रकेसरी है उसकी रानी चंपावती तथा पुत्री पद्मावती है। वज्रकेसरी अपनी कन्या का विवाह किसी से नही करना चाहता। कारण ज्योतिषियो की भविष्यवाणी के अनुसार उससे विवाह करने वाला ही राज्याधिकारी होने वाला है।[5] इसी कारण सभी लोग वज्रकेसरी के दुश्मन हो जाते हैं। सूरसेन तथा उसकी सेना को स्तम्भित कर तेजसार जब पद्मावती की रक्षा करता है तो वज्रकेसरी अपनी कन्या का विवाह तेजसार से कर देता है। सभी दुश्मन शांत हो जाते है।[6]

धात्री पद्मावती की दासी के रूप मे आती है। वज्रकेसरी जब पद्मावती को गुप्त मार्ग से बाहर निकालते हैं तो यह धात्री ही उसकी संरक्षिका होती है। तेजसार को सारा विवरण धात्री ही बताती है।[7]

दक्षिण मे चपानगरी मे कनक केतु शासक है जिसकी पटरानी चपकमाला है। पुत्री विजयश्री है जो पूर्वभव के कारण योगी द्वारा अपहृत की जाती है और तेजसार उसे छुड़ाता है।[8]

दक्षिण मे अवतीपुरी मे राजा जय राज करता है और उसकी रानी तिलकाउरी है। जिनके कोई सतान नही है। राजा सतान के कारण चितित रहते

---

1. दोहा संख्या 145
2. " " 160
3. " " 162, 63
4. " " 223
5. " " 180
6. " " 204
7. " " 179
8. " " 91

हैं और देवी देवताओं की भी पूजा करते हैं। एक योगी द्वारा प्रदत्त फल से रानी गर्भवती होती है, परन्तु रानी के छठे मास मे आने पर राजा की सर्प दंश के कारण मृत्यु हो जाती है। राजा की मृत्यु के बाद समरसेन जो राजा का भानजा है, को राज्य दिया जाता है परन्तु समरसेन दुष्ट है। उसे आशंका है कि रानी के पुत्र होने पर राज्य चला जायेगा।[1]

अत: वह रानी तिलकाउरी को यात्रा के बहाने बाहर भेजकर चार खवासों को उसे मारने के लिये भेजता है। एक खवास मारने को मना करता है परन्तु तीनों खवास राजा के भय से उसे मार देते हैं।[2]

परन्तु जब समरसेन रानी की पुत्री को जीवित होना सुनता है तो वह उन खवासो को बुलाता है जिन्होने रानी की हत्या की थी। तब वे यही कहते हैं कि रानी को तो हमने मारा है परन्तु रानी को जो नवा मास था उसका उपाय हमारे पास नही था।[3]

तेजसार मुनि सुव्रत स्वामी से अपना पूर्वभव पूछता है।[4] पूर्वभव सम्बन्धी कथा मे ही सोमदत्त बाह्मण का उल्लेख भी हुआ है जिसके चार पुत्र हैं चौथा पुत्र गुणहीन है। कपिलपुर के बाह्मण की पुत्री विमला से उस गुणहीन बाह्मण पुत्र का विवाह होता है।[5]

विमला की पड़ौसिन श्राविका है उसकी संगति से विमला भी तेल से दीपक प्रज्वलित कर शुद्ध मन से जिन प्रतिमा का ध्यान चार प्रहर तक करती है।[6] घर के लोग व उसका पति उसे कुलकलंकिता कह कर घर से बाहर निकाल देते हैं।[7] विमला उसी श्राविका के पास जाती है और सयम भार ग्रहण कर चरित्र लेती है। इस तरह बारह वर्ष तक सयम का पालन बारह अंग को सुनना अन्त समय जानकर शुद्ध ध्यान धरते हुये वह चौथे देवलोक इन्द्र मे जाती है और पूर्वभवो के परिणामस्वरूप इस जन्म में तेजसार के रूप मे अवतरित होती है।[8]

---

1. दोहा संख्या 260
2. ,, ,, 273
3. ,, ,, 320
4. ,, ,, 372
5. ,, ,, 377
6. ,, ,, 391
7. ,, ,, 392
8. ,, ,, 396

तेजसार की रानियाँ :

विजयश्री :

विजयश्री की माता चंपकमाल एवं पिता कनककेतु हैं। विजयश्री के सात भाई हैं और बहिन अकेली है।[1]

विजयश्री आगत यौवना है। उसके रूप सौन्दर्य को देखकर तेजसार सोचता है कि या तो यह अप्सरा है या कोई देवकुमारी है।[2] विजयश्री को अपने पूर्व भव का ज्ञान है। इसी कारण वह योगी द्वारा अपहृत किये जाने पर तेजसार को ही सहायतार्थ पुकारती है। तेजसार को पति रूप मे पाने की बात सुनने मात्र से ही वह अपने मन मे निश्चय भी कर लेती है। विजयश्री मे भारतीय नारी की गरिमा है। वह पतिव्रता, पतिपरायण नारी है। पति को ही जीवन देने वाला आधार मानती है। यदि तू अपनी नारी की रक्षा नहीं करेगा तो यह जोगी अवश्य ही इसे मार डालेगा।[3] कैसी व्यथा, कैसी पीड़ा है, विजयश्री के इस कथन मे। विद्याधर जब उससे विवाह करना चाहता है तो वह अन्य सब पुरुषों को भाई के समान एवं तेजसार को ही पति रूप मे बताती है।[4] योगी से छुडाकर तेजसार उसके बारे में पूछता है तो बड़े ही सहज भाव से अपने बारे मे बतला देती है, परन्तु तेजसार के बारे में पूछना भी नही भूलती।

यह विरतान्त कह्यउ माहरउ, तू हिव नाम प्रगट कर ताहरउ ।।110।।

विजयश्री जलक्रीड़ा के लिए अधीर है। तेजसार उसे निर्मल एवं शीतल जल पिलाता है जिससे उसकी आत्मा एवं शरीर सुतुष्ट होता है। वह तेजसार से कहती है—

नारी कहै सरोवर जिहाँ जलक्रीड़ा जइ कीजै तिहाँ।
सरोवर क्रीड़ा करी अघोल, तिहाँ पेखै केलिहर ओलि ।।119।।

तेजसार से बिछुड जाने पर वह विरह दग्ध हो उठती है। वह रो रही है और निश्वासे भर रही है और तीन कुमारी उसके पास बैठी हैं।[5] अपने प्रिय को देखकर उसका हृदय (आधार) धैर्य धारण करता है।[6]

विद्याधर तेजसार को ले जाकर दूर कही डाल आता है। विजयश्री को अपने पति का बदला लेना है, वह अवसर देखकर

---

1. दोहा संख्या 98-99
2. दोहा संख्या 80
3. दोहा संख्या 83
4. दोहा संख्या 115, 118
5. दोहा संख्या 141
6. दोहा संख्या 112

विद्याधर का सिर तलवार से काट देती है ।[1] विजयश्री राजकुमारी होने के कारण क्षत्राणी भी है । विजयश्री के पुत्र को तेजलपुर का राज्य मिलता है ।[2]

पद्मावती

पद्मावती चम्पापुर के राजा वज्रकेसरी की पुत्री है । पद्मावती की माता चम्पावती है ।[3] पद्मावती के जन्म के समय जन्मपत्री बनाने वाले ज्योतिषी बताते हैं कि पद्मावती का होने वाला पति चार राज्यो का अधिकारी होगा ।[4]

जैसे-जैसे पद्मावती वय को प्राप्त होती गई यह बात सब देशों मे फैल गई और बडे-बडे राजा नगरपति की कन्या को माँगने के लिए आने लगे । परन्तु पिता भविष्यवाणी के भय से किसी के साथ कन्या का विवाह करने को राजी न हुआ । इसी कारण सभी लोग उसके दुश्मन हो गये । पद्मावती को प्राप्त करने के लिये घोर सग्राम होता है ।

पद्मावती दु खी है कि उसके कारण इतना अनिष्ट हो रहा है । वह भयभीत होकर एक स्थान पर छिप जाती है और आत्म-हत्या करने का विचार करती है ।[5] इसी बीच तेजसार आकर उसकी रक्षा करने का वचन देता है ।[6] तेजसार पद्मावती को देखता है, जो कि अत्यन्त सुन्दर एव रूपवान है ।[7] पद्मावती के पिता तेजसार से ही पद्मावती का विवाह कर देता है—

चपाराय वयर केसरी पुप्फावती तास कुंवरी ।
ते पिण परणी अतेउरी घणै महोच्छव आदर करी ।। 205 ।।

पद्मावती का पुत्र ही चम्पापुर का राज्याधिकारी बनाया जाता है ।[8]

एणामुखी

एणामुखी के पिता जय नृप अवतीपुरी के शासक हैं । माता का नाम तिलकाउरी है । एणामुखी का जन्म योगी द्वारा दिये गये फल से होता है ।[9] एणामुखी के जन्म से पूर्व ही पिता का देहात सर्प के खा जाने से हो गया था । अतः अवतीपुर पर जयनृप का भानजा समरसेन शासक बना । समरसेन अविचल राज्य के कारण

1. दोहा संख्या 221
2. दोहा संख्या 369
3. दोहा संख्या 179
4. दोहा संख्या 180
5. दोहा संख्या 190
6. दोहा संख्या 191
7. दोहा संख्या 192
8. दोहा संख्या 369
9. दोहा संख्या 255

रानी तिलकाउरी की हत्या करवा देता है।[1] परन्तु रानी के गर्भ को नवाँ मास था। अत. पुत्री साड़ी से ढकी पड़ी रहती है और इस तरह उसकी जान की रक्षा होती है। तिलकाउरी मरकर व्यंतरी हो गई वह कन्या को उठा ले जाती है।[2]

माता को पुत्री से स्नेह होना स्वाभाविक ही है। कन्या मृगों के साथ रात-दिन रहती थी, इसीलिए उसको एणामुखी नाम दिया जाता है।

एणामुखी आगत यौवना एव अति सुन्दर है। जैसे-जैसे एणामुखी का यौवन काल बढ़ता है माता को उसके विवाह की चिन्ता लगती है, परन्तु एणामुखी किसी से भी विवाह करने को तैयार नही है।[3]

तेजसार को अटवी मे भ्रमण करते देख एणामुखी उसी पर आशक्त हो जाती है और घर आकर रोती है। माता के बहुत पूछने पर वह अपने मन की बात बताती है—

आज गई थी अटवी मझार, इक मै पेख्यउ राजकुमार।
ते मुझने परणावो मात, नही तर करिसु आतमघात ।। 284 ।।

एणामुखी मे एक ओर जहाँ नारी सुलभ लज्जा एव संकोच है तो दूसरी ओर दृढ निश्चय एव सकल्प भी। विवाह करेगी तो तेजसार से ही अन्यथा आत्म-हत्या कर लेगी। माता पुत्री की इच्छा जानकर उसे पूर्ण करने के लिए तेजासार का पता लगा कर उसका विवाह कर देती है।

इण पर कीधा घणा मडाण
पाच दीह उच्छव परिमाण
एणामुखी राज कुंवरी
परणी तेजसार सुन्दरी ।। 306 ।।

विवाह से पूर्व तेजसार उसे मृगो के साथ भ्रमण करते देखकर उसकी ओर आकर्षित होकर एणामुखी से उसके बारे मे पूछता है। परन्तु एणामुखी लज्जित हुई सकोचवश चली जाती है। इससे स्पष्ट है कि वह लज्जावती तो है ही साथ ही उसे अपनी मान मर्यादा का भी ध्यान है। एकान्त मे पर पुरुष से बात करना शायद वह नही चाहती हो और इसीलिए घर आकर ही माता से सब कुछ बता देती है।

एणामुखी के लिए उसकी माता तेजलपुर नामक नये नगर का निर्माण करती है। तेजसार एणामुखी के पुत्र को ही तेजलपुर का शासक बनाता है।

सुरसुन्दरी

सुरसुन्दरी गौड़ देश के शासक सूरसेन की पुत्री है। सूरसेन स्वय अपने विवाह के लिए चम्पापुर आता है। वहाँ तेजसार से संग्राम में पराजित हो जाने पर तथा

1. दोहा संख्या 273
2. दोहा संख्या 276
3. दोहा संख्या 280

तेजसार को अपना जीवन-दाता जानकर उससे विनती करता है कि वह उसकी पुत्री सुरसुन्दरी से विवाह कर ले ।

सूरसेन बोले भूपती सांभली तेजसार बीनती
मुझ पुत्री छै सुरसुन्दरी, परणो तुमे आनन्द धरी ।। 200 ।।

सुरसुन्दरी भी तेजसार की रानी होती है ।[1]

अन्य पात्र

अन्य पात्रों मे पशु-पक्षियों के रूप मे हमें राजहम, सारस, चकवा एवं हिरण का नामोल्लेख मात्र मिलता है । तेजसार पानी की तलाश मे जाता है उसे बहुत से पक्षियों का कोलाहल सुनाई देता है, जिससे वह सरोवर होने का अनुमान लगाता है ।[2] इसके अतिरिक्त वहाँ राजहस, सारस, चकवा तथा अनेक नये-नये पक्षी दिखाई देते हैं ।[3]

अटवी में भ्रमण करते हुए हिरणों के एक झुण्ड को देखता है वे हरिण कूद रहे है और उत्साहित हो रहे हैं ।[4]

अलौकिक दिव्य पात्र

दिव्य पात्रो मे सुव्रत स्वामी हमारे सामने, ज्योतिषी एवं स्वप्नवेत्ता के रूप मे सामने आते हैं । तेजसार के जन्म से पूर्व ही सुपन पाठक दीपक के समान तेजस्वी पुत्र होने की बात कहते है ।[5] इसी तरह तिलकाउरी के गर्भ के बारे मे भी स्वप्न फल बताने वाले कहते हैं कि—

पुत्र नही छै उदर सुन्दरी, जणिस्ये पुत्रीते सुन्दरी
ते कुमरी परणे स्ये जेह ताहरू वयरी नही य सदेह ।। 264 ।।

पद्मावती के जन्म के समय ज्योतिषी बताते हैं कि जो इस राजकुमारी से विवाह करेगा वह चार राज्यों का अधिकारी होगा ।[6]

कुछ इसी तरह की भविष्यवाणी विजयश्री के लिए की जाती है :

ते वलता ते जपै केवली, साभली राजा कारणवली
बारै जोयण अटवी कतार, लहिस्यै योगी मंत्र आधार ।। 103 ।।

ते मारेस्यै विद्या ने कामि, तेजसार आवेस्यै तिण ठामि
झूझ करी ते छोड़ावस्यै, ते भरतार एहनौ थाइस्यै ।। 104 ।।

1. दोहा सं॰ 203
2. दोहा सं॰ 115
3. दोहा सं॰ 117
4. दोहा सं॰ 122
5. दोहा सं॰ 9
6. दोहा सं॰ 180

सुव्रतस्वामी वीरसेन को प्रतिबोध कराके चरित्र देते हैं और तेजसार श्रावक बनता है।[1] तेजसार को पूर्वभव का ज्ञान सुव्रत स्वामी ही कराते हैं।[2] श्री मुनि सुव्रत स्वामी से ही तेजसार संयम लेकर शुद्ध ध्यान धारण करते हुए उत्तम श्रावक कुल में जन्म लेकर केवल ज्ञान को प्राप्त होते हैं।[3]

अदिव्य पात्रों मे सिकोत्तरी व पडिताइन अनिष्ट कार्यों की सम्पन्नता के लिए ही कथा मे आयी है। यह योगिनियो की तृप्ति के लिये बालको की बलि का आयोजन करती है।[4] दूसरा अदिव्य पात्र है राक्षस जो तेजसार का ही भक्षण करना चाहता है पर अपनी मदमति के कारण वह सफल नही होता। वह अपनी निर्बलता और तेजदिष्ट तेजसार को बता देता है और तेजसार उसका लाभ उठाकर उसके चगुल से बच निकलता है।[5]

विद्याधर भी तेजसार के मार्ग में बाधक बनकर ही आया है। परन्तु विजयश्री उसे रास्ते से हटा देती है।[6] विद्याधर एक कामी जीव है और मंत्र विद्या का ज्ञाता। वह अपनी विद्या का प्रयोग तेजसार पर करता है।

व्यतरी के रूप मे तेजसार की माता तथा सास श्रीदत्ता हमारे सामने आती है।[7] गरढ़ी नारी तेजसार की माता ही है जो अपने पुत्र से मिलने के लिये आकाश से उत्तरी है।[8] ये दोनों व्यतरियाँ ही कथा नायक व नायिका की सहायिका रूप मे अवतरित हुई है। अपनी अलौकिक शक्ति से वे एक नये नगर का निर्माण करती हैं, जो सब प्रकार से सम्पन्न है।[9]

तेजसार की सास तेजलपुर नगरी का निर्माण करती है जहाँ पुण्य के प्रताप से सब कार्य सम्पन्न होते है।[10] सास व माता दोनो ही व्यंतरी है। अत: अपने पुत्र के सामने दिन मे एक बार सुन्दर रूप धारण कर प्रकट होती है।[11]

इस प्रकार तेजसार के सभी पात्र किसी न किसी प्रकार से तेजसार से सम्बन्ध रखते है तथा कथा के विकास मे गति देने में सहायक रूप मे आये हैं।

---

1. दोहा स० 365-66
2. दोहा स० 372
3. दोहा सं० 405
4. दोहा सं० 60
5. दोहा सं० 45
6. दोहा संख्या 221
7. दोहा संख्या 302
8. दोहा संख्या 292
9. दोहा संख्या 303
10. दोहा संख्या 336
11. दोहा संख्या 337

भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई के पात्र

कथा के प्रमुख पात्र : भीमसेन, मदनमंजरी, राजहंस रूपमती, सगर राय, है ।

गौण पात्र : रिणकेसरी, हितसागर, सुमतिमंत्री, सन्यासी कीर, हंस, हंसी धात्री, शंखराज, वनपालक, श्रीपाल, वनदेवी, अभंगसेन, तपस्वी, तपस्विनी, तापस आदि हैं ।

कथा मे पशु-पक्षी आदि अमानवीय पात्र भी आये हैं यथा–हाथी, घोडा, शेर बन्दर, हिरण, गीदड, नेवला, सियाल, शुक, सामली, श्यामा पक्षी, सर्प, चीबरी, तीतर, नीलकंठ एव चील आदि है ।

प्रमुख पात्र

भीमसेन

कथा के प्रारम्भ में ही श्रीपुर के शासक रूप मे भीमसेन सामने आता है । उसकी पटरानी प्रीतम मंजरी है । उसे अपनी रानी से सच्ची प्रीति करने वाला बताया गया है ।[1]

भीमसेन कुशल प्रशासक है । उसके देश मे सभी लोग सुखी हैं । विरला ही कोई दुःखी होगा । प्रजापालक राजा को जब एक परदेशी बताता है कि लोगों के विश्राम के लिये कोई वाडी नही है[2] तो प्रजा का हितैषि राजा चिंतित हो जाता है[3] और तत्काल एक वाड़ी बनवाने की योजना बनाता है । शुभ दिन देखकर सरस भूमि पर वाडी बनवाता है जिसमे बाहर से मगवाकर अनेक प्रकार के वृक्ष लगवाये जाते है । उसी वाड़ी मे एक आवास भी बनवाया जाता है और उस वाड़ी का नाम 'नन्दन वन' रखा जाता है । राजा अपने रनिवास सहित उसमे ही रहता है ।[4] कुशल प्रशासक के लिये प्रजा के हितो का ध्यान आवश्यक है । भीमसेन भी उन गुणो से युक्त है ।

भीमसेन हितसागर का अच्छा मित्र भी है । उसकी प्रीति सच्ची और गहरी है । वनपालक जब राजा भीमसेन को वन देखने का आग्रह करता है तब वह अपने साथ हितसागर को ले जाना नही भूलता ।[5] सभी वृक्षो की विशेषताये हितसागर ही राजा को बताता है ।[6] रूपमजरी के प्रेषित पत्र को पढकर भीमसेन हितसागर से ही कोई उपाय पूछते है—

---

1. दोहा संख्या 15, 16 भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई ग्रंथ 1217 ला. द. ग्रं. अहमदाबाद
2. दोहा संख्या 19
3. दोहा संख्या 20
4. दोहा संख्या 33
5. दोहा संख्या 38
6. दोहा संख्या 43-48

कागल वांची कहइ राय संभल हितसागर
करउ बुद्धि कोई उपाय निर्मल मतिनागर ।। 114 ।।

भीमसेन के साथ हितसागर छाया की तरह चलता है ।[1] मार्ग मे सन्यासी को विपत्ति से छुटकारा भी हितसागर की सहायता से ही दिलाया जाता है ।[2] विशालापुरी में भी हितसागर राजा के साथ वन मे रहता है ।[3]

धात्री के मुँह से रूपमजरी की प्रतिज्ञा को सुनकर भीमसेन शुभ यात्रा जानकर प्रसन्न होता है । उसके शोक सताप सब मिट जाते है और उसका मनोरथ पूर्ण होता है । कनकलता से विवाह के समय भी वह व्यतरी से हितसागर को विद्या-बल से लाने की बात कहता है । रनिवास को भी वह हितसागर के बाद ही याद करता है ।[4]

भीमसेन प्रकृति प्रेमी है । 'नन्दन वन' बनने के बाद वह रनिवास सहित वहाँ ही आकर रहने लगता है । हितसागर से सभी वृक्षो की विशेषता पूछता है और एक फूल युक्त पेड के नीचे बैठ भी जाता है ।[5] विभिन्न प्रकार के वृक्ष मंगवाने के लिये वह जगह-जगह दूत भेजता है, तथा बड़े-बड़े भूपतियों को पत्र भी लिखता है[6] जिससे उसका प्रकृति प्रेम ज्ञात होता है । 'नन्दन वन' के बीच मे एक विशाल सरोवर भी बनवाता है जिसका नीर सुरभित एव शीतल है जिसके जल मे वृक्ष सबल हो गये है ।[7]

भीमसेन दानवीर के रूप मे भी सामने आता है । वह योग्य पात्र को ही दान देता है ।[8]

भीमसेन यौवनमय पुरुष है । रूपवान होने के साथ-साथ वह भोगी है और युवती का रसिक भी । भीमसेन अत्यन्त रूपवान, कोमल, शक्तिसम्पन्न एव चतुरग सेना वाला पुरुषो मे रत्न इन्द्र का अवतार है ।[9]

भीमसेन रूप लोभी भी है । कीर से प्राप्त रूपमजरी के सन्देश मात्र से वह उसकी ओर आकर्षित हो जाता है और उसे प्राप्त करने का उपाय पूछता है[10] और

1 दोहा संख्या 119
2. दोहा संख्या 123
3. दोहा संख्या 149
4. दोहा संख्या 331
5 दोहा संख्या 59
6. दोहा संख्या 22
7. दोहा संख्या 30,31
8. दोहा संख्या 58
9. दोहा संख्या 75
10. दोहा संख्या 114

शुभ वार व शुभ मुहुर्त देखकर वह रूपमंजरी को पाने की इच्छा से जाता है।[1] उसके सामने एक ही लक्ष्य है, रूपमंजरी को प्राप्त करने का। अवधूत उसे वहाँ आने का कारण पूछता है तो भीमसेन कहता है—

कुमरी नइ परणिवा काजि पहु चिसि परदेसइ
करी युद्ध कोंई उपाय आणिसु इण देसइ

कुमारी रूपमंजरी से विवाह के लिये इस देश मे आया है, युद्ध करके अथवा अन्य किसी उपाय से उसे प्राप्त करना ही उसका उद्देश्य है। सन्यासी से वह राजकुमारी का रूप भी पूछता है और रूप श्रवण से वह आनन्दित हो जाता है और उस छवि को एक घड़ी भी नही भूल पाता।[2]

भीमसेन ईश्वर मे श्रद्धा रखने वाला है। विशालपुरी पहुंचने पर रात्रि हो जाने के कारण त्रिपुरा देवी के मठ पर विश्राम करते हुए देवी के मनोहर स्थान को देखकर राजा प्रणाम करता है और प्रार्थना करता है कि सेवक के सभी कार्य कृपा करके पूर्ण करो।[3]

भीमसेन साहसी और रक्षक भी है। मदनमंजरी द्वारा गले मे फांसी लगाये जाने पर जब धात्री उसकी प्राण रक्षा के लिये पुकारती है तो भीमसेन आकर उसके आत्म-हत्या का कारण पूछता है और सब वृतांत जानकर वह प्रसन्न होता है और अच्छा-मूहुर्त जानकर त्रिपुरा देवी की साक्षी मे ही उस राजकुमारी से विवाह कर लेता है।[4] विवाह के बाद एक महिने रहकर श्रीपुर लौटते समय मार्ग मे राजासगर से भी भीमसेन का युद्ध होता है और भीमसेन राजासगर की सेना का नाश कर विजित होता है।[5]

भीमसेन सच्चे प्रेमी के रूप में हमारे सामने आते है। राजासगर से युद्ध के समय रानी रूपमंजरी भीमसेन से बिछुड जाती है। राजा स्वयं एव अच्छे भट्ट योद्धाओ के साथ रानी को वन मे ढूंढते फिर रहे हैं,[6] भीमसेन प्रतिज्ञा भी करते है—

भीम महीपति इन भणइ न मिलइ जो नारि
तउ हूं पावक तनु दहू न रहू ससार ।। 207 ।।

यदि रूपमजरी नही मिली तो भीमसेन स्वयं भी आत्मदाह कर लेंगे वे बिना रूपमजरी के इस ससार मे नही रहेगे। विरह से उद्दीप्त राजा वन पर्वत और कदरा में घूम-घूम कर वहाँ के रहने वालों से रानी के बारे मे पूछ रहे हैं। राजा

1. दोहा संख्या 120
2. दोहा संख्या 138
3. दोहा संख्या 142
4. दोहा संख्या 189
5. दोहा संख्या 200
6. दोहा संख्या 203

को दुःखी देखकर अभंगसेन जो पर्वत पर निवास करते थे राजा को शोक संतप्त देखकर शकुन शास्त्र के आधार पर बताते है कि आज से सातवें दिन रानी मिल जायेगी ।[1]

रूपमंजरी के विषफल आहार के बाद भीमसेन रूपमजरी को प्राप्त करने मे सफल होता है । तपस्वी रानी का विष उतार देते है और भीमसेन रानी को प्राप्त कर उसी प्रकार प्रसन्न होता है—

जेम त्रिषातुर वन जगलइ पाणी विण प्राणी टलवलइ
जल पूरित सर पाम्यो जेम तरुणी पेषी राजा तेम ।। 233 ।।

दस दिन वन मे ही राजा व रानी उस तपस्वी का आतिथ्य स्वीकार करते हैं ।[2]

भीमसेन दिव्य विद्याओं का भी ज्ञाता है । तपस्वी से विदा लेते समय तपस्वी भीमसेन को विष दूर करने की एव रूप परिवर्तन की विद्या देता है ।[3] इस प्रकार कठिनाइयो से जूझता हुआ भीमसेन अपने लक्ष्य प्राप्ति मे सफल होता है और रूप-मजरी सहित श्रीपुर लौटकर रूपमजरी को पटरानी बनाता है एव राज्य का सुख से पालन करता है । उसके राज्य मे प्रजा भी प्रसन्न है जो उसके कुशल प्रशासक होना प्रमाणित करता है ।

राजा भीमसेन साविज भाषा का ज्ञाता है । रूपमजरी के प्रेषित सन्देश वह तोते की वाणी को समझ कर प्राप्त करता है[4] और रूपमंजरी के गर्भ से राजहस के अवतार की बात हस एव हसी के वार्तालाप से जानता है ।[5]

राजा भीमसेन कर्मठ नायक है । वह अपनी रानी की असम्भव से असम्भव सभी प्रकार की दोहद पूर्ण करना चाहता है । रानी की गर्भ के समय की इच्छाये है–हाथी पर बैठकर नदी के पास भ्रमण करने की ।[6] अमृतफल आहार के लिये तो वह भीमसेन से ही कह देती है—

स्वामीजी मुझ गर्भ प्रमाण एक डोहलउ थयउ असमान
अमृत फल नऊ करूँ आहार तउ मुझ थायउ हर्ष अपार

भीमसेन रूपमजरी की बहिन कनकलता से विवाह करता है । पत्नी के कहने से ही भीमसेन विवाह के लिये तैयार होता है । इसमे भीमसेन के पत्नी प्रेम की

1. दोहा सख्या 206
2. दोहा संख्या 236
3. दोहा संख्या 237
4. दोहा संख्या 249
5. दोहा संख्या 252
6. दोहा संख्या 262,63

गहनता झलकती है ।[1]

भीमसेन उत्साही एवं दानी भी है । पुत्र के जन्म पर राजा भीमसेन एवं उनके परिवार को अपार आनन्द होता है । पुत्र जन्म की खुशी में बाजे बज रहे हैं याचक लोग राजा की जयकार कर रहे हैं एवं राजा बड़े-बड़े दान-पुण्य कर रहा है और नगर में नित्य-प्रति नये-नये उत्सव किये जा रहे हैं ।[2] राजा को अपने पुत्र से असीम प्यार है । एक बार पुत्र खो-जाने पर राजा अपनी सेना सहित उसे ढूंढने निकते हैं और पुत्र के मिलने पर उनकी जो दशा होती है उसका वर्णन देखिये—

अंगज वइसारइ उच्छंगि, वार-वार आलंगइ अंग
अश्रुपात हरषइ आचरइ वीतक वात कुमर सब कही ।। 432 ।।

राजहंस का मिल जाना बड़े ही पुण्यों का फल मानते हुये राजा को ऐसा लगता है कि पुत्र क्या मिला मानों कल्पवृक्ष का फल ही मिल गया है ।[3]

राजा भीमसेन को राज्य का लोभ नहीं है । भीमसेन को पुत्र के साथ-साथ अपार धन सम्पत्ति भी प्राप्त होती है और पुत्र को साथ लेकर अपने निवास श्रीपुर आकर अपने पुत्र राजहंस को युवराज बना देते हैं ।

राजहस को युवराज बनाकर भीमसेन को सुव्रत स्वामी से धर्म के उपदेश सुनते हुये वैराग्य उत्पन्न होता है वे ससार को अस्थिर जानकर संयम भार ग्रहण करते हैं ।

इस प्रकार एक योगी राजा सब सुखों को भोगता हुआ धर्म से प्रभावित हो सब राज्य छोड़कर वैराग्य को ग्रहण करता है । यही भीमसेन के चरित्र की महानता है ।

राजहंस

राजहंस अपने पूर्व जन्म में हंस था । वह अपने अगले जन्म के विषय में इसी जन्म में हंसी को बता देता है कि आज से इक्कीस दिन बाद रविवार के दिन शरीर छोड़कर मदनमंजरी के गर्भ से अवतार लेगा[4] (अवतार शब्द रूढ़ है । ईश्वर हेतु) समय पूर्ण होने पर मदनमंजरी के गर्भ से हंसराज का जन्म होता है—

अनुक्रमि पूर्ण थयउ आधांन, महीपति पटरानी बहुमान
सुषइ सम्पूर्ण थया नवमास, आव्यउ सुत पूगी मन आस ।। 369 ।।

---

1. दोहा संख्या 328 भीमसेन राजहंस चौपई ग्रं. 1217 ला. द. ग्रं; अहमदाबाद
2. ,, ,, 371
3. ,, ,, 433
4. ,, ,, 252, 53

पुत्र जन्म पर पिता भीमसेन नगर में नये-नये उत्सव कराते हैं बड़े-बड़े दान दे रहे हैं कुमार को अति सुन्दर जानकर उसे राजहंस नाम दिया जाता है।[1] राजहंस शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है[2] आठ वर्ष की आयु में ही कुमार में अनेक गुणों का समावेश था।[3] वह अपनी आयु से भी बड़ा प्रतीत होता है—

कला बहुत्तरि भणउ कुमार विनय वंत विद्या भंडार
वार बरस योवन बलवंत दीसइ सोल वरस दांपति ॥390॥

राजहंस पूर्ण यौवन को प्राप्त है वह महल मे मनवांछित भोग विलास भोगता हुआ रहता है कि एक दिन बहुत से अच्छे घोड़ों के साथ एक सौदागर श्रीपुर में आता है।[4] कुमार राजा से पूछता है कि यदि राजा कहे तो अश्व पर चढ़ने का अभ्यास कर लें। कुमार मे अमृत फल के कारण अपार बल है दूसरी ओर वह पूर्ण यौवन पर है अतः वह अश्व के साथ क्रीड़ा करता है।[5] राजकुमार क्षत्रिय कुमार है अतः अश्व पर बैठना उसके लिये आवश्यक है जिसका अभ्यास वह अभी से कर रहा है।

राजहंस साहसी एवं बुद्धिमान कुमार है। वह एक बार वायु के वेग से दोड़ने वाले अश्व पर सवार हो घने जगल में चला गया। अश्व रुकने का नाम नहीं ले रहा था। अश्व जब एक वट वृक्ष के नीचे से गुजर रहा था तो कुमार ने एक सबल वट वृक्ष की साख को पकड़ लिया और अश्व को छोड दिया[6] इस तरह उसने अपनी बुद्धि से अपनी रक्षा की। उसी वन मे एक शेर रहता था, जो सभी जीवों को खा जाता था। तुरंग की गंध से वह वहाँ आता है जहाँ राजहस था। कुमार ने उस शेर को बाण प्रहार से मार दिया।[7] नदी मे बहती हुई नारी को निकाल कर वह अपने अतुल शौर्य का परिचय देता है।[8]

राजहंस साविज भाषा का ज्ञाता है। रात्रि में फेतकारी की वाणी सुनकर वह उठता है और पिता से उसकी परीक्षा करने की कहता है।[9] कवि ने साविज भाषा का जानकर होने का कारण भी बाताया है—

---

1. दोहा संख्या 371
2. ,, ,, 372
3. ,, , 389
4. ,, ,, 389
5. ,. ,, 401,402
6. ,, ,, 407
7. ,, ,, 415
8. ,, ,, 449
9. ,, ,, 439

अमृत फल आहार प्रमाणं साविज भाषा लहइ सुजाणं
बोलइ सिवा सहित सिणगार, नदीयइ वही जायइ छइ नारि ।।441 ।।

पिता का उसके प्रति अपार प्रेम है। पिता भीमसेन उसकी वीरता और साहस से सन्तुष्ट होकर उसको युवराज बना देते हैं।[1]

राजहंस एक आज्ञाकारी पुत्र के रूप में हमारे सामने आता है। यौवन वय प्राप्त होने पर विवाह प्रस्ताव आते है। राजा शंख की पुत्री रूपमती के विवाह का प्रस्ताव भी राजा भीमसेन के पास आता है। राजा कन्या को योग्य जानकर पुत्र राजहंस को स्वयंवर मे जाने का प्रबन्ध करने के लिये कहता है।[2]

स्वयंवर में बहुत से लोगों को देखकर राजहंस के मन में चिन्ता होती है—

को जाणइ कन्या केहनइ वरसइ महत हुसइ तेहनइ
एक सन्देश अछइ मुझ धणउ रिष बोल लोपइ आपइणो ।। 473 ।।

राजहस शकुनों पर भी विश्वास करता है, संध्या समय सियाल का बोलना[3] बायी दिशा में उल्लू का बोलना,[4] रात्रि के चौथे प्रहर में महावृक्ष पर बैठ कर चीबरी को बोलना,[5] बायीं ओर से तीतर बोलता हुआ दायी ओर चला जाये[6] आकाश मे समली अपनी चोंच में भक्ष्य लिये उड़ती हुई दायी ओर बोलती हुई जाये,[7] हिरणो के झुण्ड मे नायक हिरण का दिखना[8] हरे वृक्ष पर बैठी स्यामा दायीं ओर शब्द करती हुई जाये[9] हरे वृक्ष पर पक्षी परिक्रमा देता हो[10] जल से पूर्ण सरोवर के तट पर नीलकठ को देखना[11] ये सभी शकुन शुभ हैं। मार्ग मे चलते समय यह शकुन हो तो व्यक्ति के वांछित मनोरथ पूर्ण होते हैं।

ये सब शकुन जानकर ही राजहंस अपनी चतुरंगिनी सेना सहित अवंतीपुर आता है।[12]

---

1. दोहा संख्या 463
2. ,, ,, 470
3. ,, ,, 475
4. ,, ,, 476
5. ,, ,, 477
6. ,, ,, 478
7. ,, ,, 479
8. ,, ,, 480
9. ,, ,, 481
10. ,, ,, 483
11. ,, ,, 484
12. ,, ,, 486

रूपमती को प्राप्त करने के लिये वह अपनी पूर्व पत्नी हंसी से सहायता लेता है और उसी की सहायता से रूपमती को प्राप्त करने में सफल होता है ।[1] विवाह के बाद राजहंस एक माह तक अवंतीपुर में तरह-तरह के सुख भोगता हुआ रहता है ।[2]

राजहंस भोगी होते हुये भी धर्म में रुचि रखता है । राज्य लोभ उसे छू भी नहीं गया है । साधु संगति से राजहंस के भाव धार्मिक हो गये और वह मुनि से धर्म का प्रकार पूछता है ।[3] गुरु का नाम श्रीराम जानकर उन्हें श्रीपुर नगर में आकर उपकार करने का आग्रह करता है ।[4] राजहंस के श्रीपुर पहुंचने पर मुनिश्री आते हैं । राजा भीमसेन राजहस को राज्य सौंप कर स्वयं संयम भार ग्रहण कर लेते हैं और राजहंस भी श्रावक बन जाते हैं ।[5] गुरु की सेवा करते हुये राजहंस धर्म का सार जानने की इच्छा प्रकट करते हैं ।[6] मुनिश्री विभिन्न कथाओ एवं उदाहरणो द्वारा राजहंस को धर्म का सार[7] शुद्ध भावों का महत्व[8] बताते हैं जिसे जानकर राजहंस अपने बडे पुत्र जयभद्र को राज सौप कर अपना अन्त समय जानकर संथारा करते हैं और निर्मल ध्यान से ईष्ट की आराधना करते हुये केवली होते हैं ।[9]

राजहंस पर पुष्पवृष्टि होती है और आकाश मे पच वाद्य बजते है :—

> सुरनर मिल्या महोच्छव करइ धन्य धन्य मुष इम उच्चरइ
> सोवन कुसम पुफ्फ वरसति अबंर पंच सबद बाजति ।। 614 ।।

इस प्रकार राजहंस ससार के सभी भोगों को भोगता हुआ संसार से विरक्त हो केवली बन जाता है ।[10]

राजा सगर

राजा सगर खल नायक के रूप में हमारे सामने आता है । सगर सिंघलद्वीप का शासक है । राजा सगर का वैवाहिक सम्बन्ध विशालापुरी मे हो जाता है ।[11] एक ओर भीमसेन रूपमजरी को प्राप्त करना चाहता है दूसरी ओर राजा सगर । अतः

---

1. दोहा सख्या 527
2. ,, ,, 539
3. ,, ,, 552
4. ,, ,, 559
5. ,, ,, 570
6. ,, ,, 573
7. ,, ,, 574
8. ,, ,, 586 से 99
9. ,, ,, 613
10. ,, ,, 615
11. ,, ,, 90

दोनों एक दूसरे के दुश्मन एवं प्रतिद्वन्द्वी हैं। राजा सगर शक्तिशाली शासक है। शुक के इस कथन से यह स्पष्ट है—

कहइ तु ं सबलउ सेन करी आडंबरि आवूं
सगर राइ सूं करी झूझ कुमरी इह ल्यावूं ।। 115 ।।

राजा सगर सबल यौद्धाओं और बारात के साथ राजकुमारी से विवाह के लिये आता है।[1] परन्तु वह अपने उद्देश्य मे सफल नही होता। रिणकेसरी अपने छोटे भाई की लड़की से राजा सगर का विवाह कर देते हैं—

'तव संग बंधव तणी पुत्री सगर परणाव्यो सही'

राजा सगर क्रोधी स्वभाव का है। सगर नरेश अपने साथ धोखा हुआ जानकर बड़ा क्रोधित होता है और सोचता है कि भीमसेन ने गुप्तरीति से कैसे विवाह कर लिया है, जब भीमसेन अपने देश जायेगा तब संग्राम करके उस मानिनी को लेकर रहूँगा।[2]

राजा सगर में ईर्ष्या एव बदले की भावना है। अतः जब भीमसेन मदनमंजरी के साथ जा रहे थे तब रात्रि के समय सगर राजा की सेना ने चारों ओर से भीमसेन को घेर लिया। दोनों सेनाओ में भयंकर युद्ध होता है और अन्त में राजा सगर भीमसेन से पराजित होते हैं।[3] इस प्रकार सगर भीमसेन के मार्ग मे बाधा रूप में थोड़े समय के लिये आते हैं और उनका अन्त अच्छा नहीं होता।

प्रमुख नारी पात्र

मदनमंजरी

मदनमंजरी विशालपुर के राजा रिणकेसरी की राजकुमारी है। उसकी माता का नाम कमलावती है। मदनमंजरी जैसे ही यौवन वय को प्राप्त होती है, उसके माता-पिता को उसके विवाह की चिन्ता होती है। मदनमंजरी सुन्दरी है, आगत यौवना है एव सुन्दर देह यष्टि है, पर चिन्ता यही है कि उसे कैसा राजकुमार मिलेगा।[4]

रूपमंजरी असाधारण सौन्दर्य मयी नारी है। रूपमंजरी के सौन्दर्य का वर्णन संन्यासी भीमसेन के पूछने पर करता है। रूपमंजरी की गति सुकोमल है, सहज है जैसे मानसरोवर के मराल की गति। सिंह जैसी कमर और मयंक जैसा उसका मुख है। उसका रग कुन्दन के समान है और चक्षु चपल। जाघें कदली स्तम्भ जैसी हैं तो उरोज बिल्व के समान और उधर पके बिम्बाफल के समान। वह साधारण स्त्री नहीं

---

1. दोहा संख्या 150
2. ,, ,, 194
3. ,, ,, 200
4. ,, ,, 63,74

है उसकी वाणी कोमल और अमृत के समान है, लगता है विधाता ने स्वयं अपने हाथ से उसे बनाया है।[1]

मदनमंजरी आगत यौवना है। कीर के मुख से अपने होने वाले पति के बारे में जानकर पूर्वभव स्नेह के कारण उस वर को प्रणाम् करती है।[2] वह किसी प्रकार शुक को प्राप्त करने मे सफल हो जाती है।[3] शुक से क्रीड़ा करती हुई अपने होने वाल पति का रूप पूछती है।[4] वह शुक को अपनी व्यथा बताती है और कार्य पूरा करने को कहती है।[5]

मदनमंजरी में अपने पति के प्रति निष्ठा है। वह शूक से भीमसेन के बारे में सुनकर उसे ही प्राप्त करना चाहती है और वह प्रतिज्ञा भी करती है—

> कुमरी कहइ सुणउ कहूं साच अविचल एक करी छइ वाच
> इण भवि भीमसेन बर वरु वीजउ वीजइ भवि आदरु ॥ 93 ॥

देवी-देवताओं मे उसे आस्था है। भीमसेन को पति रूप मे प्राप्त करने के लिए वह त्रिपुरा देवी की पूजा करती है। त्रिपुरा देवी कन्या को वाछित वर प्रदान करने वाली है। अतः मदनमंजरी भी देवी से कहती है—

> कर जोड़ी देवी नइ कहइ भीम मेल वउ जीवित रहइ
> एह नइ पूजइ माहरी आस, तउ तुझ आगई घालू गल पास ॥ 104 ॥

कामना सिद्ध न होने पर वह गले मे फाँसी लगाने की बात भी कहती है।

मदनमंजरी क्षत्राणी है। उसमे भारतीय नारी की गरिमा है। वह अपने वचन की पक्की है। धात्री के वचन सुनकर वह मूर्छित हो जाती है।[6] वह राजा सगर से विवाह करना नही चाहती। अतः मध्यरात्रि में वह घर छोड़कर निकल जाती है[7] और त्रिपुरा देवी को उपालम्भ देती हुई देवी के सामने ही एक वृक्ष पर वेणी बंध लगाकर फाँसी लगा लेती है।[8] परन्तु किसी तरह बचा ली जाती है। भीमसेन के अतिरिक्त उसके लिए अन्य सभी पुरुष यहाँ तक कि राजा सगर भी सहोदर के समान है।[9] भीमसेन और सगरराय के युद्ध के समय वह सगर राजा के

---

1. दोहा संख्या 132 से 135
2. ,, ,, 84
3. ,, ,, 86
4. ,, ,, 89
5. ,, ,, 101
6. ,, ,, 153
7. ,, ,, 166
8. ,, ,, 169
9. ,, ,, 155

हाथ पड़ना नहीं चाहती, अतः अकेली ही वन में निकल जाती है और विषफल का भक्षण कर आत्म-हत्या करने का प्रयास करती है।[1]

मदनमंजरी में स्त्री सुलभ लज्जा है, परन्तु वह स्पष्ट वक्ता भी है। पिता के द्वारा पति के बारे में विचार पूछे जाने पर वह कुछ बताती नहीं है अपितु पिता की बात सुनकर वह लजाती हुई उठकर चली जाती है।[2] परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वह पिता की बात से सहमत है। इसका स्पष्टीकरण शुक को कहे गये कथन से होता है—

बाप तणइ भय बोली नहीं, साचउ वचन करिसि हूं सही ॥ 101 ॥

वह धात्री से भी स्पष्ट रूप से अपनी इच्छा व्यक्त कर देती है और धात्री उसकी बात माता तक पहुँचा देती है।[3] रानी जब राजा को पुत्री का उद्देश्य बताती है तो राजा स्वयं उसे समझाने जाते हैं और राजा सगर से विवाह करने की सलाह देते हैं तब वह पिता से भी स्पष्ट कह देती है—

सुणो पिताजी बोलूं साच, वृथा न जायइ माहरी वाच ॥ 165 ॥

पिता को पुत्री के प्रण के आगे झुकना पड़ता है। वप पुत्री द्वारा किये गये गुप्त विवाह को स्वीकार कर हर्षित होता है।

मदनमजरी राजा भीमसेन की पटरानी है।[4] गर्भकाल में मदनमंजरी को दोहद होता है, हाथी पर बैठने का[5] तथा अमृतफल आहार का[6] जिन्हें भीमसेन पूर्ण करते हैं। पूरा समय होने पर मदनमजरी पुत्र को जन्म देती है।[7] पुत्र का नाम राजहस रखा जाता है।[8]

ईर्ष्या, द्वेष आदि अवगुण मदनमंजरी को छू भी नही गये। मदनमजरी स्वयं ही अपने पति भीमसेन को कनकलता कुमारी से विवाह करने का आग्रह करती है।[9]

संक्षेप में मदनमंजरी नारीरत्न है। वह अनुपम सौन्दर्यमयी, उज्जवल चरित्र वाली, आदर्श नारीत्व की प्रतिमा, सच्ची लगन, निष्ठा, साहस, कर्तव्य परायणता; लज्जाशीलता, आदि चारित्रिक गुणो के कारण भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वह इस काव्य की नायिका है। यह नायक का फल है जिसकी प्राप्ति हेतु

---

1. दोहा संख्या 227
2. „ „ 98
3. „ „ 158
4. „ „ 245
5. „ „ 262
6. „ „ 343
7. „ „ 369
8. „ „ 371
9. „ „ 331

भीमसेन समस्त प्रयत्न करता है। अपने प्रयासों में सफल होकर वह इस फल का अधिकारी बनता है।

रूपमती

रूपमती काव्य की सह-नायिका है। वह परिमल की सुगंध वाली पद्मिनी नारी है। वह प्रवन्ती के शासक राजा शद्य की पुत्री है।[1]

रूपमती अनुपम सौंदर्य वाली है। इसके नेत्र सारग जैसे तथा भाल अष्टमी के चाद्रमा के समान है। उसके दांत अनार के दाने जैसे है। वह राजकुमारी रम्भा जैसी सुन्दर है। वह पीत वस्त्रो मे इंद्राणी जैसी शोभयमान हो रही है। गले मे श्वेत हार चमक रहे हैं, कुच विल्व के समान है। कमर शेर के समान क्षीण और उसकी कांति कुन्दन जैसी है, रत्न जड़ित राखड़ी है, वेणी सर्प के समान लम्बी है, कर सुन्दर हैं, अगुलियाँ कोमल हैं, जिनमे मणि जवाहरात जड़ी अंगूठियाँ तथा कुण्डल कपोलों पर झलक रहे हैं, नुपुरो की रूनझुनऔर भी शोभा बढ़ा रही है, उसकी जाघें कदली थंभ के समान है, नाक में मोती है, उत्तम वस्त्र पहने बाहो मे भुजबन्ध और कमर मे मेखला है, नेत्रों से कटाक्ष करती हुई वह अप्सरा के समान दिखाई दे रही है।[2]

रूपमती पद्मनी नायिका है। उसके शरीर से सौरभमय गंध आती है और राजा उस पद्मनी नारी को मधुकर की तरह देख रहे हैं।[3] लगता है विधाता ने इसे किसी विशेष व्यक्ति के लिए ही बनाया है जिसे यह वरण करेगी उसका जन्म सफल हो जायेगा।[4]

रूपमती नव यौवना है। उसके यौवन से माता-पिता को उसके विवाह की चिन्ता होती है, अतः विवाह के लिए पिता उसकी जन्मपत्री बड़े-बड़े राजाओं के पास भेजते हैं।[5] भीमसेन के पुत्र युवराज राजहंस को बुलाने के लिए भी दूत भेजे जाते हैं।[6]

रूपमती को ईश्वर में आस्था है। उसे अपने होने वाले पति के बारे में चिन्ता है। जब व्यक्ति विपत्ति मे होता है तो वह ईश्वर का सहारा ही सदा से लेता रहा है। रुपमती भी देवी की पूजा करती है और अपने होने वाले पति के कुछ चिह्न बताने के लिए देवी से निवेदन करती है।[7] आकाशवाणी को सुनकर रूपमती हर्षित होती है।[8] स्वयंवर मे सभी राजा बैठे हुए हैं और सभी सोचते हैं—

1. दोहा संख्या 466
2. ,, ,, 501 से 50
3. ,, ,, 510
4. ,, ,, 511
5. ,, ,, 468
6. ,, ,, 469
7. ,, ,, 495
8. ,, ,, 496

महीपति सिघला चितवइ एह किसइ आलोच
कन्या को वर नइ वरइ, सहू कर इम सोच ।। 523 ।।

परन्तु रूपमती के मन में तो आकाशवाणी की बात है वह उसी को वरण करना चाहती है और उसी समय आकाश से राजहंस पर पुष्प वृष्टि होती है ।[1] राजकुमारी देवी द्वारा की गई भविष्यवाणी को सत्य होती देख प्रसन्न होती है और देवी के किये हुए उपकार को अहसान मानकर अपने योग्य वर का वरण करती है ।

रूपमती मननीरली कुसुम माल करिलेइ
कुमर तणइ कठइठवी नरपति सहू निरखेइ ।। 527 ।।

कुसुम माल लेकर वह राजहंस के गले मे डाल देती है । सभी लोग रूपमती एव राजहस की जोड़ी की प्रशसा करते हैं । शघराज भी इसे कुलदेवी के वचनों के अनुरूप मानकर अन्य क्रोधित नरेशो को समझाते है ।[2]

रूपमती रति के समान सुन्दर है और राजहंस काम के समान ।[3]

गौण पात्र

रिणकेसरी

रिणकेसरी विशालपुरी का शासक है, उसकी पटरानी कमलावती है ।[4] पुत्री के यौवन वय मे आने पर पिता को पुत्री के विवाह की चिन्ता लगती है जो कि स्वाभाविक भी है । उन्हे चिन्ता है पता नही वर कैसा मिलेगा ।[5]

राजा रिणकेसरी अपने कर्तव्य के प्रति सजग है । पुत्री का विवाह कर उसे अपना कर्तव्य पूरा करना है, यह चिन्ता उसके मन से नहीं जाती, योग्य वर मिले तो राजा की चिन्ता का शमन हो । इस चिंता से मुक्त होने के लिए राजा दसों दिशाओं में दूत भेजता है ।[6]

राजा को अपनी पुत्री से अत्यधिक स्नेह भी है, वह अपनी पुत्री को दूर देश मे नही देना चाहता है । रानी को कहे गये कथन से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है ।

विचइ विलाइ तब दूरी तणी सबल एक अटवी सांघणी
सुता एह मुझ वल्लभ सहि, नव निश्चय तिहा आपेसि नहीं ।। 83 ।।

---

1. दोहा संख्या 524
2. ,, ,, 528
3. ,, ,, 540
4. ,, ,, 63
5. ,, ,, 65
6. ,, ,, 66

दूसरी बार वह योगी से शुक खरीद कर अपने पुत्री प्रेम का परिचय देता है।[1]

रिणकेसरी चतुर एवं बुद्धिमान भी है। विकट परिस्थितियों में भी वह सगर राजा का अपने छोटे भाई की पुत्री से विवाह कर[2] अपनी बुद्धिमता का परिचय देता है। पुत्री के गुप्त विवाह पर वह क्रुद्ध नही होता अपितु प्रसन्न होता है कि उसकी पुत्री जीवित बच गई है।[3]

पुत्री के प्रति राजा सतर्क भी है। जब उसे यह ज्ञात होता है कि रूपमजरी भीमसेन को चाहती है तो वह धात्री को सब प्रकार से समझा कर प्रहरी रूप में बैठा देता है।[4] बारात आगमन पर धात्री को न देखकर राजा को भावी आशंका का बोध हो जाता है कि कही कन्या ने आत्म-हत्या तो नही कर ली, यदि कन्या मर गई होगी तो अपयश मिलेगा।[5]

इस प्रकार रिणकेसरी का चरित्र एक योग्य पिता, शासक एवं बुद्धि कुशल व्यक्तित्व को लेकर कथा फलक पर उभरा है।

हितसागर

हितसागर राजा भीमसेन के मंत्री सुमति का पाचवा पुत्र है और वह राजा भीमसेन का मित्र भी है।[6] बचपन की प्रीति के कारण वह राजा के पास ही रहता है। हितसागर विद्यावत, विनोदी, विनम्र एवं बुद्धिमान है।[7]

हितसागर राजा भीमसेन का सुयोग्य मित्र है। रूपमंजरी का शुक द्वारा प्रेषित सन्देश जानकर राजा हितसागर से ही उपाय पूछता है और हित सागर ही कीर के साथ विदेश जाकर कुमारी को प्राप्त करने की सलाह देता है।[8] इस प्रकार हितसागर एक योग्य सलाहकार भी है।

हितसागर एक वनस्पति शास्त्रज्ञ के रूप मे भी हमारे सामने आता है। 'नदन वन' भ्रमण के समय राजा वृक्षो के विषय में पूछता है तब हितसागर ही नन्दन वन के सभी वृक्षो की विशेषताये राजा को बताता है।[9] इस प्रकार हितसागर

---

1. दोहा संख्या 87
2. ,, ,, 192
3. ,, ,, 192
4. ,, ,, 165, 66
5. ,, ,, 191
6. ,, ,, 34
7. बालपणा लगि प्रीति बंधाणी, रमई राय नइ पासइ
   विद्यावंत विनीत विनोदी परि परि बुद्धि प्रकासइ ॥ 35 ॥
8. दोहा संख्या 115
9. ,, ,, 47 से 57

एक सच्चे एवं हितैषी मित्र के रूप में आया है । वह भीमसेन के साथ छाया की तरह रहता है ।

सन्यासी

सन्यासी वेष में अवधूत ब्रह्मा का पुत्र एव विद्या का भडार दिखाई देता है ।[1] सन्यासी प्रकृति से भी घुमक्कड़ होते हैं अतः यह भी उत्तर दिशा से जगन्नाथ की यात्रा के लिये (पूरब) आया है ।[2]

पटरानी कमलावती को भीमसेन के बारे में यह अवधूत ही बताता है ।[3] सन्यासी शुक का पालक है ।[4] कर्मयोग से श्रीपाल की मृत्यु होने से अवधूत के वध की आज्ञा मिलती है[5] परन्तु राजा भीमसेन शुक के कहने से उस अवधूत के प्राण बचा लेते है ।

सन्यासी होते हुये भी उसमें रूप सौन्दर्य के प्रति आसक्ति है । राजा भीमसेन को रूपमजरी के रूप सौन्दर्य से अवधूत ही अवगत कराता है । सन्यासी रूपमजरी के सौन्दर्य से स्वयं विंध चुका था ।[6]

धात्री

धात्री राजकुमारी मदनमजरी की रक्षक है। धात्री एक सच्चे मित्र और रक्षक के रूप मे हमारे सामने आई है। धात्री ही कुमारी को उत्सव का कारण बताती है ।

राजकुमारी की सजग प्रहरी धात्री ही है। धात्री ही राजकुमारी का पता लगाकर राजा को सब विगत कहती है ।[7] राजकुमारी के द्वारा फासी लगा लिये जाने पर धात्री ही शोर मचाकर उसके प्राणो की रक्षा करती है[8] और भीमसेन को कुमारी की आत्महत्या करने का कारण बताती है ।[9]

---

1. दोहा संख्या 67
2. ,, ,, 68
3. ,, ,, 75
4. ,, ,, 125
5. ,, ,, 127
6. कथइ सन्यासी सुणउ भूप बातए बात
   रमणी रूप समान रूप वसुधा विख्यात ॥ 129 ॥
   ते घर बैठी आप त्रिष्णि करि भोजन कीधउ
   सुणइ बस्वापउ तास रूप मुख मदि रति बीधउ ॥ 130 ॥
7. दोहा संख्या 191
8. ,, ,, 172
9. ,, ,, 175 से 184

अन्य गौण पात्र

वन पालक 'नंदन वन' के वृक्षों को रोपनें वाला है ।[1] श्रीपाल कर्मयोग से मर जाता है और नाम सन्यासी के कठोर वचनों का होता है ।[2] तपस्वी एवं तपस्विनी रूपमंजरी की रक्षा करते हैं । तपस्वी उसका विष दूर करता है । अमंगसेन अटवी में रहता है । वह शकुन शास्त्र का ज्ञाता है और भीमसेन को रानी के मिलने की सूचना देता है ।[3] तापस, धारा नगरी का स्वामी है ।[4] वह अपनी पुत्री कनकलता का विवाह भीमसेन से कर देता है ।[5] व्यतरी कनकलता की माता है जो विद्या बल से नये आवास का निर्माण करती है ।[6] सौदागर घोड़ों का सौदागर है । वह अपने साथ सबल नये घोड़े लेकर बेचने के लिये श्रीपुर आता है ।[7]

पशु पात्र

पशु पात्रो मे हाथी,[8] घोड़ा,[9] शेर,[10] बन्दर,[11] हिरण,[12] लोमड़ी, गीदड़[13] नेवला[14] एव सियाल[15] आदि हैं ।

पक्षी पात्रों में प्रमुख पात्र तोता, हंस व हंसी है :

तोता

शुक पक्षी अपनी समझदारी के लिये बड़ा लोकप्रिय रहा है । शुक प्रेम पथ के मार्ग दर्शक और सहायक के रूप मे प्रसिद्ध है । रूपमजरी का प्रेम संदेश भीमसेन तक पहुँचाने का कार्य शुक ही करता है ।[16] भीमसेन का वह मार्ग दर्शक भी है ।[17]

---

1. दोहा संख्या 37
2. ,, ,, 126
3. ,, ,, 206
4. ,, ,, 305
5. ,, ,, 333
6. वही
7. दोहा संख्या 398
8. ,, ,, 262
9. ,, ,, 398, 412
10. ,, ,, 414
11. ,, ,, 410
12. ,, ,, 480
13. ,, ,, 439
14. ,, ,, 482
15. ,, ,, 475
16. ,, ,, 111
17. ,, ,, 120

राजकुमारी का सहायक है।[1] शुक ही रानी कमलावती के सामने मदनमंजरी के लिये योग्य वर के रूप में भीमसेन का गुणगान करता है।[2]

हंस व हंसी

हंस व हंसी देवता का रूप हैं। हंस पूर्व जन्म का ज्ञाता होने के कारण अपने अगले जन्म के बारे में हंसी को बताकर रूपमंजरी के गर्भ से राजहंस के रूप में जन्म लेता है।[3]

हसी हंस की पत्नी है। वह हंस को बहुत प्यार करती है। हस के मानव रूप में जन्म लेने के बाद वह वर्ष में एक बार मध्यरात्रि में हंस से मिलने आती है।[4] मानव की वाणी बोलने वाला हंस निश्चय ही देवता है।[5] हंस के परलोक पहुँचने से सभी लोग शोक-ग्रस्त हैं। उसकी नारी हसी है जिसे हस के साथ अत्यधिक नेह है।[6] वन देवी हंसी से अमृत फल लेने जाती है तो हंसी कहती है—

> हंस हसउ जे मुझ भरतार, ते मदन मंजरी उरी अवतार
> ए फल साथइ अधिक सनेह ए डोहला नउ एहिज मेंय ॥ 356 ॥

हंसी रूपमंजरी को अमृतफल लाकर देती है,[7] और अमृत फल की दोहद का कारण भी बताती है।[8] अपने पूर्व पति हंस के हंसराज के रूप मे जन्म लेने पर वह हंस से मिलने आती है और अत्यधिक नेह के कारण एक अमृत फल भी लाकर देती है[9] और राजा के कहने से हंसी वह अमृतफल कुमार को खिलाती है—

> अवनीपति ते अमृतफल हंसी हथि दियति
> कहइ राय ए कुमर नइ षवरावउ मनषंति ॥ 384 ॥

वह कुमार से मिलने आती है तो सास, ससुर एवं प्रिय के चरणों में प्रणाम् करना नही भूलती[10] तीन वर्ष के बाद हस से मिलने आने का कारण हंसी निष्कपट भाव से बता देती है कि उसे एक ओर हंस मिल गया है वह उसे आने नहीं देता[11] फिर भी यदि कुछ काम हो तो सकेत से वह आ जायेगी।[12]

---

1. दोहा संख्या 108
2. ,, ,, 72
3. ,, ,, 369
4. ,, ,, 367
5. ,, ,, 259
6. ,, ,, 352
7. ,, ,, 360
8. ,, ,, 363
9. ,, ,, 387
10. ,, ,, 388
11. ,, ,, 393
12. ,, ,, 396

रूपमती को प्राप्त करने के लिये राजहंस हंसी को संकेत द्वारा बुलाता है[1] और हंसी उसे कहती है—

परणावूं रे तउ जाणू सांची सही
मन मांहे रे चिंता मति आणउ किसी ।। 493 ।।

हंसी हंस का विवाह रूपमती से कराने में सफल होती है ।[2] वह राजहंस से अपना वचन पूर्ण करने को कहती है ।[3] हंसी बार बार हस के पास आने में अपनी विवशता बताती है और अपने आन्तरिक प्रेम को चोल वर्ण के समान गहरा बताती है ।[4] राजहंस मानव है और हंसी देवता अतः शारीरिक भोग करने को वह पाप मानती है ।[5] वह हंस से कहती है कि रूपमती को हंसी ही समझना[6] और इस प्रकार हंस से आज्ञा मांग हंसी चली जाती है ।

अलौकिक पात्र

अदिव्य पात्रों मे व्यंतरी इस कथा काव्य में आई है । व्यंतरी शक्ति सम्पन्न है । वह सब कार्य पूर्ण कर सकती है तथा कही से भी वाछित वस्तु ला सकती है ।[7] भीमसेन व्यंतरी को कह कर हितसागर और अंतःपुर को मंगवाता है ।[8]

व्यंतरी अपने विद्या बल से जल से पूर्ण सरोवर, नये नये वृक्ष एवं एक लाख आवासों का निर्माण करती है ।[9]

इस प्रकार व्यंतरी अदिव्य पात्र होते हुए भी भीमसेन की सहायिका ही होती है । अपनी पुत्री को भीमसेन से व्याहने के लिए वह भीमसेन के आने की सूचना भी देती है ।[10]

प्रकृति पात्र

प्रकृति पात्रों में वृक्ष आदि आते हैं । परदेसी के कहने से राजा भीमसेन एक बाडी का निर्माण करवाते हैं[11] जिसमें विविध प्रकार के वृक्ष जैसे—अगर, अशोक,

1. दोहा संख्या 492
2. ,, ,, 527
3. ,, ,, 532
4. ,, ,, 534
5. ,, ,, 535
6. ,, ,, 536
7. ,, ,, 330
8. ,, ,, 332
9. ,, ,, 333
10. ,, ,, 323
11. ,, ,, 20

अनार, अर्जुन, करणी, केलि, कपूर, कदम्ब, जातीफल जामू, जम्ब, श्रीफल, सुपारी, नींबू, नारंगी, पीपल, खजूर, बादाम, दाख लगवाते हैं।[1]

जिनपालित जिनरक्षित रास के पात्र

प्रमुख पात्र जिनपाल और देवी हैं। गौण पात्र शत्रुनरिंद, माकंदी सेठ, भद्रा सेठाणी, जिनरक्षित, सूलीवाला वणिक व सेलग यक्ष आदि हैं।

जिनपाल

जिनपाल सेठ माकंदी का पुत्र है। उसकी माता भद्रा है।[2] यौवन को प्राप्त होने पर माता-पिता बड़े उत्साह के साथ जिनपाल का विवाह करते हैं।[3]

जिनपाल आज्ञाकारी पुत्र है। माता-पिता की आज्ञा लेकर वह परदेश में व्यापार के लिए जाता है और विघ्न रहित व्यवसाय करते हुए अपार धन लेकर लौटता है।[4] एक दिन वह फिर व्यापार करने जाने का प्रस्ताव पिता के सामने रखता है, परन्तु पिता आगत विघ्न के बारे में बताकर कहता है कि अपार लक्ष्मी है तुम घर बैठकर ही सुख करो।[5]

"विनाश काले विपरीत बुद्धि" की उक्ति जिनपाल के साथ भी घटित होती है—

तात धणी परिवारता नवि मानइ तेहना बोल
बिणसणि कालि सदा सापुरिसां विणसेइ बुद्धि निटोल ॥ 10 ॥

और इस प्रकार वह पिता के कथन का उल्लंघन कर समुद्र की ओर व्यापार के लिए चला जाता है। सागर पार करते समय उसने सुख पूर्वक कई दिनों तक यात्रा की पर तूफान मे घिर जाने पर उसे अपने पिता का कथन याद आता है और बचाव का उपाय सोचता है। सतप्त प्राणी का आश्रय ईश्वर ही है, अतः जिनपाल भी रक्षा हेतु ईश्वर को स्मरण करता है, परन्तु उसका जलपोत खण्ड-खण्ड हो जाता है।[6]

जिनपाल साहसी है। जहाज नष्ट हो जाने पर भी वह साहस नही छोड़ता। वह पोत के पाट को पकड़ लेता है और तीन दिन के कठिन परिश्रम के बाद उसे किनारा दिखाई देता है।[7] किनारे पर विश्राम के लिए बैठे जिनपाल को एक सुन्दर तरुणी आती हुई दिखाई देती है जो कामातुर है।[8]

---

1. दोहा संख्या 24 से 27, भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई ग्रंथ 1217 ला. द. ग्रं. अहमदाबाद
2. ,, ,, 5, जिनपालित जिनरक्षित रास ग्रं. 1621 म. भ. जै. ज्ञानभण्डार, बीकानेर
3. ,, ,, 6
4. ,, ,, 8
5. ,, ,, 10
6. ,, ,, 14 व 19
7. ,, ,, 21
8. ,, ,, 24

उसे भयंकर शब्द करते एवं हाथ में तलवार लिये आते देखकर जिनपाल भयभीत हो जाता है और वह अपने जीवन की भीख उससे मांगता है बदले में वह उसका कहना मानने को तैयार है ।[1]

वह भोगी के रूप में हमारे सामने आया है। देवी के महल मे आकर वह उस देवी के साथ भोग भोगता हुआ रहता है ।[2]

जिनपाल दयावान भी है। देवी के चले जाने पर एक दिन साहस कर जिनपाल देवी के द्वारा वर्जित दक्षिण वन की ओर चला जाता है[3] और सूली पर बैठे एक व्यक्ति को देखकर उसके दुःख का कारण जानना चाहता है[4] और कारण जानकर मरने के डर से भयभीत हुआ उससे बचने का उपाय पूछता है ।[5] सूली पर आसीन वणिक द्वारा बताये गये उपाय से वह सेलग यक्ष से मिलकर सकट से छुड़ाने एव चम्पापुरी पहुँचाने की प्रार्थना करता है ।[6] वह बुद्धिमान एव चतुर भी है । जिनपाल सेलग यक्ष के कहने के अनुरूप चलता है और सेलग की पूँछ पर चढ़कर सागर पार करता हुआ चम्पापुरी पहुँच जाता है ।[7]

जिनपाल घर पहुच कर माता-पिता को सब वृतान्त सुनाता है और वर्द्धमान स्वामी के उपदेशों से प्रभावित हो मोह-माया छोड़कर बड़े पुत्र को राज्य सौंपकर संयम भार ले लेता है ।[8] और विदेह क्षेत्र मे केवल ज्ञान प्राप्त करता है ।[9]

रयणा देवी

रयणा देवी अलौकिक पात्र के रूप मे इस काव्य में चित्रित की गई है। रयणा देवी तरुणी है जो काम आदि भावनाओं से ग्रसित है।[10] उसमे रूप परिवर्तन की क्षमता है । विकराल रूप धारण कर वह जिनपाल व जिनरक्षक के पास तलवार लेकर जाती है और आदेशात्मक स्वर मे उन्हें प्रतिज्ञा पालन के लिए कहती है, अन्यथा तलवार से मौत के घाट उतारने को तैयार है ।[11]

रयणा देवी दुष्ट चरित्र के रूप मे कथा फलक पर आई है। पोत के नष्ट हो जाने पर बचे हुये बणिको को वह घर लाकर वांछित सुखों को भोगती है और

1. दोहा संख्या 26
2. ,, ,, 31
3. ,, ,, 45
4. ,, ,, 47
5. ,, ,, 51
6. ,, ,, 58
7. ,, ,, 73
8. ,, ,, 75
9. ,, ,, 79
10. ,, ,, 22-23
11. ,, ,, 25

एक दिन उनका भक्षण भी कर लेती है ।[1] देवी कैसी हैं उसके विषय में कवि की उक्ति निम्नलिखित है—

हाव भाव करि मन हरइ प्रीय सु ं सरषइ प्रीति ।
मन मइली चित्त मोहनी चंचल कूडी चीत ।। 30 ।।

वह हाव-भावों द्वारा मन का हरण करने वाली तथा प्रिय से प्रीति दिखाने वाली मन की मैली और चित्त की मोहनी चचल नारी है ।

रयणा देवी चण्डी का रूप है । सेलग यक्ष की सहायता से वणिक पुत्र उसके चंगुल से निकल भागते हैं । देवी भवन में पुरुषों को न देख क्रोध में भर तलवार ले उनके पीछे दौड़ती है ।[2] जिनरक्षित के प्रति उसका सच्चा स्नेह है[3] और उसके बिना जीना भी उसे असम्भव लगता है ऐसा बताती है ।[4] जिनरक्षित को प्राप्त कर वह उसे दक्षिण वन न जाने की प्रतिज्ञा की याद दिलाती है और उसे मार डालती है ।[5] इस प्रकार रयणा देवी खल नायिका के रूप में चित्रित की गई है ।

गौण पात्र

गौण पात्रो में चम्पापुरी का शासक शत्रुनरिंद है । वह शूरवीर और प्रजा की सेवा करने वाला है ।[6] उसी के राज्य में माकदी नाम का सेठ रहता है जो धनवान है, उसकी स्त्री भद्रा है जो सदाचारिणी है ।[7] उनके जिनरक्षित और जिनपाल दो पुत्र है ।[8] जिनरक्षित, देवी द्वारा समाप्त कर दिया जाता है ।[9]

सूली वाला व्यक्ति भी एक व्यापारी है जिसे देवी ही पकड़ लाती है ।[10] सेलग यक्ष, अलौकिक पात्र है, वह सहायक के रूप में कथा में आया है—

जिनपाल सेलग पूठेइ रहयउ जी, सायर लंघ असेस
चम्पापुरी यक्षइ पहुँचा दीयउजी निजघरि कीयउ प्रवेस ।। 69 ।।

इस प्रकार जिनपालित जिनरक्षित रास संक्षिप्त कथा के पात्र भी संक्षिप्त ही हैं जिन्हें कवि ने बड़े ही सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से कथा फलक पर उतारा है ।

---

1. दोहा संख्या 45–46
2. ,, ,, 59
3. ,, ,, 64
4. ,, ,, 66
5. ,, ,, 68
6. ,, ,, 4
7. ,, ,, 5
8. ,, ,, 6
9. ,, ,, 68
10. ,, ,, 44

अगड़दत्त रास के पात्र

प्रमुख मानव पात्रों में अगड़दत्त, सोमदत्त, भुजंगम चोर, मदनमंजरी व वीरमती हैं। भीमसेन, सोहग सुन्दरी, सूरसेन, अभंगसेन, चम्पापुरी का महाजन, सागरदत्त आदि पात्र सहायक या गौण पात्र हैं। अदिव्य पात्र विद्याधर है।

प्रमुख पात्र

अगड़दत्त कुमार

अगड़दत्त कथा का नायक है। नायक राजकुमार न होकर सामन्त कुमार हैं। वह सूरसेन का पुत्र है तथा अति ही रूपवान होने के कारण कवि ने उसकी तुलना इन्द्रकुमार से की है।[1] आठ वर्ष की अल्पायु मे पिता का देहान्त हो जाने पर अबोध अगड़दत्त को विद्या अध्ययन के लिए परदेश जाना पड़ता है।[2]

अगड़दत्त विलक्षण बुद्धि-वाला एव कला प्रेमी है। अध्ययन के समय आलस्य विहीन होकर अर्थ ग्रहण करता है और इस प्रकार कुछ ही दिनों मे वह बहत्तर प्रकार की कलाओं मे दक्ष हो जाता है।[3] शस्त्र विद्या मे भी वह निपुण है। वह चालीस प्रकार की शस्त्र विद्या तथा छत्तीस प्रकार की सगीत कला मे दक्ष है।[4]

अगडदत्त मे शौर्य की भावना प्रबल है। भुजगम चोर को पकडने की प्रतिज्ञा[5] तथा मदमस्त हाथी को वीणा के मधुर राग से वश मे करना[6] तथा गोकुल गाँव मे गोकुलपति का, मार्ग के भय एवं सकट बताकर रोकने पर भी उसका आगे बढना,[7] तथा मार्ग के चारो सकटो से बच निकलना,[8] उसके अद्‌भुत पराक्रम एवं तीक्ष्ण बुद्धि का द्योतक है। कठिनाइयो का धैर्य एव साहस से सामना करना ही उसका उद्देश्य रहा है।

अगड़दत्त एक आज्ञाकारी पुत्र एव शिष्य भी है। आज्ञाकारी पुत्र का रूप हमे उस समय दिखाई देता है जब वह अपनी माता का रोना नही देख सकता तथा उसके कहने से ही वह विद्या अध्ययन के लिये चंपापुरी जाता है।[9] गुरु से शिक्षा प्राप्त करते समय मदनमजरी के प्रेम निवेदन करने पर भी वह गुरू की लज्जा वश अपना प्रेम प्रकट नही कर पाता[10] साथ ही गोकुल ग्राम से वसंतपुर लौटते समय भी वह अपने गुरू से मिलना नहीं भूलता।[11]

---

1. दोहा म'ख्या 9, अगड़दत्त रास चौपई ग्रं० 605 भण्डारकर आरियंटल इस्टीट्यूट, पूना
2. ,, ,, 27
3. ,, ,, 33
4. ,, ,, 36
5. ,, ,, 61
6. ,, ,, 127
7. ,, ,, 160
8. ,, ,, 222
9. ,, ,, 27
10. ,, ,, 44
11. ,, ,, 225

प्रारम्भ में अगडदत्त रूप लोभी एवं भोगी दिखाई देता है। परन्तु मदनमंजरी की बातों से वह नारी प्रेम को कुटिल और अविश्वासी घोषित करता है।[1] अगड़दत्त को स्त्री पर विश्वास नहीं है और यही अविश्वास वीरमती के प्रहार से उसकी रक्षा करता है।[2]

अगडदत्त कर्तव्य-निष्ठ नायक है। जिस कार्य को करने का वह बीड़ा उठाता है उसे पूर्ण भी करता है। क्षत्रिय कुमार होने के कारण वह वचन का पक्का भी है। मदनमंजरी को दिया हुआ वचन उसे याद रहता है। धात्री को कहे गये सन्देश से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है।[3]

अगडदत्त एक निष्ठ पति भी है। मदनमजरी की सर्पदशन से मृत्यु हो जाने पर वह उसी के साथ जल मरने को तैयार हो जाता है—

सूका काष्ट बहूला संग्रही मांहि बइठउ प्रमदा ग्रही
अगनि लगाडइ चिहू दसि जिसि, ते विद्याधर आविउतिसि ॥ 255 ॥

अगड़दत्त महानदानी और विशाल हृदय वाला है। मदनमंजरी के जीवित हो जाने पर कुमार विद्याधर को नवसर हार देता है।[4] अपने प्रेम की सत्यता को प्रदर्शित करने के लिये वह मदनमजरी को विवाह से पूर्व सवा करोड़ का हार देता है।[5]

वह कुशल योद्धा भी है। अपने पिता के दुश्मन का स्मरण कर वह अमंगसेन को युद्ध के लिये ललकारता है और तलवार से उसका मस्तक काट कर अपने पिता का बदला लेता है।[6]

सासारिक सुखो को भोगता हुआ अगडदत्त कुमार धर्म उपदेश ग्रहण करता है तथा राज्य रिद्धि का त्याग करके सयम भार ग्रहण कर मोक्ष को प्राप्त होता है।

इस प्रकार अगड़दत्त कुमार उच्चकुल मे उत्पन्न धीरललित नायक के गुणो से सम्पन्न एक कर्तव्य-निष्ठ नायक एवं कुशल योद्धा है।

सोमदत्त

सोमदत्त अगड़दत्त के पिता सूरसेन का मित्र है।[7] वह सच्चे मित्र एवं सहायक के रूप मे कथा में चित्रित हुआ है। अगड़दत्त के चपापुरी पहुँचने पर मित्र

1. दोहा सख्या 280
2. ,, ,, 101 से 103
3. वलतउ कुमर कहि मुखि हसी मयण मंजरी मुझ मनि वसी
   मुझ बिता छइ एहनी धरी, वाचा अविचल छइ माहरी ॥ 137 ॥
4. दोहा संख्या 261
5. ,, ,, 138
6. अमगसेन नी सघली रिद्धि, राइ अगड़दत्त नइ दिद्ध
   वालिउ वयर पिता नउ सही, निज मंदिर आविउ गहगही ॥ 238 ॥
7. दोहा संख्या 25

की मृत्यु जानकर वह बहुत ही दुःखी होता है। अगड़दत्त को वह अपना ही पुत्र मानता है।

वह सीधे एवं सरल व्यक्तित्व वाला है। अगड़दत्त के रहने एवं भोजन की व्यवस्था भी करता है।[1] अगड़दत्त को वह ही राजा के पास ले जाता है। इस प्रकार सोमदत्त नायक के सहायक के रूप में कथा में आया है।

भुजगंम चोर

भुजगंम चोर कथा में खलनायक के रूप में आया है। वह वेश बदलकर नगर में घूमता है तथा बड़े बड़े सेठों के यहाँ चोरी करता है। चोरी के समय वह अपने वस्त्र बदल लेता है।[2]

मंत्र विद्या का वह ज्ञाता है। चोरी करते समय वह मंत्र के प्रभाव से ही ताले खोल देता है, जागृत लोग भी निद्रावश हो जाते हैं तथा मंत्र के प्रभाव से ही उसे कोई देख नही सकता।[3] वह विद्या बल से ही आकाश मे भी उड़ सकता है।[4]

भुजगंम चोर चतुर एव चालाक भी है। चुराये हुये धन को वह मजदूरो की सहायता से उठवा कर ले जाता है[5] और अपने निश्चित स्थान पर पहुँचाने के बाद उनकी धोखे से हत्या कर देता है[6] परन्तु अगडदत्त के हाथो ही वह मारा जाता है[7] और इस प्रकार भुजगंम चोर का अन्त हो जाता है।

नारी पात्र

मदनमंजरी

मदनमजरी काव्य की नायिका है। वह अत्यधिक रूपवान एवं आगत यौवना है।[8] उसका जीवन ही विषय-वासनाओं से लिप्त है। अगडदत्त से किया गया प्रणय निवेदन इसका प्रमाण है[9] अगडदत्त जब सुरसुन्दरी से विवाह कर लेता है तब वह धात्री को भेजकर अपने वचन की याद दिलाती है।[10]

---

1. दोहा संख्या 53
2. ,, ,, 74
3. मंत्र भणी ठब का कीजडी ताला तुटिया लिऊ घडी
   मारग मंत्र जगणं तू जाय जागता नर निद्रा थाइ ॥ 76 ॥
   फरइ निशक नगर मा सही मंत्र शक्ति को देखइ नही ॥ 77 ॥
4. दोहा संख्या 108
5. ,, ,, 79
6. ,, ,, 83
7. ,, ,, 90
8. रूप अधिक अति सुन्दर देह, भर यौवन वय आवी तेह ॥ 37 ॥
9. दोहा संख्या 47
10. ,, ,, 136

मदनमंजरी स्त्री के मिथ्या चरित्र का प्रतिनिधित्व करती है। वह कामुक प्रवृत्ति वाली स्त्री है। काम के वशीभूत हो वह अगड़दत्त को मारने को कह देती है और स्वय सोचती है कि यदि ये पुरुष सुन्दर होंगे तो वह प्रिय के समान इन्हें आदर देगी।[1] चोर का यह कहना कि कामातुर नारी अपने पुत्र, भाई एवं प्रिय का संहार करने में भी नहीं चुकती, मदनमंजरी की कामुकता को प्रमाणित करता है।[2] इस दुष्टा का अन्त भी अगडदत्त के हाथों ही होता है।[3] कवि ने मदनमंजरी के चरित्र को उज्जवल बनाये रखने के लिये प्रारम्भ में ही उसकी बुद्धि बदलने में कर्मयोग का सहारा लेकर उसके चरित्र की महानता को कायम रखने का प्रयास किया है।[4]

वीरमती

वीरमती भुजगंम चोर की पुत्री है। वह असत् प्रवृत्तियों की द्योतक है। वह दुष्ट नारी के रूप में हमारे सामने आती है। गुफा में अगड़दत्त को वह धोखे से मारना चाहती है[5] और दुष्कर्मों के कारण उसे अगड़दत्त द्वारा बंधी बनाये जा कर राजदरबार मे उपस्थित होना पड़ता है।[6] इस प्रकार वीरमती का अन्त भी उसकी प्रवृत्तियो के अनुरूप ही होता है।

गौण पात्र

भीमसेन वसंतपुर का शासक है। उसकी पटरानी सोहागसुन्दरी है[7] सूरसेन राजा भीमसेन का सामत तथा अगड़दत्त का पिता है। सूरसेन सुभट योद्धा है अकेला ही एक सहस्र व्यक्तियो को हरा देता है।[8] परदेसी के रूप में अभगसेन सूरसेन को हराकर उसका पद एव धन आदि प्राप्त कर लेता है।[9] परन्तु अगड़दत्त अपने पिता का बदला लेकर उसका शीश काट देता है।[10]

चपापुरी का महाजन अगडदत्त के रहने तथा भोजन एवं वस्त्र की व्यवस्था करता है।[11] सागर सेठ भी चंपापुरी का ही रहने वाला व्यापारी है।[12]

---

1. दोहा संख्या 272, 273
2. एक कहि कामात्तर नारि सुत बंधव प्रीय करइ संहार ॥ 274 ॥
3. दोहा संख्या 280
4. स भली बात मयण मंजरी कर्म योगि नारी मति फरी ॥ 271 ॥
5. दोहा संख्या 103
6. ,, ,, 105
7. ,, ,, 6
8. ,, ,, 8
9. ,, ,, 16
10. ,, ,, 237
11. ,, ,, 32
12. ,, ,, 36, 38

इस प्रकार सभी गौण पात्र अगड़दत्त के सहायक रूप में आये हैं।

अदिव्य पात्र

विद्याधर

विद्याधर अदिव्य पात्र है। मदनमजरी की सर्पदशन से मृत्यु हो जाने पर विद्याधर ही उसे अलौकिक विद्या द्वारा जीवन दान देता है।[1] वह अगड़दत्त का शुभचिंतक भी है। अगड़दत्त को मदनमजरी के मिथ्या प्रेम के प्रति भी सजग कराता है।[2]

इस प्रकार "अगड़दत्तरास चौपई" के सभी पात्र नायक अगड़दत्त के सहायक रूप मे आये हैं। सभी पात्रों का जीवन चरित्र बहुत ही संक्षिप्त रूप में कथा मे आया है परन्तु चरित्र की संक्षिप्तता से पात्रों के चरित्र की महानता कम नही हो पाई है।

---

1. दोहा संख्या 258
2. कहि विद्याधर सुणउ कुमार, ताहरइ एह सित प्रेम अपार
   पण नारी हुइ नीठर जाति, विद्याधर कहि वीतक वात ॥ 259 ॥

पंचम अध्याय

कवि के आख्यान काव्यों का साहित्यिक मूल्यांकन

काव्य प्रणयन की शैली में कवि कुशललाभ ने अपनी काव्य कला की कुशलता का परिचय दिया है। कुशललाभ की सभी कथाओं में मुख्य और प्रासंगिक कथाओं का गुम्फन बडी ही कुशलता से किया गया है। जैसे अमृत लाने के लिये ही वेताल का उल्लेख है तथा मारवाणी को प्राण दान करने के लिये ही योगी योगिन का अविर्भाव हुआ है।

सभी कथायें नायक-नायिका के इर्द-गिर्द घूमती हुई चरम लक्ष्य को प्राप्त करती है। सयोग वियोग के चित्रण कथा को विशेष रूप से प्रभाविष्णु बनाते है और लक्ष्य प्राप्ति के बाद कथा पुनः सक्रिय हो जाती है।

कवि के सम्पूर्ण कथा काव्य में मार्मिक परिस्थितियो के वितरण एवं चित्रण काव्य मे रसात्मकता लाने मे योग देते हैं। रसात्मकता ही काव्य का प्राण है। इसी से काव्य अमर बनता है। ऐसा अनपेक्षित वर्णन काव्य मे कही भी नहीं मिलता जिससे कि कथा में शुष्कता की सृष्टि हुई हो। जीवन का मोहक एवं वास्तविक चित्र खीचने मे कथाकार ने अपनी सूझबूझ का परिचय दिया है। यही कारण है कि कथा काव्य हमारी रागात्मक वृत्ति को जागृत कर हमारे समक्ष एक चित्र सा प्रस्तुत करती है।

कुशललाभ के कथा-साहित्य के काव्य-सौष्ठव को हम दो भागों-भाव पक्ष और कला पक्ष में विभक्त कर सकते है। कवि के कथा साहित्य मे भावों की प्रधानता है।

भाव–पक्ष

मनुष्य के हृदय में भावों का उठना स्वाभाविक ही है। यह भाव मानव मन में सहयोगी या विरोधी प्रवृत्ति से उत्पन्न होते हैं ऐसे समय में उन भावों को यदि

कोई व्यक्ति कवितात्मक शैली में वाणी प्रदान कर देता है तो वह काव्य बन जाते हैं। "प्रबल भावों का स्वतः अनायास उच्छलन ही काव्य है ।"[1] काव्य के अध्ययन के समय हमारा ध्यान उन्हीं प्रबल भावों की ओर रहता है ।

कुशललाभ ने अपने कथा काव्यो मे प्रेम का जिस उल्लास एव उमंग के साथ वर्णन किया है उतना अन्य किसी मनोवृत्ति का नही। प्रेम का वर्णन सभी कवि अपने-अपने ढंग से करते है। प्रेम वह अनुकूल वृत्ति है जो शील सौन्दर्य और सामीप्य के कारण उत्पन्न होता है। प्रेम सकल चराचर प्रकृति को अपने मे समेट लेता है, यह उसकी विशेषता है। इस प्रकार प्रम किसी भी अच्छे एव सुन्दर काव्य का एक अंग हो सकता है। शैली ने साधारण रूप से काव्य कल्पना की अभिव्यक्ति को माना है ।[2] तो हेजलिट ने कहा है कि 'काव्य, कल्पना और भाववेशो की भाषा है।'[3] काव्य मे कल्पना की मन्जुलता और रमणीयता होती है। यह त्रस्त मानव की मनोरम क्रीड़ा स्थली है। आचार्य मम्मट काव्य उसे मानते है जिसमे भाव पक्ष और कला पक्ष का सुन्दर सामजस्य हो। जिस काव्य मे सुन्दर भाव न होंगे, जो काव्य जन-जीवन को मानवता के उच्च स्तर तक ले जाने मे समर्थ न होगा, जो मनुष्य के सुप्त रागात्मक भावो को जागृत करके उसमे सवेदना व सहानुभूति के सामान्य भाव उपस्थित करने मे असमर्थ होगा वह काव्य गुण युक्त नही होगा। मम्मट के अनुसार सुन्दर भाव, भाषा और अभिव्यक्ति सौन्दर्य के साथ ही होनी चाहिये उसमे भाषा विषयक दोष नही होने चाहिये ।

काव्य का दूसरा लक्षण 'रसात्मकं वाक्य काव्य' है। रसात्मकता से तात्पर्य है जिस वाक्य में सुन्दर भाव, श्रेष्ठ विचार और रागात्मकता होगी, जो हमारे मनोविकारों को तरगित करके आनन्द की स्थिति मे, सुन्दर अभिव्यक्ति के साथ लाने मे समर्थ होंगे। सुन्दर अभिव्यक्ति भी रसात्मकता के लिये आवश्यक है ।

सस्कृत काव्य शास्त्र के अनुसार काव्य का तीसरा लक्षण आनन्द वर्धनाचार्य का है जो लिखते है कि "रमणीयार्थ-प्रतिपादकं वाक्य काव्य" रमणीयार्थ का प्रतिपादन करने वाला वाक्य ही काव्य है ।

दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि भाव तथा उसकी अभिव्यक्ति ही काव्य है। भाव ही काव्य की आत्मा है और कला ही उसका शरीर है।

भाव-पक्ष के तीन तत्व हैं—बुद्धितत्व, कल्पना तत्व और रागात्मक तत्व। बुद्धि तत्व में उच्च विचार तथा सत्य का उद्घाटन होता है। प्रत्येक भाव के पीछे

1. Poetry is the Spontaneous overflow of powerful feelings- Wards-Barth
2. Poetry in a general sense may be defined as the expression of the imagination.
3. Poetry is the langusge of the imagination and the passions"

कोई न कोई विचार प्रधान रूप से होता है, इसकी महानता उसके सत्य पर निर्भर करती है। सत्यं शिवं बुद्धि तत्व के द्वारा ही काव्य में लाये जाते हैं।

कल्पना तत्व काव्य की रचना शक्ति का परिणाम होता है। काव्य मे कल्पना का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है, परन्तु कल्पना का आधार सत्य होना चाहिये।

काव्य का रसात्मक या रागात्मक तत्व वह है जो हमारे मन को उद्वेलित कर देता है। काव्यकार जीवन की उन साधारण से साधारण घटनाओ को छूता है जिनका श्रवण करने मात्र से हृदय में रस का सचार होता है।

भाव की चरम परिणति ही रस है। शृंगार रस को रसराज की सज्ञा दी गई है। शृंगार का स्थायी भाव रति है। यही स्थायी भाव नायक-नायिका के अगो की मधुर चेष्टाओ के द्वारा एक दूसरे के हृदय में परिपक्व होकर शृंगार रस कहलाता है।[1]

शास्त्रकारो के प्रेम मे दु:ख और सुख के आधार पर शृगार के दो भेद किये है—संयोग तथा वियोग।[2]

कुशललाभ ने सयोग एव वियोग दोनो का चित्रण किया है, किन्तु प्रमुखता विप्रलभ शृगार को ही दी गई है। सयोग वर्णन वियोग की अपेक्षा कम हुआ है। भारतीय काव्यकारो ने सामान्यत: काव्य के अन्त मे सयोग (नायक नायिका का) कराकर काव्य को सुखान्त बनाया है।

विप्रलंभ शृंगार

सयोग की अपेक्षा वियोग मानव हृदय को अधिक प्रभावित करता है। सयोग मे प्रेम पात्र एक ही रहता है किन्तु वियोग मे तो वह त्रिभुवन के कण-कण में व्याप्त हो जाता है। विरह जीवन की वह परिस्थिति विशेष है जिसमे प्रेमी जीवन का विश्लेषण हो जाता है। जीवन के इन दो मोर्गो मे मानव मन विरह की कल्याणमयी घाटी का ही पथिक बनता है, क्योकि दु:ख के भाव जितना अधिक मर्मस्थल को स्पर्श करते हैं उतना सुखमय भाव नही। आदि कवि वाल्मीकि भी क्रौचवध से शोकातुर हो उठे थे और उनके मानस से एक अन्त: प्रेरणा द्वारा यह वाग्धारा प्रस्फुरित हो उठी थी—

"मा निषाद प्रतिष्ठांत्वगगमः शाश्वती समः।
यत्क्रौच मिथुनादेकमम्रवधी काम मोहितम ।।

इस प्रकार बधिक द्वारा जनित दयनीय दशा से कवि का हृदय करुण भावों से उद्वेलित हो उठा, और उसी के वशीभूत हो कवि ने शब्द चित्रों को अपनी

---

1. रस सिद्धान्त : स्वरूप विश्लेषण : डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित : पृष्ठ 313
2. धनंजय ने शृंगार के तीन भेद किये हैं—सयोग, अयोग, विप्रयोग-रूपक—4-50

तूलिका द्वारा उपस्थित कर दिया। भवभूति ने भी नवरसों में करुण रस को ही प्रधानता दी है–"एको रस करुणं एव स।"

विरह प्रेम का तप्त स्वर्ण है या विरह प्रेम की कसौटी है जिस पर प्रेम रूपी स्वर्ण की परीक्षा होती है। वेदना की अग्नि में प्रेम की मलिनता गल जाती है और जो कुछ शेष रहता है वह स्वच्छ एव निर्मल प्रेम होता है। प्रेम जहाँ वियोग में विस्तृत क्षेत्र पाता है वहाँ संयोग मे संकीर्ण। विरह मीठी-मीठी कसक के साथ हृदय में रस की अनुभूति कराता है। वाणी के साहचर्य से बाह्य जगत् में जो वेदना फूट पड़ती है वही तो सरस काव्य है। तभी तो कवि पन्त कह उठे है—

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान
उमड़ कर आँखों से चुपचाप, वही होगी कविता अनजान।

महादेवी वर्मा की कविताओ का भी प्रधान स्वर वेदना और दु.ख ही है। प्रत्येक भावुक कवि के हृदय मे एक विरहिणी नारी है जो अपने दुःखो का गान सुनाया करती है। यही विरहिणी कालिदास के हृदय में शकुन्तला, भवभूति के हृदय मे सीता, जायसी की आत्मा मे नागमती, सूर के प्राणों मे राधा और मीरा की सासों मे अरुप होकर रोई है। कबीर ने तो यहाँ तक कह दिया है कि जिस मन मे विरह का सचार नही उसे मसान समझना चाहिये।[1] भोज के अनुसार–'जहाँ रति नामक भाव प्रकर्ष को प्राप्त करे लेकिन अभीष्ट को न पा सके वहाँ विप्रलम्भ शृंगार कहा जाता है।'[2] विप्रलम्भ शृंगार के चार भेद माने गये है—पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण।[3]

पूर्वराग वियोग की वह प्रथमावस्था है जहाँ नायक या नायिका अपने प्रेमी के गुण अथवा सौन्दर्य का श्रवण करते है तथा मिलन की अभिलाषा मन मे निरन्तर बनी रहती है परन्तु वे एक दूसरे से मिल नही पाते हैं। मान की अवस्था मे नायक नायिका मे प्रेम होते हुए भी किसी कारणवश अथवा बिना कारण ही एक दूसरे से रूठे रहते हैं। प्रवास मे नायक नायिका कार्यवश शापग्रस्त होकर, भ्रमवश अथवा देशाटन के कारण एक दूसरे से वियुक्त हो जाते हैं। करुण विप्रलम्भ की अन्तिम दशा है। इसमे नायक अथवा नायिका, की मृत्यु और मिलन की भविष्यवाणी भी होती है।

विप्रलम्भ शृंगार की दस दशायें मानी गई हैं—अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, संज्वर, जड़ता और मरण।[4]

---

1. जोहिघट विरह न संचरे, सो घट जान मसान। —कबीर
2. सरस्वती कंठा भरण · 5-45
3. सच पूर्वराग मान प्रवास करुणात्मक चतुर्धा स्यात्, साहित्य दर्पण–विश्वनाथ 3—187
4. साहित्य दर्पण . विश्वनाथ 3—190

कुशललाभ के सभी काव्यों के पात्र विप्रलम्भ की स्थिति से गुजरते हैं। उनकी कथाओं में विप्रलम्भ शृंगार निम्नलिखित रूपों में मिलता है—

1. मारवणी का वियोग
2. मालवणी का वियोग
3 ढोला का वियोग
4. माधव का वियोग
5. कंदला का वियोग
6 तेजसार का वियोग
7. भीमसेन का वियोग
8 मदनमंजरी का वियोग

मारवणी का वियोग

मारवणी का यौवनागम तथा सौदागर से ढोला के बारे मे सुनना ही विरह की पृष्ठभूमि उपस्थित करता है। मारवणी ढोला के विषय में सुनकर विरह व्यथित हो जाती है और निश्वासें भरने लगती है।[1]

प्रेमी को देखे बिना वियोग कैसे ? प्रश्न यह उठ सकता है। अतः कवि ने पहले ही इसका समाधान कर दिया है कि मारवणी सौदागर से ढोला के बारे मे सुनती है और विरह तब ही उसे व्यथित करता है। मारवणी की विरह दशा छुपाये नहीं छुपती है। उसकी दशा देखकर दीपक धारणी उससे कारण पूछती है। माता मारवणी की विरह स्थिति को छुपकर देखती है। मारवणी कुरझां के शब्दों पर बार-बार प्रिय को स्मरण करती है और विलाप करती है। उसके नैत्रो से आंसू झरते है।[2]

मारवणी नीद में सोई हुई है और स्वप्न मे आकर ढोला ने उसे जगा दिया।[3]

मारवणी को अपने विरह में पक्षी भी दुःखी दिखाई देता है। वह अपनी सखी से कहती है कि रात को सरोवर मे किसी पक्षी ने कलरव किया। वह सरोवर मे और मैं अपने घर मे। हम दोनो की ही आख नही लगी—

राति सखी इणि ताल मई काइज कुरली पख
उवै सरि हूँ घरि आपणइ, बिहूँ न मेली आंखे ॥ 244 ॥

---

1. सुणी मारवणी आवइ घरे आपउ विरह भरण बल घेर
सूती सेज करे बेवास, मोडइ अंग, मूंकइ नीसास
ढोला मारू चौपई-ह. प. 236
2. कुंझडियाँ मिलि दूहा कहइ माता सांभलि छानी रहइ
वार बार प्रीतम सम्भरइ करि विलाप नै आँसू झरइ—
ढोला मारू चोपई—243
3. दोहा संख्या 484 ढोला मारू की चौपई

कुररी पक्षियों का स्वर उसे अपने प्रियतम की स्मृति दिलाता है और उसके नैत्रों में आंसू का सागर भर आता है ।[1] उस स्वर से उसके अंगो पर आरी चलने लगी[2] और प्रियतम की स्मृति 'सार' की तरह सालने लगी ।[3] यहाँ मारवणी की करुण दशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है ।

मारवणी अपने प्रियतम से मिलने को व्याकुल है । वह कुरझो से उनकी पांखें मागती है ताकि उन्हे लगाकर समुद्र पार कर वह प्रियतम के पास पहुंच सकें—

कुझाँ घउ नइ पखड़ो थाकउ विनउ वहेसि
सायर लघी प्री मिलउँ, प्री मिलिपाछी देसि ।। 222 ।।

कुरझें पख देने मे तो असमर्थ है परन्तु वे उसकी सहायता करने को तैयार है अत: प्रिय का सदेश पख पर लिखने की बात कहती है क्योंकि वे पक्षी है यदि मनुष्य होती तो मुख से कह देती ।[4]

अपने प्रिय के वियोग मे विरहिणी नायिका की वेदना मार्मिक है । यह वेदना पक्षियो तक के हृदय को पिघला देती है । सहानुभूति और संवेदना का इतना व्यापक विस्तार केवल विरह अवस्था मे ही पाया जाता है । जायसी की नागमती के विरह से दु खित हुआ एक पक्षी उसका सदेश ले जाने के लिए तैयार हो जाता है । रामचन्द्र शुक्ल ने नागमती के विरह वर्णन की मार्मिकता का उद्घाटन करते हुये कहा है—'यह पुण्य दशा है जिसमे यह सब अपने सगे लगने लगते हैं और यह जान पडने लगता है कि इन्हे दु:ख सुनाने से भी जी हल्का होगा.... ....हृदय की इस व्यापक दशा का कवियों ने केवल प्रेम दशा मे ही वर्णन किया है ।[5]

सदेश प्रेषण की परम्परा अत्यधिक प्राचीन काल से चली आ रही है । जब प्रिय वियुक्त होकर हजारो मील दूरी पर जा बसता है तो विरहिणी भी किसी गतिशील वस्तु को देखकर उसके द्वारा अपने प्रियतम के पास सदेश भेजना चाहती है । कवियो ने मेघ, अग्नि, हस, उद्धव, कोकिल एव भ्रमर आदि को तो दूत बनाया ही है किन्तु ढोला मारवणी चौपई का क्रोच-दूत अपने ढग का अनूठा ही है । सदेश प्रेषण कृत्रिमता से दूर है तथा यहाँ विरहिणी की प्रिय को सदेश भिजवाने की लालसा की वास्तविक अभिव्यक्ति हुई है ।

---

1. कुझडियाँ कलरव कियउ धरि पाछिले वणेहि
   सूती साजण सम्रभया, द्रह भरिया नयनेही—247
2. दोहा संख्या 245
3. दोहा संख्या 246
4. माणस हुवाँ त मुख ववाँ म्हे छाँ कुंझडियाँह
   प्रिउ सन्देसउ पाठ विसु लिखि दे पखडियाँह ॥ ढोला मारू चौपई 224
5. जायसी ग्रंथावली, ना. प्र. सभा काशी, पृष्ठ संख्या 39

मारू अपना संदेश 'ढाढियों' (जाति विशेष) को बुलाकर स्वयं कहती है। मारू का यह संदेश भारतीय नारी के आत्मदान और आत्मसमर्पण का उत्कृष्ट एवं अनूठा उदाहरण है। जिसमें उसके हृदय की समस्त आशायें सिमट कर समा गई हैं। वह संदेश मे कहती है कि उसके शरीर मे प्राण नहीं है, केवल एक लौ है जो प्रिय की ओर जल रही है।[1]

प्रियतम न तो आते ही हैं न मिलते ही हैं और न ले ही जाते हैं फिर आकर क्या उसके अस्थि पजर पर कौए उडायेंगे।[2] मारवणी के विरह में लौकिक भाव ही प्रबल है। इसमें कोई सन्देह नही कि नारी का जीवन पति के सानिध्य में ही सार्थक है। वह अपने यौवन का उपभोग करने के लिये पति को आमत्रित करती है। मारू का यौवन रूपी हस्ती मदमस्त हो गया है उसे केवल ढोला ही अकुश द्वारा वश में कर सकता है।[3]

मारवणी के विरह को उद्दीप्त करने वाले तत्व ऋतु मास और त्यौहार विशेष रूप से उल्लेलनीय है। ऋतुओ की विभिन्न अवस्थाओं का समावेश उद्दीपन की दृष्टि से ही किया गया है। प्राकृतिक दृश्यों का आकर्षक एवं सुन्दर वास्तविक चित्रण विरहानुभूति को सजीव बनाने मे सहायक सिद्ध हुआ है।

मालवणी का विरह

"मालवणी का विरह एक पतिव्रता नारी की पवित्र वेदना और जीवन के परिपुष्ट प्रेम की दु ख भरी कहानी है। मारवणी और मालवणी के विरह मे उतना ही अन्तर है जितना एक पत्नी और प्रेमिका के विरह में होता है। यों तो मारवणी भी ढोला की परिणीता ही थी परन्तु मिलन से पूर्व उसका व्यक्तित्व एक प्रेमिका का ही व्यक्तित्व है।"[4] इसके विपरीत मालवणी का विरह एक पत्नी के प्रगाढ़ प्रेम से उत्पन्न वेदना का अथाह प्रवाह है जो अपने मे सयमित एव गम्भीर है।

मालवणी के वियोग की प्रथम स्थिति उस समय देखने को मिलती है जब वह ढोला को उदास देखकर उसकी उदासी का कारण जानना चाहती है।[5]

---

1. ढाढी जे प्रीतम मिलइ यूँ कहि दाख वियाह
   पंजर नहि छइ प्राणियउ थां दिस झल रहियाह ॥ 271 ॥
2. ढोला मिलिसि म बीसरिसि, नवि आविसि ना लेसि
   मारू तणइ करंकडइ वाइस ऊडावेसि ॥ 286 ॥
3. ढाढी जै राज्यंद मिलइ, यू दाख विया आइ
   जोवण हस्ती मद चढ़यउ अंकुस लइ घरि आइ ॥ 285 ॥
   ढोला मारू चौपई
4. ढोला मारू रा दूहा–सं० डा० शंभु सिंह मनोहर
5. वलि मालवणी वीनवइ हुँ, थी दासी तुम्झ
   का चिता चित अंतरे सा प्री दाखउ मुझ्झ ॥ 341 ॥

मालवणी जान जाती है कि ढोला मारवणी से मिलने को उत्सुक है और पूगल जाना चाहता है। मालवणी प्रेम मे वशीभूत ढोला को किसी प्रकार बहाने बना कर चार मास रोके रखने मे सफल हो जाती है।[1]

मारवणी से मिलने की इच्छा जानकर ही मालवाणी आगत वियोग की कल्पना मात्र से कांप उठती है। उसका शरीर संतप्त हो उठता है, अंगों में विरह व्याप्त हो जाता है और वह खडी-खडी ही धड़ाम से गिर पड़ती है मानों उसे सर्प दंशन हो गया हो।[2] होश आने पर वह ढोला को ग्रीष्म ऋतु की भीषण गर्मी[3] तथा पावस मे दाम्पत्य सुख की दुहाई देकर रोकती है। 'बिजलियो की क्रीडा, पानी का बरसना तथा पपीहे का बोलना ऐसे मे भी कोई घर छोडकर जाता है ऐसी ऋतु मे प्रवास करना अच्छा नही है।[4] पावस ऋतु में तो केवल भिखारी, नौकर तथा चोर ही घर के बाहर निकलते है।"[5]

मालवणी के बार-बार रोकने पर ढोला दशहरे तक रुक जाता है।[6] शीत ऋतु आ जाती है और ढोला फिर अपनी कामना प्रकट करता है। परन्तु मालवणी के लिए तो कोई भी ऋतु प्रवास के लिए उचित नही है—

सीयालइ तो सी पडइ उन्हालइ लू वाइ
बरसालइ भुइँ चीकणी चालण रूत्ति न काई ।।361।।

जिस ऋतु मे पाला पड़ता है उस ऋतु मे प्रौढा ही पति से वियुक्त नही रहती तो युवती कैसे रह सकती है।[7]

ढोला जब किसी तरह नही मानता तो मालवणी की दशा दयनीय हो जाती है.

ढोलउ हल्लाणउ करइ धण हल्लिवा न देह
झब-झब झूँबइ पागडइ डब-डब नयण भरेह ।। 374 ।।

---

1 मालवणी सुं प्रेम अपार ढोलउ रहियउ मास बेच्यारि
सुंदरि नेह विलूधउ सही, तोई मारुवणी वीसारइ नही ।। 362 ।।

2. मालवणी तन तप्यउ विरह पसरियउ अगि
ऊभी थी खडहड पड़ी जाणे डसी भुयगि ।। 343 ।।

3 थल तत्ता लू सॉमुही वाझोला पहियाह
म्हाँकउ कहियउ जउ करउ घरि वइठा रहियाह ।।345।।

4. बाबहिया पिउ पिउ करइ कोयल सुरंगइ साद
प्रिय तिण रूति आलिग रहयाँ ताह सुं किसउ सवाद ।। 356 ।।

5. दोहा संख्या 346

6. दोहा संख्या 367

7 जिणि दीहे पालउ पडइ टापर तुरी सहाइ
तिणि रिति बूढी ही झुरइ तरुणी केम रहाइ ।। 370 ।।

और अन्त में वह निराश होकर अपनी भावनाओं को कुचल कर यही कहती है :

हल्लउँ-हल्लउँ मत कर हियडइ सालभ देह
जे साचे ई हल्लरयउ, सूताँ पल्लाणेह ।। 375 ।।

'सूताँ पल्लाणेह' की कारुणिक विदाई ने मालवणी की अक्षय प्रेम की भावनाओ और असह्य वेदना को साकार कर दिया है। मालवणी ने ढोला को जाने के लिए तो कह दिया परन्तु उसके हृदय मे झझावत उठा हुआ है। वह ऊँट से लगड़ा हो जाने के लिए विनती करती है।[1]

मालवणी पन्द्रह दिन लगातार जागती रहती है आखिर उसे नीद आ ही जाती है और ढोला प्रस्थान कर जाता है।[2]

ऊट का शब्द सुनकर मालवणी जाग जाती है उसका कोमल हृदय टूक-टूक हो जाता है। आगत विरह उसकी शारीरिक और मानसिक वेदना को झकझोर देता है। वह विलाप कर उठती है---

धावउ धावउ हे सखी दो दाँवणि को लाज
साहिब म्हाँकउ चालियउ जइ कउ राखइ आज ।। 399 ।।

ढोला के जाते ही विरह के नगाडे बजने लगे उसका शरीर शिथिल हो गया तथा विरह से क्षीण होने के कारण हाथो से उसकी चूड़ियाँ खिसक पड़ी।[3]

वियोग वेदना मे वह अपने प्रेम के पवित्र आँसू ही बहा सकती है।[4] रोने से हृदय हल्का हो जाता है, परन्तु पहाड़ तो है ही नही जिस पर चढकर वह धाड़ (दहाड़) मार कर रो सके।[5] प्रिय के चले जाने पर उसकी वस्तुएँ हृदय मे सालती है। ढोला चला गया है मालवणी देखती है कि खूँटी पर जीन नही है और न ही

---

1. दोहा संख्या 382
2. प्री पासे इण परि मागती पनरह दीह रही जागती
   झाझी नीद्रं व्यापी नारि तउ करहउ आणे झेम्यउ बारि ।। 397 ।।
3. ढोला उआल्यउ हे सखी बाज्या विरह निसाणँ
   हाथे चूड़ी खिस पड़ी ढीला हुआ सन्धाण ।। 490 ।।
4. (क) बीछुडता ही सज्जणाँ राता किया रतान
   बारी बिहुँ चिहुँ नाखिया आसूँ मोती भ्रन्न ।। 403 ।।
   (ख) साई दे दे सज्जना, रातइइणि परि रुँन
   ऊरि ऊपरि और ढलइ जाँणि प्रवाला चून ।। 417 ।।
   (ग) रुनी रडी चडेहि जोई दिसि जाताँ तणी
   अभी हाथ मलेहि बिलखी हुई बल्लहा ।। 404 ।।
5. बाबा बलूँ देसडउ जिहाँ डूंगर नहिं कोई
   तिण चढि मुकउं धाहडी हीयउ उरलउ होइ ।। 407 ।।

जूते हैं, ऊँट भी अपने स्थान पर नहीं है। ये सभी स्थान मालवणी को ढोला की याद दिलाते हैं।[1] वियोग में वह सारस के शब्द को ऊँट का शब्द समझ कर दौड़कर ऊँचे स्थान पर चढ जाती है, परन्तु वहाँ न ढोला होता है और न ऊँट ही।[2] मालवणी ढोला के चले जाने पर अकेली तालाब पर जाती है, परन्तु वियोग मे पानी की लहरें उसे काले साँप की तरह दिखाई देती हैं।[3]

विरहिणी के मन मे आशा है कि एक दिन प्रिय अवश्य ही उससे आकर मिलेंगे और उसकी सभी आशाएँ फलीभूत हो जायेगी।[4]

इस प्रकार आशा की किरण को अपने हृदय मे छिपाये वह विरहिणी अपने प्रिय के लिए जीवित है।

ढोला का वियोग

मारवणी द्वारा प्रेषित विरह सन्देश ही ढोला के विरह को जागृत करता है। उसका विरह कर्तव्य प्रेरित है। कर्तव्य के आगे भी वह मारवणी को भुला नही पाता—

मालवणी सूँ प्रेम अपार, ढोलउ रहियउ मास बे चारि
सुंदरि नेह बिलूघउ सही, तोइ मारवणी बीसारइ नही ॥362॥

वह मालवणी के प्रति अपने कर्तव्यो की बलि नही देना चाहता है। अतः सयोगावस्था मे भी बार-बार जाने की बात कहता है और अन्त मे चला भी जाता है।

ढोला के विरह मे वह तीव्रता नही है, जो नायिका के विरह मे होती है। पर यह दोष नही है। स्वाभाविक ही है कि पुरुष मे विरह की तीव्रता नारी की अपेक्षा कम ही होती है, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि ढोला मे विरह ताप कम है। वह मारवणी से इतने दिन अज्ञानवश न मिलने की क्षमा भी माँगता है।[5]

ढोला सोचता है कि यदि उसके पंख होते तो वह शीघ्र ही चला जाता।[6] विरह व्याकुल ढोला की सयोगावस्था के लिए आकुलता, आतुरता बहुत ही बलवती

1, खूँटइ जीण न मोजडी कढ्या नही के कोण
साजनिया सालइ नही सालद आही ठणि ॥ 416 ॥
2 भूली सारस सद्दउइ जाणइ करहउ थाय
थाई थाई थल चढ़ी पग्गे दाधी माय ॥ 409 ॥
3. ढोला हूँ तुझ बाहिरी, झीलण गइय तलाइ
ऊजल काला नाग जिउँ, लहिरि ले ले खाय ॥ 415 ॥
4. ढोला जाइ वलि आविज्यउ आसा सहि फलीयाँह
सावण केरी बीज ज्यउँ झाबूकइ मिलियाँह ॥ 402 ॥
5. एह गुनह षमियो माहरेउ मय वियोग कीयो ताहरउ
निरति पषइ कुण जाणइ लोइ, अण जाण्यौ नरदोस न होइ ॥ 623 ॥
6. दोहा संख्या 320

होकर प्रकट हुई है और जब ढोला का कोई भी उपाय मालवणी के समक्ष नहीं चलता तो वह अन्त में अपने विरही हृदय की बात कह ही देता है—

सुणी सुन्दरि सच्चउ चवां भाजैइ मनची भ्रांति
मो मारू मिलिवा तणी खरी लिलग्गी खाँति ।। 341 ।।

मारवणी से मिलनार्थ जाते समय मालवणी शुक द्वारा भ्रांत सूचना भेजती है पर ढोला मारवणी को प्राप्त करने के लिए व्यग्र है। अतः उस पर मालवणी की मृत्यु की सूचना का भी कोई असर नही होता और शुक तक उसकी साधना सफल होने की कामना करता है।[1]

पूगल मार्ग मे ऊमर का चारण ढोला को मारवणी के लिए भ्रांत सूचना देता है—

जिण धण कारण ऊमह्यउ तिण धण सदा वेस
तिण मारू रा तन खिस्या पंडर हुवाज केस ।। 443 ।।

जिसे सुनकर ढोला का मन खिन्न हो जाता है और वह मारवणी की वृद्धावस्था के बारे में सुनकर नरवर लौटने की बात सोचता है।[2]

इससे ढोला की विरह तीव्रता और निष्ठा नष्ट हो जाती है। उसके मन में अस्थिरता, रूपासक्ति और कामेच्छा की गंध आने लगती है। ढोला की इस शंका का समाधान मारवणी का चारण बीसू यह कहकर करता है—

दउढ बरसरी मारूवी त्रिहूँ बरसाँरिउ कंत
जणरउ जोवण बहि गयउ तूं किउ जोबन वत ।। 450 ।।

मालवणी ढोला से उसकी उदासी का कारण पूछती है तो वह देशाटन का बहाना बनाता है। मालवणी को सुप्तावस्था मे छोड़कर पूगल प्रस्थान करता है। मारवणी से मिलने को आतुर है। ऊँट की धीमी चाल देखकर ढोला ऊँट से कहता है—दिन व्यतीत हो गया है संध्या के बादल छा गये हैं। झरने नीलायमान हो गये हैं, अरे काली ऊँटनी से उत्पन्न हुए ऊँट तू किस बूते पर बोला था कि मैंपहुँचा दूँगा।[3]

ढोला मारवणी से मिलने को व्यग्र है। वह ऊँट को छड़ी से सड़ासड़ मारता है :

सड सड बाहिम कंबडी, रांगां देह म चूरि
बिहुं दीपाँ बिचि मारूई मो थी केती दूरि ।। 474

1. थे सिध्यावउ सिध करउ पूजउ थाँकी आस
मत बीसारउ मन थकी उवा छइ थाँकी आस ।। 424 ।।
2. ढोलइ मन चिंता हुई चारण वचन सुणेह
हिव आव्याउ पाछउ वलउ, करजा केम करेइह ।। 444 ।।
3. दीह गयउ डर डंबरे नीले नीझरणेहि
काली जाया करहला बोल्यउ किसे गुणेहि ।। 473 ।।

मार्ग की विघ्न-बाधाओं को सहता हुआ ढोला किसी प्रकार पूगल पहुँच जाता है और पन्द्रह दिन ससुराल में रहने के बाद वह नरवर के लिए रवाना होता है। रास्ते में विश्राम के समय मारवणी को पीना साँप पी जाता है। ढोला मारवणी के गुणों को स्मरण कर विलाप करता है—

वाही थी गुण वेलडी वाही थी रसबेलि
पीणइ पीवी मारवी चाल्या सूती मेलि ।। 575 ।।

साथ के लोग ढोला को समझाते हैं कि पिंगल राजा की पुत्री चम्पावती जो मारवणी से तीन वर्ष बड़ी है और मारवणी के समान ही सुन्दर है उससे विवाह कर लो।[1]

ढोला जब उनकी यह बातें विवाह के बारे मे सुनता है तो विरह व्यथित हो उत्तर देता है :

इण भवि मारवणी मुझ नारि, सइ हथि दीधी सिरजन हार
साइ जो परमेसर संग्रही मुझ मरणउइण साथ इसही ।। 579 ।।

विधाता ने जिस मारवणी को मुझे दिया था वही इस जन्म मे मेरी स्त्री है। अब ईश्वर ने उसे उठा लिया तो उसी के साथ मेरा मरना भी उचित है। पन्द्रह वर्ष के वियोग के बाद वह बडे कष्टों से मारवणी को प्राप्त करता है और विधाता फिर विछोह करा देता है।[2] ढोला लोगो से कहता है कि जीकर इस दु.ख को कौन सहेगा अत अग्नि मे मारवणी के साथ मैं भी जल जाऊँगा।[3]

योगी ढोला के मरने की बात सुनकर कहता है कि तू व्यर्थ मे क्यों मरता है। प्रिय के मरने पर स्त्री तो उसके साथ जल जाती है परन्तु स्त्री के पीछे पुरुष कभी नही मरता।[4]

योगी की बात सुनकर ढोला को क्रोध आना स्वाभाविक ही है और वह योगी से कहता है कि तुम पराई बात मे क्यो पड़ते हो।[5] परन्तु योगी जब मारू को जिला देता है तो वही ढोला योगिन को नवसार हार तथा योगी को वस्त्र आदि देता है।[6]

---

1. दोहा संख्या 577–578
2 पनरह बरस विछोहउ हुओ घणइ कष्टि मेलावउ थयउ
बल विछोहा जउ करतार तउ इण भवि मुझ एह ज नारि ।। 580 ।।
3. बउलाओ प्रति ढोलउ कहइ ए दुष जीवेनइ कुण सहइ
एह्रु र वरत्यउ जोउइ हाथि पइसिसि पावक मारू साथि ।। 581 ।।
4. जोगी ढोला प्रति ईम कहइ काई रे काइर फोकट मरइ
प्री पूँठइ अस्त्री परजलइ पणि नारि पूठि पुरुष नवि बलइ ।। 590 ।।
5. आ ते माँडी अउंली रीति बात न बइसइ ढोला चीति
ढोलउ कहइ आयस सुणि बात कीजइ नही पराइ ताति ।। 591 ।।
6 ढोलउ आणदियउ अपार जोगिणि दीधउ नवसर हार
जोगी नई सोवन साँकल। पहिराया अति उतावला ।। 596 ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ढोला विरह कर्तव्य प्रेरित, सहज तथा गूढ़ अभिव्यक्ति युक्त है।

माधव का वियोग

माधव का विरह प्रवास जन्य है। माधव धीरोदात्त हैं। उसे कामावतार कहा गया है।

माधव शिलारूपी जयंती अप्सरा से विवाह करता है और अप्सरा नित्य प्रति रात्रि को माधव से मिलनार्थ स्वर्ग से आती है। माधव का विरही रूप उस समय हमारे सामने आता है जब वह स्वर्ग से जयती के श्राप दिये जाने के बाद पुष्पावती आता है। वह बार-बार अप्सरा का पथ निहारता है उसका विरह उसे अत्यधिक दुःख देता है वह सोचता है, है ! दैव यह सब कैसे हो गया ?[1]

माधव बार-बार उसके गुणो को व उसके साथ व्यतीत किये गये सुख के क्षणो को स्मरण करके दुखी होता है—

अपछर किहा। किहा सुख सेज हरिख किहा ? किहां सुख हेज ?
माधव भूरइ समारि समारि, जाणइ मुहिणा हुयु विचार ।। 121 ।।

जयंती के वियोग मे माधव का मन उचाट हो गया। उसे नीद नही आती तथा अन्न-जल का भी उसने त्याग कर दिया है।[2] वह कदला के वियोग में चितातुर है। माधव की दुर्बल देह देखकर माता-पिता उससे दुख का कारण पूछते है, परन्तु माधव उन्हें कुछ नही बताता।[3] पिता माधव को अपने साथ राज द्वार ले जाता है जिससे उसकी चिंता कुछ कम हो।[4]

राजा माधव को देश निकाले की आज्ञा देता है।[5] पुष्पावती से निष्कासन के बाद विरही माधव कामावती नगरी पहुचता है और कामसेन से प्राप्त सभी वस्त्राभूषण कामकंदला को उसकी कला से प्रसन्न होकर दे देता है।[6] राजा इसे अपना अपमान जानकर उसे कामावती छोड़ने की आज्ञा देता है—

चढ़ी रीस बोलीउ नरेस 'माधव' छडउ अम्हारू देस ।। 224 ।।

कामावती से निष्कासन के बाद माधव उज्जैन नगरी मे पहुँचता है। उसे कामावती का रहने वाला एक व्यक्ति मिलता है। वह अपना विरह सदेश भेजता है।

---

1. माधव मन मांहि सोचइ घणउ पंथ निहालइ अपछर तणउ
   तेहनइ विरहि घणउ दुख थयउ दिखउ दैव किसिउ अे हुउ ॥ 120 ॥
2. घणा दीह लगि जोई वाट अपछर नावइ मनि ऊचाट
   छंडी बिद अन्न नइ नीर दी मइ माधव दुखी सरीर ॥ 122 ॥
3. माता पिता घणउ दुख धरइ पूछिउ पुत्र बात नवि करइ
   कोइ न जाणइ कारण तेह, दीसइ माधव दुर्बल देह ॥ 125 ॥
4. दोहा संख्या 128
5. ,, ,, 153
6. ,, ,, 219

वह लिखता है—यह मत सोचना कि दूर रहने से प्रीति भी चली जाती है नैत्रों का विछोह हो जाने पर भी प्राण तो तुम्हारे ही पास हैं।[1]

माधव रात दिन भुलाने पर भी कदला को भूल नही पाता उसके मन में हमेशा कंदला रहती है। जब वह नीद मे सो जाता है तो स्वप्न में वही आ जाती है।[2]

माधव के विरह की स्मरण अवस्था भी देखने योग्य है। माधव पत्र मे यह लिखना भी नही भूलता कि थोड़े लिखे को बहुत मानना और सदैव स्मरण करते रहना।[3] माधव चला भी आता परन्तु मार्ग में बीहड वन एव पहाड हैं। यदि विधाता उसे पंख दे देता तो वह नित्य प्रति ही प्रिय से मिल कर आ जाता—

आडा डूंगर वीभवन खरे पियारा मित्त
देहु विधाता पख जउ मिलि मिलि आवइ नित्त ॥ 416 ॥

माधव का विरह उस समय चरम स्थिति पर पहुँच जाता है, जब वह महाकाल के मन्दिर मे सोया हुआ है और मध्य रात्रि मे बादल गर्जना करते है। जिसे सुनकर माधव का प्रेम जागृत होता है और विरह सालने लगता है।[4] अपने पूर्व प्रेम के स्मरण से वह विरह व्यथित हो जाता है तथा समस्त शरीर मदन-दावानल से जलने लगता है।[5] महाकाल के मन्दिर मे वह विरह गाथायें लिखता है।[6] माधव की उन्माद, स्वप्न एव प्रलाप दशायें दृष्टव्य है। रात्रि मे सोते समय वेश्या के पैरो को कदला के पैर समझ कर वह नींद मे ही बोलता है—

माधव बोलइ नीद मझारी "सामली कामकदला नारी
हीया-धिकी पग पाछा करउ, पीन पयोधर साहमा धरउ" ॥ 498 ॥

प्रेम की प्रगाढता की स्थिति इससे अधिक और क्या हो सकती है। जिसमें प्रलाप अचेतनता उन्माद आदि सभी दशाओ का सम्मिलन देखने को मिलता है।

---

1 दूरंतर के वास मत जाणउ तुम्ह प्रीति गई
जीव तुम्हारइ पास नयन विछोह पर गये ॥ 394 ॥

2. वासरि चित्त न विसरइ निसि भर अवर न कोइ
जउ निद्रा भरि भौलव्यां तउ सुपनंतरि सोइ ॥ 406 ॥

3 बहुत कहा हित हित लिखुं संभरिज्यो सदीव
थोडइ लिखियइ जाणजो तुम्ह पासइ छइ जीव ॥ 414 ॥

4. दोहा संख्या 474

5. दोहा स ख्या 475

6 (क) "सो को वि नित्थे सुयणो जस्स कहिज्जति हियय दुक्खाइं
आवंति जाति कंठे पुणरवि हियए विलग्गंति" ॥ 476 ॥
(ख) "नवरस विलास समय कंठ गहिऊण मुक्क नीसासो
सारयणी सो दीहो सो दुक्खं सल्लए हीएं" ॥ 483 ॥

माधव का विरह मरण की स्थिति मे चरम अवस्था पर पहुँच जाता है। राजा विक्रमादित्य माधव को कंदला की मृत्यु का समाचार सुनाते हैं और विरही माधव के प्राण निकल जाते हैं—

ताहरउ मरण सुणी ततकाल कामकंदला कीधउ काल
अेह बात माधव संभली अइयउ हंस गयउ नीकली ।। 585 ।।

कंदला का वियोग

कंदला का वियोग प्रवास जन्य है। माधव काम्रावती से कामसेन द्वारा निष्कासित हो विरह की एक विकल निश्वास खींच, प्रियतमा कामकंदला को विरहाभिभूत तथा व्यथा-सन्तप्त छोड़कर जाने की बात कहता है जिसे सुनते ही वेश्या कदला मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ती है।[1]

वह माधव से विनती करती है कि उसे निराधार छोड़कर क्यों जा रहा है।[2] माधव ही उसका आधार है वह मछली की तरह बिना जल के कैसे रहेगी।[3] और फिर कभी वह मन को समझा कर प्रिय को जाने की आज्ञा भी दे देती है—

थे सिद्धावउ सिधि करउ पूगउ थाकी आस
मत वीसारउ मन थकी हूँ छूँ थांकी दासि ।। 337 ।।

कहने को तो वह जाने के लिये कह देती है परन्तु हृदय तो वियोग सहन करने के लिये तैयार नही होता। उसके नैत्रों से आसूँ बह निकलते हैं परन्तु प्रवास काल मे आसूँ बहाना अशुभ माना जाता है[4] इसी से वह अश्रु मार्जन भी नही कर पाती।

प्रिय मिलन की अभिलाषा उसे जीवित रखे हुये है। प्रियतम के बिछुड़ते ही नैत्रों ने शोक मनाना प्रारम्भ कर दिया, जिसके फलस्वरूप ओढनी तथा पहनने की कचुकी निचोड़ने योग्य हो गई।[5] कामकदला मिलन का सुख लाभ करने हेतु बड़ी ही गूढ़ कल्पना करती है। वह सोचती है कि शरीर को जलाकर राख की स्याही बना लू गी, शरीर जलने पर धूआ स्वर्ग में जायेगा तथा प्रिय रूपी बादल बनकर बरसेगा और मुझे स्पर्श करेगा और इस प्रकार मेरी विरह अग्नि बुझ जायेगी।[6]

---

1. बात सुणी वेश्या धड हुडइ, मूर्छा आवी धरणी पडइ
   छंटइ पाणी बीजइ वाइ खिणइ सचेती सुंदरी थाइ ।। 323 ।।
2. दोहा संख्या 325
3. दोहा संख्या 326
4. जउ गच्छसि तउ गच्छ प्रीउ ! कंठा ग्रहणम जोइ
   रोवण छेह बिलग्गिइ, अवसि अमंगल होइ ।। 345 ।।
5. वीछडता प्रिय माणसा नयणे कीधउ सोग
   ऊढणि पहिरण कंचुउ हुउ नीचोयण जोग ।। 350 ।।
6. दोहा संख्या 353

विरह संतप्त कामकदला से दिन रात्रि काटे नहीं कटती, निमिष दिन के बराबर तथा रात्रि छः मास के बराबर दीर्घ लगती है ।[1]

वह वियोग मे प्रलाप भी करती है । वह अपने हृदय को कोसती हुई कहती है कि तू कितने दु.ख और सहेगा, फट क्यों नही जाता है ? प्रिय के बिछुड़ जाने पर जीकर क्या करना है ।[2] पर हृदय तो फटने से रहा अतः फिर उसे झुंझला कर फटकारती हुई कहती है कि लगता है, हे हृदय ! तू वज्र का बना है अथवा पाषाण का, जो प्रिय वियोग मे भी तू खड-खड नही होता—

रे हिया बज्जर घडीयउ कि पाषाण कुरड ?
वालभ नर विछोहीयउ हुउन खडउ खड ।। 357 ।।

माधव के प्रवासी होने पर कामकदला ने रगीन दक्षिणी चीर ओढ़ना तथा सोलह शृगार करना छोड़ दिया है ।[3] इसके अतिरिक्त उसने तिलक, काजल एवं पान इन तीनो चीजो का भी त्याग कर दिया है । वह प्रतिज्ञा करती है कि जब तक उसका प्रिय उसे नही मिलेगा वह स्वादिष्ट भोजन भी नही करेगी ।[4] वियोगिनी की मानसिक दशा का कैसा अनूठा वर्णन कवि ने किया है ।

माधव को अपना सदेश भेजते समय तो कदला का विरह सागर ही उमड़ पड़ता है । परन्तु जैसे ही वह पत्र लिखने बैठती है हृदय भर आता है और नैत्रो से लगातार अश्रु धारा बह निकलती है--

लिखिवा बइसुं जाण, कागल मसि लेइ करी
हीयडउ भराइ ताम नयणि नीझरणा वहइ ।। 434 ।।

कामकंदला कही अपने यौवन रूपी कली की ओर भ्रमर को आकर्षित करती है ।[5] प्रिय के बिना वह उसी प्रकार कुम्हला गई है जैसे बिना पानी के बेल ।[6] स्वप्न मे तो कदला नित्य ही माधव से मिलती है परन्तु जब प्रत्यक्ष मे मिलेगी तो प्रियतम को मोती हार की भाति कठ मे ग्रहण कर लेगी—

सुपनतरि नित हूँ मिली जदि परितिक्ख मिलेसी
तदि प्रिय मोतीहार जिउ कंठा ग्रहण करेसि ।। 446 ।।

---

1. निमिष इक मुझ दिन हुआ, रयणि हुई छः मास ।। 354 ।।
2. दोहा संख्या 355
3. दोहा संख्या 365
4. तजइ तिलक कज्जल तंबोल, मंजण नाहण धोल अंघोल
जिमइ नही सरस आहार जां न मिलइ माधव भरतार ।। 366 ।।
मा. का. प्र. गायकवाड ओरियन्टल सीरिज, बड़ौदा
5. दोहा संख्या 438
6. दोहा संख्या 440

प्रिय के बिना सेज भी कंदला को सूली के समान दुःख प्रदान करने वाली लगती है।[1] कंदला कहती है जिस प्रकार सीता और राम, रूक्मिणी और कृष्ण, नल एवं दमयंती, वायु एवं अग्नि का साथ है, उसी प्रकार मेरा मन भी तुम्हारे साथ है।[2]

नायिका के रोम रोम में व्याप्त प्रेम के क्षण में निराशा से मुरझाती और दूसरे क्षण में आशा की किरण से प्रदीप्त होती दशा का मार्मिक चित्रण देखने योग्य है—

हीयड़ा-भीतरि पइसिकरि उग्गा सल्लिर रुख
नित सल्लइं नित पल्लवइ नित नित नवला दुख।। 346 ।।

अपने बहुत दूर बसे प्रियतम का आलिंगन करने के लिये नायिका मन की व्यापक गति के समान ही अपने हाथों की शक्ति चाहती है—

जिम मन पसरइ चिंहु दिसि, तिम जउ कर पसरंति
दूरि वसता सज्जना, कठा ग्रहण करंति।। 403 ।।

कवि कुशललाभ ने परम्परा निर्वाह के रूप में कामकंदला के विरह प्रसंग मे ऊहात्मक शैली को अपनाया है। कंदला माधव के विरह मे इतनी अधिक क्षीण हो गई है कि अगुली की मुद्रिका बाह मे आने लगती है। यह अतिशयोक्ति पूर्ण भाव अस्वाभाविक होते हुये भी नायिका की व्याधि अवस्था को प्रस्तुत करता है। वह कहती है कि विरह ने मेरे साथ जो अन्याय किया है वह कहा भी नहीं जा सकता है। अगुली की मुद्रिका बाह मे आने लगी है।[3] प्रिय के वियोग मे रोते रोते उसके नेत्र ज्योति हीन हो गये हैं तथा आसूँओ से भीगे वस्त्रों को निचोड़ते निचोड़ते उसके हाथो में छाले पड़ गये हैं।[4]

इस तरह कवि को वियोगिनी की मानसिक अवस्थाओ का संवेदनात्मक वर्णन प्रस्तुत करने मे बड़ी सफलता मिली है।

तेजसार का वियोग

तेजसार का विरही रूप उस समय हमारे सामने आता है जब जंगल मे अचानक विजयश्री राजकुमारी उसे मिलती है और वह उसकी रक्षा करता है।

---

1. मुखि नीसासा मेहलीइ नयणे नीर प्रवाह
   सूली सरिखी सेज-डी तुझ विण जाणीइ नाह।। 451 ।।
2. जइ सरइ सीयं रामो, रूक्मिणो कन्हो, नलो य दमयंती
   पवणं अणे वि अंजण तह अम्ह मर्ण तुम्ह सरइ ॥ 457 ॥
3. विरह जे मुझनइ करिउं ते मइं कहण न जाइ
   अंगुल केरी मुद्रडी ते बांहडी समाइ।। 407 ।।
4. कंता मइ तूं बाहरी, नयण गमायां रोइ
   हत्थाली छांला पड्या चीर नीचोई नीचोइ ।।। 437 ।।

परन्तु विजयश्री जैसे अचानक मिलती है, वैसे ही खो भी जाती है। तेजसार सोचता है कि ईश्वर ने मेरे साथ यह क्या किया है। नारी रत्न मुझे देकर बिना बताये ही वापस ले लिया है।[1] जिस प्रकार सीता के वियोग मे राम विरह व्यथित हुये थे उसी प्रकार तेजसार भी विजयश्री के वियोग से दु.खी हुआ है।[2] उस उच्च कुल वाली गुणों की भंडार सुन्दरी के वियोग मे हे प्राण तुम हंस के समान उड़ क्यो नही गये।[3]

वियोग में व्यथित होकर भी वह अपने मन को सात्वना देता है कि जो जिसके लिये है वही उसे मिलता है—

विविध प्रकारि करै विलाप, आपण मन समझावे आप
जिण वेला सरज्यु जेहवु ते नर तिहाँ पामै तेहवु ॥ 132 ॥

फिर भी वह चारो ओर अटवी मे अपनी प्रियतमा को ढूंढता फिरता है। वह उसके मन से भुलाये नही भूली जाती है।[4] मार्ग मे रेती पर मनुष्य के पावो के ताजे चिह्न देख उसका मन हर्षित होता है।[5] तेजसार को ताजा चिह्नो मे प्रिय मिलन की आशा की झलक दिखाई देती है। द्वार पर बैठी नारी के पूछने पर कि वह इस वन में क्यों घूम रहा है, वह यही कहता है—

कुमर कहै रमणी माहरी इण वन माहि गयउ अपहरी
भमतौ आव्यो जोवा भणी तस वियोग मुझ चिंता घणी ॥ 138 ॥

मिलन के बाद फिर वियोग हो जाता है[6] और पुष्पावती राजकुमारी से विवाह हो जाने पर भी तेजसार को अपनी पाँचो नारियो की चिन्ता रहती है।[7] राजा तेजसार को उनकी चिन्ता रात दिन रहती है। वह सोचता है कि पाँचों वन मे अकेली हैं उन्हें अवश्य ही विद्याधर मार डालेगा।[8] परन्तु जब विद्याधरी तेजसार से मिलती है तो उसे सब दुःख विस्मृत हो जाते हैं—

---

1. नवि लाभै चितवै कुमार किसु ए कीधु करतार
देव नारि रतन मुझ दीउं अण चितव्यु उदाली लीउ॥ 129 ॥
2. दसरथ नन्दन जिम कीयउ सीता कारण सोग
तेजसार तिम दुःख धरै विजयसिरि वियोग ॥ 130 ॥
3. सुकुलीणी सुंदरि सगुण वनिता निर्मल वस
विण पाँखे रे प्राणीया हजी न ऊडयो हंस ॥ 131 ॥
4. दोहा संख्या 133
5. जोयण एक गयउ जैतलै, जय तटि वेलू देखई तिसै
ताजा पग तिहाँ मानस तणा, देखी हरख थया मन घणा ॥ 134 ॥
6. दोहा संख्या 171
7. राजरिद्धि नव निद्ध भण्डार सहिमन वाछित सुख अपार
पाँचे नारी निजतणी तिहाँ नी मन चिंता घणी ॥ 210 ॥
8. दोहा संख्या 211

पुष्पावती प्रति कहै राय, सांई देइ मिलो सुंभाइ
ए पटरानी विद्याधरी इण आव्यै गया दुख वीसरी ।। 234 ।।

विद्याधरी को देखकर राजा बड़ा ही हर्षित होता है और इस प्रकार प्रसन्न होता है जैसे चद्रमा को देखकर चकोर—

अति आणदइ मिल्यो नरिंद जाणे चकोर देखि जिम चंद
तेडाई तिहा सुर सुन्दरी च्योरे बैठा आणंद धरी ।। 235 ।।

भीमसेन का वियोग

भीमसेन मदनमंजरी से विवाह के बाद लौट रहा होता है कि मार्ग मे उसे समरसेन से युद्ध करना पड़ता है। युद्ध में विजय प्राप्त कर वह रथ के पास आता है और रानी को न देख भीमसेन का हृदय विरह से व्याकुल हो जाता है और राजा देव को इसके लिये दोषी ठहराता है।[1] भीमसेन सोचता है कि रानी या तो समरसेन के हाथ पड़ गई है अथवा उसने आत्म हत्या कर ली है—

विरहण सही सगर हाथइ चडी, अथवा उपघात
वन माहइ वनिता नही थई विरुई बात ।। 204 ।।

भीमसेन शकुन के ज्ञाता अभंगसेन से भी रानी के बारे मे पूछता है।[2] भीमसेन प्रतिज्ञा करता है कि यदि रानी नही मिली तो वह अग्नि मे जलकर मर जायेगा—

भीम महीपति इम भणइ न मिलइ जो नारि
तउ हू पावक तनु दहू न रहूं संसार ।। 207 ।।

प्रेमी प्रियतमा के बिना ससार मे रहना ही निरर्थक समझता है। अपनी प्रिय रानी के वियोग मे भीमसेन घने वनो मे घूमता फिरता है तथा पर्वतो एवं गुफाओ से मदनमजरी के बारे मे पूछता है।[3] विरह अवस्था मे उसे ये सभी अपने सहायक प्रतीत होते है। मदनमजरी के मिल जाने पर भीमसेन को उसी प्रकार अपार हर्ष होता है जिस प्रकार जंगल मे प्यासे व्यक्ति को जल से परिपूर्ण तालाब देखकर होता है।[4]

तेजसार तथा भीमसेन के विरह मे वैसी तीव्रता नही है जैसी माधव और ढोला के विरह मे दिखाई देती है। ढोला मारवणी चौपई तथा माधलानल में जहाँ प्रेम कथा है वहाँ तेजसार रास तथा भीमसेन चौपई में प्रेम के कुछ उद्धरणों के साथ कथा मे धर्म की व्यापकता है। अतः लगता है कवि ने जानबूझ कर ही इन कथाओं

---

1. दोहा सख्या 202
2. शकुन प्रमाणं इहूं कही मनिम धरि सन्देह
   आज थकी दिन सात मइ मिलसइ स्त्री तेह ।। 206 ।।
3. भामा काजि अटवी भमइ वन घन विस्तार
   गिरि किंदर सोधइ घणा पूछइ परिवार ।। 211 ।।
4. दोहा सख्या 232, 233

में विरह और संयोग के प्रसंगों को बचाकर कथा लिखी है। यह कवि की चातुरी एवं कला कुशलता का ही परिचायक है।

मदनमंजरी का विरह

मदनमंजरी का वियोग पूर्व राग विप्रलंभ है। सन्यासी एव कीर से भीमसेन के बारे मे बताई गई बातो को सत्य मान कर वह भीमसेन को वर मान लेती है।[1] वह इसकी प्रतिज्ञा भी करती है—

भीमसेन राजा वर वरू अथवा अगिनि दाहा अणुसरू
पखी वचने लागी प्रीति चद्र चकोरी रातो चीत ।। 85 ।।

अपना विवाह राजा सगर से होना सुनकर मदनमजरी दुखी होती है और अहनिशि रोती रहती है। वह शुक से मित्रवत सहायता करने को कहती है।[2]

मदनमंजरी वर दाता देवी के मन्दिर मे जाकर हाथ जोड़ यही प्रार्थना करती है—

कर जोडी देवी नइ कहइ, भीमसेन मेलवउ जीवित रहइ
एन न पूजइ माहरी आस, तउ तुझ आगइ घालू गल पास ।। 104 ।।

आत्म हत्या की धमकी देना उसके विरह की तीव्रता को प्रदर्शित करता है।

राजा सगर की बारात आई जानकर, धात्री से अपने विवाह के बारे मे सुनकर वह विरहिणी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाती है।[3]

धात्री पहरेदार के रूप मे उसके कक्ष के बाहर बैठी है। उसे निंद्रा आ जाती है परन्तु विरहिणी की आँखो मे नीद कहाँ? अतः वह विरह दग्ध चुपचाप महल से निकल कर देवी के मन्दिर में जाती है और देवी को उपालम्भ देती हुई कहती है कि तुम्हे मेरी भक्ति पसन्द नही आई और तुमने प्रिय से मेरा मिलन नही कराया अतः मैं तुम्हारे सामने ही फाँसी लगाऊगी और यह कहकर उसी क्षण वृक्ष पर चढ़ कर वेणी बध लगाकर फांसी लगा लेती है।[4] परन्तु भीमसेन उचित समय पर पहुँच कर उसे बचा लेता है। मार्ग मे राजा सगर और भीमसेन मे युद्ध होता है। मदनमंजरी भयभीत होती है कि सगर राजा उसका अपहरण करेगा। अत. वह रथ

---

1 दोहा संख्या 84

2. (क) कुमरी दिन प्रति रोदन करइ आवी सुक आगलि ऊचरइ ।। 100 ।।
(ख) सम्भलि परम मित्र सुकराज
किया करी नइ सारउ काज ।। 101 ।।

3. तेह वचन कुमरी सभाली मूर्छा आवी धरणी ढली ।। 153 ।।

4. प्री मेलावा न पूरी आस हिव हूँ घालू छूँ गलि फासि
कही एम तरु साखइचढी वेणी बंध छोडइ चडवडी ।। 169 ।।

से उतर कर वन मार्ग से चल देती है ।[1] यह उसके पतिव्रता होने एवं एकनिष्ठ प्रेमिका होने का परिचायक है ।

मदनमंजरी अनहोने विछोह से बहुत दुःखी है ।[2] इसके लिये वह अपने प्राणो को धिक्कारती हुई कहती है कि जब मैं पति विहीना हुई उस समय हृदय फट क्यों नहीं गया ?

है है मुझ ही आह, पति हीणा पोचउ थयो
वालंम बीछड़ताहं फटि पापी फाटउ नहीं ।। 215 ।।

विछोह का कारण वह अपने पूर्वजन्म में किये गये पापों का फल मानती है और कहती है –

पइलइ भवि मइ पाप घणी परइ कीधा घणा
तिण कारणी सताप अणचीतउ आवी पडउ ।। 218 ।।

तृष्णा से व्याकुल तथा विरह से दुःखी विरहिणी मन में मरने का विचार करती है[3] और विष-फल खा लेती है ।[4] विष खा लेने से वह सुन्दरी अचेत हो जाती है और अमगसेन के यह कहने पर कि 'कुमारी तेरा कंत कुशल है अपने मन की सब चिंता छोड दे'[5] उस विरहिणी को चेत हो आता है ।[6]

इस प्रकार कवि विरहिणी की मानसिक दशा का सजीव चित्रण करने में सफल हुआ है ।

संयोग शृंगार

सयोग मे आश्रय आलम्बन का मिलन रहता है, अतएव वह सुखात्मक है । "जहाँ पर अनुकूल विलासी एक दूसरे के दर्शन स्पर्श इत्यादि का सेवन करते है वह आनन्द से युक्त सम्भोग शृंगार कहलाता है ।"[7] कुछ विद्वान संयोग शृंगार और संभोग शृंगार को अलग अलग मानते हैं वस्तुतः ये दोनो शब्द समानार्थी है । पडितराज जगन्नाथ ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुये लिखा है—"संयोग का अर्थ स्त्री पुरुष का एक स्थान पर रहना नही है क्योंकि एक पलग पर सोते रहने पर भी

---

1. दोहा संख्या 200
2. मदनमंजरी मनि दुष रहइ आणइ मनि अंदोह
   अण चितउ आवी पडउ वालभ तणउ विछोह ।। 214 ॥
3, जाम एक बउलउ जिसइ त्रिषा वियापी तन्न
   दुष मोहइ दुष देव वसि मरण विमासइ मन्न ॥ 220 ।।
4 तापसणी वहती जब गई रांणी तरवर अन्तर रही
   विषफल भष्यण वेगइ करई ते पेषी तपसी पो करइ ॥ 226 ॥
5. कुमरि कुसल ताहरउ कंत, मननी सगली मूकउ चींत ॥ 230 ।।
6 हूं तेडण आव्यो तुम्ह भणी वल्यो चेत जब वाणी सुणी ।। 231 ॥
7. हिन्दी साहित्य कोष : भाग 1 पृष्ठ 861

यदि ईर्ष्या आदि हो तो वह विप्रलम्भ शृ गार ही माना जायेगा।" इनके अनुसार सयोग इस मानसिक ज्ञान किंवा चित्तवृत्ति का पर्याय है कि "मै मिला हुआ हूँ" और वियोग यह ज्ञान है कि "मै बिछुड़ा हुआ हूँ" अतएव स्त्री पुरुष के संयोग के समय प्रेम रहे तो वह संयोग अथवा समोग शृंगार कहलायेगा।"[1]

संयोग शृंगार के अन्तर्गत रूपवर्णन अर्थात् नख-शिख एव आभूषण वर्णन, हावभाव चित्रण अष्टयाम, उपवन उद्यान, जलाशय आदि के क्रीड़ा-विलास परिहास विनोद इसके अन्तर्गत आते हैं। इसका स्थायी माव रति है। इसमे समस्त सात्विक भावो का समावेश रहता है। धर्मार्थ काम, मोक्ष तथा आलम्बन आदि के द्वारा यह शृंगार निरन्तर बढता रहता है।[2]

संयोग शृंगार के भेद

आचार्य मम्मट ने सयोग के अनेक भेदो की क्लिष्टता से बचते हुए उसे एक ही माना है।[3]

आचार्य रुद्रट ने संयोग शृंगार के दो रूप माने हैं—प्रच्छन्न तथा प्रकाश।[4] अग्नि पुराण मे भी यही दो भेद बताये गये हैं—"प्रच्छन्नय प्रकाशश्च तावपि द्विविधो पुन.।"[5]

कुशललाभ के साहित्य में संयोग पक्ष का चित्रण निम्नलिखित रूपो मे मिलता है—

1 मालवणी ढोला सयोग
2. मारवणी ढोला सयोग
3. मारवणी, मालवणी ढोला सयोग
4, कामकंदला माधव सयोग
5. तेजसार तथा उसकी आठ रानियो का संयोग
6. मदनमजरी भीमसेन सयोग
7 रूपमती राजहस सयोग

सयोग से वियोग को अधिक विस्तार और तीव्रता मिलती है। वियोग की अपेक्षा सयोग वर्णन अल्प होता है फिर भी इसका महत्व किसी भी तरह कम नहीं कहा जा सकता है।

---

1. हिन्दी साहित्य कोष : भाग 1 पृष्ठ 861
2. अग्निपुराण-षष्ठ अध्याय श्लोक 7–8
3. काव्य प्रकाश—"तत्र शृ गारस्य द्वौ भेदौ सभोगो विप्रलम्भश्च। तत्राद्य. परस्परावलोकन आलिगन, अधरपान, परिचुम्बनाद्यानत भेदत्वाद परिच्छेद्य: इत्येक एक गण्यते।"
4. काव्यालकार, अध्याय 12, श्लोक 6
5. अग्नि पुराण षष्ठ अध्याय श्लोक 4

मालवणी ढोला संयोग

ढोला अपनी प्रथम विवाहिता पत्नी से अनभिज्ञ मालवणी से विवाह कर आनन्द उपभोग करते हुए जीवन व्यतीत करता है। मालवणी अप्सरा के समान सुन्दर है और ढोला की उससे अपार प्रीति है।[1] मालवणी ही नहीं ढोला भी अनुपम राजकुमार है—

रूपइ रूडउ ते राजान कुमर न कोई साल्ह समान ।। 212 ।।

ढोला व मालवणी मे अपार प्रीति है[2] सेज पर ढोला व मालवणी दोनो साथ बैठे प्रेम की बाते करते हैं।[3]

मालवणी का सयोग ढोला की मारवणी से मिलनातुरता को लक्ष्य कर मानों विरह का रूप धारण कर लेता है। मालवणी और ढोला के सयोग में वियोग की आशका ही उनके सम्पूर्ण संयोग को आवृत्त किये हुए है और मालवणी तर्काश्रित होकर ढोला को मारवणी से मिलनार्थ प्रस्थान करने में बाधक होकर सयोग का उपभोग करती है। अत मालवणी और ढोला के संयोग मे शृंगार को उन्मुक्तता नहीं मिलती है।

मालवणी ढोला से मिलने के लिए शृगार करके आती है, परन्तु ढोला को उदास देखकर खवास को ढोला की उदासी का कारण पूछती है?[4] खवास से मारवणी की बात जान लेने पर भी मालवणी ढोला के पास आती है और हसते हुए पूछती है कि हे प्रिय, आज चिंतित क्यों दिखाई दे रहे हो?[5] दोनो के सवादों मे सयोग के अनेक चित्रण मिलते हैं परन्तु उनमे सयोग की उन्मुक्त गहराई नही है।

मारवणी ढोला संयोग

ढोला के पूगल के मार्ग पर आने पर मारवणी को रात्रि मे ढोला स्वप्न मे दिखाई देता है[6] जो आगत सयोग का सूचक है। मारू की मिलन अभिलाषा इन दोहो में फूटी पड़ती है--

---

1. तेहनइ धरि मालवणी नारि अपछर तणी जाणि अणुहारि
   ढोलरइ तिणस्युबहु प्रीति चतुराई लगी लागि चीत ।। 211 ।।
2. इणि प्रस्तावे साल्ह कुमार मालवणी सुं प्रीति अपार
   बे पहरे उन्हाला तणै पोढ्यउ छे मन्दिर आपणे ।। 254 ।।
3. सुषसेजइ मालवणि सघाति बैठो करि प्रीति सुष बात ।। 255 ।।
4. दीठउ प्रीतम चित्ति उदासि मालवणी पूछियौ षवासि ।। 324
5. कही षवासे सगली बात मालवणी आवी प्रिय पासि
   हासा किसी पूछइ विरतत कोइ सचीता दीसउ कत ।। 329 ।।
6. जिणि दिन ढोलउ वाटइ वहइ तिणि दिन मारू सखिउ लहइ
   मिलियो प्रीतम नीद्र मंझारि माता आगलि कहइ विचार ।। 483 ।।

घर नीगुल दीवउ सजल छाजइ पुणग न माइ
मारू सूती नीद भरि साल्ह जगाई आइ ।। 484 ।।
सारति सद्दारेह् भूषउ माँस पत्राखियाँ
अडियो अंत्रारेह, जाणे ढोलउ आवियो ।। 485 ।।
सुरहि सुगंधी वाट जाणे किर मोती जड्या
सूती माझिम रात्रि जाणे ढोलो आवियो ।। 486 ।।

मारू कहती है कि जैसे स्वप्न मे पाया वैसे प्रत्यक्ष मे पाऊँ तो प्रिय को मोतियों के हार की भाँति कठ में धारण करूँ ।[1]

अंगो का फड़कना होने वाली संयोगावस्था का सूचक है—

डावउ नेत्र फरुरयउ तिसइ सहियर आगइ कहिनइ हसइ
मनि सतोष चीतिउल्हसइ, आज सखी प्रिय मेलउ हुस्यइ ।।491 ।।

मारवणी सखियो के साथ कुएँ पर जाती हैं, वहाँ उसका संशय भी दूर हो जाता है। मारू को ढोला कुएँ पर ही मिलता है और मारू लज्जा सकोच से घूँघट निकाल कर सखियों के साथ चली जाती है।[2] राजा पिगल को जब सेवक ढोला के आगमन की सूचना देता है तो राजा और प्रजा सभी हर्षित होते है तथा शुभ सूचना देने वाले को पुरस्कार के रूप मे घोडा देते हैं तथा बहुत ही उन्साह और उमग के साथ राजा पिंगल ढोला की अगवानी करने के लिए जाते है।[3]

मारवणी जिनकी वाट जोह रही थी, वही प्रियतम अब आ गये हैं उस प्रियतम को नेत्रों से देखकर तो मन आनन्दित हो गया।[4]

ढोला जब चिर प्रतीक्षा के बाद आया तो सखियों ने मारवणी के तन का शृंगार किया उसके शरीर से अगर चन्दन की खुशबू महक रही थी और हाथ में बीड़ा शोभा पा रहा था—

तनि सिंगाइ मारूई सिंगारयउ सह्र साथ
अगइ चदन मह महइ बीडउ सोहइ हाथि ।। 519 ।।

सखियो ने उबटन स्नान आदि अनेक प्रकार से प्रिय से मिलनार्थ मारवणी के तनरूपी मंडप को सजाया है—

---

1. जिम सुपनंतर पमियउ तिम परतख पामेसि
सज्जन मोती हार ज्यूँ कठा ग्रहण करेमि ।। 488 ।।
2. कूवा कठइ सहु परिवार सगली मनि आणद अपार
मारवणी तिहाँ घूघट करी, सहियर झूल माहि संचरी ।। 510 ।।
3. राजा प्रजा सह हरषिया हयवर एक बधाई दिया
साम्हो चड्याउ घण्इ मंडाणि ढोला मिलण तणइ परियाण ।। 512 ।।
4. ते साजण पवधारिया जे जोवंती वाट
ते साजण नयणे देखिया मनि हुओ उच्छाह ।। 518 ।।

सखिये ऊगट माँजिणउ खिजमति करइ अनन्त
मारू तन मंडप रच्यउ मिलण सुहावा कंत ।। 517 ।।

सखियाँ मारवणी को प्रिय के पास छोड़कर चली गई । प्रथम मिलन में ही दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो गये । मारवणी हँसी तो ढोला चौंक गया कि यह बिजली चमकी या दाँत ।[1]

ढोला मारवणी का सयोग अपने ढंग का अनूठा है । ढोला मारवणी प्रात काल के समय पलंग पर बैठे हैं । मारवणी की सुन्दर देह देखकर ढोला को मारू द्वारा प्रेषित दूहा याद आ जाता है कि मारवणी तुम्हारे वियोग में कनेर की छडी जैसी पतली हो गई है ।[2] अत. वह विनोद ही विनोद में मारवणी से पूछ बैठता है कि हे सुन्दरी वे सुरंगे कैसे रह सकते है जिन्हे अपार दु ख प्राप्त हुआ हो, तुम्हारी काया कनक के समान चमक रही है वह किस सुख के कारण ?[3] मारवणी समझ जाती है कि प्रिय के मन मे शका है[4] अत वह हँसती हुई उत्तर देती है—

पहुर हुव उज पधारिया मो चाहती चित्त
डेडरिया खिणमइ हुवइ धँण बूठइ सरजित ।। 341 ।।

आपको पधारे हुये और आपको चित्त मे चाहते हुए मुझे एक पहर हो गया है मेढक तो वर्षा के बरसते ही एक क्षण मे सजीवित हो जाते हैं । कमल जिस प्रकार सूर्य को अस्त होते देखकर दयनीय दशा को प्राप्त होता है वही कमल सूर्य के उदय होते ही क्षण भर मे विकसित हो जाता है ।[5] मारवणी का चतुराई से पूर्ण वचन सुनकर ढोला के मन में आनन्द होता है ।

शील की सीमा मे बँधे सयोग चित्रण काव्य मे स्वाभाविकता का संचार करते है । कवि को जहाँ सभोग स्थितियो के चित्रण की आवश्यकता पडी है वहाँ उसने प्रतीकात्मकता का सहार लिया है जैसे—

---

1 सखी बउलावी घरि गई, प्रिय मिलियो एकंति
हसतां ढोलउ चमकियो बीजुलि किवइ जु दत ।। 520 ।।

2. कणयर कब जिसी पातली प्रिय वियोग चीणी पातली
दीसइ छइ अति सुन्दर देह, ढोलाग्इ मनि पइयउ सदेह ।। 536 ।।

3. काया झबकइ कनक जिम सुन्दर केहे सुक्ख
तेह सुरगा जिम हुवइं जिण बेहा बहु दुक्ख ।। 539 ।।

4. मनि सकाणी मारुवी सुणसउ राउइ कत
हसतां पीसूं बीनवइ साँभजि प्री, विरतंत ।। 540 ।।

5. पहिली होय दयामणयउ रवि आथमणउ जाइ
रवि ऊगउ विहसइ कँमल खिण इक विमणउ थाइ ।। 542 ।।

मन मिलिया तन गडीया मनि मझे मीली-यांह
सज्जन पांणी पीर जीम धीरे धीरे थयाह् ।। 578 ।।

ढोला मारू ए कठा, करे कतुहन केलि
जाणे चदन रूखडे चढीत नागर बेल ।। 580 ।।

इस तरह अश्लीलता का अभाव इन संयोग वर्णनों मे है । निष्कर्षत. ढोला मारवणी का संयोग वर्णन सयत तथा मर्यादित है । सम्पादक त्रय ने ढोला के हृदय में मारवणी के प्रति पूर्वराग की तुलना रत्नसेन मे करते हुए लिखा है—"ढोला के मालवणी के प्रति पूर्वराग को हम रत्नसेन की तरह केवल रूपलोभ नही कह सकते । उसमें कर्तव्य बुद्धि द्वारा प्रेरित प्रिय मिलनोत्साह सम्मिलित है । अतएव हम उसे ढोला के मन की वह उदात्त भावना कहेंगे जिसमें मर्यादा-पालन, धर्म-रक्षा और समाज के विशिष्ट सस्कार-जन्य वैवाहिक प्रतिज्ञा का पालन मिश्रित है ।"[1]

ढोला का मारवणी के प्रति प्रेम कर्तव्य सम्मत है, इसमे सदेह नही, परन्तु वह रूप मोह से रहित था यह नही माना जा सकता है । यदि रूप का लोभ ढोला को नही होता तो वह चारण की बात कि मारू की किशोरावस्था बीत गई है, सुनकर विचलित नही होता । कर्तव्य प्रेरित प्रेम मे वय यौवन का विचार महत्त्वपूर्ण नही है ?

मारवणी और मालवणी ढोला संयोग

पूगल से लौट कर आने के बाद नरवर में मारवणी, मालवणी और ढोला का संयोग कवि ने चित्रित किया है । इस सयोग मे पारिवारिक हास परिहास के द्वारा ही सयोग की स्थिति स्पष्ट की गई है । मारवणी और मालवणी दोनो ढोला के पास बैठी अपने-अपने पीहर का बखान कर रही है ।[2] मालवणी मारू देश की बुराई करके प्रिय को अपनी ओर आकर्षित करती है । मालवणी के शब्दो मे पानी के लिए प्रियतम आधी रात को छोडकर चले जाते है[3] और कुंकुम वर्ण सुन्दर हाथ जहाँ पानी नही निकाल पाते[4] ऐसे प्रदेश मे ब्याहने से तो मालवणी आजीवन कुमारी रहना ही पसन्द करती है । वह कहती है, "पानी ढोते-ढोते मरने से तो कुआंरा रहना अच्छा है ।[5] जिस भूमि पर पीने साँप है[6] और भेड एवं बकरी का ही दूध

1. ढोला मारू रा दूहा —सम्पादकत्रय प्रस्तावना पृष्ठ 73
2. मारवणी मालवणी विन्हइ वेवइ वइठी ढोला कन्हइ
   मन मोहइ अधिकेरो माण पीहतरणा करइ वखाण ।। 676 ।।
3. दोहा संख्या 684
4. कूं कूं वरणा हथ्थडा नही सु घाडा जेंण ।। 683 ।।
5. दोहा सख्या 681
6. जिण भुइ पन्नग पीयणा कयर कंटाला रूंख
   आके फोग छांहडी छां भोजइ भूख ।। 658 ।।

मिलता है[1] वहाँ बिवाह करने से लाभ ही क्या ? प्रत्युत्तर में मारवणी मालव देश की निन्दा नही करती अपितु ढोला ही उसका उत्तर देता है—

मारू देश उपन्नियाँ सरज्यउँ पध्य रियाह
कडवा कदे न बोल ही मीठा बोलणियाह ।। 691 ।।

यही नही वहाँ की नारियो के दात उज्जवल गौर वर्ण तथा नेत्र खंजन पक्षी जैसे होते है ।[2] ढोला मारवणी का पक्ष लेकर उसका मन हर्षित करता हुआ कहता है—

सुणि सु दरि केता कहूँ, मारू देस बखांण
मारवणी मिलियाँ पछइ जाण्यउ जनम प्रवाँण ।। 693 ।।

अन्ततः दोनों का झगड़ा मिट जाता है ।[3] ढोला का मारवणी के प्रति यह प्रेम मनोवैज्ञानिक आकर्षण और प्रेम की अनन्यता का प्रतीक बन कर आया है ।

कामकंदला माधव संयोग

कदला के रूप वर्णन में कवि ने परम्परागत उपमानो का ही सहारा लिया है जैसे चपक वर्ण, अधर प्रवाल के समान लाल और चाल हंस के समान, नाक दीपशिखा के समान तथा नैत्र भयभीत मृगी के नैत्रो के समान चंचल हैं ।[4]

इस नख-शिख चित्रण मे रूप के वस्तु परक पक्ष का उद्‌घाटन हुआ है, भाव परक रूप का नही । सादृश्य और साधर्म उपमानों के द्वारा वस्तु का चित्र तो उपस्थित किया है, किन्तु नायिका की उमड़ती हुई भावना की अभिव्यक्ति इसमें नही हुई है ।

माधव और कंदला का संयोग विवाह के बाद ही होता है । कंदला माधव

---

1. दोहा संख्या 659
2. ,, ,, 690
3. झगड़उ ‧ागउ गोरियाँ ढोलइ पूरी सझ्झ
   मारू रूलिया इत हुई पाँमी प्रीय परख्ख ।। 694 ।।
4. चंपक वर्ण सुकोमल अंग मस्तकि वेणी जाणि भुयंग
   अधररंग परवाली वेलि, गयवर हंस हरावइ गेलि ।। 194 ।।
   नाक जिसी दीवानी सिखि बाहिं रतन जडित बहिर खाँ ।। 195 ।।
   मुख जाणि पूनिमनु चन्द अधर वचन अमृत मयं बिंद ।। 196 ।।
   पीन पयोधर कठिन उत्तंग लोचन जाणि त्रस्त कुरग
   भालि तिलक सिरि वेणी दण्ड भमह वंक मनमथ को दण्ड ।। 197 ।।
   कोमल सरल तरल अंगुली दंत जिस्या दाडिमनी कुली ।। 198 ।।
   केसरिसिंह जिस्यु कटिलंक रतन जडित कठि मेखल लंक
   जघ जुयल करि कदली थभ अभिनव रूपिइ रमणी रभ ।। 199 ।।

को अपने आवास में ले जाती है, जहाँ माधव कंदला को चुम्बन एवं आलिंगन करता है।[1]

कामकंदला आगत यौवना है। कवि ने नायिका के यौवनागम का चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

जोबन आवी रंभ समानि, मोठा वणिग पुत्र राजान
भोग काजि तसु पासइ भमइ कामकंदला मनि नवि गमइ ॥167 ॥

नायिका के उरोज पीन कठिन एवं उत्तंग है।[2] जंघायें कदली थंभ तथा कटि सिंह के समान है।[3]

कंदला और माधव की प्रेम चेष्टाओं के जो चित्र अंकित किये गये हैं उनमें मानसिक एवं शारीरिक सुख का प्रगाढ़ रंग है। मन और शरीर दोनों तन्मय होकर उत्सव मनाते हैं। अपने प्रियतम के मिलने पर उनका वार्तालाप बहुत ही रम्य एवं सहज है—

चढ़ि चढि नाहनि संग चढि भुजां देहि पसार
अहि चम्पा किम तुट्टहि : तुम भमरां के भार ॥ 247 ॥

भ्रमर के भार से चम्पा का टूटना कितना सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण है। माधव के मिलने पर कंदला के निर्विकार मन मे रति स्फुरण के भाव जागृत होते हैं। कंदला प्रेम के वशीभूत होकर अंग मोडती है, वस्त्रों के बंध उसे भुजग के समान लग रहे है, बार-बार जंभाई लेती है तथा उसके नैत्रो मे क्षणिक विरह के कारण जल भरा हुआ है। वह अपने नेत्र रूपी वाणो से नायक को बेध रही है तथा अपनी कोमल बाँहे माधव के गले में डाल रही है जिससे काम जागृत हो जाये।

प्रेम प्रकासइ मोडइ अंग कसणा भजइ जाणा भुयंग
आलस अगि जंभाई करइ, विरह विद्या जल लोचन भरइ ॥250 ॥
नयण बाण सा वेधइ बाल घालइ कठि बहि सुकुमाल
करि सिउ खचइ कुसुमा माल प्रेम जागइ ततकाल ॥ 251 ॥

प्रेम लुब्धा नायिका के मनोभावों का कितना मनोवैज्ञानिक एव सरस चित्रण इन पक्तियो मे हुआ है। जहाँ अंगज चेष्टाये भी दृष्टिगत होती है।

सुरति क्रिया का वर्णन कुशललाभ ने अलकारिक शैली मे सांकेतिक ढंग से किया है, जिसमे अश्लीलता नही है। जिस प्रकार कमल मे भ्रमर तथा गंगा सागर

1. सुख सेजि माधव सचरइ चुम्बन दिइ आलिंगन करइ
प्रेम देखाडइ कत मन हरइ, कामकदला ईम अचरइ ॥ 248 ॥
2. पीन पयोधर कठिन उतग लोचन जाणि त्रस्त कुरंग ॥ 197 ॥
3. दोहा संख्या ॥ 199 ॥

में बेलि एक रूप हो जाते हैं उसी प्रकार माधव और कंदला केलि करते हुए एक हो गये हैं ।[1]

कुशललाभ ने माधवानल कामकंदला में भोग विलास का वर्णन नहीं के बराबर किया है। संकेत में यह कह कर कि माधव कामकंदला के विषय रस में डूबा हुआ प्रसन्न है। उनके सुख को या तो ईश्वर ही जानता है या वे दोनों ही जान सकते हैं—

कामकंदला विषय रस माधव विलसइ जेह
ते सुख जाणइ ईसवरइ किए वलि जाणइ तेह ॥253 ॥

रति वर्णन के उपरान्त शेष रात्रि के लिए नायक नायिका के मध्य हास्य विनोद, प्रहेलिका आयोजन आदि करवाना भी संयोग शृंगार का एक प्रमुख अंग रहा है। इन वर्णनो में नायिका ही अधिक मुखर होती है। नायिका ही नायक को हास्य विनोद के लिए छेडती है।[2] हास्य विनोद राजस्थानी कथा काव्यों की अपनी मौलिकता है। इन प्रश्न-उत्तरों मे हमे नायिकाओ का बुद्धि चातुर्य वाग-वैदग्ध्य देखने को मिलता है।

कवि ने कंदला का समर्थन-यह दोहा कह कर करवाया है—

गीत विनोद विलास रस पंडित दीह लीहंति
कइ निद्रा कइ कलह करि, मूरख दीह गमति ॥ 263 ॥

विद्वान मनुष्यो के दिन गीत, विनोद रस में ही व्यतीत होते है और मूर्ख लोग निद्रा अथवा कलह में अपने दिन व्यतीत करते हैं।

कंदला के आग्रह पर माधव कंदला से कई पहेलियाँ पूछता है जैसे—प्रियतम के वियोग में कृश शरीर वाली नायिका ने रात भर विरह व्यथा से व्याप्त होकर वीणा बजाई, फिर चन्द्रमा को देखकर किस कारण उसने वीणा को रख दिया।

सुन्दरि। मन्दिर अप्पणइ रयणी नाद सुलीण
वीण अलापी देखि ससि, किण गुणि मूकी वीण ? ॥ 283 ॥

इस गूढ पहेली का उत्तर देती हुई कामकंदला कहती है—

विरह वियापी रयणि भरि प्रीतम विण तनु खीण
सस हरथि मृग मोहिउ तिणि हसि मूकी वीण ॥ 284 ॥

अर्थात् प्रियतम के वियोग में कृश काय नायिका ने रात भर विरह व्यथा

---

1. जिम मधुकर नई कमलणि गंगासागर बेलि
तिणि परिमाधव रमें काम कुतूहल केलि ॥ 252 ॥
2. कामकंदला हम कहइ अजी अछइ बहु राति
गाहा गूढा पीयरस कहइ को कवलि वाति ॥ 260 ॥

से व्याप्त हो वीणा बजाई और उस नाद को सुनकर चन्द्रमा और उसके रथ के मृग मोहित हो गये इससे हंस कर विरहिणी ने वीणा रख दी ताकि रात्रि व्यतीत हो जाये।

माधव दूसरा प्रश्न पूछता है—

तरुणी। पुणो विमहिउ परियच्छ आंभि तरेण प्रीयदिठ्ठे
कारण कवण आयोणा दीप को घूणइ सीसम्? ।। 245 ।।

अर्थात् तरुणी द्वारा हाथ में लिये हुए दीपक को आंचल की ओट मे भी प्रिय ने सिर धुनते हुए देखा इसका क्या कारण है? कामकदला इसका बड़ा ही स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक उत्तर देती है—

वालंभ। दीप पवन भइं अंचल सरण पइठ्ठ
कर हीणउ घूणइ कमल, जाण पयोहर दिठ्ठ ।। 246 ।।

अर्थात् हे प्रिय दीपक पवन के भय से तो आँचल की शरण मे गया। किन्तु वहाँ पयोधरो को देखा और अपने को कर विहीन देख कर सिर धुनने लगा।

तेजसार तथा उसकी आठ रानियों का संयोग

तेजसार अपनी पाँचों रानियो के साथ वन में अकेला ही रहता है।[1] तेजसार बैठा हुआ अपनी पाँचो रानियो से बात करता हुआ दिखाई देता है उसके हवा भाव एवं आलिंगन को कवि ने बहुत ही संक्षिप्त मे साकेतिक कथन से वर्णित किया है।[2] रानी विद्याधरी अन्य रानियो से कहती है प्रियतम मुझसे स्नेह से मिला और तुम सबका वृतांत पूछा, सुख के साथ बैठकर बाते करते करते प्रभात हो गयी।[3] तेजसार ऐश्वर्यवान राजा है उसके सात मन्दिर (महल) स्वर्ण और धन-धान्य से परिपूर्ण हैं। उनमे उसने सातो रानियो को रखा, सभी के साथ तेजसार की सच्ची प्रीति है परन्तु पटरानी विद्याधरी को ही बनाया है।[4] उस समय पटरानी का महत्व अधिक होता था और विद्याधरी ने तो उससे बिवाह ही पटरानी बनने की शर्त पर किया था।[5]

तेजसार अपनी सातों रानियो के साथ नित्य नवीन देवलोक के समान सुख

---

1 अटवी माहे एकलो वनिता तणे विनिबोग
पुण्य प्रमाणैपामीयो कामिनी पखे भोग ।। 155 ।।
2. हवा भाव आलिंगन दीय, ते दखी अति कोप्यो हीए ।। 57 ।।
3. अति सनेह मिलीयो मुझ कंत पूछे घरि सयलो विरतंत
सुखि बैठी प्रीतम संघाति बात करतां थयो प्रभाति ।। 243 ।।
4. मन्दिर सात कनक धन भरी, राखी सीते अतेउरी
सगली साथि प्रीत मनखरी पणि पटराणी विद्याधरी ।। 244 ।।
5. दोहा संख्या।। 51 ।।

भोग करता हुआ राज्य का पालन करता है ।[1] आठवीं रानी एणामुखी से विवाह करने के बाद तेजसार अपनी पूर्व परिणीता सातों रानियों को भी वहीं बुला लेता है। परन्तु प्रिय के लिये सभी समान हैं ।[2] पिता से मिलने जाते समय भी वह अपनी रानियों को साथ ही लेकर जाता है—

साथै सगली अंतेउरी सपरिवारि लषमी परिवारी ।। 348 ।।

"तेजसार रास' प्रेम कथा काव्य नहीं है। अतः कवि ने संयोग वर्णन नहीं के बराबर किया है।

मदनमंजरी और भीमसेन संयोग

भीमसेन एव मदनमंजरी के संयोग का कवि ने संकेत मात्र किया है—

एक दिवसि राजा आवासि पटराणी पणि पउढी पासि
सूता मध्य रात्रि नइ समइ भवन पाछली पंखी भमइ ।। 246 ।।

मदन मजरी का रूप सौन्दर्य भी अनुपम है। भीमसेन सन्यासी से उसके रूप के बारे मे पूछते है तब सन्यासी बताता है—

सन्यासी बोलइ सुणि राय, सत्य वचन सुण्यो सद्भावइ
सुदरि सहू जगतइ सुकमाल, मान सरोवर हंस मराल ।। 132 ।।
लघु केसरि जेहवीकाडीलंक मलिनरिहत मुख जाणि मयंक
उपइ कु दण जिम तसुअंग चपल तुरगम चष्ण अति चंग ।। 133 ।।
रंभा गर्भ जिसी जुग जंघ उदित बिल्व सम उरज उत्तंग
अधर पक्व बिबांफल अणुहारि कीर पूतली चित्र आकार ।। 134 ।।
अबला उन छई रूप असम्भ कोमल वाणी अमृत कुम्भ
सिरजउ जउ थायउ सयोग, सफल जनम सुखर सम भोग ।। 133 ।।

उस रूपसी बाला को प्राप्त करने वाला देवताओं के समान भोग भोगेगा। कवि ने भीमसेन तथा मदन मंजरी का सयोग वर्णन बहुत ही मर्यादित ढंग से सक्षेप मे किया है। भीमसेन राजा रात दिन नारी प्रेम में डूबा रहता है जिस प्रकार कमल में भ्रमर रमण करता है उसी प्रकार राजा भीमसेन भोग भोगता हुआ सुख से दिन व्यतीत कर रहा है।[3]

---

1. हिव प्रीउ वारै नए नवैदेव लोक समसुख भोगवै
पाली राज सुखै आपणे तिण प्रस्तावै हू की ते सुणो ।। 247 ।।
2. आवी साते अंतेउरी सासू प्रणमी आणंद धरी
नारी आठमी एणामुखी प्रीय नै मन सहूए सारखी ।। 339 ।।
3. कमल जिम मधुकर रमइ श्री भीमसेन नरेन्द्र भोगी सदा नीहु सुखइ गमइ ।। 193 ।।

रूपमती और राजहंस संयोग

विवाह के बाद राजहंस ससुराल मे ही कुछ दिन रहता है नित्य नई तरह से राजहंस का आदर सत्कार किया जाता है। राजहंस की प्रीति भी नई है। यौवन भी नया है अत: राजहंस नित्य नये तरह के भोग भोगता है।[1] महल मन्दिर सुख सेज सभी उपलब्ध है वहाँ कस्तूरी एव चन्दन महकता रहता है। राजहंस एवं रूपमती मानों काम एवं रति की जोड़ी है, जो रात दिन गाथा गीत विनोद रस आदि के द्वारा प्रेम प्रीति को पालते हुये एक साथ रहते है।[2] इस प्रकार राजहस ग्यारह सौ वर्ष तक भोग भोगता है[3] उसके दो पुत्र होते हैं।[4]

अन्य रस

इन कथा काव्यों मे श्रृंगार रस की प्रधानता के साथ अन्य रसों का भी चित्रण मिलता है।

वीर रस

श्रृंगार रस के बाद सबसे अधिक चित्रण वीर रस का ही हुआ है। क्योंकि नायक को विवाह के पूर्व या विवाह के बाद लौटते समय युद्ध करना पड़ता है। इन कथा काव्यो मे नायक की वीरता दिखलाने मे कथाकार का यही उद्देश्य रहता है कि इससे नायक की तेजस्विता, शौर्य तथा नायिका के रक्षण की सामर्थ्य दिखलाकर नायिक का प्रेम नायक के प्रति और प्रगाढ कर सके।

वीर रस का चित्रण नायक की वीरता, आतंक, निर्भीकता, साहस तथा आत्म बलिदान के रूप मे हुआ है। इन युद्ध वर्णनो में केवल बाहरी सैन्य वैभव या युद्ध की भीषणता का ऊपरी वर्णन नही है, अपितु युद्ध स्थल मे नायक की मनोदशा तथा द्वन्द्व का भी सुन्दर चित्रण मिलता है।

"ढोला मारवणी चौपइ" तथा 'माधवानल कामकंदला चउपई' कुशललाभ की श्रृंगार रस प्रधान रचनायें होने के कारण इनमें वीर रस की विस्तृत अभिव्यक्ति

---

1. रहुउ कुमर पूरी मन खंति निति नवली भगति करति
नयी प्रीति बलि जोवन नवइ चौवो भोगी कुमर सौख्य भोगवइ ।। 538 ।।
2. महल मन्दिर कुसम सुख सेज मृगमद चन्दन महमहइ
देव दूष्य वर वस्त्र दीपइ साचिज बाधि सुबास रस
जाणि काम रति जोड़ि जीपइ गाथा गीत विनोद गुण
बहु मिसी गुण अभ्यास प्रेम प्रीति प्रमदा तणइ
कुमार रहइ इक मास ।। 540 ।।
3. दोहा संख्या 610
4. ,, ,, 611

नहीं मिलती । कुछ ही स्थलों पर वीर रस की सूक्ष्म भी छटा देखने को मिलती है ।

ऊमर अतावलि करइ पल्लाणियाँ पवंग
खुरसाणी सूधा खयंग चढ़िया दल चतुरंग ।। 635 ।।
ऊमर अति ऊतावलि करे षयंग सूधा पाषरइ
आपण चढियो ढोला केडि, वहतां पडिया ऊजड वेढि ।। 636 ।।

इसके अतिरिक्त सेना वर्णन [1] यौद्धा की मनोदशा का चित्रण[2] भी ढोला मारवणी चौपाई मे हुआ है ।

इसी प्रकार 'माघवानल काम कंदला चउपई' में भी राजा विक्रमादित्य अपनी सेना सहित कामावती जाता है । सेना को नगर के बाहर ही रोक देता है ।[3] माधव भी अपनी सेना सहित पुष्पावती नगरी आता है ।[4]

'तेजसार रास' तथा 'भीमसेन राजहंस चउपइ' में वीर रस का चित्रण कई स्थानों पर देखने को मिलता है । तेजसार तथा राक्षस का युद्ध[5] तेजसार तथा पडयाणी का युद्ध[6] योगी तथा तेजसार का युद्ध[7] तेजसार का विद्याधर से युद्ध—

ते कर ग्रही धायो करवाल तेजसार उठयो तत्काल
मांहो माहि थयो सग्राम च्यार पहुर लगे तिम ठामि ।। 161 ।।

मूरसेन तथा तेजसार का युद्ध[8] समरसेन तथा तेजसार का युद्ध वीर रस के स्पष्ट प्रमाण है । तेजसार समरसेन से युद्ध मे विजय प्राप्त करता है—

---

1. दोहा संख्या 14, 17, 64, 123
2. (क) वीजइ दिनि वाचिग दे राइ, बइठउ मन माहि करइ उपाय
मत आवइ रिण धऊलां हुं जान, करिसी झूझ पिंगल राजान ।। 78 ।।
(ख) नर योद्धो पिंगल नर नाथ सबल एह रिणधवलह साथ
माहो माह झूझ मांडिस्यइ कुलिकलक माहरइ लाविस्यइ ।।80 ।।
(ग) वाचिगदे मनि पडियो सोच सोढी साथि करइ आलोच
जउ जाणेस्यइ पिंगलराय, नीठइ कटक छाँडि किम जाय ।। 81 ।।
3. (क) भिबिड देखि माघव नउ नेह, भाग्यउ दुख जोइज्जइ अेह
चतुरग कटक अेकठउ करी चालिउ विक्रम आणंद धरी ।। 537 ।।
(ख) माधव सहित कटक सजती आव्यउ नगरी कामवती
दल उतर्यउ नगर गोचइ, राजा बिहु परीक्षा करइ ।। 538 ।।
4. दोहा संख्या 633
5. ,, ,, 48, 49 तेजसार रास ह. प्र.
6. ,, ,, 69 से 73 वही
7. झाली कंध भणी वाहइ करवाल
कुमर पैंखे अति उछक थयउ प्राणै बांधी पहयउ ।। 86 ।।
8. कुमर बींट्या मन्त्र प्रमाणि थम्यंउ कटक रहयउ तिण ठामि
तेजसार कुमारी बाल रिपु सेना भांजो ततकाल ।। 194 ।।

तेजसार जीतों संग्राम समरसेन बांध्यौ तिए ठांम
राणी कीयो मूलगो रूप समरसेन विलखो थयो भूप ।। 328 ।।

तेजसार के सभी युद्ध विद्या बल से हुये हैं । अतः इनमे नायक का शौर्य तत्व अधिक स्पष्ट नहीं हो पाया है ।

'भीमसेन राजहंस चौपई' मे युद्ध का वर्णन इन सब कथा काव्यों से थोड़ा विस्तार लिये हुये है । मदन मजरी से विवाह के बाद भीमसेन अपने नगर को लौट रहे होते हैं कि मार्ग मे राजा सगर अपनी सेना सहित आ डटता है और भीमसेन को उससे युद्ध करना पड़ता है । युद्ध का वर्णन इस प्रकार है[1]—

तिणठामि सगर नरेन्द्र सेना मध्य रात्रि तणइ समइ
चिहूं दिस दल चतुरंग आव्या थयउ सार गमा गमइ ।। 97 ।।
बहु कोलाहल धाडि मिला बहुपूर पंषाला सेना विदइ सहू
सहू सेन झूझइ नर असूझइ सबल दल भय सम्भली
तिणवार आप चडउ तुरंगम भीमसेन महाबली
एकली रथि तिहाँ रही रामा बीहती भुइ ऊतरी
आधार तरुनइ मध्य पइठी फोज बिहू दिसी परहरी ।। 198 ।।
चित्त भया कुल राणी चींतवइ रिषे सगर रिपु मुझ झालइ हिवइरे
ते रिषे साहइ बोल जायइ निरति पायइ नासती
तरु तणइ अतरि अति भयातुर वाट नलहइ विलपती
एहवइ भीम नरेन्द्र भारथि भिडी पर दल मंजीया
निजसेन जीतो सगर नाठउ राय मन महि रंजीया ।। 200 ।।

राजहंस जंगल मे शेर को मार कर भी अपना शौर्य प्रदर्शित करता है ।

कुमर ते शंघ देषीकर हणउ बाण प्रहार रे
अश्वनइ कुमर बे ऊगरया शंघनउ कीधउ सधार रे ।। 415 ।।
कुमर पराक्रम पेषीयउ वानर वदइम वाणी रे
बुद्धि मोटी बालक पणइ धन धन जनम प्रमाण रे ।। 416 ।।

राजहंस को ढूंढता हुआ उसका पिता सेना सहित आता है उस सेना में हाथियो और घोड़ों का वर्णन देखिये ।

हयवर हेषा ख सम्भली, कपिनइ कुमर कहइ मनरली
ऊंचा तरवर ऊपरि चडउ सेन कहनउदीसइ वडउ ।। 429 ।।

---

1. 'भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपाई ग्रं. 1217 ला. द. ग्रं. अहमदाबाद

राजहंस भीमसेन के कहने से अपने साथ एक सहस्त्र सवार लेकर जाता है ।[1] विवाह के बाद लौटते समय राजहंस को ससुराल से एक सौ आठ मदमस्त हाथी ग्यारह सौ घोड़े आदि मिलते हैं ।[2]

करुण रस

करुण रस का स्थायी भाव शोक है । करुण रस का उदय कथा में उस समय होता है जब पीना सर्प मारु को पी जाता है उस समय धात्री तथा ढोला के शब्दों में करुण विलाप की अभिव्यक्ति देखने योग्य है—

मुख जोवइ दीवा धरी, पाछउ करइ पलाह
मारु दीठी सास विण, मोटी मेल्हइ थाह ।। 572 ।।
सोहउसहु भेला किया, तिण बेला तिण वार
नर नारी सहु बिलबिलइ, हय हय सरजणहार ।। 573 ।।

वउलाओ प्रति ढोलउ कहइ, ए दुष जीवे नइ कुण सहइ
एहुर वरत्यउ जोडउ हाथि, पइसिसि पावक मारु साथि ।। 581 ।।

'माधवानल काम कदला' में भी करुण रस के अनेक दृश्य उपलब्ध हैं । माधव महाकाल के मन्दिर मे गाथाये लिखता है जो कारुणिक हैं ।[3] माधव का मरण सुनकर कंदला के प्राण पखेरु उड जाते है[4] ऐसे ही कंदला का मरण सुन माधव प्राण त्याग देता है ।[5] माधव जब कंदला को छोड़कर जाने लगता है तो कंदला पानी से बाहर निकाली गई मछली की तरह तड़प जाती है ।[6]

तेजसार भी रानियो से बिछुड कर शोक सतप्त घूमता रहता है । देवता को कहे गये उपालम्भ मे तेजसार के हृदय की करुणा झलकती है—

नवि लाभे चिंतवे कुमार किसु ए कीधुकंरतार
देव नारि रतन मुझ दीउं अण चींतव्युं उदाली लीउ ।। 129 ।।

---

1. एक सहस्त्र ताजी असवार साथइ सबला गर्थ अपार ।। 470 ।।
2. मत्तमइगल एकसउआठ तरल तुरगम सहसइ ग्यार
   वर बहिल्ल सउ रथ सुधषाण सोवन मई भाजन कलश ।। 541 ।।
3. (क) सो को वि नत्थि सुयणो, जस्स कहिज्जंते हियय दुक्खाइ
   आवंति अति कंठे पुणरवि हियए विलग्गति ।। 476 ।।
   (ख) नवरम विलास समय कठ गहि ऊण मुक्क नीसासो
   सा रयणी सो दीहो सो दुक्ख सल्लए हीय ।। 483 ।।
4. कामकंदला । कीधउ काल, देखी वीलउ थयउ भूपाल
   है है दैव । किसुमंइ कीयउ ? हासइ फीटि विकासउ हुयउ ।। 581 ।।
5. ताहरेउ मरण सुणी ततकाल कामकंदला कीधउ काल
   अह बात माधव सम्भली, ऊडयउ हंस गयउ नीकली ।। 585 ।।
6. दोहा संख्या 326

सुकलीणी सुन्दर सुगुण वनिता निर्मल वंस
बिण पाखँ रे प्राणीया हजी न उडयो हंस ।। 130 ।।

मदनमंजरी का प्रिय भीमसेन के न मिलने पर फाँसी लगाना[1] तथा विष फल खाना[2] आदि स्थलों पर करुण रस की अभिव्यक्ति हुई है। राजा भीमसेन भी रानी के न मिलने पर अग्नि में जल मरने को तत्पर हो जाते है।[3]

रौद्र रस

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। ढोला मारवणी चोपई मे यह दो स्थल पर देखने को मिलता है—

सासू बहू प्रतइ ऊचरइ कांई बड़ाई एवडी करे
जो मारवणी अगली रही, तो तु करे बड़ाई सही ।। 258 ।।

पिंगलराय तणी पद्मिनी, अगली रही मुझ बहू मुझ तणी
तउ तूं न्याय करइ अहंकार इम कहि माता गई ति वारि ।। 259 ।।

दीह गयउ डर डबरे, नीले नीझर णेहि
काली जाया करहला, वोल्यउ किसे गुणेहि ।। 473 ।।

सड़ सड़ वाहि म कंबडी, रांगां देह म चूरि
बिहुं दीपाँ बिचि मारुई, मो थी केती दूरि ।। 474 ।।

प्रथम बार ढोला की माता का क्रोध मालवणी के प्रति दिखाई देता है। मालवणी को दर्पण देते समय थोडा समय लग जाता है। अतः सास का क्रोध स्वाभाविक ही है। दूसरी बार ढोला मारु से मिलनार्थ जाते समय देर हो जाने के कारण क्रोध मे ऊँट को छड़ी से पीटता है तथा उसकी माता को भी कोसता है। रोद्र रस का तीसरा उदाहरण हमें तब देखने को मिलता है जब मालवणी निरपराध गधे को दगवाती है तो सास चंपावती के क्रोध की सीमा नही रहती और वह अपनी बहू मालवणी को कहती है—

रे ढांढां करि छोहडी करइ करहांरी काणि
ऊकरडे डोका चुणे सो आप डँमायो आणि ।। 393 ।।

'माधवानल काम कंदला चउपई' में राजा गोविन्दचन्द कुपित होकर माधव को देश निकाले की आज्ञा देता है।[4] दूसरी बार माधव क्रोध का पात्र जब बनता है

---

1. दोहा संख्या 169
2. ,, ,, 327
3. भीममहि पत्ति इम भणइ न मिलइ जो वारि
तउ हूँ पावक तनु दहू न रहूं संसार ।। 208 ।।
4. जिम्हि पाननउ बीडउ करी राजा धणुं कोप मनि धरी
माधवनइ दीधउ आदेस, तू छांडिजे अह्मारउ देस ।। 153 ।।

जब वह कंदला नर्तकी की कला से मुग्ध हो राजा द्वारा प्रदत्त आभूषण आदि नर्तकी को देता है और नर्तकी उस कला पारखी की प्रशंसा करती है। प्रशंसा को सुनकर तथा अपने से पहले दान दिये जाने पर राजा क्रोधित हो जाता है।[1] क्रोधित राजा वध के लिये खड्ग उठा लेता है परन्तु यह जान कर कि ब्राह्मण का वध शास्त्र के विरुद्ध है; वह उसे मारता नहीं।[2] क्रोध मे राजा कामसेन माधव को अपना देश छोड़ने का का आदेश दे देता है—

> चढी रीस बोलीउ नरेस 'माधव । छंडउ अह्मारु देस'
> करि जुहार बोलइ तिणि ठाणि 'स्वामि । दीउ आदेश प्रमाण' ।। 224 ।।

'तेजसार रास' में भी रौद्र रस की झलक उस समय मिलती है जब तेजसार पिता से मिलने जाता है।[3] विद्याधर अपनी बहिन को जब पर-पुरुष के साथ आलिंगन बद्ध देखता है तो उसे अपनी बहिन पर क्रोध आता है।[4]

'भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई' मे रौद्र रस की झलक उस समय मिलती है जब राजा सगर का विवाह मदनमंजरी से न करके अन्य कन्या से कर दिया जाता है।[5]

भयानक रस

इस रस का स्थायी भाव भय होता। 'तेजसार रास' मे पंड्याणी द्वारा अंधेरे पक्ष की चौदस रविवार को बालको की बलि के लिये तैयारी[6], तेजसार को मार्ग मे

---

1. माधव तणी प्रशंसा सुणी, थई रीस राजा मनि घणी
   मुझ पहिलउ इणि दीधउ दान, आणिउ मुरिखमनि अभिमान ।। 221 ।।
2. कुपिउ खड्ग करि ऊठिइ साही, अंणि मुझ पहिलउ किउ पसाउ
   राजसभा बोलइ सहू कोई ब्रह्म पुत्र नवि मारइ कोइ ।।222 ।।
3. मवेई माडयउ इम दाउ, तेजसार सु रूठु राउ
   कुमर पधारयउ करण जुहार रायश पूछउ थयु तिण वारि, ।। 17 ।।
   जाणिउ रोस पिता मन घणउ ते जीतउ वसू है ताजणउ ।। 18 ।।
4. घर समीपि आव्यो उल्हास पेखै बाहिनी पुरुष नै पासि
   हाव भाव आलिगन दीए ते देखी अति कोप्यो हीए ।। 157 ।।
   रीसइ भरयो बहिन प्रति भणै, ए कुण नर पासै सुझ तैणे ।। 158 ।।
5. सगर नरेसर अति कोप्यउ हीयइ, अद्‌भुत कन्याते परणीयई
   ए राय परदेसी अचिंतित गुप्तविधि परणी गयउ
   आपी जु कन्या मुझ अनेरा तिणि मनि धोखउ थयउ
   जवि भीमराय सुदेस जासइ रम्निकट कर हावि सूं
   सधाम सबलउ करी आणइ मानिनी मूका विसूं ।। 194 ।।
6. एहवइ आव्यउ पक्ष अन्धार काली चवदिसि आंदीतवार
   पूजा बलि बालक परकार पडयाणी मांडयउ आचार ।। 60 ।।

कालकूर विकराल राक्षस का मिलना,[1] विशेष दण्ड से भूत प्रेतों का नाश करना[2] आदि भयानक रस के उद्धरण है ।

'भीमसेन चौपाई' मे हाथी का राजा रानी को लेकर भागना,[3] भय से रानी की वाणी का नही निकलना,[4] रात्रि मे दीपक का दिखाई देना,[5] वृक्ष पर नागों का लिपटा रहना[6] आदि भी भयानक रस के अन्तर्गत आते है ।

अद्भुत रस

इसका स्थायी भाव विस्मय होता है । इसका आलम्बन कोई आलौकिक वस्तु होती है । सिद्धो देवी-देवताओ से वरदान रूप प्राप्त सिद्धियां, मंत्र-तंत्र की विलक्षण करामातें, आलौकिक शक्तियो के अद्भुत चमत्कार, वैताल का सहयोग, जादुई विद्याओ से रूप परिवर्तन, अदृश्य होना, आकाश मार्ग से उड़ना आदि का सयोजन इन कथाओं मे हुआ है ।

'ढोला मारवणी चौपई' मे योगी मारु को अभिमन्त्रित जल पिलाकर जीवित करता है ।[7] 'तेजसार रास' के नायक तेजसार को तन्त्र-मन्त्र की कई विद्याये आती है । मत्र पढकर मुष्टि प्रहार करना[8] तथा मंत्र से सेना को स्तम्भित कर देना[9] मन्त्र जाप करने से रूप परिवर्तन तथा अदृश्य होना[10] आदि सिद्धियाँ तेजसार को योगी एवं राक्षस द्वारा प्रदत्त होती हैं ।

आकाश मार्ग से उड़ना भी एक आलौकिक बात है । आकाश मे अप्सरायें राक्षस देवी देवता अथवा अन्य कोई सिद्ध व्यक्ति ही उड़ सकता है । 'माधवानल

---

1. दोहा सख्या 30
2. ,, ,, 47
3. ,, ,, 270
4. वनिता प्रति राजा वदइ पणि बाली न सकइ बाल ॥ 276 ॥
5. ,, ,, 290, 291
6. ,, ,, 293
7. पयउ गुण गइ मरु बली अनेरा कीया तन्त्र
मारवणी तिहां मार्जी थई जोगिणि मनि हरषी गहगही ॥ 595 ॥
8. मंत्र भणी नइ बाध्इ मूंठि प्राण करी मूंक सिजस पूठि ॥ 51 ॥
9. वीजीवली कटक थभणी मन्त्र सकति न सकइ कोहुणी ॥ 52 ॥
10. (क) मूंकी वस्त्र लोटइ बडमाहि विद्या बलिते रासभी थाहि ॥ 56 ॥
(ख) एहमंत्र तु जपी नइ जोइ ताहरु रूप न देखई कोइ
बीजइ मन्त्र जपै अणुसरै चीतवइ तिस्यु रूप करइ ॥ 94 ॥
(ग) विद्याधर बल फेरी रूप विद्याधर थयउ हाथी रूप ॥ 162 ॥
(घ) तेजसार पिण मत्रइ करी सबल रूप थये केसरी
बली विद्याधर फेरी अंग कृष्ण वर्ण ते थयु भुयंग ॥ 163 ॥
मोर रूप ते थयो कुमार पूंछ झालि ऊडयो तेवार ॥ 164 ॥

कामकंदला' में अप्सरा जयन्ती तो आकाश मार्ग से आती ही है[1] परन्तु माधव भी आकाश मार्ग से ही स्वर्ग मे जाने लगता है—

मन लागउ माधव न रहाइं नित छानउ अपछर धरजाइ ।। 104 ।।

'तेजसार रास' के तो अधिकतर पात्र जो अलौकिक है आकाश मार्ग से उड़ने वाले हैं।

तब ते ऊडी मंत्र प्रमाण, वहै आकासइ पंखिणी जांण ।। 70 ।।

आकाश मे उडने की विद्या जिसके पास होती है वही आकाश मार्ग से उड़ सकता है। विद्याधर के पास यह विद्या है और वह नित्य प्रति आकाश में उड़ता है।[2] व्यतरी तेजसार को नींद मे ही आकाश मार्ग से उठा लाती है।[3] एणामुखी की माता पुत्री को दहेज मे ऐसा पलंग देती है जो आकाश मे निशक उडता है—

एक दीयो सुन्दर पलंक, उडै ते आकाशि निशंक ।। 308 ।।

'माधवानल कामकदला चउपई' में माधव एवं कंदला की मृत्यु हो जाने पर राजा विकमादित्य का सहायक वेताल पाताल से अमृत लाकर उन्हे जीवित करता है।[4] 'भीमसेन राजहस चौपाई' मे राजा भीमसेन मन्त्र जप से विष उतारता है—

विषधर मन्त्र जपइ राइ जाम अहितनि गया अनेरेइ ठामि

महिपति मदन मजरी रंगि चदन तलि बइठा चतुरंगि ।। 295 ।।

विष फल के आहार करने पर पति मदन मंजरी के विष को दूर करता है—

जतीयइ विष वाल्यउ जेतलइ अभंगसेन आव्यउ तेतलइ ।। 230 ।।

'भीमसेन राजहंस चौपई' मे अद्‌भुत रस की झलक उस समय मिलती है जब हस अपने जन्म के बारे मे बताता है कि आज से इक्कीसवें दिन रविवार को शिकारी के बाण प्रहार से मेरा अन्त होगा तथा मदनमंजरी के गर्भ से मैं इसी घर में अवतार लूँगा।[5]

---

1. टलिउ सराप रहीउ तिणि पामि अपछर हुइ ऊडी आकासि ।। 71 ।।
मा. का. चौ.
2 नित बन्धव ऊडै आकासि प्रजपति विद्या तसु पासि ।। 146 ।।
3 दोहा सख्या 248, 249, 286
३ दोहा सख्या 108
4 दोहा सख्या 598 मा का चौ.
5. आज थकी इकवी समइ दिवसि दिवाकर वारि
पिड एक जिस पारथी हणसइ बाण प्रहारि ।। 252 ।।
एह देह छडी करी इण घरि मुझ अवतार
मदन मंजरी नइ उदरि अवतारि सु निहारि ।। 253 ।।

'अगड़दत्त रास चौपई' में भी अद्भुत रस कई स्थलों पर आया है। भुजगंम चोर का ताली बजाकर ताले तोड़ना, मन्त्र विद्या से जागृत लोगों को निद्रा के वश कर देना, तथा मन्त्र शक्ति से अदृश्य होना[1] तथा भुजगंम चोर का आकाश में उडना[2] विद्याधर का आकाश मार्ग से आकर सर्प दशन से मृत मदनमंजरी को मत्र विद्या से पुनः जीवित कर देना आदि उदाहरण अद्भुत रस[3] के अन्तर्गत ही आते हैं।

हास्य रस

हास्य रस के अनेक उदाहरण इन कथा काव्यों में मिलते हैं। ढोला मारवणी चौपाई में यह हास्य रस ढोला मारु के सयोग के समय की बातो[4] तथा मालवणी व मारु द्वारा प्रदेश निंदा[5] के समय हुये वार्तालाप में कुछ झलक दिखाई देती है।

'माधवानल कामकदला चउपई' में हास्य की झलक माधव कदला के संयोग के समय ही मिलती है। हास्य रस को जीवन का प्रमुख अग माना है[6] और इसी के आधार पर कवि ने माधव और कदला प्रेहेलिका आयोजन समस्या समाधान आदि के द्वारा मनोरंजन कराया है।

वात्सल्य रस

इस कथा-काव्यो में वात्सल्य रस के अनेक प्रसग देखने को मिलते हैं। 'ढोला मारवणी चौपई' मे मारवणी के जन्म पर खुशियाँ मानाना[7] वात्सल्य रस का सूचक है। राजा नल पुत्र की कामना से पुष्कर यात्रा करता है और पुत्र जन्म का उत्सव मनाता है।

---

1. मंत्र भणी ठबका विजडी ताला त्रुटिया लिऊ घडी
   मारग मंत्र जगण नू जाय जागता द्वर निद्रा थाई ।। 76 ।।
   फरइ निशंक नगर मा सही मंत्र शक्ति को देखइ नहीं ।। 77 ।।
   अगडदत्त रास चौपइ में ।। 605 ।।
   भण्डारकर आरियन्ट रिसर्च इन्स्टीयूट, पूना
2. दोहा सख्या ॥ 108 ॥
3. ,, ,, ॥ 258 ॥
4. गीता विनोद विलास रस, पंडित दीह लीहंति
   कइ निंदा कइ कलह करि मूरख दीह गमंति ।। 263 ।।
5. माता पिता मनि आणद घणऊँ जनक हुओ मारुवणी तणउ
   कीया बधारा नगर मझारि पत्र तणी परि मगलाचार ।। 133 ।।
6. इक परदेसी इम ऊचरइ अउ पुष्कर तणी जात्र पति करइ
   कुटुम्ब सहित पहुचउ तिणि थानि ती सही हुवे पुत्र संतान ।। 148 ।।
7. पुत्र जनमि हरख्यउ राजान मनि आणंदयौ नल राजान
   घरि घरि उछब मंगल घणा कीया वधावा पुत्रह तणा ।। 150 ।।

'माधवमल कामकंदला चउपई' में पुरोहित शंकरदास ईश्वर द्वारा प्रदत्त पुत्र का जन्म उत्सव मनाता है—

कीयउ उच्छव कीयउ उच्छव हुयउ आणंद
कुटुंब सहुइं संतोषीयउ नगर मांहि उच्छाह कीधउ ।। 63 ।।

यही नहीं पुत्र हर आगत अनर्थ की आशंका मात्र से पिता बहुत से दान पुण्य भी करता है ।[1]

'तेजसार रास' में रानी पद्मावती स्वप्न में घी से परिपूर्ण प्रज्वलित दीपक देखती है । स्वप्न फल के अनुसार रानी को दीप के समान तेजस्वी पुत्र प्राप्त होता है और राजा महोत्सव करता है ।[2] पुत्री प्रेम से प्रभावित होकर ही एणामुखी की माता तेजसार को पुत्री से विवाह करने के लिये उठा लाती है ।[3] तेजसार की माता मर कर व्यंतरी हो जाती है, परन्तु पुत्र के वियोग से वह सदैव ही दुःखी रहती है और एक दिन जब उसकी पुत्र से भेट हो जाती है तो माता के हर्ष का पार नही रहता—

रे जाया नदन माहरा, हूँ भामणा लेउं ताहरा
आज सही मुझ सुरतरु फल्यो, तु मुझ पुत्र घणे दिन मिल्यो ।। 293 ।।

'भीमसेन राजहस सम्बन्ध चौपई' मे भीमसेन के पुत्र जन्म पर खुशियाँ मनाई जाती है—

पुत्र जनमउ परम आणंद संतोष्या परीयण सहू
वेदनाद वाजित्र वाजई याचक जन जय जय करइ
दीयइ दान मोटइ दीवाजइ नगर महोछव नव नवा
सफल मनोरथ सार राजहंस नामइ कुमर अति सुन्दर आकार ।। 371 ।।

शांत रस

शांत रस के उदाहरण जैन कथा काव्यों में विशेष रूप से पाये जाते हैं । मुनियों और केवलियों द्वारा दिये गये धार्मिक उपदेशों तथा नायक नायिकाओं द्वारा ग्रहण करने के प्रसंगो मे शांत रस की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है ।

---

1. खरच्यो अरथ गरथ भण्डार कीधा मंत्र यन्त्र उपचार
   बडा वडेरा पुण्य प्रमाणि सुत उगरिउ बहइ विनाणि
2. दोहा संख्या 10
3. मुझ पुत्री पराणावा भणी मैं तुं आण्या चंदा अणी ।। 287 ।।

शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद होता है। इसमें संसार की नश्वरता एवं असारता का ज्ञान, ईश्वर चिंतन, तीर्थाटन, धार्मिक ग्रथो का पठन श्रवण, संसार की भंगुरता तथा जीव की अनित्यता प्रदर्शित कर विरक्ति या निर्वेद की भावना व्यक्त की गई है।

'ढोला मारवणी चौपई' मे मारवणी की सर्प दंश से मृत्यु हो जाने पर ढोला द्वारा योगी को कहे गये वाक्य में शांत रस की किंचित झलक मिलती है।[1]

'तेजसार रास' व 'भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई' मे शात रस के अनेक उदाहरण देखने को मिलते है। 'तेजसार रास' मे तेजसार मुनि सुव्रत स्वामी से धर्म उपदेश सुनकर श्रावक हो जाता है।[2] चौथे आश्रम मे आते ही तेजसार मुनि श्री से अपना पूर्वभव जानकर सात वर्ष सयम पालन[3] करते हुये शत्रुंजय तीर्थ यात्रा[4] कर निर्मल ध्यान को धारण करता है, और जीवन की निस्सारता को समझते हुये शिवपुरी पहुँचता हैं।

'भीमसेन राजहस सम्बन्ध चौपाई' मे राजहंस को श्रीराम मुनि धर्म उपदेश देते हैं।[5] राजा भीमसेन भी मुनि से धर्म उपदेश सुनकर राजहस को राज्य सौप कर वैराग्य ले लेते हैं।[6] उसी प्रकार राजहंस भी श्रावक हो जाता है[7] और मुनि श्री से धर्म की अनेक विकथायें सुनकर दान पुण्य करते हुये अपने पुत्र जयभद्र को राज्य सौप कर निर्वाण प्राप्त करते हैं।[8]

किन्तु यह निर्वेद जीवन भोग चुकने के बाद ही होता है। जब शरीर शिथिल हो जाता है तभी वृद्धावस्था मे पुत्र को राजपाट सम्हला कर वैराग्य लिया गया है।

'अगड़दत्त रास चौपई' मे भी शात रस की प्रधानता रही है। अगड़दत्त को विभिन्न प्रकार से सासारिक सुखो को भोग कर अन्त मे नारी चरित्र के धार्मिक

1. बा ते माबी अऊँली रीति बातन वेइसइ ढोला चीति
ढोल उकहइ आयस, सुणि बात कीजइ नही पराई ताति ॥ 591 ॥
2. दोहा संख्या 366 तेजसार रास ग्रं. 26546
3. दोहा संख्या 402 वही
4. दोहा संख्या 403 वही
5. दोहा संख्या 548 से 560
6. आव्यउ मनि वैराग्य अपार सहू अथिर जाणउ संसार
राजहंस नइ पाप्यउ राज कीधा बहू धर्म ना काज
भीमसेन राजहंस चौपई ॥ 569 ॥
7. राजहंस राइ श्रावक थयउ श्रीजिनधर्म हीयइसदइउ ॥ 570 ॥
8. आउ कर्म सपूरउ करी निर्मल भाव आप मनिधरी
सिद्धस प्रभु उत्तम ठामण राजहंस पाम्यउ निर्वाण ॥ 618 ॥

उपदेशों को सुनकर वैराग्य उत्पन्न होता है और वह अपने राज्य को छोड़कर संयम ग्रहण कर लेता है।[1] चोर कर्म करने वाले व्यक्तियों को भी नारी चरित्र को कर्म फल से व्याप्त देख वैराग्य उत्पन्न होता है।[2] ससार को क्षणिक जानकर मुनि से धर्म के उपदेश सुनकर अपनी पूर्व प्रवृत्ति का परित्याग कर वह दीक्षा ग्रहण करता है।[3] इस प्रकार दुष्ट प्रवृत्तियों का शमन शांत रस मे हुआ है।

कला-पक्ष

किसी भी काव्य के भाव पक्ष एवं कला पक्ष को विभाजित कर पाना नितान्त कठिन कार्य है। कुशललाभ के कथा-काव्यों में भावों का व कला का इतना सुन्दर समन्वय हुआ है कि दोनों एक प्राण हो गये हैं। फिर भी सुविधा की दृष्टि से कला पक्ष के अन्तर्गत भाषा शैली, अलकार योजना, छन्द प्रयोग प्रकृति वर्णन, संवाद सौष्ठव आदि को ले सकते हैं।

भाषा और शैली

कुशललाभ के कथा-साहिकाव्य की भाषा मध्यकालीन राजस्थानी है, जो तेरहवीं शताब्दी से पन्द्रहवी-सोहलवी शताब्दी तक पश्चिमी भारत की प्रमुख भाषा रही थी। इस भाषा का प्रयोग साहित्य रचना के लिये खूब किया जाता था कबीर जैसे कवि ने जिसने सर्व साधारण के लिए लिखा था, इसी भाषा मे लिखा था।

संपादकत्रय ने इसे "माध्यमिक राजस्थानी" कहा है।[4] आचार्य गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसे कृत्रिम डिंगल न मानकर तत्कालीन बोलचाल की राजस्थानी भाषा बताया है।[5] श्री शम्भुसिंह मनोहर ने भी इसे तत्कालीन लोकभाषा की रचना मानते हुये माध्यमिक राजस्थानी ही माना है।[6] डा. मोतीलाल मेनारिया ने इसे डिंगल भाषा का पहला काव्य ग्रंथ माना है।[7] डा. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' ने इसे विकासशील राजस्थानी का नाम दिया है जो विक्रम की तेरहवी शती से सोलहवी शती तक थी।[8] डा. शार्लोत वाँदविल ने इसकी भाषा को 'प्राचीन मारवाड़ी गुजराती कहा है।[9]

कुशललाभ के कथा काव्यों को उपर्युक्त दृष्टियो से देखने पर उसकी भाषा माध्यमिक राजस्थानी जो उस समय की बोलचाल की भाषा थी, कहना ही उचित

1. दोहा सख्या 310,313
2. ,, ,, 285
3. ,, ,, 287
4. ढोला मारू रा दूहा भूमिका पृ. 130
5 वही, प्रवचन पृ. 5
6. ढोला मारू रा दूहा : व्याख्या और विवेचन पृ. 123
7. राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. 103
8. राजस्थानी काव्य मे शृंगार भावना पृ. 11
9. जनरल आफ दी ओरयन्टल इंस्टीट्यूट वाल्यूम 'XI' सं० 4 पृ० 137

प्रतीत होता है। राजस्थानी पूरे राजस्थान प्रान्तो की भाषा है। तत्कालीन राजस्थान का क्षेत्र बहुत विस्तृत था। राजस्थान के उत्तरी भूभाग को जांगल, पूर्वी को मत्स्य, दक्षिणी पूर्वी को शिवि देश, दक्षिण को मेदपाट कहते थे। इसी प्रकार बागड प्राग्वाट मालव और गुर्जरत्रा, पश्चिम का मद, माडवल्ल, त्रवणी और मध्य भाग का अर्बुद और सपादलक्ष नाम था।[1] राजस्थान की भाषा ही राजस्थानी या मरु भाषा थी।

प्रत्येक काल में भाषा के प्राय: दो रूप देखने में आते हैं—एक तो उसका साहित्य रूप और दूसरा बोलचाल की भाषा का रूप। प्रारम्भ में सस्कृत केवल साहित्य की भाषा रह गई थी तथा उसका लोक व्यवहारिक रूप प्राकृत कहलाया। आगे चल कर प्राकृत के भी कई रूप हो गये। साहित्यक प्राकृत की लोक प्रचलित भाषा अपभ्रंश प्रचलित हुई।[2] इसी अपभ्रंश भाषा से राजस्थानी गुजराती, पंजाबी, सिंधी ब्रज, अवधी आदि भाषाओ का उदय हुआ।[3] प्रारम्भ मे प्राचीन राजस्थानी एवं गुजराती एक ही भाषा थी। लगभग सोलहवी शताब्दी से राजस्थानी एव गुजराती अलग अलग भाषायें हो गई।[4]

कुशललाभ का समय उनकी कृतियों के आधार पर सोलहवी सदी के उत्तरार्द्ध से 17 वी सदी तक माना जाता है। अत उनकी भाषा को माध्यमिक राजस्थानी का नाम दिया जा सकता है। इनकी भाषा मे "कही पुरानी वर्तनी है तो कही नवीन इसी प्रकार गुजराती, सिंधी, पंजाबी आदि भाषाओ के शब्द भी स्थान पर पाये जाते हैं। राजस्थानी मे भी कहीं मारवाडी रूप है तो कही ढूँढाडी, कहीं जैसलमेरी है तो कही मालवी। खडी बोली और ब्रज के रूप भी एकाध जगह पाये जाते हैं।"[5]

कुशललाभ के कथा-काव्यों मे अरबी व फारसी शब्दो का प्रभाव भी देखने को मिलता है। जैसे साहिब, सलाम, कागल, नजर, खवास, फौज, गारा, कमाण, खुरसांण, सकती, जीन, निसान आदि।

देशज शब्दो की अधिकता के कारण इन कथाओ के तत्कालीन लोक भाषा में रचित होने की पुष्टि होती है। यह लोक भाषा भी विशिष्ट माधुर्य एव मार्दव के

---

1. श्रीमद् विजयराजेन्द्र सूरि स्मारक ग्रंथ पृ 718 ढोला मारू रा दूहा व्याख्या एवं विवेचन पृ. 121 से उदधृत
2. प्राकृत विमर्श डा. सरयू प्रसाद अग्रवाल पृ 5
3. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग पृ 8
4. आरिजन एण्ड डवलपमेंड आफ बंगाली लंगुवेज डा. एस. के. चटर्जी पृ. 9
5. ढोला मारू रा दूहा पृ॰ 139 भूमिका

साथ निखार पर है। ये देशज शब्द जैसे—साँढियां, श्रोलग, परिघल, खांते, झाम्भी, रिठ, थोबड़, डीभू, सरढी, मागण हार, वाहला, केकांण ग्रादि हैं।

इन कथाओं में इतर प्रांत अर्थात् ग्रासपास के प्रदेशों की भाषाओं के शब्द भी कही-कही मिलते हैं। इनमें पंजाबी शब्द—चाहेंदी, चंगा, लज्ज, अज्ज, सैं, रत्ता ग्रादि है। गुजराती शब्द—ऐम, जेम, तेडन, कागल, मोकंले, केम, नूं ओलखिया ग्रादि हैं।

पर्यायवाची शब्द या शब्द के अनेक रूपों की भी प्रचुरता देखने को मिलती है जैसे—माँगी-ताँगी, राऊ-राउ, राइ, राव, राजा, नरपति, राय, प्रियतम-नाह, वल्लहा, कंत, धणियाँ, वल्लह, साहिव, प्रिय, सयणां, सज्जन, साजण, सायण, प्रीतम, प्यारा, वालम, परदेसी, प्रीउ, प्राणप्रिय, स्वामी, प्राण ग्राधार भरतार ग्रादि।

जैसा कि पूर्व मे बताया जा चुका है कुशललाभ के साहित्य मे मध्यकालीन पश्चिम साहित्यक राजस्थानी और तत्कालीन लौकिक राजस्थानी का प्रयोग हुआ है। लौकिक राजस्थानी का प्रयोग तद्युगीन सभी जैन सतों और धर्म प्रचारकों ने किया है अतः कुशललाभ के लिये भी इस कार्य हेतु इसी परम्परा का पालन करना ग्रावश्यक था। इन ग्रथो को भाषा के आधार पर भी इसी रूप में बाट सकते हैं। पिंगल शिरोमणि मे हमे विशुद्ध डिंगल भाषा के स्वरूप के दर्शन होते है तो ढोला मारवणी चौपई मे डिंगल के साथ-साथ अपभ्रंश की परम्परा ने साहित्यिक राजस्थानी भाषा का स्वरूप सामने आता है और अन्यान्य ग्रन्थो मे तद्युगीन बोलचाल की भाषा का।

किसी भाषा के विश्लेषण के लिये उसकी रूप रचना अथवा व्याकरण का और भाषा शास्त्रीय दृष्टि से उसकी ध्वनियों का अध्ययन नितान्त आवश्यक होता है। ध्वनि शास्त्रीय अध्ययन वर्तमान काल की भाषाओ या बोलियो का तो हो सकता है पर अतीत की भाषाओ का इस प्रकार का अध्ययन कठिन है। अतीत की भाषाओ के उच्चारण का निर्धारण नही किया जा सकता फिर भी कुछ ऐसे प्रयास किये गये है जिनका आधार वर्तमान मे प्रचलित उच्चारण का स्वरूप ही रहा है। इसी आधार पर कुशललाभ के साहित्य में प्रयुक्त वर्णमाला (स्वर और व्यंजनों) को प्रस्तुत करते हुये ध्वनिगत अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

कुशललाभ के साहित्य में हमें वर्तमान देवनागरी लिपि मे प्रयुक्त 'अः' स्वर को छोड़कर लगभग सभी स्वरों का प्रयोग मिलता है। पदो को पढते समय कुछेक ध्वनियों को दीर्घ या ह्रस्व करके पढ़ने पर ही छंदों का तालमेल बैठ पाता है। ये ध्वनियाँ दीर्घ और ह्रस्व के मध्य की ध्वनियाँ मानी जा सकती है।

व्यजन वर्ग मे 'क' वर्ग से लगाकर 'प' वर्ग तक 'ङ' और 'ञ' चिह्नों को छोड़कर सभी चिह्नों का प्रयोग हुआ है। इन चिह्नों को अनुस्वार मे परिवर्तित

करके लिखा गया है। पर राजस्थानी में इन ध्वनियों का स्थान अवश्य है, जिसे कुशललाभ के साहित्य मे भी भलीभाति अनुभव किया जा सकता है। 'ष' का प्रयोग कही देखने मे नही आता। 'श' और 'स' का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। 'स' के प्रयोग का बाहुल्य है। इसी प्रकार 'ह' का प्रयोग भी सहज रूप से प्राप्य है। इस ध्वनि का प्रयोग शब्द में पाद पूर्ति हेतु या विसर्ग के रूप मे भी बहुत अधिक हुआ है।

राजस्थानी भाषा की मुख्यरूप से पश्चिमी राजस्थानी मे 'ड़' 'ल' और 'ब' ध्वनियों का प्रयोग इसकी विशेषता है। ड़ और ल के प्रयोग के कारण भाषा मे माधुर्य और लालित्य का समावेश होता देखा गया है जैसे - वत्तड़ी[1], हीयड़ा[2], कुंजड़ियां[3], मृगला,[4], हाथाल,[5] एकला[6] व आगली[7] आदि ध्वनियो का प्रयोग द्रष्टव्य है।

संस्कृत शब्दो के तद्भव रूपो मे रेफ को कवि ने सर्वत्र पूर्ण 'र' ध्वनि मे परिवर्तित कर दिया है। सर्वार्थि मे सरवारथ[8], सर्प मे सरप[9] वृतात से विरतत[10] रूप देखने योग्य है। इसी प्रकार वर्ण और दुर्ग के तद्भव व्रन्न और दुर्ग मे रेफ का स्थानान्तरण भी उल्लेखनीय है। इसी प्रकार वृक्ष का व्रिख्य, मृग का म्रिग, पृथ्वी का प्रिथवी मे रूपान्तरित कर दिया गया है।

भाषा वैज्ञानिक नियमों के आधार पर ध्वनियों का पारस्परिक परिवर्तन अथवा रूपान्तर कुशललाभ की भाषा का वैशिष्ट्य है। 'य' का 'ज' मे, ऋ का र मे, क, ग, त, का 'य' मे, 'क' का 'ग' मे, 'श' का 'छ' मे 'त्स' का 'छ' मे, 'व' का 'ग' मे, 'क्ष' का 'ख' मे, 'न' का 'ण' मे तथा 'घ' का 'ह' मे परिवर्तन एक साधारण सी बात है। इस प्रकार के परिवर्तन मे उद्भूत शब्दो की एक लघु सूची यहाँ प्रस्तुत की जा रही है—

जोणिणी (योगिनी) मरजाद (मर्यादा), जादव (यादव), सायर (सागर), पायाल (पाताल), सयल (सकल), नयरी (नगरी), मुगुट (मुकुट), प्रगट (प्रकट),

---

1. केह कीजइ वत्तडी ? केही कीजइ कत्थ ? 356 मा० का० चौ०
2 हीयड़ा-भीतरि पइसि करि, ऊगा सलिल रूख—346 मा० का० चौ०
3 कुंजड़िया मिल्लि दूहा कहइ 243 ढोला मारवणी चौपई
4 मृगला सु रमणी उच्छाहि - 281 तेजसार रास
5. हणवंत सो हाथाल, खड़ी नव खंड रो—पिंगल शिरोमणि
6. रीह साप कुंजर एकला—215 अगडदत्त रास
7. रथ आगलि तइसारो नारी—217, वही
8. सरवारथ सिद्धई अछइ—4 तेजसार रास
9. पार्श्वनाथ दशमव स्तवन छंद—26
10. कीर भणइ सहिसू विरततं—61 भीमसेन राजहंस चौपई

वणिग (वणिक), भगति (भक्ति), उपगार (उपकार), तरगस (तरकस), अपछरा (अपसरा), महोछव (महोत्सव), मनछा (मनसा), मीनती (विनति), आणंद (आनद), णाटक (नाटक), विणास (विनास), तापसणी (तपस्विनी), कुण्डलणि (कुंडलिनी), जणणी (जननी), आराहइ (आराधइ), जलहर (जलधर)।

कवि ने काव्य में राजस्थानी भाषा की परम्परागत प्रवृत्ति के अनुसार पाद-पूर्ति हेतु शब्द के अन्त मे ह, ज, य, र आदि ध्वनियो का प्रयोग किया है। 'ह' ध्वनि के प्रयोग गयाह,[1] चकवीह, उरह, पुत्रह[2], कुंजडियांह, हिज[3] सकत्तीय[4] आदि इसी प्रकार के प्रयोग है।

आगम की तरह ही लोप की प्रवृत्ति भी भाषा में पाई जाती है। ऊष्म ध्वनियाँ श, ष, अथवा स का लोप हो गया है। स्थान को ठाम या थाण[5] मे, स्तवुं को तवुं[6], स्कध का खधि[7] मे रूपान्तरण कर दिया गया है।

कवि ने छद की गति या लय के स्थिरीकरण के लिये अपनी इच्छानुसार शब्दो की ध्वनियो को ह्रस्व से दीर्घ या दीर्घ से ह्रस्व मे परिवर्तित किया है जैसे—वीनती[8] (विनति), अवसरि[9] (अवसर) आदि।

व्याकरण

भाषा की प्रवृत्ति के निर्णय हेतु उसका व्याकरण सम्मत अध्ययन अत्यधिक आवश्यक होता है। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, कारक और अव्यय भाषा निर्धारण के लिये आवश्यक तत्व माने गये है। कुशललाभ के कथा-काव्य मे प्रयुक्त भाषा का इसी दृष्टि से सामान्य व्याकरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

कुशललाभ के कथा साहित्य मे सज्ञा के पुलिंग अथवा स्त्रीलिंग शब्दों के अकारान्त, आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त या ऊकारान्त शब्द समान रूप से प्राप्त होते है। ओकारान्त और औकारान्त पुलिग शब्द मे ही मिलते है स्त्रीलिग मे नही। पुलिंग से स्त्रीलिंग मे परिवर्तित रूप अन्त मे ईकारान्त करके या

1. मन मिलिया तन गड्डया, दोहग दूरे गयाह—255 मा. का. चौ.
2 कीया वधावा पुत्रह तणा—150 ढो. मा चौ
3. दोहा सख्या 17 दुर्गा सात्तसी
4. कूड़ो वर पाइ कुंवर कूड पूत्री सु सकत्तीय –पृ० 83 पिंगल शिरोमणि
5. पुहपावती नगरिनइ ठामि—27 मा. का चौ
6. त्रिपुर गुण के तवुं—17 दुर्गासात्तसी
7. कूदी आप चढ्यउ तसु खंधि—70 तेजसार रास
8. स्वामी नि मुख संभलि वीनती—181 भी. हं. चौ.
9. ते अवसरि ते वेला लही—167 भी. हं. चौ.

'इनी' प्रत्यय जोड़कर भी बनाये गये हैं। संज्ञा शब्दो के दोनो प्रकार के रूपों के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं--

पुंलिंग	स्त्रीलिंग
अकारान्त	
कचरण, कुच, कागल, तेजसार, विद्याधर, बालक, नगर, पान, कासमीर, दीह, मूरिख, किरतार, कवियण, रेवत, राय, पीहर, मराल।	करणयर, काब, मीत, छागल, कीरत, खीर, अपछर, दीनार, कटक
आकारान्त	
थांभा, ढोला, कापडिआ, माणसा, सुहिणा, वालहा, सरवरा, सालूरा, वणिजारा, पंथीडा, राजा, ढोलणा, गोला, खला, सुग्रीवा, सूआ, प्रोहितां, भीला, भाणेजा, पिता।	गंगा, पूजा, उमा, कामकंदला, गणिका, गुफा, श्राविका, वामा, कुंभडियाँ, सीता, रमा, धरा, सुता, गाथा, चता।
इकारान्त	
जलधि, नरहरि, भाँवारि, भूपति, महिपति, मुनि, दिवसि, पाणि, मरूभूति, श्रेष्ठि, स्वामि।	सीकोतरि, मदोदरि, कुमरि, राजकुमारि, सकति, नागवेलि, सुमति, नारि।
ईकारान्त	
पंथी, अहेडी, मोती, अरी, सामतसी, मालवधणी, रेबारी, मंत्री, रिणकेसरी, धणी, स्वामी, जोगी, हाथी, अधिकारी, अभिमानी।	सरसती, ब्रह्मपुत्री, धरणी, अस्त्री, नारी, वीनती, गोगविलासिनी, कामिणी, मारविणी, ससी, रमणी, कुमरी, राणी, पटराणी, पिडयाणी, नेसाली, साडी, श्रीमती दीकरी, अवती, लषमी, अतंउरी, डाकिणी, नगरी, धात्री, सखी, ठकुराई, वेलडी, पाखिणी, अटवी।

उकारान्त

कवि ने इन उकारान्त शब्दों को इच्छानुसार स्थान्तरित भी कर दिया है।

रिपु, वाउ, प्रभु, मत्र, तरू, तनु —

ऊकारान्त

ग्रीऊ, छोऊ	घू, माऊ
ओकारान्त	
वीडो, भमरो, संदेसड़ो, कंटालो, तमासो, कंचूओ, नातरो, ढोलो, सूडो, मामडो, करहो, नरेसरो।	—
औकारान्त	
कंचौ	—

निष्कर्षत: कुशललाभ के साहित्य मे अकारान्त पुलिंग और ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों की बहुलता है।

वचन

राजस्थानी भाषा में एकवचन और बहुवचन का ही प्रयोग मिलता है। बहुवचन बनाने के लिये प्राय शब्द को आकारान्त करके अन्त में अनुस्वार लगाकर अथवा अण या यण प्रत्यय लगाकर बनाया गया है। अपछर, घर, मयक, दिवस, नगर, पान, रेवंत, छागल, साजन, पथी, सरप, कुमर, गणिका, तरु, रिपु आदि एकवचन के रूप हैं।

सरवरा, सलूरा, माणसा, कुभडियां, नयणा, खला, कवियण आदि रूप बहुवचन के हैं।

समाचार, नैत्र, वचण, दीनार जैसे दोनों वचनो में अपनी समान स्थिति रखने वाले शब्दो का भी बहुत प्रयोग हुआ है।

कारक और कारक चिह्न

भाषा विश्लेषण के लिये कारक चिह्नों का भी अत्यधिक महत्व है। कुशललाभ के साहित्य में प्रयुक्त कारक-चिह्न निम्नलिखित हैं—

कर्ता	कर्ता के लिये किसी चिह्न विशेष का प्रयोग नहीं मिलता है।
कर्म :	नइ,[1] नूं, अण, प्रति[2] प्रतइ आदि।
करण ·	नइं,[3] ने, नै,[4] अत्, कनां, सुं, सैं, सूं आदि।
सम्पदान	काज, काजि,[5] काजइ, कारणि, कारीणा, खाति, कौ, वासि, होति आदि।

1. दीठा बग, गौड, बंगाल, कुंकण नइ काविल, पंचाल 25 ढो. मा. चौ.
2. संकर प्रति कहइ त्रिपुरारि—57 मा. का. चौ
3. रूपवंत नइं सुन्दर देह—70 ढो. मा. चौ.
4 आपणि हरखि भाट नै देमि—28 ढो. मा. चौ.
5. कवण काजि आस्यइ किणि ठाइ—67 ढो. मा. चौ.

अपादान :	थी, ते[1] थकी,[2] तइ, हुतां, हता, हुंति, हूती,[3] स सूं[4] आदि ।
सम्बन्ध :	तणी, तणउ,[5] तणा,[6] तणइ, तणै, तणौ, तास, नइ, नो, नी, नइ, नू, ना, नै, केरी, हदी, हदा, हदो, हदै, ह[7] रो, री, रे, के, को, ओ, लो, लागि आदि ।
अधिकरण :	महि, मध्य, मझारि, मां, माहइ, माहि, माहे, माहिं, मझार, परइ[8] ए, आ, हि, सो अता आदि ।
संबोधन :	रे,[9] अजी,[10] है है,[11] रे रे, ओ आदि ।

सर्वनाम

कुशललाभ के आख्यान काव्यो मे पुरुषवाचक, संबंधवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, प्रश्नवाचक, आदरबोधक आदि सभी प्रकार के सर्वनामो का प्रयोग मिलता है । इन सर्वनामो के प्राप्त रूप निम्नांकित तालिका में प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिससे वे स्पष्ट रूप से समझे जा सके :

पुरुषवाचक सर्वनाम

उत्तम पुरुष

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता :	हूँ, मे, मैं मइ	अम्है, म्हें, हम
कर्म :	मोहि, मो, अमने, मुझ, अम्ह ।	—
सम्प्रदान :	मोनै, हूं	—
सम्बन्ध :	मुज, माहरो, माहरइ, मोरी, अमारो, मम, मो ।	अम्ह, अम्हा
अधिकरण :	ते, तेणि, मो, वरि	अम्ह, ताम, तेह ।

---

1. पुत्र नाही ते मोटउ दुःख—47 मा. का. चौ.
2. आज थकी इक वीसमइ दिवसि—252 भी. रा. चौ.
3. स्वर्ग लोग हूती खडहली—29 मा का. चौ
4. मदनमजरी नइ उदरि अवतारि सूं निद्धरि—253 भी. रा. चौ.
5. अपछर तणउ जयंतीनाम—14 मा. का. चौ
6. पिंगलराय तणा परधान—45 ढो. मा. चौ.
7. अंगहीण सिल पाहण हू तणी—23 मा. का. चौ
8. नदी परइ तब संध्या थई—454 भी रा. चौ
9. एणी परि रे भला सुकन जाणी—485 वही
10. अजी अछइ बहुराति—270 मा. का. चौ.
11. है है दैव ! किसु मइ कीयउ ?—581 वही

मध्य पुरुष

कर्ता	:	तू, तम, थे	तुम
कर्म	:	तुज, तोहि, तोइ, तोनू, तु	तुमे
सम्बन्ध	:	तुम्ह, तणी, ताहरो, नाहरा, थारइ, तुव, तुम्हरो, तुम्हारइ, तुमारी ।	थे, थाको, थांकी ।

अन्य पुरुष

कर्ता	:	तइ, तिण, ते, तिण्ह तेण, तेम	—
कर्म	:	तासु, ताम, तस	ताम, ते ।
करण	·	तसु, तिहसु	—
सम्बन्ध		तेह, तसु, तास तेहनी, तेहनइ, ताम, वे	ते, तेह
अधिकरण	:	ते, तेणी	ताम, तेह

सम्बन्ध वाचक सर्वनाम

कर्ता	·	सो, सोइ, तिण, जे, जिणी,	जिका
		जिन, जेणि, जो	—
कर्म	.	सो, जिन	—
सम्बन्ध	:	जासु, जाके, जे, जेह	—
अधिकरण	:	तिणि	—

निश्चयवाचक सर्वनाम

कर्ता	:	इणइ, इणी	ए, एह
कर्म	:	आ	—
सम्प्रदान	:	अणी	—
सम्बन्ध	:	अेह	—

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

कर्ता	:	कोइ, कोई	का

प्रश्नवाचक सर्वनाम

कर्ता	·	कुण, कुवण	—
कर्म	:	कुण	—
सम्बन्ध	:	कणी, कुण, कवण	—

आदरबोधक सर्वनाम : आप, आपणो, आपां, आपणी, आपणउ, आपइ आदि ।

विशेषण

परिणामवाचक

सघला, घणी, परिघल, थोडइ, अति, ऐतलो, बहु ।

संख्यावाचक

1--गणनावाचक--एक, दोई, त्रिणि, चत्र, दस, बिसहस

2--क्रमवाचक--पहिलौ, बीजू, त्रीजू, चउथइ

3--समुदायवाचक--आधा, त्रिहु, चहु, बिहुं, सर्व

गुणवाचक

दयामणो, मोटो, घणो, दुरंगो, जेठो, अपूरब, प्रवीन, अतुली, अपार, अमूल, कालो, साचो, रातो आदि ।

क्रिया-रूप

कुशललाभ के साहित्य मे मध्यकालीन साहित्य मे प्रयुक्त भाषाओ की भांति ही सयोगात्मकता अधिक है । खेलता है, सर्वनाश करता है, पढता है, भरती है आदि शब्दों के लिये खेलै, सहारइ, भणइ भरद जैसे रूप इसी प्रवृत्ति के द्योतक है। काव्य मे क्रिया रूपो की अधिकता देखने मे नही आती । छद पूर्ति हेतु एक ही रूप को अनेक रूपता दे दी गई है । ये सभी तद्युगीन भाषा मे स्थिरीकरण के अभाव का सूचक कहा जा सकता है । लिंग, वचन तथा काल की दृष्टि से क्रिया रूपों की स्थिति निम्नांकित तालिका मे स्पष्ट की जा रही हैं ·

वर्तमान काल

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	दाखूं, प्रणमूं दीसइ, छि, कहू	—
मध्यम पुरुष	करो, कहै, दीसो, समारउ सुणी ।	मूक्या
अन्य पुरुष	भणइ, करइ, देखै, देखई, सचरइ बहइ, वहे, उच्चरे, भाषइ, फिरइ, दीसइ, चितवइ, अछइ, भमइ, वसै हवै, रहै, सहारइ, सोचइ, सीभइ	बोलेछै, सीझई, फिरई

उक्त क्रियाओं में अइ, ए, ऐ, अउ, ओ प्रत्यय जोड़कर रूप बनाये गये हैं । इस प्रकार बनने वाले कतिपय अन्य प्रयोग द्रष्टव्य हैं--बोलै छै, देखै, बसै, हुवै, करै, पढै, रहै। ए, ऐ प्रत्ययो के प्रयोग से बने रूप है तो, बइठउ, समारउ, कहिज्यो, अगासे आदि अउ, ओ प्रत्ययो के योग से बने रूप । अत, अति, आदि प्रत्ययों के योग से बने

एकवचन या बहुवचन रूप बनते हैं। देखत, निहारत, बोलत, मिलति आदि इसी प्रकार के रूप हैं। ई, ऊ या आ जोड़कर जाणी, दीसइ, सुणी, कइ प्रणयू, करु रूप बने मिलते है।

भूतकाल

भूतकालिक क्रियाओं की सरचना के लिए धातु में आ, इ, ई, अउं, इंउ, इया; इया ,या, ओ, औ आदि प्रत्यय जोड़ दिया गया है। स्त्रीलिंग शब्दों के साथ इ या ई प्रत्यय लगाये गये है। परण्या, उतरया, आव्या, कह्या, गया, पहिराव्या, ओधिया, दीठा, नाठा, आवी, दीधी, दीध्यउ, माडयउ, जिमाडियउ, उडीयो, संग्रह्यो, आव्यु, गयु, पहुतो हुज्यो, साभल्यो, चढि, मुइ, बइठी, आवी। इन क्रियाओ की वर्गीकृत तालिका नीचे प्रस्तुत की जा रही है :

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	कीधो, कीधउ, दीधो, लुबधउ, पाम्यो	पाम्या
मध्यम पुरुष	धयी	आव्या
अन्य पुरुष	धीधू, दीधउ, उग्यउ, हटाल्यो, सुण्यउ, धाबी, माडयउ, नीकली, मिली, जोई, मोही, पहुतो, वइसार्यो, उतरिउ, नीरख्यो, करै, नीसर्यउ, परणावियो, सचर्यो	गया, उतर्या, करा, मूक्या, पहूता आव्या, पहिराव्या, परण्या, कह्या

धातुओ मे स्यतृ प्रत्यय का योग करके क्रिया के भविष्यत् रूपों की सृष्टि की गई है। भविष्यत् कालीन क्रियाओ के प्राप्त रूप निम्न प्रकार है—

भविष्यत् काल

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	आविम, करोमि, माडिसु, आपेसि, आविसूं, वास्यउ, चालिसि, मीलूंगी	बीसस्या, आविस्यां, मारसां, करेसा, परणाविस्यां
मध्यम पुरुष	मेलसि, होशै, थासै	छांडिस्यो, आणिसि
अन्य पुरुष	होस्यई, जासी, लांघिसि	करस्यो, आणिसि

भविष्यत् कालीन क्रियाओ में ला, ली, या गा, गी, से अन्त होने वाले प्रयोग प्राय: नही मिलते है। उत्तम पुरुष मे बहुवचन बनाने के लिये क्रिया के साथ सयुक्त प्रत्ययो पर अनुस्वार का प्रयोग किया गया है। जैसे परणाविस्या, करिसां, मारिसा, बीसस्या, आविस्या, छाडिस्या आदि।

सकर्मक क्रिया

लोयु, सारइ, विनवइ, वाचौ, पूछियो, हणिउ, जाणिउ, सोधिया, झंपइ, उतारी ।

पूर्वकालिक क्रिया

करि, तरि, जोडि, देखि, सभवि, विच्यारि, कूर्दा, आवी, जाणी, पेखै चढै ।

क्रिया का पूर्वकालिक पूर्णत्व रूप प्रदर्शित करने के लिये 'करके' के अर्थ मे इ, ई, नइ, ऐ आदि प्रत्ययो का प्रयोग किया गया है । यथा—देखी नइ, विभासि नइ, करि नइ, आदि ।

प्रेरणार्थक क्रिया

पहुचाइ, पोहचाय, सींचइ, चल

संयुक्त क्रिया

सयुक्त क्रियाएँ आकारान्तक, इकारान्तक या उकारान्तक या ओकारान्तक मिलती है ।

पोढि, ग्रही, बइच्छउ, गाजतउ सूतौ, कुप्यउ, हरख्यउ, वही गयौ, रमवा गई, जोता, पाम्या ।

अव्यय

अव्ययो मे काल, स्थान, दिशा, रीति, निषेध, विरोध, विभाजन, सकेत, सम्मुच्चयबोध, सम्बन्ध बोध आदि सूचित करने वाले शब्द प्राप्त होते है । लिंग, वचन कारक आदि की दृष्टि से अप्रभावित रहते हुए भी स्वय कवि ने उनको वर्तनी की दृष्टि से अनेक रूपो मे प्रस्तुत किया है । प्रतिलिपिकर्ताओ ने भी इन्हे अनेक रूप देने मे सहायता की है । प्रत्येक वर्ग के अन्तर्गत प्राप्य शब्दो की सूची नीचे प्रस्तुत की जा रही है :

कालवाचक

आज, कदी, कदे, तब पछइ, अबिहड, निन नित, दिन प्रति, तीणे, तत्काल तिसइ, कदाचित, नितु, सदा. बली, निसदीस, नव, हिवैइ

स्थिति और स्थान वाचक

इहां, उहा, तिहा, जिहा किहा तेथा, समीपई, ऊपरि, ऊचउ, माहो माहि, विच

रीतिबोधक

कांइ क्रमिक्रमि, अनुक्रमि, कि म ही, इणिपरि, एहवइ, जिसइ, तिसइ, इसउ, जिसूं, इम, इम, विधिवत, बारबार

परिमाणबोधक

आधा. जरा, बहू, घणा, परिघल, सगला, सगली, अणगल, सवि किवलु ।

विभाजन बोधक

काइ, के, का, कइ, कि, किना, केइ, अथवा

विरोध बोधक

पिण, पाणि,

निषेध बोधक

म, मत, मति, न, नही, नवि,

सम्बन्ध बोधक

लगि, साथि, मधात, जु', वार, जिसौ, समाणी, समो

समुच्चय बोधक

परि, तोई, अर, बिण, नै, नइ, ने, नउ, बिना, अनइ, तव

संकेत सूचक

जिम, तो, ज, जे, जे-जे, जेह, त कि

उपसर्ग

कुशललाभ के कथा काव्यो मे प्रयुक्त उपसर्गों की संख्या अपार है। जिनके प्रयोग से शब्द विशेषता, हीनता, उत्कर्ष आदि को प्राप्त हुआ है। ये उपसर्ग हैं— अ, आ, अभि, अणु, अवि, अव, उप, वि, प्र, परि, पर, स, सु, सम्, नि, दुर आदि। इन उपसर्गों को हम उपर्युक्त वर्गों मे निम्न रूप मे रख सकते हैं—

उत्कर्ष बोधक— प्र, उत, वि

विशेषता बोधक— प्र, अभि, नि, सत्, वि

हीनताबोधक— कु, अ, दु, दुर

विलोमबोधक—अ, वि

प्रत्यय

कृदन्त प्रत्यय

अइ नमइ, भावइ, पामई, चढई, दीसई, अभ्यसई, विलसई

अउ अवतरस्यउ, आलोचियउ, बइठयउ, धावउ

अत जीवत, निहारत

इत भाषित, सुरभित, उदित, गथित, हरषित

अता जीवता, आराधना, भावतां, पेखता

अता भावता, पेखता,

अति रुदती, बोलती

या आव्या, पठाव्या, पाम्या

इयां आखियां, छातियां, रतियां

आ आं, अवतरियां, उपनीयां, पामिआ, कुरलाइया

इउ भणिउ,प्रणमिउ, बेध्धिउ, हणीउ

अो 'यो' मरयो, पाम्यो, पायो,नीमाअयो, सीरज्यो, कंपावियो
डी संकोडी, ग्रेवडी, पोयोड़ीह
वी नीयजवी, मनावी, राजवी, भावी, भोगवी

तद्धित प्रत्यय

वंत अलवंत, विद्यावंत, शीलवंत, भगवत
कार नृत्यकार, सुखकार, अहंकार, धोकार
हार मागिणहार, तारणहार, सिरजजहार
आर भग्तार, करतार
रो नातरो
डी देवडी, मोजडी, गोरडी
ड़ो हीयड़ो, संदेसडो
ली नवली सगली, सभली, हथेली, दोहिली
ला सगला, सधला, अबला, एकला
अक दायक, बीतक, कातक, सेवक

शब्द शक्तियो मे अभिधा लक्षणा और व्यजना का यथोचित प्रयोग हुआ है। भाषा मे ओज माधुर्य एवं प्रसाद जैसे गुणो की प्रसगानुकूल अभिव्यक्तित हुई है।

शैली का प्रमुख गुण अर्थ गभीरता है जो शब्द देखने मे साधारण लगे किन्तु उसका अर्थ गंभीरता रखता हो, यही शैली की विशेषता है। कम शब्दों में भाव गाभीर्य को प्रकट करने के लिये कवि मुहावरे एव लोकोक्तियों का भी सहारा लेता है।

कुशललाभ ने मुहावरो एव लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा को सरस माधुर्य एव सशक्त बनाने के लिये किया है। वे निम्नलिखित है---हंसी उड़ाना, नि.श्वास भरना, थाह खोजना, बाट जोहना, दिन गिनना, नमक छिडकना, आख न लगना, कलेजा फटना, हृदय फटना हवा होना, घात खेलना, हाथ मलना, पीला पडना, दूध का मेह बरसना, सिद्धि करना, अमगल होना आदि है।

लोकोक्ति मे पहेली और कहावत को हम ले सकते है। लोकोक्ति मे जीवन का सत्य सक्षेप मे प्रकट होता है।

डॉ. सत्येन्द्र पहेली का अर्थ स्पष्ट करते हुये लिखते है कि लोक मानस इन पहेलियो के द्वारा अर्थ गौरव की रक्षा कर मनोरजन प्रदान करता है। बुद्धि परीक्षा का यह एक साधन है। ये बुद्धि कौशल पर निर्भर करती है।[1] कुशललाभ के

---

1. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन . डॉ० सत्येन्द्र पृ० 520

'माधवानल कामकंदला चउपई' में प्रहेलिका आयोजन माधव कंदला मिलन के समय हुआ है ।[1]

कुशललाभ के साहित्य में हमें सरल, गूढ, अलंकृत एवं विलष्ट शैलियाँ मिलती है :

सरल[2] शैली—जैसे

तेहनउ प्रोहित संकरदास ऋद्धिवंत नइ सील विलास ॥46॥

अलंकृत शैली[3]

अहर रंगि स्तउ हुउ मुखि कज्जल मसिवन्न
जाणिउ गुंजा हल अछइ तेणिन दूकउ मन्न ॥282॥

गूढ शैली[4]

वालम दीप पवन्न मई अचल सरण पइट्ठ
करहीणउ धूणइ कमल जाम पयोहर दिट्ठ ॥246॥

परम्परा की दृष्टि से देखे तो कुशललाभ के कथा साहित्य की शैली जन शैली है । इन कथाओ मे लोक मानस की यथार्थ झाकी तथा उस युग की वाणी मुखरित हुई है । इनमे लोक जीवन की सहज स्वाभाविक भावनाये प्रेमी युगल के माध्यम से प्रकट की गई है ।

अलंकार

काव्य की शोभा बढाने वाले तत्व ही अलंकार है ।[5] आचार्य श्यामसुन्दर दास लिखते हैं कि जिस प्रकार आभूषण शरीर की शोभा बढाते हैं उसी प्रकार अलंकार भाषा का उत्कर्ष रस वृद्धि करते है ।[6] पाश्चात्य विद्वान क्रोचे अलंकार को अभि-व्यंजना का अभिन्न अग मानते है ।[7] अलकारो का प्रयोग भाव अनुकूल होने से भाषा प्रभविष्णु बनती है । अत अलकार भाव और भाषा के भूषण है ।

कुशललाभ ने अलकारो मे अर्थालंकार और शब्दालकार दोनों का सुन्दर प्रयोग किया है । अर्थालकारों मे सादृश्यमूलक अलकारों का अधिक प्रयोग कवि

1. माधवानल कामकदला चउपई दोहा संख्या 265 से 339
2. दोहा सख्या 46 डो मा. चौ हृ प्र. डॉ० जावलिया से प्राप्त प्रति
3. दोहा संख्या 242
4. दोहा सख्या 246
5. काव्य शोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते काव्यादर्श (दण्डी)
6. साहित्यालोचन पृ० 316
7. थ्योरी ऑफ एसथेटिक्स पृ 113

ने किया है और उनमें भी उपमा अलंकार का जो स्वतः प्रयुक्त जान पड़ता है। काव्य कौशल और अलंकारो की छटा दिखाने मे कवि कही नहीं उलझा है। इसलिये उसमें दूर की कौडी लाने का प्रयास नही मिलता, परन्तु जो भी अलंकार इन कथा-काव्यों मे आये है वे सहज और स्वाभाविक रूप से रस के उपकारक बन कर आये है।

नारी रूप वर्णन मे कवि ने परम्परागत उपमाओं को ही अपनाया है। जैसे–

उर जु गयवर पग धणु दाडिम दत सुतेज
कुंभी भाषस गोरिया षजन जेह। नेत्र ।।457।।

जध सुपत्तल करि कुंअल, भीणी लब पुलब
ढोला एही मारुइ, आंगिक कणयर कंब ।।455।।

'माधवानल कामकंदला' में––

चंपकवर्ण सकोमल अग, मस्तकि वेणी जाणि भुयंग
अधररग परवाली वेलि गयवर हंस हरावब गेलि ।।194।।

पीन पयोधर कठिन उत्तग लोचन जाणि त्रस्त कुरग
भालि तिलक सिरिवेणी दड भमह वक मनमथ को दड ।।197।।

केसरिसिंह जिस्यु कटिलक रतन जड़ित कटि मेखलवक
जध जुयलकरि कदली थभ अभिनव रुपिइ रमणी रभ ।।199।।

'तेजसार रास' मे—

नव यौवन तिण माहे नारि अपछर नई दीसै अणुहरि ।।122।।

'भीमसेन राजहंस चौपई' मे मदनमजरी का रूप वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया गया है[1]—

सन्यासी बोलइ मुणि राय, सत्य वचन सुण्योसद्भावइ
मुदगि सह जगतइ सुकमाल मान सरोवर जेम मराल ।।132।।

लघु केसरि जेह वीकडि लक मलि नरि हुत मुख जाणि मयक
उपइ कुदंण जिम तसु अंग चपल तुरगंम चष्य अति चग ।।133।।

रभा गर्भ जिसी जुग जघ उदित विल्व सम उरज उतंग
अधर पक्व बिबा अणुहारि कीर पुतली चित्र आकार ।।134।।

अबला नउ छइ रूप असंम कोमल वाणी अमृत कुंभ ।।135।।

1. भीमसेन राजहस चौपई ह. ग्रं. ग्रं. 1217 ला. द ग्रं. अहमदाबाद

इन कथाओं में परम्परागत उपमाओं में भी एक विशेषता दिखाई देती है और वह है इन पर छाया हुआ राजस्थानी रग और रुचि। राजस्थान में सौन्दर्य के साथ शोभा सदा संयुक्त रही है। यह राजस्थानी सौन्दर्य की अपनी मौलिक विशेषता है। नायिका के नाक की उपमा शुक चोच से तो कई जगह दी हुई मिलती है परन्तु कुशललाभ की नायिका कामकंदला की नासिका की यह उपमा तो सर्वथा ही मौलिक है—

नाक जिसी दीवानी सिखि वाहिं रतन जडित बहिरखी ॥193॥

दीपक की लौ के समान नायिका की नासिका है। इसी प्रकार मारवणी के अलसाये नैत्रो मे लाल डोरे है, और वे कबूतर की आंखों के समान भोली भी है।

मारू पारेवाह ज्यू अंखी रत्ता मंझ ॥459॥

छन्द प्रयोग

काव्य व छन्द का सम्बन्ध घनिष्ठ एवं अभिन्न रहा है। प्रसिद्ध पाश्चात्य दार्शनिक 'मिल' के शब्दो मे—"जब से मनुष्य मनुष्य है, तभी से उसके सभी गंभीर और सम्बद्ध भावो की अपने आपको लययुक्त भाषा में व्यक्त करने की प्रवृत्ति रही है। भाव जितने ही अधिक गभीर हुये है, लय उतनी ही विशिष्ठ और निश्चित हो गई है।"

भारतीय साहित्याचार्यो में दण्डी ने सर्वप्रथम महाकाव्य में पढने एवं सुनने मे मधुर रमणीक छन्दों की आवश्यकता का उल्लेख किया है। उनका कहना है कि एक सर्ग मे एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिये तथा सर्गान्त मे भिन्न छन्द का प्रयोग अपेक्षित है।[1]

कविवर पत ने कहा है—"कविता तथा छंद के बीच बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है, कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन, कविता का स्वभाव ही छन्द मे लयमान होता है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते है जिनके बिना वह अपनी ही बन्धन हीनता मे अपना प्रवाह खो बैठती है, उसी प्रकार छन्द भी अपने नियंत्रण से राग को स्पन्दन कम्पन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के रोड़ों मे एक कोमल सजल कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं। वाणी की अनियमित सासें नियन्त्रित हो जाती, ताल मुक्त हो जाती, उसके स्वर मे प्राणायाम रोओ मे स्फूर्ति आ जाती, राग की असम्बद्ध झकारे एक वृत मे बध जाती, उनमे परिपूर्णता आ जाती है। छन्द बद्ध शब्द चुम्बक के पार्श्ववर्ती लोह चूर्ण की तरह अपने चारो ओर एक आकर्षण क्षेत्र तैयार कर लेते, उनमे एक प्रकार

1. काव्यादर्श 1/18-19

का सामजंस्य, एक रूप, एक विन्यास आ जाता, उनमें राग की विद्युत धारा बहने लगती, उनके स्पर्श में एक प्रभाव तथा शक्ति पैदा हो जाती है।"[1]

कुशललाभ के कथा साहित्य मे छन्द वैविध्य की दृष्टि से निम्नलिखित प्रकार के छन्द प्रयोग देखने को मिलते हैं—

1. दूहा

दोहा एक अर्ध सममात्रिक छन्द है। इसके 23 भेद है।

सकल सुरासर सामिनी, सुणिमाता सरसत्ति
विनय करीनइ वीनवु मुझ धउ अविरल भत्ति
ढो मा. चो. ॥1॥

2. चउपई

पूगल नयरी मरुधर देस, निरुपम पिंगल नाम नरेस
मारुवाड़ी नवकोटी धणी, उत्तर सिंधु भूमि तसु तणी
ढो मा चो ॥13॥

3. गाहा या गाथा

गाहा शब्द गाथा का रूपान्तर है। यह सस्कृत के आर्या छन्द के निकट है। गाथाओ मे 57 मात्राये होती है।

मणहर नवरस मज्झे सुंदरि नारीण सरस सबधा
निरुवम कव्व निबद्धा सुणउ सयणा जणा सगुण
ढो म. चो. ॥5॥

4. कवित्त

पथ उदंड प्रचड सदा चगो पुर साणी
बीजी निर्मल वस्त्र पंक विणु गगानउ पाणी
ढो. मा चो. ॥7॥

5. वस्तु

इनका प्रयोग विस्मयजनक परिस्थितियो मे अपना अद्भुत रस की अभिव्यक्ति के लिये होता है --

देवि सरसति देवि सरसति सुमति दातार
कासमीर मुखमडणी ब्रह्म पुत्रि करि वीण सोहइ
मोहण तरुवर मन्जरी मुख मयक त्रिहुभुवन मोहइ
पयपकय प्रणमि करी, आणीमनि आणंद
सरस चरित शृंगार रस पभिणिसिउ परमाणंद
मा. का. चो. ॥1॥

---

1. पल्लव की भूमिका पृ० 21

6. श्लोक

आज्ञाभंङ्गे नरेन्द्राणां महतां मानमर्दनम् ।
पृथक् शय्या च नारीणाम शस्त्र वध उच्यते ।।
मा. का. चौ. ।।19।।

7. सोरठा

दोहे का उलटा सोरठा है। इसके भी 23 भेद हो सकते हैं।

मांग्यां न मिलइच्यार, पूरव पूरादत्त विण ।
विद्या नइवर नारि, सर्प गेह सरीर सुख ।।
मा. का. चौ. ।। 83 ।।

8 मालिनी

श्री रागोऽथ वसन्तश्च पञ्चमो भैरवस्तथा ।
मेघरागश्च विज्ञेयः षष्ठो नट्टनरायण ।।
मा. का. चौ. ।। 148 ।।

9 शार्दुल विक्रीडित

विद्वत्वं च नृपत्वं च, नैवतुल्यं कदाचन
स्वदेशे पूज्येते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते
मा. का. चौ. ।। 191 ।।

10. अनुष्टुप

पर्वताग्रे रथे जाते, भूमौ तिष्ठति सारथि. ।
चलति वायु वेगेन, पादमेकं न गच्छति ।।
मा. का. चौ. ।। 272 ।।

11. गूढार्थ

यह भी दोहे का एक भेद है। इसमें संकेत से अर्थ समझाया जाता है।

वन रिपु, तस रिपु, तास रिपु, तस्स हार पिम्रेण
जइ तिणि मूँकी धाहडी, ता मुक्कि प्री प्रीएण
मा. का. चौ. ।। 306 ।।

12 छंद पद्धडी

विक्रमादित्य तिहां करइ राज, प्रिथिवी जिणि उरण करि काज
परनारी बंधव रणि अभंग सरणागत-वच्छल सार्वलिग
मा. का. चौ. ।। 375 ।।

13. शिखरिणी

प्रियां स्मृत्वा सद्यः स्फुटित हृदयो मन्मथवशात् ।
अहा हा हा हा हा, हरि हरि मृतः कोऽपि पथिकः ।।
मा. का चौ. ।। 573 ।।

14. ढाल वेलिनी

सुमति नाम राय नो मत्री, सूर पाँच तेहनइ पुत्र
हितसागर लघु पुत्र तेहनो, महीपति नइ ते मित्र
भीमसेन राजहंस चौपई ।। 34 ।।

15 ढाल मृगांक लेखानी

कागल वाची कहइ राय सम्भल हितसागर ।।
करउ बुद्धि कोई उपाय निर्मल मतिनागर ।।
स्वामी जी सहू तुम्ह प्रसादि ए कारिज सीझइ ।
सही हुसइ सयोग एह राय सम्भली रीझइ ।।
भीमसेन राजहस चौपई ।। 114 ।।

16. अथरहु नी ढाल

प्रेम प्रीतम मिलउ मन रगि, सकल चित्त आस्या फली ।
कहइ नारि किरतर तुट्ठइ अंगइ जग अलजउ हुतउ ।
सोइ सामि मनइ आणि, दिठउ रायइ पेरवी पदमिनी ।
अधिक थयउ आणंद, हितसागर पोपट सहित पाम्यउ परिमाणंद
भीमसेन राजहस चौपई ।। 187 ।।

17. ढाल गीता छंदानी

धावि मणइ अवधारउ भूपति, भगति करता तूठी भगवती
भगवती तुम्ह चइ भाग्य तूठी कहउ श्रीपुरे छइ किहाँ ।
किहा विसालापुरी किण परि ए सयोग मिल्यउ इहा ।।
तिणवार पहुतो सगर तोरण परिणवा प्रीतइ करी
तव पिता धावि सुता समीपइ आव्यो मन आणंद धरी
भीमसेन राजहंस चौपई ।। 190 ।।

18. राग रामग्री नीढाल

रायनी पीरथि आवीया नहु पेषइ नारि
आकुल व्याकुल इम कहइ कीसू किरतार
विरह वृथा व्यापउ हियइ रामा ।। 201 ।।
भीमसेन राजहंस चौपई

19. दूहा राग सामेरी

मदनमंजरी मनि दुष रडइ आणइ मनि अंदोह
अण चीतउ आवी पडउ वालंभ तणउ विछोह ।।
भीमसेन राजहस चौपई ।। 214 ।।

20. दूहा राग आसाउरी

इण परि अबला नासती रडती, रन्नि मझारि
रात्रि गई रवि ऊगम्यउ पामीउ अटवी पाट
भीमसेन राजहंस चौपई ।। 219 ।।

21. ढाल अतिनी राग सामेरी

आश्रम माहे एकठा मिल्या सहूमन षंति
सहू तापस सेवा करइ बहू सुजस बोलंती
भीमसेन राजहंस चौपई ।। 235 ।।

22. दूहा राग सोरठी

अमकुल निर्मल वन विमल उत्तम थया अनेक
तू चंदन तरु अवतरउ सुजस सुवास विशेष
भीमसेन राजहस चौपाई ।। 375 ।।

23. ढाल डूंगरदानी

यौवन वेस जातइ सुषी, फल बल अंगार
कुमर चडी नइ क्रीडा करइ फेरवइ तरल तुरंग रे विनय करि
भीमसेन राजहस चौपई ।। 402 ।।

24. ढाल इकवीसानी

तिण नगरी रे उपवन अति सोहामणउ रे
तिहाँ आपउ रे ऊतारउ कुमरह तणउ
बीजा बहू रे मोटा जे महिपति मिल्या
ते सिघली रे अनथानकि भेदइ मिल्या
भीमसेन राजहंस चौपई ।। 487 ।।

25. ढाल राग धन्यासी

सारंग नयणी सुंदरी अष्टमी सिसिसम भाल
तस दसनकरि दाडिम कुली पेषंता अधर प्रवालो जी
राजकुमर रंभा जिसी आकणी
भीमसेन राजहंस चौपई ।। 501 ।।

26. ढाल संधिनी

पूछइ धर्म तणउ परिकार श्री सर्व जादव अधिकार
दूरि किया जिण दोष अढार षट काया जीवह सुषकार
भीमसेन राजहंस चौपई ।। 552 ।।

27. छंद त्रोटक

चढि चोट अद्रुह द्रुह चडइ घटिऊ धढि एकाणि वाय घडइ
गह मत्त गयंद गडइ गडडइ अनंडा अपडइ अहुडइ अहुडइ
दुर्गा सात्तसी ।। 56 ।।

28, छंद भुजंगी

कसी कोड तेत्रीस सहि प्रज कीधा लोहा प्राणलो डेसवे दुरंग धीषा
भणइ एम देवा भुजां तुझ स्वामी सुरा त्राहि ऊवहि त्रिलोक्य स्वाम
दुर्गा सात्तसी ।। 65 ।।

29. छंद नराय

सहृष अषं संपीयं बले घटा अइरापतं
जियेण डंड पांण जोड़ दबं फद आदितं
प्रजा पतेन पर्वता अर्षं माल सु दरा 'आबद्ध'
दुर्गा सात्तसी ।। 77 ।।

30. कलस

आवजीया आवद्ध विश्व करि कमले विमला
हुड हुडति हुड हसीयं तिण सद्ध पूछइ त्रिलोक
,दुर्गा सात्तसी ।। 82 ।।

31. सावजड

तउ प्रगट्या दैत्य पालटइ गिरपुरा जुडइ लोह कीया युद्ध सहि जाजरा
छुपते दुरग बधे विधूणे धरा, कदला केवीया मेरू दाषे करा
दुर्गा सात्तसी ।। 145 ।।

32. छंद सारसी

दुर वम्न देहू जेम्म जेहा अभंगा एहा आरहइ
वाजी विडगे फूल डगेसा मुहाँ केसा मुहइ
कलि विणा कलि बाँह बाँहि भिगे बाहे नीकडे
दुर्गा सात्तसी ।। 196 ।।

33. छंद हणुफाल

षंडीया गयणे षोडि शकरी सुसइ श्रोणि
के असुर कीध आहार के माडीया प्रहार
दुर्गा सात्तसी ।। 213 ।।

34. छंद रोमक

धीरु जलधार प्रहार कधूँ हरि भेदत चक्र भिडाति भद्रा
षलषंती रस्त पीयर भरि षप्पर चत्रु मुचग सारंग वहाँ कालि
दुर्गा सात्तसी ।। 224 ।।

35. छंद लीलावती

पऊरहु शिम कामपुर षात नवउरंग रस लूघर अं
नाचइ मड निवड भ्रिवड धड नारी हाकवी रथइ का हूम

सिधूर सधण सोहला सोहइ अति आणंद सुराउ अरे
वर प्रापति विस कन्या आह्माणी परणह दावण एम परे
दुर्गा सात्तसी ॥ 277 ॥

36. नाटा बूहा

बूंद बूंद बल चन्द्र सेना घर पडत समा
ऊठ्या देवी ए षतां प्रोठा नरा प्रचंड ॥
दुर्गा सात्तसी ॥ 294 ॥

37. छंद विश्रषरी

दाणव देव वे विद् अगम वरइ आदि ऊगटयो विसिभ
रामाइण भारथ तन रुषे मातउ युद्ध वाजीयउ सन मुषे
दुर्गा सात्तसी ॥ 299 ॥

38. आर्या बूहा

भाषइ दांणव भो मुजे शिभ तणउ युद्ध सूत्र
मिलइ जुध तिहारा मिलइ रिण संग्राम राजपूत
दुर्गा सात्तसी ॥ 316 ॥

इस प्रकार कुशललाभ के कथा साहित्य में छद योजना बड़ी पुष्ट और परिमार्जित रूप से हुई है। छन्दो की विविधता से कवि का भाषा पर अधिकार एव रचना कौशल का पता चलता है। जैन कवि होने के कारण विविध राग-रागनियो का भी प्रयोग कथाओ मे किया है। इन कथाओ में ढाल भी मिलते हैं और प्रत्येक ढाल से पूर्व राग-रागनियो का नामाल्लेख मी मिलता है।

प्रकृति चित्रण

साहित्यकार को प्रेरणा देने वाली प्रकृति ही है। प्रकृति के साहचर्य से ही साहित्य 'सत्य शिव सुन्दर' का प्रतीक बनता है। मानव जन्म से ही प्रकृति की ओर आकृष्ट रहा है। प्रकृति अपने सौन्दर्य से मानव मन को मोहित करती है। साहित्य मानव जीवन का प्रतिबिम्ब हे। अत' उसमे उसकी सहचरी प्रकृति का होना मी स्वाभाविक ही है। आदिकाल से ही प्रकृति और काव्य का सम्बन्ध चला आ रहा है। वाल्मिकी रामायण में मानवीय भावनाओ के उद्दीपन के लिये स्थान-स्थान पर प्रकृति का आश्रय लिया गया है तो कालिदास की रचनाएँ प्रकृति के रम्य चित्रों से भरी पड़ी हैं। सस्कृत साहित्य मे तो प्रकृति चित्रण बहुत ही अधिक हुआ है। प्राकृत और अपभ्रंश के जैन कवियो ने प्रकृति वर्णन मे सस्कृत कवियों का ही अनुसरण किया है। इस प्रकार वैदिक युग से आधुनिक युग तक साहित्य मे प्रकृति चित्रण का प्रमुख स्थान रहा है।

कवि प्रकृति के साथ तादात्म्य करता है तो कही प्रकृति मानव मन के साथ सामंजस्य स्थापित करती है। प्रकृति उसके दु ख में दु:खी तथा हर्ष में हर्षित दिखाई देती है।

कुशललाभ के साहित्य में प्रकृति चित्रण निम्नलिखित रूपों में मिलता है :

(1) आलम्बन रूप में
(2) उद्दीपन रूप में
(3) अलंकार रूप में
(4) मानवीकरण रूप मे
(5) उपदेशात्मक रूप मे
(6) प्रतीक रूप में

1. आलम्बन रूप में

आलम्बन रूप मे प्रकृति चित्रण की दो प्रणालियाँ प्रचलित हैं,—बिम्बात्मक अथवा चित्रात्मक तथा वस्तु परिगणनात्मक ।

वस्तु परिगणनात्मक

प्रकृति के वस्तु परिगणनात्मक चित्रण मे कवि ने पर्याप्त रुचि ली है । प्रकृति चित्रण का यह रूप 'भीमसेन हंसराज चौपई' में मिलता है जहाँ कवि ने पेडो के नाम तथा उनकी विशेषताएँ आदि गिनवाई हैं । इस प्रकार के वर्णन नीरस से प्रतीत होते हैं तथा लालित्य की कमी इन वर्णनो मे हो गई है । यह वर्णन पर्याप्त लम्बा है । कवि ने कई पेड़ो के नाम[1] एव गुण इन दोहो में बताया है ।[2]

---

1. सरस सदा फल नइ सहकार, अगर अशोक अरजन अनार
करणी केलि कपूर कदंब, जाती फल जामून जंब ॥ 24 ॥
पारजाति पदमषयं नाग, सूकडि सिमी सिव नइ साग
राइण रोहिडा रोहीस, वेडसबेउ वरुण नइ वस ॥ 25 ॥
श्रीफल सोपारी सुरसाल, तगर तिमर तिदुक नइ ताल
नींबू निय जानइ नारिग पीपल पारस पील प्रियंग॥ 26 ॥
खयर खल हूला खीप खजूर बकुल बिदाम बीजना पूर
मडप ढाक तणा माहंत अवर वृक्ष नी जाति अनन्त ॥ 27 ॥
नाग बेल नड नील निकुंज परिपरि पसर पुहप ना पुंज
रूडा घणा सकल सहिव्य, चाजइ जिण आहारइ भूख ॥ 28 ॥

2. अर्जुन वृक्ष अच्छइ ए लोभी जड़ समिपि धन जाणइ
मोहइ विस्तारी भूलाड़ा आप हेठि धन आणइ ॥ 49 ॥
एह पवित्र पारजातक तरु माननी तुलसी माल
प्रात समइ शाखा पहिरावइ तउ फूडइ ततकाल ॥ 50 ॥
भणीयइ भोज वृक्ष ए भूपति भखइ सहूफल भूत
पाका फल प्रमुदा जइ प्रासइ तउ पामइ बंध्या पूत ॥ 51 ॥
दोहा संख्या 45 से 58
भीमसेन राजहंस चौपइ प्र॰. 1217 ला. द. प्र॰. अहमदाबाद

'तेजसार रास' में भी प्रकृति चित्रण मिलता है। विजयश्री अपने पति तेजसार के साथ वन मे जा रही है, कवि को वनश्री के वैभव का वर्णन करने का सुन्दर अवसर मिलता है परन्तु वह तो सरोवर पक्षियों के कलरव आदि में डूब गया है।[1] वन की भयंकरता का परिचय मात्र देकर कवि फिर हिरणों के झुण्ड मे खो जाता है।[2] कवि का कोमल हृदय इन वस्तु परिगणनात्मक चित्रणों में नहीं रम पाया है।

'ढोला मारवणी चौपई' मे वस्तु परिगणनात्मक चित्रण में ढोला-मालवणी के संवाद आ सकते है। ढोला मालवणी के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्राभूषण देशाटन करके लाना चाहता है।[3] 'ढोला मारवणी चौपई' में वस्तु परिगणनात्मक चित्रण देशगत स्वाभाविकता एवं सजीवता के साथ साकार रूप से चित्रित हुआ है।

जिणभुइ पन्नग पीयणा कयर कंटाला रूँख
आके फोगे छाहडी हूँ छाँ भाँजइ भूख ॥ 685॥

बिम्बात्मक चित्रण

प्रकृति के अनेक सुन्दर एव रम्य चित्र इन कथा-काव्यो में अंकित है। 'ढोला मारवणी चौपई' मे यह बिम्बात्मक चित्रण कवि ने विविध ऋतु वर्णनो के माध्यम से प्रस्तुत किया है।[4]

---

1 सीतल छाया वड ने हेठि ते बेसारी जोवे डेठि
बहु पंखी कोलाहल जिहा सही सरोवर दीसे तिहां ॥115॥
पहु तो सरोवर भणी कुमार पेखयउ निर्मल नीर अपार
पाखलि सरग सदा फलरूंख भाजइ जेण अहाने भूख ॥115॥
राजहंस सारस चकवा दीसे परंखी बहु नवनवा
× × × × × ×
फल आहार केला तणा, एक केली हर सोहामणा
थाकी सुख बैठी साथ रै, विजय सिरी तिहा निद्रा करे ॥॥ 120 ॥।

2 अटवी चिहु दिशि अति विकराल कुमर फिरे ग्रही करवाल
भय सावज नु टालण भणी जोतु जाये कुमर मुद धणी ॥ 121 ॥
तिहा पेखे हरिणा नु टोल कूदै रमे ने करे कलोल ॥ 122 ॥
तेजसार रास चौपई ग्र. 25646 रा. प्रा वि. प्र. जोधपुर

3. मालवणी तू मन सभी जाणइ महू विवेक
हिरणाखी हसिनइ कहइ करउं दिसाउर एक ॥ 332 ॥
ढो. मा चौ ह ग्र डा. जावलिया से प्राप्त प्रति

4. बाजरियाँ हरियालियाँ विचि विचि बेला फूल
जउ भरि बूठउ भादवउ, मारू देस अमूल ॥ 350 ॥
नदियाँ नाला नीझरण पावस चढिया पूर
करहउ कादिम तिलकस्यइ पथी पूगल दूर ॥॥351 ॥
जिणि दीदे पालउ पडइ टापर तुरो सहाइ
तिणी रिति बूठी ही झुरइ तरूणी केम रहाइ ॥ 370 ॥
ढो. मा. चौ. ह. ग्र. डा. जावलिया से प्राप्त प्रति

पगि पगि पाँणी पंथ सिर, ऊपरि अम्बर छाँह
पावस प्रगटयउ पदमिणी कहउत् पूगल जाहँ ।।348 ।।

'माधवानल कामकंदलाचउपइ' मे प्रकृति का यह चित्रात्मक वर्णन कंदला माधव के मिलन व प्रश्नोत्तर रूप मे देखा जा सकता है ।[1] कंदला की विरह अग्नि को माधव रूपी बादल ही बुझा सकता है—

जव प्री बादल होइ करि बरसि बुझावइ अग्गि ।। 353 ।।

'भीमसेन राजहस चौपई' मे रानी मदनमजरी वन मे सन्यासिनी के साथ पानी लेने जाती है उस समह कवि ने विष वृक्ष का उल्लेख किया है ।[2] वर्षा काल का वर्णन भी कवि ने बड़ा ही सजीव किया है—

एह वइ आव्यो वर्षाकाल अंबरि अति गाजइ असराल ।। 264 ।।
वर्षा ऋतु जल वन विस्तार मदि आव्यउ मय गलतिणवार ।। 269 ।।

राजा भीमसेन और रानी मदनमंजरी सध्या के समय वन मे अकेले है उस समय वन विकराल दिखाई दे रहा है तथा भूत एव वेताल कूद रहे है—

थयउ एह वइ संध्या समइ महा मयंकर साविज भमइ
वत गहृन दीसइ विकराल विकट भूत कूदइ वेताल ।। 286 ।।

रात्रि के मध्य प्रहर वन मे चारो ओर महान अधकार छाया हुआ है, परन्तु सामने पर्वत की ओर प्रज्वलित दीपक दिखाई दे रहे है जो क्षण मे ऊँचे हो जाते है और क्षण मे नीचे सरक जाते है । ये दीपक नहीं चदन वृक्षो से लिपटे विषधरो की मणियो का प्रकाश है ।[3] चंदन वन का वर्णन कवि ने बड़ा ही सजीव एव साकार रूप मे किया है । प्रकृति चित्रण मे कवि प्राय. मानवीय सन्दर्भ देना नही भूला है । पर्वत पर देहरा (मंदिर) है जिसके बाहर एक तपस्वी बैठा है ।[4]

---

1. जिमि मधुकरनर कमलिणी, गगासागर वलि ।। 252 ।।
पूनिमचंद मयंक जिम दिसि च्यारि फलीयाँह ।। 256 ।।
जाणि विहसी केतकी भमर वईठउ आइ ।। 259 ।।
माधवानल कामकंदला चौपई
2 दोहा संख्या 226
3. राय कहइ रजनी समइ रीठा दीपक जेह
ते चदन तरवँर तणइ विलगा विषधर एह ।। 296 ।।
मोटा मणिधर मस्तकइ जे मणि योति करंति
ते दीसइ निसि दीप जीम अलगा अति उपंति ।। 297 ।।
4. अनुकमि चढ़्या शैल ऊपरइ पेषइ कौतक गनि नवि डरइ
जिम आव्या देहुरा नइ बारि तापस एक बीठउ तिण वार ।। 301 ।।

2. प्रकृति का उद्दीपन रूप

काव्य में प्रकृति का चित्रण, भावों को उद्दीप्त करने के लिये भी किया जाता है। संयोग के समय यही प्रकृति सुख एवं हर्ष को बढ़ाने वाली है तो वियोग के समय कष्ट प्रदान करके व्यथित करने वाली सिद्ध होती है।

इन कथा काव्यों में प्रकृति वर्णन प्रायः उद्दीपन रूप में ही हुआ है। नायिका की मानसिक दशा के अनुरूप ही प्रकृति का वर्णन किया गया है। वर्षा नायिका के हृदय में प्रिय मिलन की इच्छा उत्पन्न कर देती है एवं उसके उपकरण—मेघों की गर्जन, बिजलियों की चमक, दादुरों का रव, पपीहे की पुकार आदि विरह भावना को उद्दीप्त कर देते हैं।

'ढोला मारवणी चौपई' मे विरह व्यथिता मारवणी को कुरझों के बोलने से अपने प्रिय का स्मरण हो आता है और उसके नेत्रो मे जल भर जाता है। उसके अंगों पर आरी चल जाती है तथा प्रिय की स्मृति सार की तरह सालने लगती है।[1]

'माधवानल कामकदला' में भी प्रकृति का उद्दीपन रूप से वर्णन हुआ है। बेल से अलग होकर पत्ते जिस प्रकार पीले हो जाते है। उसी प्रकार कंदला के माधव से अलग होते ही विरह की अग्नि हृदय में प्रज्वलित हो गई और उसका धुआँ अन्दर ही अन्दर घुट रहा है। इसी कारण नायिका दिन-प्रतिदिन पीली होती जा रही है।

हियडा भीतरि दव बलइ धूआं प्रगट न होइ
वेलि विछोह्या पानडां दिन दिन पीला होइ ॥ 419 ॥

यही नही जिस प्रकार दादुर का सरवर से तथा धरती का मेह से सम्बन्ध है उसी प्रकार कंदला अपने नेह का पालन कर रही है।[2]

3. अलंकार रूप

गुण प्रकृति एव भाव साम्य को प्रकृति से गृहीत उपमानो द्वारा प्रस्तुत कर कवियों ने प्रकृति का अलकारिक रूप प्रस्तुत किया है। यह वर्णन कुशललाभ के यहाँ कुछ परम्परागत है तो कुछ नवीनता लिये हुये है। नायिका के नखशिख वर्णन

1, सूती साजण संभरया करवत वूहि अंगि ॥ 345 ॥
सारहली जिउँ साल्हयाँ सज्जण मंझ सरीर ॥ 246 ॥
सूती साजण सभरया उह भरिया नयणे ह ॥ 247 ॥
ढो. मा. चौ. हु. प्रं. डा. आवलिया से प्राप्त प्रति

2. जिम सालूरां सरवरां जिम धरती अरु मेह
चपावरणी वालहा इम पालिजा नेह
माधवानल कामकदला चौपई ॥ 452 ॥

मे अलंकारिक रूप देखने को मिलता है[1] —

जंघ सुपत्तल करि कुश्रंल भीणी लंब प्रलंब
ढोला एही मारूई जाणि कणयर कंब ।। 455 ।।
उर जु गयंभर पग धणु दाडिम दत सुतेज
कु भी भाषस गोरियाँ, पंजन जेहा नैत्र ।। 457 ।।

मारवणी के अधर कुच एव नैत्र मधु की तरह मीठे हैं मानों वह मधुर द्राक्षा हो—

ग्रहर पयोहर, दुह नयण मोठा जेहा मरुख
ढोला एही मारूई जाणे मीठी दख्ख ।। 466 ।।

मारवणी आम के बोर की तरह कोमल है जो छूते ही कुम्हला जाती है ।[2]

4. मानवीकरण रूप

प्रकृति को सजीव सत्ता के रूप में चित्रित करना ही मानवीकरण है । प्रकृति के उपकरण मेघ पवन आदि सदेश प्रेषक का कार्य करते है । पेड़ पौधे, पशु-पक्षी नायिका के सुख दुख के साथी होते है । प्रकृति के इस मानवी रूप मे अलौकिक तत्वो का आश्रय लिया गया है ।

ढोला मारवणी चौपई मे ऊँट,[3] शुक,[4] कुरभो,[5] आदि का वार्तालाप मानवी-

---

1. (क) दोहा संख्या 194–200 माधवानल कामकदला चौपई
(ख) सन्यासी बोलइ सुणि राय, सत्य वचन सुणयो सदभावइ
सुन्दरि सहू जगतइ सुकमाल, मान सरोवर जेम मराल ।। 132 ।।
लघु केसरि जेहू बीकडिलंक मलि न रिहूत मुख जाणि मयंक
सपइ कुंदण जिम तसु अंग चाल सुरग म चष्ण अति चंग ।। 133 ।।
रभा गर्भ जिसी जुग जंघ उदित विल्व सम उरज उतंग
अधर पक्व बिबा अणुहारि कीर पूतली चित्र आकार ।। 134 ।।
भीमसेन राजहंस चौपई ग. 1217 ला द ग्रं. अहमदाबाद
2. मारू अंबा मउर जिम कर लग्गइ कुमलाइ ।। 468 ।।
ढोला मारवणी चौपई
3. सकती बाँधे वीटुली, ढीली मेल्हे लज्ज
सरखी पेट न दियउ, मुध न मेलउँ अज्ज ।। 480 ।।
ढो. मा. चौ.
4. सूहा सगुण ज पंखिया म्हाँकउ कहयउ करेह
साई देज्यो सज्जणाँ म्हा साम्हाँ जो एह ।। 423 ।।
पे सिध्यानउ सिध करउ पूजउ थाँकी आस
बीछुड़ता ही माणसाँ मेलउ दियउ उल्हास ।। 424 ।।
5. कुझाँ धउ नइ पंखडी थाकउ विनउ वहेसी
सायर लधी प्री मिलउँ प्री मिलि पाछी देसि ।। 222 ।।
माणस हुवाँ त मुख चवाँ म्हे छाँ कुंझडियाँह
प्रिउ संदेसउ पाठ विसु लिखि दे पंखडि यौह ।। 224 ।।
ढोला मारवणी चौपई

करण का उदाहरण है । मानव का सम्पर्क पाकर ये प्राकृतिक पदार्थ भी मानव की भांति बोलते हैं, प्रश्नों का उत्तर देते हैं तथा मानव के दुःख में दुःखी तथा सुख में सुखी दिखाई देते हैं ।

'भीमसेन राजहंस चउपई' मे शुक ही मदनमंजरी के बारे मे भीमसेन को बताता है और उसे पत्र देकर कहता है—

ए कागल नइ एह सदेस, वाची-नइ आवउ उण देस
मयाकरी नइ आपउ मान दउ कुमरी नइ जीवीदान ।। 110 ।।

भीमसेन का मार्ग प्रदर्शक भी शुक ही होता है ।[1]

5. उपदेशात्मक रूप में

इन कथा काव्यो मे नीति कथन शैली में भी प्रकृति चित्रण मिलता है । मारवणी ढाढियों के हाथ सदेश प्रेषण के समय प्रकृति का ही आश्रय अधिक लेती है । मारवणी की अनुरक्ति कुरझों जैसी है—

कूंझाँ लाल बचाहँ ज्यउँ खिण खिण चीतारेह ।। 273 ।।

वह यह भी कहती है कि तन की दूरी प्रेमियो के लिये कोई दूरी नहीं होती है ।[2]

जल माहि वसइ कमोदणी चंदउ वसइ अगासि
जउ ज्यां ही कई मनि वसइ, सउ त्यांही कइ पासि ।। 321 ।।

'माधवानल कामकदला' में कंदला अपना प्रेम सरोवर दादुर तथा मेघ और धरती के समान बताती है—

जिम सालूरा सरवरा जिम धरति उर मेह
चंपावरणी बालहा तिम पालिज्जइ नेह ।। 452 ।।

6. प्रतीक रूप में

हृदय के सूक्ष्म भावों को प्रकृति से प्रतीक ग्रहण करके भी प्रस्तुत किया जाता है । प्रकृति के ये अनेक पदार्थ उदात्त भावनाओ को प्रकट करने के कारण तथा आन्तरिक सादृश्य के कारण प्रतीक बन गये है ।[3]

---

1. हर्षित सुक बइसारि हाथि पहु पंथ सिधावइ
दीठी वाटह वहइ कीर जाणइ जल ठांम
अनुक्रमि आव्यउ नगर एक नर मदिर नाम ।। 120 ।।
भीमसेन राजहंस चौपई प्र॰. 1217 ला. द. ग्रं. अहमदाबाद
2. माधवानल चौपई में भी साम्य है ।
दूरंतर के वास, मत जाणउ तुम्ह प्रीति गइ
जीव तुम्हारइ पास नयन विछोहे पर गये ।। 394 ।।
3. दोहा संख्या 452 माधवानल कामकंदला चौपई

सूली सरिखी सेजडी तुझ विण जाणीइ नाह ।। 451 ।।

मनुष्य का प्रेम मछली के समान है जो जल से अलग किये जाने पर प्राण त्याग देती है[1]—

माणस योहि माछिला साचा नेह सुजाण
जउ जलथी कीजइ जुआं निश्चइ छंडइ प्राण ।। 401 ।।

संवाद सौष्ठव

संवाद काव्य सौदर्य मे वृद्धि करते है । सवाद से कथा काव्य में वास्तविकता आती है तथा कथा विकास व पात्रो के चरित्र को हमारे सामने प्रस्तुत करने का कार्य संवाद ही प्रमुख रूप से करते है । "संवाद किसी विषय वस्तु पर तर्क-वितर्क के साथ किये जाने वाला वह वाग्विनियम है जो प्रसंग के बाहर भी अपना स्वतत्र महत्व दिखला सके ।"[2]

सवाद द्वारा पात्रो को सजीवता प्रदान करना लेखक का उद्देश्य होता है । पाठक को पात्रो का कुल-शील आचार व्यवहार संवादो द्वारा ज्ञात होता है ।

कुशललाभ के कथा-साहित्य मे सवादो की बहुलता है । ये सवाद कुछ छोटे भी है तो कुछ बडे भी । जिन सवादो से कथा को गति मिली है वे सवाद प्राय: लंबे परन्तु रोचक हैं । लेखक ने वर्णन कुशलता से प्रत्येक संवाद के पूर्व एक पूर्व पीठिका प्रस्तुत की है जो उस संवाद का उद्देश्य बन कर आई है । जैसे विरह व्यथिता मारवणी को प्रिय मिलन मे बाधक पर्वत हैं अतः कुरझों से पंख मांग कर वह समुद्र व पर्वत लाघना चाहती है । लेखक ने गभीर मनोवृत्तियो का चित्रण संवादो की सहायता से बडे ही सजीव रूप मे किया है । ढोला मालवणी, तथा माधव कामकंदला मे संवाद अधिक लबे हैं । मालवणी व कामकंदला अपने वाक् चातुर्य से पति को रोकना चाहती हैं । इन संवादों मे मालवणी व कदला की मानसिक स्थिति का स्पष्ट चित्रण हुआ है ।

ढोला करहा संवाद मे ढोला की आतुरता व्यग्रता दृष्टव्य है । ढोला को मारवणी से मिलने की जल्दी है, अत. ऐसी स्थिति मे ऊँट को मारना, जल्दी चलने को कहना, ऊँट का सात्वना देना, मारवणी से मिलाने की बात कहना आदि संवादों में स्वाभाविकता की झलक दिखाई देती है ।

मारवणी ढाढी सवाद एव ढाढी ढोला सवादों में ढोला व मारवणी की विरह व्यथा देखने को मिलती है ।

---

1. सच नेही तउ माछली बीजा अलप सनेह
   जब ही जल थी वीछडइ तब ही संपइ देह ।। 591 ।।
   माधवानल कामकंदला चोपई
2. वाङ्मय-विमर्श—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—पृ० 60

'माधवानल कामकंदला' में इन्द्र व जयन्ती के संवाद संक्षिप्त होते हुये भी हृदयस्पर्शी एवं प्रभावपूर्ण है ।[1] माधव व राजा गोविन्द चन्द के सवाद राजा को एक अच्छे प्रजा रक्षक के रूप मे प्रस्तुत करते हैं। महाजनों की शिकायत पर भी राजा स्वयं माधव की परीक्षा लेने उसे अपने अन्तःपुर में बुलाता है—

जि को कला माधव । तुझ पासि तेतू मुझ आगलि परकासि
माधव मन माही करइ अंदेस सही हूउ पिसुणां परवेश ।। 137 ।।

माधव कामसेन संवाद कामसेन के आत्म सम्मान को ठेस लगाने तथा क्रोध को प्रदर्शित करते हैं। माधव विक्रमादित्य संवाद तो कथा के प्राण ही हैं।

'भीमसेन राजहंस' में भीमसेन व हितसागर के संवाद मित्रवत हैं। शुक व भीमसेन संवाद अत्यधिक लम्बे होते हुये भी कथा प्रवाह में बाधक नही बनते। शुक के माध्यम से लेखक कहानी के सूत्र को आगे बढाने मे सफल हुआ है।

सन्यासी व भीमसेन के सवाद मदनमंजरी के प्रति आकर्षण पैदा करने में और सहयोग देते है ।[2] धात्री तथा मदनमंजरी के सवाद संक्षिप्त होते हुये भी कथा प्रवाह मे सहायक सिद्ध हुये हैं। मदनमंजरी व प्रीतम मंजरी के संवाद माता पुत्री के संवाद है। जिनमे माता पुत्री को नये घर में जाने पर कर्तव्य तथा यश प्राप्त करने की सीख देती है—

जउ कदाचित कंत कोपइ पुत्रि तूंइम कोपिजे
राषिजे कुल बूट रीति रुडी नीचनी संगति तजे
प्रेम सूं प्रीतम नेह पाले सदा तू सुषणीहजे ।। 196 ।।

हंस हसिनी के सवाद आलौकिक हैं। हंस आलौकिक पात्र है अत. वह अपने आगत जन्म के बारे मे हंसिनी को बताता है कि वह मदन मजरी के गर्भ से पुत्र के रूप मे जन्म लेगा ।[3]

भीमसेन तथा मदन मंजरी के संवाद भी लंबे हैं परन्तु कथा को नवीन मोड़ देने में साधक रूप में ही प्रयुक्त हुये हैं। हंसी का राजा रानी के साथ वार्तालाप हसी का अपने पति हंस के प्रति प्रेम का द्योतक है ।[4]

राजहंस एवं कपि संवाद लघु हैं। इनमे राजहंस की वीरता निर्भयता दर्शित होती है।

---

1. कहइ जयतीकरी प्रणामि, मुझ अपराध खमउ तुम्हि सामि
   वली न विलोप्र तुम्ह आदेश काई छ अवड अपछर वेस ? ।। 24 ।।
2. दोहा सख्या 132-139
3. दोहा संख्या 252, 253
4. स्वामी सांचउ बोलू सही हिव तउ आवण होसइ नही
   अंतरंग छइ आपणू प्रीति चोलरंग जिम रातउ चीत ।। 534 ।।

राजहंस तथा मुनि संवाद राजहंस की धार्मिक प्रवृत्ति का परिचय देते हैं।[1]

'तेजसार रास' के पात्र अधिक संख्या मे अलौकिक है । 'तेजसार रास' के संवाद अधिक लंबे नही है पर सक्षिप्त होते हुये भी प्रभावपूर्ण है ।

तेजसार राक्षस सवाद मे तेजसार की विलक्षण बुद्धि से राक्षस से बच निकलना और बदले में दो अलौकिक विद्याये प्राप्त करना और उसी विद्या के कारण सिकोत्तरी पिंड्याणी का अन्त करना बहुत ही रोचक बन पड़ा है—

विद्या बलि रासभि खडहली मूर्छा आवी धरणी ढली
तेजसार तिहा थी ऊनरी जोवै नदी तिहा गोदावरी ।। 73 ।।

तेजसार योगी सवाद मे तेजसार की वीरता एव निर्भयता दृष्टिगोचर होती है । विजयश्री व तेजसार सवाद कथा को, नया मोड़ देकर आगे बढाने मे सहायक हुये है । विद्याधरी व तेजसार संवाद तेजसार का स्त्री के प्रति प्रेम की स्पष्ट झलक दिखाते हैं ।[2]

तेजसार पद्मावती सवाद मार्मिक होते हुये भी रोचक एव सरस है ।[3] इन सवादो मे तेजसार स्पष्टवक्ता, कर्तव्य परायण पति व कुशलशासक के रूप मे हमारे सामने आया है ।

तेजसार व व्यतरी सवाद आलौकिक होते हुये भी कथा को नवीन मोड़ देकर तीव्र गति प्रदान करते है । व्यतरी अपनी पुत्री एगामुखी से तेजसार का विवाह करने के लिये उसे उसके महल से उठा लाती है[1] और उसका विवाह कर देती है । इन सवादो मे रानी के पूर्व जन्म की कथा भी सम्बद्ध है ।

तेजसार एव माता सवाद पुत्र के प्रति माता के हृदय के उद्गार है जो वात्सल्य से परिपूर्ण है ।

तेजसार पिण थयो गन गलउ, कठि आलंगी जननी मिल्यो
धन्य धन्य दीह धन ए घडी सोल बरसै माता मिली ।। 300 ।।

सोलह वर्ष बाद जहाँ माता पुत्र का मिलन होगा वहाँ तो यही स्थिति होगी ।

---

1. पूछई धर्म तणउ परिकार श्री सर्व जादव अधिकार
दूरि किया जिण दोष अढार षट काया जीवह सुषकार ।। 552 ।।
भीमसेन राजहंस चौपई प्र० 1217 ला० द० सं० अहमदाबाद
2. दोहा संख्या 136-154 तेजसार रास चौपई प्र० 26546
रा० प्रा० वि० प्र० जोधपुर
3. दोहा संख्या 177-179
4 तेजसार पुत्र सेवा काज चपा नयरी आवी आज
पउढ्यो दीठउ मदिर माँहि, मह ऊपाड्यउ बाँहे साहि ।। 286 ।।

तेजसार व बीरसेन संवाद एक बिछुड़े पिता पुत्र के मार्मिक संवाद है।[1]

तेजसार एवं मुनि मुव्रत स्वामी के सवाद धार्मिक एवं लोकहितकारक हैं। मुनि श्री से ही तेजसार को अपना पूर्व भव ज्ञात होता है।[2]

'अगडदत्त रास चौपई' के सवाद सक्षिप्त होते हुये भी प्रभावशाली हैं। अगड़दत्त एवं उसकी माता के संवाद कथा को गति प्रदान करते हैं। ये संवाद पुत्र के प्रति माता के उद्गार है, जो वात्सल्य से परिपूर्ण हैं।[3] अगड़दत्त व भुजंगम चोर सवाद,[4] राजा व अगडदत्त सवाद,[5] अगड़दत्त एव गोकुलपति सवाद[6] अगड़दत्त की वीरता एव निर्भयता को प्रकट करते है।

अगड़दत्त धात्री संवाद अगड़दत्त का स्त्री के प्रति सच्चा प्रेम की झलक दिखाते हैं।[7] अगड़दत्त मदनमंजरी संवाद मार्मिक होते हुये भी रोचक है।[8] इन संवादो मे अगड़दत्त की स्पष्टवादिता, कर्तव्यपरायण पति व शिष्य के रूप में हमारे सामने आई है।

अगडदत्त एव विद्याधर संवाद अलौकिक होते हुये भी कथा को नवीन मोड देकर गति प्रदान करते है। मदन मंजरी की मृत्यु सर्प दशन से हो जाने पर विद्याधर तंत्र मत्र से उसे जीवित कर कथा को आगे बढाने में सहायक सिद्ध हुआ है। अगड़दत्त साधु संवाद धार्मिक एव लोकहितकारी है। साधु के उपदेशों से ही अगड़दत्त वैराग्य धारण करता है।[9]

इस प्रकार कुशललाभ के कथा साहित्य के संवाद लौकिक एवं लोकोत्तर दो रूपो मे हमारे सामने आते हैं। मानव संवाद लौकिक कोटि मे आते है तथा पशुपक्षी राक्षस व्यतरी संवाद लोकोत्तर लगते है। परन्तु ये कथायें लोक कथायें हैं अतः साहित्यिक तत्वों के साथ-साथ इनमें लोक तत्वों का भी समन्वय है। इस दृष्टि से देखने पर ये संवाद अस्वाभाविक नही लगते। क्योंकि इस प्रकार के प्रयास तो लोक कथाओ की श्री वृद्धि करते है और इन संवादो मे विचारों व भावों का क्रमिक विकास सफल व्यजना एव पात्रो के चरित्र का उद्घाटन, स्थानगत् विशेषतायें, व्यक्ति एवं प्रश्नोत्तर क्रम राजस्थानी सभ्यता एव सस्कृति का समन्वय इतना सुन्दर एवं स्वाभाविक बन पड़ा है कि कुछ भी अस्वाभाविक नहीं लगता है।

---

1. हिवडा निरीत थई ताहरी तब राजा चिंतो मन हरी
   जो सुपुत्र तो वयण अवधारि आवी आप पिता ऊगारि ॥ 346 ॥
2. दोहा सख्या 379
3. दोहा सख्या 21 से 26 अगडदत्त रास चौपई प्र. 605 भण्डारक आरियन्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना
4. दोहा संख्या 69 से 95
5. ,, ,, 56 से 60
6. ,, ,, 154 से 160
7. बलतउ कुमर कहि मुखि हसी मयण मंजरी मुझ मनिवसी
   मुझ चिता छइ एह नीषरी वाचा अविचल छइ माहरी ॥ 137 ॥
8. दोहा संख्या 40 से 44
9. ,, ,, 313

षष्ठ अध्याय

आख्यान काव्यों के मूल स्रोत और परम्परा

लोक-साहित्य मे लोक कथाओं का प्रमुख स्थान है । वे अपनी प्रचुरता एवं लोकप्रियता के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । जहाँ मनोरंजन के आधुनिक साधन उपलब्ध नही हैं वहाँ लोक कथायें ही लोगों का मनरंजन करती है । एक अर्थ मे यह कहा जा सकता है कि लोक जीवन लोक कथाओं के ताने-बाने से बुना हुआ है । लोक-कथाओं को ही कथा साहित्य का मूल स्रोत होने का गौरव प्राप्त है ।

लोक-कथाओं की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । सर्व-प्रथम वैदिक संहिताओं मे इन लोक कथाओ के बीज उपलब्ध होते हैं । ऋग्वेद मे ऋषि शुनः शेप का प्रसिद्ध आख्यान मिलता है ।[1] अपाला आत्रेयी के आदर्श नारी चरित्र का चित्रण सर्वप्रथम हमे इसी वेद मे मिलता है ।[2] च्यवन और सुकन्या मानवी की कथा भी सुन्दर रीति से इसी में वर्णित है ।[3]

ब्राह्मण ग्रंथों में भी अनेक कथायें उपलब्ध हैं । शतपथ ब्राह्मण मे पुरुरवा और उर्वशी की कथा बहुत प्रसिद्ध है ।[4] इसी कथा को लेकर कालिदास ने 'विक्रमोर्वशी' नाटक की रचना की ।

वैदिक कहानियां देवताओ और मानवियों अप्सराओ और मानवों के प्रेम से सम्बन्धित है । उदाहरण के लिये उवर्शी और पुरुरवा की कहानी को लिया जा सकता है ।

उपनिषद् काल में कितनी ही छोटी-बड़ी वर्णनात्मक कहानियां जैसे याज्ञवल्क्य और गार्गी, सत्यकाम और जाबालि, अहल्या और इन्द्र की मिलती हैं । वेद और

---

1. ऋग्वेद 1/24/30
2. वही, 8/9/1
3. वही, 10/39/4
4. शतपथ ब्राह्मण 11/5/1

उपनिषद् की क़हानियों में जहाँ एक ग्रोर प्रेम है वही दूसरी ग्रोर एक ग्रादर्श छिपा रहता है । ये कहानियाँ उद्देश्य शून्य नही होती हैं ।

संस्कृत साहित्य में भी कथाग्रों की कमी नहीं । बाणभट्ट की 'कादम्बरी' जन्म जन्मान्तर में चलने वाले प्रेम की चमत्कारपूर्ण गाथा है । संस्कृत साहित्य के ग्रतिरिक्त पंचतंत्र पंचविशती ग्रौर वृहत् कथा भी कथाग्रों के ग्रक्षय भण्डार हैं, परन्तु इन कहानियों में मानव पात्रों की ग्रपेक्षा पशु-पक्षियों की बहुलता है । इन कहानियो में ग्राश्चर्य तत्वों के द्वारा मनुष्य को शिक्षा देने की प्रवृत्ति लक्षित होती है ।[1] इन कहानियों में पशु-पक्षियों, देवताग्रो तथा किन्नरों ने मनुष्य के साथ भाग लिया है ग्रौर इन्ही ग्रलौकिक शक्तियो के कारण ही उद्देश्य की प्राप्ति सम्भव हो सकी है ।

बौद्धकालीन साहित्य में कथाग्रों का वह रूप नहीं मिलता जो संस्कृत साहित्य मे है । बौद्ध कथाग्रों में धर्म प्रचार की भावना का समावेश होने के कारण प्रेम तत्व गौण पड गया है । ग्रत बौद्धों ने भी ग्रपने धर्म प्रचार के लिए कहानियों का ही ग्राश्रय लिया । इन कथाग्रों में धार्मिक उपदेश जहाँ मिलते हैं काव्य की दृष्टि से यह साहित्य उच्च-कोटि का है । इनमें गद्यमय उपदेशों के बीच-बीच पद्यमय ग्रंश भी मिलते है । जातकों मे बुद्ध की महानता के साथ-साथ जन्मान्तर वाद की पुष्टि की गई है । इनमें मनुष्य ग्रौर पशु-पक्षियो की कहानियाँ है जिनमें पशु-पक्षियों को मानव से ग्रधिक बुद्धिशाली ग्रौर योग्य ठहराया गया है ।

बौद्धो की साधारण प्रतीकात्मक कहानियाँ जैनियों के द्वारा सर्वांग रूपकों में निरूपित हुई, जिनमें उपदेशों की बहुलता रही । जैन कथाग्रों में धर्म के साथ-साथ प्रेम-कथा का रूप ग्रत्यधिक निखरा है । जैन कथा साहित्य भी दो रूपों मे मिलता है । पहले वर्ग का कथा-साहित्य तीर्थंकरों के जीवन से सम्बन्धित कहानियो का है । दूसरा वर्ग स्वतन्त्र कहानियो का है । यह स्वतन्त्र कहानियाँ लोक प्रचलित कथाग्रों का जैन सस्करण है ।

इस प्रकार समस्त भारतीय कथा साहित्य का मूल स्रोत ऋग्वेद मे निहित है । ऋग्वेद की यह परम्परा उपनिषद्, पुराण, नीति मंजरी, भागवत, वेदार्थ दीपिका एवं वृहद्देवता ग्रादि सस्कृत के धार्मिक ग्रन्थो में प्रस्फुटित होती हुई कालिदास के द्वारा चरमोत्कर्ष पर पहुँची । बौद्ध कहानियों मे भी जन्मान्तरवाद का प्रभाव रहा । जीवन के प्रति निराशा होने के कारण इन कहानियो मे प्रेम का ग्रभाव रहा । इसके बाद जैन धर्म गाथाग्रो में प्रेम का पक्ष ग्रधिक प्रबल रहा किन्तु ऐन्द्रिय सुख की ग्रोर वीतराग होने के कारण इन जैन मुनियों ने प्रेम तत्त्व को सत्य, ग्रहिंसा, ग्रस्तेय ग्रौर ब्रह्मचर्य के ग्रावरण मे बदल दिया है ।

जैनियो के चरित काव्यों ग्रौर पुराणों में साहित्यिक सौन्दर्य के साथ-साथ ब्राह्मण ग्रौर बौद्ध गाथाग्रों की कथा बन्ध सम्बन्धी विशेषताएँ भी मिलती हैं । कुशल-

1. सिंघी जैन ग्रंथ माला संपादक हीरानन्द शास्त्री VOL. XVIII पृ. 11

लाभ भी एक जैन कवि थे। आख्यान काव्य के कथानक के मूल स्रोत की दृष्टि से कवि के आख्यान काव्यो को निम्नलिखित भागो मे विभाजित किया सकता है :

(1) लोक कथात्मक आख्यान
(2) धार्मिक आख्यान

किसी कथा में धर्म की प्रधानता होने मे उसका यह अर्थ नही होता कि उसमे लोक तत्त्व का अभाव होगा। किसी भी कथा मे कल्पना के साथ ऐतिहासिक तथ्य का होना भी आवश्यक होता है। डा सत्येन्द्र ने लिखा है—"जो सम्बन्ध पुरातत्व और लोकवार्ता का है, उससे गहरा सम्बन्ध लोकवार्ता और इतिहास का है।"[1]

इसी तरह धर्म एवं लोक कथा का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्म की नीव लोक विश्वास है। धर्म भी लोक कथा के सहारे ही विकास पाता है। अतः इन्हें अलग-अलग करना मुश्किल है।

लोक-कथा स्रोत वाले कथा काव्य

इस प्रकार की कथाओ का मूलाधार लोक मे प्रचलित कथा होती है। केवल देवी-देवताओं के आने से कोई लोक-कहानी व धर्म कहानी नही हो सकती है। डा सत्येन्द्र के शब्दों मे—"इन लोक कथाओं का आधार लोक मानस होता है। इनमें हमारी आदिम मनोवृत्तियाँ, आस्था और विश्वास मचरित होते रहते है। इस प्रकार ये हमारे सास्कृतिक इतिहास आदिम की मनोवृत्तियो, उनकी आस्थाओं और विश्वासों, रीति-रीवाजों और सामाजिक संस्थाओ के अध्ययन की दृष्टि से बडी महत्त्वपूर्ण होती हैं।"

इन लोक कथाओ का विस्तार व्यापक होता है। देशकाल के अनुरूप वाता-वरण एव मानसिक स्थितियों की भिन्नता के कारण एक ही लोक कथा के अनेक रूप हो जाते हैं। डा श्याम परमार के शब्दो मे—"भारतीय लोक कथाओ का तो अपना विशिष्ट महत्व है। इनकी प्रवृत्तियो के सम्बन्ध मे यह बात प्रसिद्ध है कि उनके प्रमुख लक्षणो की पुनरावृत्ति प्राय. अन्य कथाओ मे होती रहती है। वास्तव में यह एक सच्चाई है। पजाब, बंगाल, बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र, मेवाड अथवा मालवा आदि स्थानो मे पाई जाने वाली लोक कथाओ मे अनेक कथाये एक-दूसरे से वस्तु पात्र, चित्रण शैली मे साहृश्य रखती है।"[2] डा. सत्येन्द्र ने कहानी के रूप परिवर्तन के बारे मे लिखा है कि "वास्तव मे कहानियाँ उन क्षेत्रो मे परस्पर आदान-प्रदान की वस्तु बन जाती है जिनमे परस्पर घनिष्ठ राजनीतिक, व्यापारिक या अर्थ-सम्पर्क रहते हैं। इन सम्बन्धो के कारण कहानियाँ कभी-कभी बडी-बडी दूर की यात्रा कर जाती हैं। इन यात्राओ मे भाषा भेद कोई अड़चन प्रस्तुत नहीं करता, पर सस्कृति भेद किसी सीमा तक अड़चन डालता है। यदि कोई वस्तु किसी क्षेत्र की संस्कृति मे

1. लोक साहित्य का विज्ञान . डा सत्येन्द्र पृ. 60
2. लोक साहित्य विज्ञान - डा. सत्येन्द्र पृ. 385

समीचीन नहीं लगता, तो वह या तो छूट जायेगा या रूप परिवर्तन कर लेगा या उसके स्थानापन्न कोई नया तत्व आ जायेगा।"[1]

लोक कथाओं की लोकप्रियता उनकी जीवन शक्ति; जनमानस को सहज रूप से आकर्षित करने की शक्ति एवं व्यापकता को दृष्टि मे रखकर ही जैन कवि कुशल-लाभ ने अपने कथानकों का आधार लोक कथाओ को बनाया है।

'ढोला मारवणी चौपई' तथा 'माधवानल-कामकंदला चौपई' का कथा स्रोत लोक कथा ही है।

कुशललाभ रचित 'ढोला मारवणी चौपई' का रचना काल श्री अगरचन्द नाहटा ने स. 1607 माना है। परन्तु[2] एफेमरिज से यह ठीक नही बैठता। 'ढोला मारवणी चौपई' की कई प्रतिलिपि मिलती है। कई प्रतियों मे तिथि के साथ बार का भी निर्देश है परन्तु ऐफिमेरीज से इन तिथियो पर वह दिन नहीं बैठता। ऐसी स्थिति मे सभी प्रतियों को दोषयुक्त या जाली माना जा सकता है। जिन प्रतियों मे 'संवत सोल सतोतरइ--आखातीज दिवस मन खरई' पाठ मिलता है वही मूल होना चाहिये। संवत सोलह सत्रोतरइ पाठ को सवत् सोल सतोतरइ लिपिबद्ध करना लिपिकों का प्रमाद ही कहा जा सकता है जिसके कारण यह विवाद बना हुआ है कि रचना 1607 मे हुई या 1617 में।

तत्कालीन लिपि मे 'त्र' और 'त' मे विशेष भेद नही होने से ही 'त्र' को 'त' पढकर प्रतिलिपियो मे भूल की गई है। हरराज 1617 में राजकुमार था और 1618 मे राजा बना था। अत इसका रचना काल 1617 मानना ही उचित है।

कुछ लोग 'ढोला मारवणी चौपई' को अभिजात्य साहित्य की कृति मानते है। परन्तु श्री अगरचन्द नाहटा इनके इस मत से सहमत नही है। उनका कहना है कि – "वास्तव मे ऐसे व्यक्ति अपनी अल्प जानकारी का परिचय देते हैं। ढोला मारू प्रेम-गाथा के रूप मे बहुत प्राचीन समय से प्रचलित था। अभिजात्य रूप की प्रेरणा का स्रोत भी यही लोक प्रचलित कथा है। लोक मे यह कुछ अनगढ़ रूप में थी। कुशललाभ कवि ने इसे सस्कृत रूप मे प्रस्तुत किया।"[3]

मूल 'ढोला मारू दूहा' तथा 'ढोला मारवणी चौपई' की कथा एक होते हुये भी उनमे अन्तर है। विशेष भेद यह है कि चौपई की कथा आगे की कथा के सकेत सूत्र देती हुई चलती है। प्रारम्भ मे लम्बी प्रस्तावना के पश्चात् राजा पिंगल का उमा देवड़ी के साथ विवाह का विस्तृत वर्णन है, जो एक स्वतन्त्र कथा प्रतीत होते हुये भी मूल कथा से अलग नहीं की जा सकती। उसके बाद ढोला मारवणी के जन्म

---

1. भारतीय लोक साहित्य। डा. श्याम परमार : पृ. 167
2. राजस्थान भारती भाग 1 अंक 4 जनवरी, 1947
3. राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा, श्री अगरचन्द नाहटा : पृ. 87

विवाह् आदि के विस्तृत वर्णन के साथ बनिये की कथा भी कथाप्रवाह में सहायक हुई है।

ढोला मारू दूहा के अनेक रूप हमें देखने को मिलते हैं। परन्तु कुशललाभ ने उस बिखरी कथा को सगठित किया, अतःअभी तक उस कथा का एक ही रूप मिलता है।

ढोला मारू की कथा के अन्य अनेक प्रादेशिक रूप भी देखने को मिलते हैं। इनकी प्रेम कथा राजस्थान तक ही सीमित नही रही वरन् उत्तर और मध्य भारत मे भी अपना प्रभाव फैलाये बिना नही रह सकी। ढोला व मारू सामान्य व्यक्ति न रह कर आदर्श दम्पत्ति के रूप मे रूढ होकर लिखित व मौखिक दोनों रूपो मे प्रचलित थे। ढोला मारू के प्रादेशिक रूप निम्नलिखित है :

1. ब्रज प्रदेशीय रूप

यह कथा नल दमयंती की कथा का ही एक भाग है। इसमे नरवर के राजा पिरथम एव उनकी पत्नी मझा की कथा आती है। रानी मंझा को गर्भवती अवस्था मे चरित्रहीन बताकर निकाल दिया जाता है। वन मे मझा पुत्र को जन्म देती है। पुत्र नल व मझा का पालन-पोषण एक वणिक द्वारा होता है। नल मोतिनी से गधर्व विवाह करता है। वणिक पुत्र ईर्ष्यावश नल को समुद्र मे डाल देता है। नल पाताल लोक जाकर भौमासुर को मारता है तथा वासुकी से मित्रता करता है। नल एव मोतिनी का पुनः संयोग होता है। फूलसिंह पंजाबी राजा पिरथम व मझा को कैद करता है परन्तु नल मोतिनी उन्हे मुक्त करा देते है तब नल राजा बनता है।

राजा भीम की कन्या दमयती नल के रूप पर मोहित होकर हस द्वारा प्रणय निवेदन करती है। इन्द्र आदि देवताओ द्वारा षड्यन्त्र किया जाता है परन्तु दमयन्ती स्वयवर मे नल को वर कर लेती है। इस विवाह से मोतिनी प्राण छोड़ देती है। राजा नल से शनि देवता प्रतिशोध लेते है। नल पुष्कर के साथ जूएँ मे हार जाता है। राज्य से परित्यक्त नल व दमयन्ती पिंगल देश जाकर रगू तेली के यहाँ कोल्हू चलाने का कार्य करते है।

रगू तेली व पिंगल राजा बुध मित्र थे। एक बार पासा खेलते समय रंगू सब कुछ हार गया। नल द्वारा खेले जाने पर रगू जीतने लगा और उसने मारवाड़ के परगने जीत लिये। राजा बुध नल से पासा खेलने लगा और दोनो ने अपनी आसन्न गर्भा पत्नियों को दाँव पर लगा दिया। राजा नल विजयी हुआ और इस विजय के रूप मे दोनो की होने वाली सतानों का विवाह करना तय हुआ। नल के यहाँ ढोला राजकुमार हुआ तथा बुध के यहाँ मारू राजकुमारी। पूर्व निश्चय के अनुसार बाल्यावस्था मे दोनो का विवाह कर दिया।

नल दमयन्ती अच्छे दिनो की कामना करते नरवर को प्रस्थान करते हैं परन्तु दुर्भाग्य साथ नही छोड़ता है। भीषमपुर के राजा द्वारा दमयन्ती का अपहरण कराया

जाता है। ऐसे समय में राजा नल अपने मित्र वासुकी को स्मरण करता है। इसके आगे दमयन्ती के दूसरे स्वयंवर की कथा है। स्वयंवर के पश्चात् नल दमयन्ती का पुनः मिलन होता है नल ने पुष्कर को फिर जुआ खेलने के लिये ललकारा। नल इस बार जीत गया और पुनः राज्य हस्तगत कर लिया।

नरवर मे ढोला के युवा होने पर गौने का संदेश पिंगल भेजा गया। ढोला गौना कराने हेतु पिंगल जाता है, परन्तु मार्ग में रेवा जादूगरनी ने उसे बन्दी बना लिया, किन्तु ढोला करिहा ऊँट की सहायता से इस जादूगरनी की कैद से छूट कर पिंगल पहुँचता है। पिंगल मे ढोला को सिंह द्वार से आने के लिये कहा जाता है जिसमे एक राक्षस होता है, किन्तु मारू गुप्त रूप से ढोला को इसकी सूचना दे देती है। ढोला तो शीघ्रता से निकल जाता है परन्तु दीवार गिरने से करहा की टाँग टूट जाती है। ढोला परीक्षा मे सफल होता है और मारू का गौना कराकर ले आता है।

इसके आगे ढोला के किशनुलाल नामक भतीजे के विवाह का वर्णन आता है। दोनो को चदन और चुनिया जादूगरनियाँ चुरा लेती हैं। नल फिर दुर्गा, मोतिनी एव वासुकी को स्मरण करता है जो उन दोनों को जादूगरनियों के चगुल से छुड़ाते है।

सम्पूर्ण कथा मे नल दमयन्ती ही पूर्ण रूप से छाये रहते हैं जिससे ढोला मारू की कथा इससे गौण बन कर रह गई है। राजा पिंगल का नाम यहाँ बुध है। इसमे ढोला व मारू के विवाह का निश्चय पासे पर होता है तथा ढोला गौने हेतु पहल करता है। रेवा जादूगरनी द्वारा बंदी बनाया जाना, सिंह द्वार से निकलना, राक्षस का होना, मारू द्वारा अग्रिम सूचना देना आदि प्रसग राजस्थानी रूप से भिन्नता रखते हैं। ढोला के भतीजे की शादी होना, जादूगरनियों द्वारा दोनों को चुराया जाना, दुर्गा, मोतिनी और वासुकी की सहायता आदि भी नये प्रसंग हैं।

2. हरियाणवी रूप

इस कथा में पूगल पिंगलगढ है तथा पिंगलराव का नाम बुधसिंह है। ढोला कँवर एवं मारवण का विवाह जन्म से पहले चौसर की बाजी पर निश्चित होता है। ढोला के ऊपर शाप के कारण पिंगलगढ़ का दरवाजा गिरने की कथा राजस्थानी कथा रूप में नही है। इसमें मारवणी के स्थान पर रेवती रेवा का उल्लेख हुआ है। मारवण की माता तोते को दूत बना कर ढोल कँवर के पास भेजती है परन्तु वह रेवती रेवा के हाथ पड़ जाता है। मारवणी साड़ी पर अपनी विरह व्यथा लिखती है तथा बनजारे के द्वारा ढोल कंवर के पास पहुँचती है आदि कथा प्रसंग नये हैं।

3. पंजाबी रूप

ढोला मारू की कथा का जो रूप हरियाणा में प्रचलित है वही रूप पंजाब क्षेत्र मे भी प्रचलित है।

4. छत्तीसगढ़ी रूप

इस कथा में ढोला का नाम ढोला लाल, पूगल का नाम पिंगला, नरवर गढ़

का नाम नरहुल तथा पिंगलराव का नाम वेन राजा है। कथा मे रेवा के भय से नल द्वारा ढोला को छिपाये रखना, संयोग से रेवा के उद्यान तक ढोला का पहुँचना, रेवा के तोते का शिकार करना, ढोला का रेवा जादूगरनी के कुचक्र मे फँसना, तोता एव सर्प कथाश, रेवा से छुटकारे के लिये ढोढा बाबा नामक जादूगर की सहायता लेना, वेन के पुत्रहीन होने के कारण ढोलालाल का उत्तराधिकारी बनना आदि प्रसंग इस कथा में नवीन हैं।

5. भोजपुरी रूप

यह कथानक भी नल दमयन्ती की कथा से प्रारम्भ होता है। बाघिनी द्वारा शाप दिया जाना, नल द्वारा पिंगलगढ़ के ब्याह की चर्चा न करने का आदेश, ब्यापारी पुरोहित तथा चम्पा के पिता द्वारा सन्देश ले जाना, अनेक राजकुमारो का ढोलन बन कर आना, हीरामन तोते का कथानक, हरेबा-परेबा जादूगर बहिनो की कहानी आदि कितने ही नये प्रसंग इस कथानक मे मिलते है। यहाँ ढोला ढोलन हो गया है करहा, उड़ने वाला घोड़ा हो गया है। पूगल पिंगलगढ़ बन गया है। मालवणी का स्थान यहाँ रेवा ने लिया है और वह गढ़ उपमा के राजा परमाजीत की कन्या बतलायी गयी है। ऊमर सूमरा का स्थान तारा के पति भारमल ने लिया है। यह कथानक स्थानीय तत्वो से अत्यधिक प्रभावित है।

6. राजस्थानी रूप

यह कथा रूप कुशललाभ की कथा से बहुत कुछ साम्य रखती है फिर भी कुछ नवीन अश इस कथा मे आये हैं। अकाल पड़ने पर पिंगल राजा रानी ऊमादे के कहने पर पुष्कर की यात्रा करना, अपने भाई गोपालदास को राज्य सौपना, नरवर गढ़ के राजा नल का पुत्र प्राप्ति हेतु वाराह जी (बघेरा पुष्कर जहाँ वाराहजी का मन्दिर है) की यात्रा का संकल्प, वाराहजी की पूजा का वर्णन, ढोला व मारवणी की धात्री का आपस में वार्तालाप, पिंगल की चार पत्नियो का उल्लेख, धात्री ही का राजा नल से ढोला का विवाह मारू से करने को कहना, राजा नल का प्रधान एव रानियो से विचार-विमर्श करना, गोद भराई की रस्म पूरी करना, आदि नये प्रसंग हैं।

पिंगल राजा के भाई गोपालदास का सन्देश, घोड़ो के सौदागर का बाग में ठहरना और मारू की सखियो से मारू के बारे मे पूछना, नाई का पिंगल राजा के घोड़ो को टहलाने आना और सौदागर की बाते सुनकर राजा से कहना, रानी द्वारा सन्देश भेजा जाना, मालवणी द्वारा पत्र फाड़ कर व्यक्ति को मरवा देना, ढाढ़ियो का कुम्हारी के घर पहुँचना और कुम्हारी व उसके भानजे की सहायता से ढोला से मिलना, ढोला का मारवणी को प्रेम पत्र लिखना, मालवणी द्वारा मारवणी के ब्याह को भ्रांति बताना, ढोला द्वारा पुरोहित को भेजना जो मारवणी का पता लगाकर आये कि वह कैसी है, पुरोहित द्वारा मारू का रूप वर्णन, पुष्कर में तौरण थंभ

देखकर ढोला का वहाँ ढोला मारू के बारे में पूछना और सही स्थिति का ज्ञान होना, गीत की आवाज सुनकर ढोला का कूये के पास जाना, बागवान द्वारा ढोला के आगमन की सूचना देना आदि तथ्य नये हैं।

निष्कर्षत: ढोला मारू की कथा अपनी लोकप्रियता के कारण उत्तर और मध्य भारत में खूब प्रचलित रही। उपर्युक्त कथा रूपों मे जो पर्याप्त अन्तर आ गया है यह अन्तर 'ढोला मारवणी चौपई' के कथा रूप से साम्य नहीं रखता।

"माधवानल कामकंदला चउपई" का कथा स्रोत

माधवानल कामकंदला की कथा का मूल स्रोत सिंहासन बत्तीसी की इक्कीसवीं कहानी है जिसे अनुरोधवती पुतली ने सुनाया है।[1] इस मूल कथा को संस्कृत अपभ्रंश एव मध्यकाल के अनेक हिन्दी कवियों ने अपनी कल्पना के योग से कथाओं को नवीन रूप दिया है।

माधवानल कामकंदला की कहानी प्राचीन काल से ही बहुत प्रसिद्ध रही है। गायकवाड ओरियन्टल सीरीज से प्रकाशित 'माधवानल कामकंदला प्रबन्ध' की भूमिका मे श्री मजूमदार ने इस कथानक की प्राचीनता के बारे में लिखा है—"यह कहानी पश्चिमी भारत मे बहुत प्रसिद्ध थी। बहुत दिनो के बाद इस कथानक के आधार पर मराठी मे रचनाये प्रारम्भ हुई। हिन्दी में सबसे पहले आलम ने इसकी रचना हिजरी सवत् 991 मे की थी।"[2]

परन्तु यह मान्यता ठीक नही क्योकि इमसे पूर्व गणपति ने इस कथा को आधार बनाकर सवत् 1588 वि (1527 ई.) मे अपना माधवानल कामकंदला प्रबन्ध लिखा।[3]

आलम ने भी किसी संस्कृत की कथा को सुना था और उसी के आधार पर इसकी रचना की थी। कवि ने इस कथानक की भूमिका मे स्पष्ट लिखा है[4]—

---

1. सिंहासन बत्तीसी देहली मतब अहमनी मे बएह त्याग मिश्र भगवानदास के से छपी सन् 1869 पृ० 110 से 112 रा. प्रा. वि प्र. जयपुर से प्राप्त।
2. This story appears to have been popular mostly in Western India, and only at a very late period it came to be adopted in Marathi The Version of the story in Hindi by a Muslim Poet Alam styled 'Madha-Vanalakatha' was composed in Hizri Samvat 991 (Samvat 1640, A D 1584).
3. वेद भुयगम बाण शशि, विक्रम वरस विचार
   श्रावणनी शुदि सातमी स्वाति मंगलवार ।। 222 ।।
   गायकवाड़ ओरियटल सीरीज बडौदा, पृ० 339
4. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य : डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, पृ० 219

कछु अपनी कछु पर कृति चोरी, जथा सक्ति करि अक्षर जोरी
सकल सिंगार बिरह की रीति, माधौ कामकंदला प्रीति
कथा संस्कृत सुनि कछु थोरी, भाषा बांचि चौपई जोरी

गणपति के पश्चात माधव शर्मा ने सं. 1600 वि. मे 'माधवानल कामकंदला रस विलास' ब्रज भाषा में लिखा। जिसकी एक खडित प्रति हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में सुरक्षित है।[1] श्री अगरचन्द नाहटा जी ने भी माधव सम्बन्धी अन्य कथाओं का उल्लेख अपने एक लेखन मे किया है।[2]

इसी कथा को लेकर स. 1616 मे कुशललाभ ने माधवानल कामकंदला चउपई लिखी।[3] कुशललाभ की यह रचना पूरक कृतित्व के रूप में की गई जान पड़ती है।

इसी कथा के आधार पर कवि दामोदर ने 'माधवानल कथा' लिखी। यह रचना संभवत: 17 वी शताब्दी से पूर्व की होगी क्योंकि इसकी एक प्रति में लिपि काल विक्रम स. 1737 दिया गया हैं।[4] कवि आलम ने भी विक्रम सं. 1640 मे इस कथा को अवधि मे लिखा।[5]

सबसे पहली रचना हमे सस्कृत मे कवि आनन्द धर की लिखी मिलती है। इसका रचना काल स. 1300 ई. है।[6] "माधवानल आख्यानम्" के नाम से भी यह कथा मिलती है।[7] यह कथा उस युग मे इतनी लोकप्रिय रही कि थोड़े बहुत कथानक के अन्तर के साथ निम्नलिखित काव्य ग्रन्थो मे भी यह उपलब्ध रही।

(1) गणपतिकृत 'माधवानल कामकदला प्रबन्ध' 1584
(2) किसी अज्ञात कवि कृत 'माधवानल प्रबन्ध' 1547 हिन्दी संस्कृत

---

1. संवत् सोला से वरसि जैसलमेर मझारि
फागुन मास सुहावने करी वात विसतारि
मध्ययुगीन प्रेमाख्यान . श्याम मनोहर पाण्डेय . पृ० 105
2. हिन्दी अनुशीलन—माधवानल कामकदला कथा सम्बन्धी कुछ अन्य रचनायें श्री अगरचन्द नाहटा वर्ष 11 अंक 4 अक्ट-दिस. 1958
3 माधवानल कामकदला चउपई : कुशललाभ
गायकवाड आरियन्टल सीरीज बडोदा
4. इति श्री कवि दामोदर कृत माधवानल कथा समपुराण लखु छि। सवत् 1737 ने वरखे जेठ तृतीय वद 6 वार बुद्ध संपूर्ण वडनगर मध्ये लघु छि।
गायकवाड ओरियन्टल सीरीज बडौदा XCIII पृ० 509
5. सन् नौ सै इक्यानुवे आहि
करौ कथा अब बोलौं ताहि
हिन्दी प्रेम गाथा काव्य सग्रह (द्वित. सं.) पृ० 185 हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग
6. गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर, श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी द्वितीय संस्करण पृ० 204
7. माधवानल कामकदला प्रबन्ध : गायकवाड़ आरियन्टल सीरीज, बड़ौदा पृ० 341

(3) कुशललाभ : 'माधवानल कामकंदला चउपई' 1616 राजस्थानी
(4) बालक कवि कृत 'माधवानल कामकंदला भाषा बंध' 1583-84
(5) नेपालराज मल्ल कृत 'माधवानल नाटक' 1704 गद्य पद्य मिश्रित हिन्दी
(6) हरनारायण-'माधवानल कामकंदला' 1812 वि. ई. 1756
(7) आनन्दधर-"माधवानल आख्यानम्" संस्कृत अपभ्रंश गद्य पद्य मिश्रित
(8) दामोदर-'माधवानल कथा' अपभ्रंश व पुरानी गुजराती मिश्रित
(9) लाल कवि-'माधवानल कथा'
(10) शांति गुप्त वार्ष्णेय-'माधवानल कामकंदला नाटक'
(11) पुरुषोत्तम वत्सकृत-'माधवानल कथा'
(12) बोधा कृत-विरह् वारीश (कथा वही नाम अन्तर है।)
(13) रघुराम नागर-माधव विलास शतक
(14) जगन्नाथ कृत-माधव चरित्र 1744
(15) कवि केसि-माधवानल कामकदला नाटक

इन रचनाओं के सम्बन्ध मे यही प्रतीत होता है कि तत्कालीन परिस्थितियों एव काव्यगत प्रवृत्तियो के प्रभाव के साथ ही कृतिकार की अपनी मौलिक भावनाओं का योग एक ही कथा के माध्यम से विभिन्न रूपो मे प्रकट हुआ है। इन काव्यों की अपनी निजी मौलिकता है।

कवि कुशललाभ ने प्रस्तुत कृति की रचना कुँवर हरराज के मनोरंजनार्थ की थी।[1]

माधव व कदला की इस प्रेम कहानी का कथानक प्रायः समान ही है। परन्तु कवि कुशललाभ व गणपति ने इस कथानक मे थोड़ा परिवर्तन करते हुये माधव व कंदला के पूर्वजन्म की कथा की सयोजना की है।

कुशललाभ जैन कवि थे अतः उनकी कथा मे जन्म जन्मान्तर की कथा का आना स्वाभाविक ही लगता है। अन्य कवियों ने शायद प्रेम को जन्म जन्मान्तर तक अमर बनाने के उद्देश्य से इस कथानक को लिया है, ऐसा प्रतीत होना है। कुशललाभ की नायिका वेश्या के प्रेम की कथा मे वर्णित प्रेम जनसामान्य का प्रेम है। नायक नायिका का प्रेम कालात्मक अभिरुचि से प्रारम्भ होकर रूपासक्ति मे विकसित होता हुआ सच्चा प्रेम बना है। एक दूसरे को प्राप्त करने के प्रयासों मे कथा की गम्भीरता क्रमशः बढ़ती जाती है और कष्टो की समाप्ति अन्ततः मधुर मिलन में होती है।

1. राउल माल सुपाट धर, कुँवर श्री हरिराजि
विरच्यो इह सिणगार रस, तास कुतूहल काजि
माधवानल कामकदला चउपई
गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज बड़ौदा

कुशललाभ का माधव कामदेव का पर्याय नहीं है और न कामकंदला ही रति के रूप में चित्रित है। दोनों में अपार सौन्दर्य अवश्य है। पर कुशललाभ ने शील समन्वित दामदत्य प्रेम का चित्रण करना ही अपना उद्देश्य रखा है।[1]

कुशललाभ ने कथा के परम्परा से चले आ रहे स्रोत मे कुछ नवीन एवं मौलिक परिवर्तन किये है। वे निम्नलिखित है. –

(1) जयन्ती को इन्द्र से शाप दिलाना
(2) पुष्पावती मे शिलारूप मे अवतीर्ण होना
(3) माधव का शिलारूपी नारी से विवाह व जयन्ती का शाप मुक्त होना।
(4) माधव व जयन्ती का प्रेम।
(5) जयन्ती का इन्द्र से पुन. शापग्रस्त हो मृत्यु लोक मे नर्तकी कामकदला के रूप मे अवतीर्ण होना।

ये सभी घटनाये माधवानल कामकदला की कथा के मेरूदण्ड है।

दुर्गा सात्तसी–कथा स्रोत

दुर्गा सात्तसी का मूल कथा स्रोत मार्कण्डेय पुराण है। इस कथा को कुछ नवीनता के साथ ग्रहण किया है।

मार्कण्डेय पुराण मे दैत्यराज शुंभ निशुंभ का दूत सुग्रीव जो सन्देश देवी को कहता है उसका पहले वर्णन नही है परन्तु कुशललाभ ने शुंभ के द्वारा वह सब सन्देश निशुंभ को कहलवाया है।

इसके अतिरिक्त कुशललाभ की दुर्गा सात्तसी मे ब्रह्माणी विष कन्या के रूप मे शुंभ से विवाह करती है जबकि अन्य कथाओं मे ऐसा नहीं है।

दुर्गा शप्तशती मे देवी द्वारा निशुंभ के बध से क्रोधित होकर शुंभ देवी से युद्ध करता है और मारा जाता है। परन्तु कुशललाभ ने अपनी कथा मे शुंभ-निशुंभ का वध देवी से एक साथ ही करवाया है यहाँ दुर्गा सप्त शती की भाति निशुंभ के वध से उद्वेलित हो शुंभ प्रहार नही करता।

"तेजसार रास" व "भीमसेन राजहस चौपई" के कथा स्रोत

इन कथाओं का आधार जैन महापुराण ही कहा जा सकता है। इन कथानको के आधार पर तो कोई कथा मिलती नही है। परन्तु कथा काव्यो मे श्री मुनि सुव्रत स्वामी तथा श्री रामरिषि कथा के प्रमुख पात्रो भीमसेन व राजहस को तथा तेजसार को धर्म उपदेश देकर दीक्षा देते है।

मुनि सुव्रत स्वामी का उल्लेख जैन उत्तरपुराण मे आया है। इसके अतिरिक्त 'जैन धर्म के मौलिक इतिहास' मे भी मुनि सुव्रत स्वामी का जीवन उल्लेख है। श्री

1. इम जो उत्तम नारि नर पालइ निर्मल शील
इह लोके सुख सपजई, पर भवि संपति लील ॥ 650 ॥

मुनि सुव्रत बीसवें तीर्थंकर थे। इनका धर्म परिवार बहुत विस्तृत था। श्रावक श्राविकाओं की संख्या भी अपार थी।[1]

"तेजसार रास" मे उल्लेख आया है कि तेजसार, मुनि सुव्रत स्वामी से अपने पूर्वभव का ज्ञान प्राप्त करके दीक्षा ग्रहण करता है। विमला श्राविका का भी उल्लेख आया है। जो निश्चय ही मुनि सुव्रत स्वामी के श्रावक व श्राविका रहे होंगे। उन्हीं श्रावक श्राविकाओ को आधार बना कर कवि कुशललाभ ने अपनी कल्पना के सहारे कथा का निर्माण किया है।

"भीमसेन राजहस चौपई" भी इसी प्रकार का कथा काव्य है। ऋषि श्रीराम भीमसेन व राजहस को धर्म उपदेश देकर दीक्षा देते है ऐसा उल्लेख इस कथा मे आया है। परन्तु इस नाम के किसी ऋषि का उल्लेख कही भी जैन साहित्य मे प्राप्त नही हो सका है। महावीर स्वामी के नवे गणधर अचल भ्राता ने अपने शिष्यों को उपदेश दिया। उसमे उन्होने बताया कि जो व्यक्ति राजेन्द्र राजहस की तरह भगवान जिनेश्वर की अराधना करता है वह अनेक प्रकार के सूत्रो को प्राप्त होता है। इस पर गणधर अचल भ्राता के शिष्य पिंगल ने उनसे राजहस का पूर्ण वृतात सुनाने की प्रार्थना की। अपने शिष्य की प्रार्थना को स्वीकार कर गणधर अचल भ्राता ने विस्तार पूर्वक भीमसेन राजहस का कथानक सुनाया। कथा का स्रोत कुशललाभ ने यही बताया है। किन्तु जैन वाडमय मे अन्य कहीं इस प्रकार का कथानक देखने मे नही आया है।

"अगड़दत्त रास" का कथा स्रोत व परम्परा

आगडदत्त रास सम्बन्धी कथा जैन साहित्य मे बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है।[2] इस पर कई एक चरित्र विषयक आख्यान लिखे जा चुके हे परन्तु कई कवियो ने इस कथा को दृष्टान्त रूप मे ही ग्रहण किया है। यही कारण है कि यह कथा गद्य और पद्य दोनो रूपो मे सस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी और गुजराती भाषाओ मे लिखी गई है।

अगडदत्त कथा का प्राचीन रूप कौन सा रहा होगा यह कह पाना कठिन है। इसका प्राचीनतम रूप हमे पाचवी शती में सघदासगणि द्वारा लिखित 'वसुदेव हिंडी' कथा ग्रंथ मे और उसके उपभाग धम्मित हिंडो मे अवान्तर कथा के रूप मे मिलता है। आठवी शती के जिनदासगणि ने अपने उत्तराध्ययन चूर्णि

---

1 श्रावक एक लाख बहत्तर हजार
श्राविका – तीन लाख पचास हजार
जैन धर्म का मौलिक इतिहास पृ. 134 (प्रथम भाग) तीर्थंकर खण्ड
लेखक एवं निर्देशक आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज

2. अगडदत्त कथा और तत्सम्बन्धी जैन साहित्य श्री भंवरलाल नाहटा, वरदा वर्ष 2 अंक 3 पृ. 2

में इस कथा को दृष्टान्त रूप में अपनाया है। इसके बाद यही कथा वादिवेताल शांति सूरिकृत 'उत्तराध्ययन की पाईय (प्राकृत) टीका' मे तथा स. 1129 में नेमिचन्द रचित उत्तराध्ययन टीका मे 328 प्राकृत पद्यों में दी गई है। श्री विनय भक्ति सुन्दर चरण ग्रथमाला की ओर से संस्कृत के अज्ञात कवि कृत 'अगड़दत्त चरित्र' 334 श्लोको मे प्रकाशित हुआ है परन्तु इसमे रचना सवत का अभाव है। अत: इसकी प्राचीनता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

इस कथा की वर्तमान परम्परा का आरम्भ 16वी शती मे लिखित गुजराती और राजस्थानी भाषा के अगडदत्त रास को माना जा सकता है। यही परम्परा हमे 18वी शताब्दी तक दिखाई देती है। इस कथा को आधार बनाकर अब तक निम्न काव्य लिखे जा चुके हैं :—

(1)	अगड़दत्त रास	स. 1584 आषाढ़ बदि 14 शनिवार भीमकृत[1]
(2)	अगडदत्त मुनि चौपई	स. 1601 सुमति[2]
(3)	अगडदत्त कुमार रास	स 1625 का शु 15 गुरुवार कुशललाभ[3]
(4)	अगडदत्त प्रबन्ध	स 1666 श्री सुन्दर[4]
(5)	अगडदत्त चौपई	स 1670 क्षेमकलश[5]
(6)	अगडदत्त रास	स, 1679 ललित कीर्ति[6]
(7)	अगड़दत्त रास	सं. 1685 स्थानसागर[7]
(8)	अगड़दत्त राम	16वी शती गुणविनय[8]
(9)	अगड़दत्त चौपई	स. 1703 पुण्य निधान[9]
(10)	अगडदत्त रास	सं 1703 कल्याण सागर[10]

---

1. रा. प्रा. वि. प्र जोधपुर ग्रं. 273-33 (अ प्र.)
2. वही, ग्र. 1124 (अ. प्र.)
3. (क) भण्डारकर प्राच्य विद्या मदिर पूना, ग्रं. 605
   (ख) प्राच्य विद्या मन्दिर बड़ौदा, ग्र 14289
4. वरदा वर्ष 2 अंक 3 जुलाई 1959 पृ. 2
   श्री भवरलाल नाहटा का लेख . अगड दत्त कथा और तत्सम्बन्धी जैन साहित्य
5. अगडदत्त कथा और तत्संबधी जैन साहित्य श्री भवरलाल नाहटा का लेख :
   वरदा वर्ष 2 अक 3 जुलाई 1959
6. रा प्रा. वि. प्र बीकानेर ग्र 2041
7. अगड़दत्त कथा और तत्सबंधी जैन साहित्य श्री नाहटा का लेख वरदा वर्ष 2 अक 3 जुलाई 1959
8. वही
9. वही
10. वही

(11) अगड़दत्त ऋषि चौपई सं. 1787 शांति सौभाग्य[1]
(12) अगड़दत्त रास अपूर्ण[2]
(13) अगड़दत्त चरित्रम् अपूर्ण[3]

कुशललाभ का अगड़दत्त कुमार रास प्राकृत भाषा में लिखित अगड़दत्त चरित्र और 16वीं शती के अगड़दत्त रास का विकसित रूप है। अतः हम यहाँ इसकी तुलना वासुदेव हिंडी नेमिचन्द रचित उत्तराध्ययन टीका, भीम कृत अगड़दत्त राम मुनि चौपई आदि पूर्ववर्ती कृतियों में वर्णित कथा से करेंगे।

आलोच्य कृति में अगडदत्त को बसन्तपुर के राजा भीमसेन के बलशाली सांमत शूरसेन का रूपवान पुत्र कहा गया है जबकि वसुदेव हिण्डी में वह उज्जैनी के अमोधरथ सारथी का पुत्र, नेमिचन्द के अनुसार वह शखपुर के सुंदर राजा की भार्या सुत्तसा का पुत्र है। भीम ने अपने आगड़दत्त रास मे अगड़दत्त को चपानगरी के राजा वीरसेन और रानी वीरमती का पुत्र तथा कवि सुमती शखपुरी के राजा सुर-सुंदर का पुत्र बताया है।

अगडदत्त कुमार राम के अनुसार—अगड़दत्त के रूप गुण का यश सुनकर एक सुभट बसन्तपुर मे आया और राजा भीमसेन ने सामन्त शूरसेन को वहाँ बुलवाया। सुभट और शूरसेन के द्वन्द्व-युद्ध मे शूरसेन मारा गया। अगडदत्त की माता ने राज्य मे अपने अनादर को देखते हुये पुत्र को विद्याध्ययन के लिए उसके पिता की इच्छा-नुसार उनके मित्र उपाध्याय सोमदत्त के पास चंपापुर में भेजा।

यही वृतान्त वसुदेव हिण्डी मे वर्णित है। पर यहाँ स्थान का नाम कौशाम्बी तथा गुरू का नाम आचार्य दृढप्रहारी दिया गया है। इसके विपरीत उत्तराध्ययन वृति, भीमकृत अगडदत्तरास तथा सुमनि रचित अगड़दत्त मुनि चौपई मे इतर रूप में प्रस्तुत हुआ है। इन कथा रूपों में नगरवासी अगड़दत्त पर व्यभिचारो का लाछन लगाते हैं—परिणाम स्वरूप राजा उसे देश निकाला देता है और वह वहाँ से बनारस पहुच कर गुरू से शिक्षा ग्रहण करता है।

कुशललाभ के अनुसार बसन्तपुर के एक व्यवहारी (जिसके पास सोमदत्त ने अगड़दत्त के भोजनादि की व्यवस्था कर रखी थी) की विवाहित कन्या मदनमंजरी को अगड़दत्त ने शिक्षा पूर्ण कर लेने के पश्चात् विवाह का वचन दिया।

यही प्रसग अन्य कथा रूपों मे भी मिलता है। पर मदनमंजरी एवं उसके पिता के नामों मे अन्तर है। वसुदेव हिन्डी मे इसे गृहपतियक्षदत्त की पुत्री उत्तरा-ध्ययन सूत्र वृत्ति मे पिता का नाम बंधुदत्त दिया है। भीम ने मदनमंजरी के स्थान

1. अगड़दत्त कथा और तत्संबंधी जैन साहित्य श्री नाहटा का लेख वरदा वर्ष 2 अंक 3 जुलाई 1959
2. वही
3. मुनि श्री कल्याण विजय जी संग्रहालय ग्रं. 584 जालौर

पर विषया नाम दिया है और उसे विनयशाह राजा के प्रधान मतिसागर की पुत्री कहा है। सुमति ने इस प्रवन्स्य पतिका को त्रिलोचना तथा उसके पिता को बंधुदत्त कहा है। प्राय: सभी कथा रूपों में मदनमजरी के अगड़दत्त के प्रति आसक्ति का कारण उसके पति का विदेश गमन कहा है, जबकि भीम कृत अगड़दत्त रास मे इसका कारण उसके पति का कुबड़ा होना कहा है। इसी वासनावश वह अगड़दत्त पर गवाक्ष मे ककर मारा करती थी।

विद्या अध्ययन के पश्चात् जब अगड़दत्त ने स्वदेश लौटने की आज्ञा मांगी तो सोमदत्त राजा के पास पहुँचा और अगड़दत्त मदनमजरी के प्रेम प्रसंग की चर्चा की। राजा ने अगडदत्त के वैभव को सुनकर उसे अपना प्रधान नियुक्त किया। इसी समय नगर के महाजन दिन प्रतिदिन हो रही चोरियों की शिकायत लेकर राजा के पास उपस्थित हुए। अगड़दत्त चोर को 7 दिन मे ढूंढ लाने का वचन देकर चल पड़ा।

प्राकृत के कथा रूपो मे तो यही वृतान्त है किन्तु राजस्थानी और गुजराती रूपान्तरो मे भिन्नता है कि अगड़दत्त ने मदमस्त हाथी को अपने वश मे कर लिया। इस कौशल से प्रसन्न होकर राजा ने कुमार को अपने सेनापति पद से सम्मानित किया।

चोर की खोज के पश्चात् कुशललाभ ने मदनमजरी का विवाह अगड़दत्त के साथ करवा दिया है। जबकि अन्य रूपान्तरो मे राजा की पुत्री कमलसेना अथवा वीरमती के साथ अगडदत्त के विवाह का वर्णन है। आलोच्य कृति मे भी वीरमती नाम की पात्रा है पर वह भुजगंम नामक चोर की बहिन है।

कुशललाभ ने चपावती से लौटते हुए अन्य कठिनाईयो के साथ अगड़दत्त के पिता के हत्यारे अभगसेन के वध का भी उल्लेख किया है। यह प्रसग अन्य पूर्ववर्ती रूपान्तरो मे नही मिलता। प्राकृत रूपान्तरो मे अटवी के धनजय चोर का बधकर अगड़दत्त का पुन. उज्जैनी अथवा बनारस लौटने का वर्णन है। पर आलोच्य कृति मे ऐसा कोई उल्लेख नही है।

आलोच्य कृति मे अगडदत्त को लेने के लिये उसके माता पिता और समस्त राजपरिवार बसन्तपुर की सीमा तक आते है। अपने माता पिता आदि को बसन्तपुर के लिये रवाना कर वह स्वय मदनमजरी के साथ रमणार्थ वहाँ ठहर जाता है। यहाँ मदनमजरी को एक विद्याधर ने अन्य पुरुष से रमण करते हुये देखा और उसकी हत्या का विचार किया। इसी बीच उसने मदनमजरी के साथ विलाप करते अगड़दत्त को देखा। सर्प दशित मदनमजरी के लिये उसके करुणार्द्र निवेदन पर विद्याधर ने मदनमजरी को पुनर्जीवित कर उसके आचरण का वर्णन किया।

यद्यपि यह प्रसग सभी रूपान्तरो में मिलता है पर कुछ अन्तर के साथ। वसुदेव हिन्डी आदि प्राकृत कथा रूपो मे विद्याधर युगल का उल्लेख है। भीम के अगड़दत्तरास मे एक ही विद्याधर का उल्लेख है जो अगड़दत्त को सयत्न राजा और

कामुक के दृष्टान्त से प्रतिबोधित किया। इस प्रकार कुशललाभ ने नारी की कुटिलता को मानव जाति के माध्यम से ही स्पष्ट किया है। जबकि भीम ने इस प्रवृत्ति को जन्तु समाज मे भी व्याप्त बताकर इसका सामान्य वर्णन किया है।

शेष कथा सभी रूपान्तरों में समान है। पर वसुदेव हिन्डी मे अगड़दत्त दीक्षित होकर अपने चरित्र का उद्‌घाटन स्वय करता है तथा नेमिचंद की उत्तराध्ययन वृत्ति मे कवि ने अगड़दत्त को दीक्षा देने वाले ऋषि का नाम चारण ऋषि दिया है। आलोच्य कथा में अगड़दत्त देवस्थान में मिले चोरों के नायक से अपना चरित्र सुनकर ससार की असारता के कारण दीक्षित होता है। यही उल्लेख अन्य पूर्ववर्ती कथारूपों मे वर्णित है।

भीम का अगडदत्त रास पाच खडों मे विभक्त है जिसमें कुल 460 दूहा चौपाई है—कुशललाभ ने ऐसा शिल्प ग्रहण नही किया है। उसने तो अन्य पूर्ववर्ती कवियों के शिल्प को ही अपनाया है। साथ ही कुशललाभ ने वसुदेव हिन्डी, भीम, सुमति आदि की भाति ही काव्य मे विस्तृत प्राकृतिक वर्णनों एवं नख-शिख वर्णनों को अधिक महत्व नही दिया है। यहाँ तो कवि ने प्रसंगवश दो तीन चौपइयो में अगड़दत्त और मदनमजरी का रूप वर्णन कर दिया है। साथ ही पूर्ववर्ती सभी कवियों ने प्रारम्भ मे सरस्वती की प्रार्थना करते हुये उसका नखशिख वर्णन किया है। किन्तु कुशललाभ ने इस प्रसग को भी महत्व नही दिया है। उसने सरस्वती की प्रारम्भ मे वदना तो की है पर धार्मिक दृष्टि का ही उसमे आचरण है। शृंगार उससे कोसों दूर रहा है। इस प्रकार कवि ने नैतिकता को प्रधानता दी है जबकि अन्य कवियों ने लौकिक शृ गार को।

उक्त अध्ययन के पश्चात् हम कुशललाभ की अगड़दत्त कथा मे अन्य पूर्ववर्ती कथा के साथ निम्नलिखित साम्य एव वैषम्य का अनुभव करते हैं :

साम्य

(1) अगडदत्त अत्यन्त रूपवान नायक है, जिस पर प्रत्येक नारी आसक्त है।

(2) उपाध्याय ने उसे माता पिता की आज्ञा पालन का आचरण दिया।

(3) परिव्राजक चोर का पता सात दिनों मे लगा लाने का बीड़ा अगड़दत्त ही उठाता है।

(4) छः दिन तक भटकने के उपरान्त सातवें दिन परिव्राजक रूप मे चोर को वह ढूंढ लेता है और उसको मार कर राजा के समक्ष उपस्थित होता है।

(5) राजा अपनी पुत्री अथवा गृहपति की पुत्री से अगड़दत्त का विवाह कर देता है।

(6) मार्ग की कठिनाईया एव उन पर अगड़दत्त की विजय प्राप्ति।

(7) विद्याधर द्वारा नायिका को जीवित करना तथा नारी की कुटिलता का अगड़दत्त को प्रतिबोध कराना।

(8) देव-स्थल पर चोरों के साथ मदनमंजरी का प्रणय एवं अगड़दत्त पर खड़ग प्रहार तथा चोरों का दीक्षित होना।

(9) रमणोपरान्त अगड़दत्त का मुनि द्वारा अपने चरित्र को जानना एव दीक्षित होना।

वैषम्य

(1) पात्रों, स्थानों के नामो का अन्तर

(2) अगड़दत्त के अध्यनार्थ प्रदेश गमन की घटना

(3) मदनमंजरी एवं अगड़दत्त के विवाह का प्रसंग

(4) अटवी मे भुजगम नामक चोर को मारकर पुनः चपानगरी न लौटना

(5) अपने पिता के हत्यारे अभगसेन का वध

(6) अगड़दत्त के माता पिता का मार्ग में मिलन एव मदनमंजरी के साथ उसका मार्ग मे ही रुकना।

(7) विद्याधर का अगड़दत्त को प्रतिबोधन

(8) नायिका एवं सरस्वती का नखशिख वर्णन।

सप्तम अध्याय

कवि के आख्यान काव्यों में समाज और संस्कृति

जैन कथाकाव्यों में सामाजिक जीवन के जो चित्र अंकित हैं वे बड़े ही सुगठित एवं सुव्यवस्थित है। इन कथा काव्यो मे नर-नारी के प्रणय सबंधों का चित्रण, संयोग वियोग पक्ष, मानसिक व दैहिक क्रियाओं का चित्रण मुख्य रूप से हुआ है। फिर भी वर्ण्य विषय के प्रतिपादन मे घटनाओ के क्रम मे कथापात्रों के व्यवहार, सवाद, कथोपकथन तथा अवान्तर कथाओ में वर्णित परिस्थितियों के आधार पर तत्कालीन लोकजीवन, उसका रहन सहन लोकरीतिरिवाज आदि के चित्रण से तत्कालीन समाज और सस्कृति का स्पष्ट चित्र दृष्टि गोचर होता है। इन कथाओं में प्राचीन काल एव मध्य युग के कथानक विद्यमान है। अत रचनाकार ने अपने समय की आधार पीठिका पर वर्णित कथानक को अपनाया है। पूर्व से लेकर लेखक के समय तक की परिस्थितियों एवं सास्कृतिक उद्भावनाओ का चित्रण इन कथा काव्यों मे हुआ है।

तत्कालीन समाज और संस्कृति का चित्रण प्रस्तुत करते समय हमने अध्ययन में इस बात का ध्यान रखा है कि कृतिकार जिस समाज का चित्रण कर रहा है वह कौन से युग का समाज है।

उस समय धार्मिक स्वतंत्रता के साथ-साथ जैन धर्म की गरिमा को प्रदर्शित करने के लिये यथा सभव उपलब्ध साधनो को अपनाया जाता था। सामाजिक व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिये कठोर दण्ड विधान था। अपराधो के होने से समाज में अव्यवस्था आ जाती है जिससे शासन शीघ्र ही नष्ट हो जाता है साथ ही समाज मे भी अराजकता उत्पन्न हो जाती है। इन जैन कथाओं के अध्ययन से यही ज्ञात होता है कि राजा सामाजिक जीवन मे सुख शाति लाने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता था और समाज विरोधी तत्वो को नष्ट करने के लिये उचित साधनो का प्रयोग भी करता था।

सामाजिक जीवन

(क) वर्ण व्यवस्था

'ढोला मारू' कथा का समाज मध्ययुगीन सामन्ती समाज है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भागों मे विभाजित है। वर्ण व्यवस्था का भारतीय संस्कृति मे महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

मनु के अनुसार ब्राह्मण के कर्म हैं--'अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन, दान और प्रतिग्रह। अध्यापन, याजन और प्रतिग्रह कर्म जीविका के निमित्त हैं।"[1]

प्रारम्भ मे हिन्दू समाज के सचालन मे प्रमुख हाथ ब्राह्मणो का ही था। परन्तु 'ढोला मारू' के मध्यकालीन सामन्त युग मे सार्वभौमता इनसे छिन गई। ब्राह्मणो को 'उत्तम' अवश्य ही समझा जाता था परन्तु वे क्षत्रियो के ही आश्रित थे। वे उन्ही के विभिन्न धार्मिक क्रिया कलाप कराकर जीविकोपार्जन करते थे। 'माधवानल कामकदला' मे भी राजा का मंत्री पुरोहित ही होता है।[2]

मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण के वध से बढ कर और कोई पाप नही।[3] शायद इसलिये मारवणी की माता ने पुरोहित को ढोला के पास नरवर नही भेजा कि कही मालवणी के गुप्तचर इसका वध न कर दे।

'माधवानल कामकदला' मे भी राजा क्रुद्ध होकर जब ब्राह्मण माधव का वध करना चाहता है तब राज्य सभासद मे एकत्र समस्त व्यक्ति खड़े होकर ब्राह्मण की हत्या का विरोध करते है।[4]

> अवध्या ब्राह्मणा गाव. स्त्रियो बालास्तपस्विन
> तेषा चान्न न भुजीत ये चान्ये शरण गता

संस्कृत के इस श्लोक मे भी ब्राह्मण को अवद्य बनाया गया है।

क्षत्रिय

क्षत्रिय समाज की आधार शिला रहे है। प्रजा की रक्षा का भार सदैव ही क्षत्रियो पर रहा है। शुक्राचार्य के अनुसार जो प्रजा का रक्षण करने मे निपुण हो, शूर एव पराक्रमी हो, जो दुष्टो का दमन करने मे समर्थ हो वही क्षत्रिय कहलाता है।[5]

---

1. मानव धर्मशास्त्र 10/75-76
2. माधवानल कामकंदला चउपई—कुशललाभ
   गायकवाड़ ओरियन्टल सीरिज बड़ौदा पृ. 46
3. मनुस्मृति : 8/11
4. माधवानल कामकंदलो चोपई–छद सं. 222
   कुपित खडग करि ऊठिइ साही, ओणि मुझ पहिलउ किउ पसाउ
   राज सभा बोलइ सुहु कोई, ब्रह्म पुत्र नवि मारइ कोइ
5. शुक्र नीति : 1-41

प्रस्तुत कथा काव्यो की कहानी क्षेत्रीय समाज की कहानियाँ है । ढोला मध्य युग का सामंत है। वह शूरवीर और साथ ही ललित गुणों का आगार भी है। 'माधवानल कामकदला' के सभी राजा क्षत्रिय हैं। प्रजा की रक्षा करना वे अपना कर्तव्य समझते हैं। माधव पर लगाये गये आरोप की जाँच राजा स्वयं करता है।[1]

'तेजसार रास' का कथा नायक भी क्षत्रिय कुमार है। 'भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई' में भीमसेन क्षत्रिय राजा है और उनका कुंवर राजहंस हैं। राजकुमारी रूपमती के स्वयंवर में उपस्थित सभी राजा क्षत्रिय हैं।[2]

वैश्य

इस वर्ग का कार्य व्यापार करना रहा है। वैश्य वर्ग के हाथ में समाज की अर्थ व्यवस्था रहती थी। 'भीमसेन राजहस चौपई' व 'ढोला मारवणी चौपई' में 'सौदागर" घोड़ो के व्यापारी के रूप में कथा में अवतरित हुये हैं।

शूद्र

मनु के अनुसार शूद्र का एक मात्र कर्म है—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा शुश्रुषा करना।[3] इन कथा काव्यो में इनकी सामाजिक अवस्था का प्रत्यक्ष चित्रण नही मिलता। परन्तु परोक्षत: आभास अवश्य मिलता है।

वैदिक काल मे वर्ण व्यवस्था गुण और कर्म के अनुसार थी। कभी कभी अपने गुण कर्म के अनुसार व्यक्ति वर्ण परिवर्तन भी कर सकता था पर कालान्तर में इस परिवर्तन मे जड़ता आने लगी और इसका सम्बन्ध व्यक्ति के गुण कर्म पर आधारित न होकर जन्म से होने लगा तथा व्यवसाय के आधार पर अनेक जातियाँ बन गई। 'माधवानल कामकदला प्रबन्ध' [4] तथा नलराज चौपई[5] में अनेक जातियों का वर्णन मिलता है।

'ढोला मारवणी चौपई' मे पुरोहित चारण, रैबारी, जोगी बिणजारा, खवास; ढाढी डूम जाति का प्रसगानुकूल वर्णन मिलता है। इन जातियो की भी कई उपजातियाँ हो गई थी। गोत्रो की सख्या भी बढ़ गई थी। कुशललाभ ने राजपूत जाति के कई गोत्रों का वर्णन 'भीमसेन राजहंस चौपई' में किया है।[6]

(ख) पारिवारिक जीवन

संगठन का आधार परिवार ही होता है। तत्कालीन समाज में आज ही की भाति संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी। परिवार मे माता पिता पुत्र पुत्रियाँ भाई

1. माधवानल कामकन्दला चउपई दोहा संख्या 136
2. भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई ग्रंथांक 1217 दोहा संख्या 513 से 522
3. मनु स्मृति 1/91
4. गणपति कृत माधवानल कामकंदला प्रबन्ध (चतुर्थ अंग) पृ. 73 से 76 तक
5 समय सुन्दर कृत नलराज चौपई (ह. लि. ग्रं.)
6. दोहा संख्या 513 से 522

चाचा आदि सम्मिलित रूप से एक ही घर में निवास करते थे। माता पिता की आज्ञा मानने वाला पुत्र ही उत्तम प्रकृति का गिना जाता था। पुत्र पुत्री की शादी माता पिता अपनी इच्छानुसार करते थे। पुत्र वधु सास का आदर करती थी। पुत्र वधु द्वारा सास व ससुर के चरण छूने की प्रथा थी और सास ससुर बदले में कुछ देते थे—

पगि ससुरानइ कियो प्रणाम् तिहाँ दीया मोटा सउ ग्राम
सासू प्रणमी कियो जुहार दीया सहि सोवन सिणगार[1]

'माधवानल कामकंदला' में माधव व कंदला अपने माता पिता भाई बहिन सभी परिवार वालो से मिलते हैं।[2]

'भीमसेन राजहस चौपई' में भी बहू रूपमती ससुर के पैर छूती है।[3] तेजसार जब माता के पैर छूता हैं तो वह उसे सच्चा सुपुत्र बताती है।[4]

परिवार मे पुत्र का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान था। वह कुल का दीपक कहलाता था—

तुम्ह कुल माहि दीप समान हुस्यइ पुत्र तेरूप निधान

ससुराल के लिये विदाई के समय माता अपनी कन्या को परिवार की समुचित सेवा करने की सीख देती है—

कुमरी प्रतइ माइ इम कहइ करयो तिम जिम जस गह गहइ
प्री सू धर्‌यो अधिकी प्रीति चचल पणउ मधराय चीति ॥ 544 ॥

समाज में मैत्री सम्बन्ध उच्च कोटि का गिना जाता था। मित्र विपत्ति मे फंसे मित्र की रक्षा करना अपना परम कर्तव्य समझता था।' भीमसेन राजहस चौपई मे भीमसेन का मत्री पुत्र हितसागर मित्र है[5] वह कठिन समय मे मित्र से सलाह लेता है[6] और मित्र उसे उपाय बताता है।[7]

(ग) संस्कार

हिन्दू धर्मशास्त्रो मे कहा है कि संस्कार नये गुणो का उत्पादक है और तप से

---

1. ढोला मारवणी चौपई ह. प्रे. डा. जावलिया से प्राप्त प्राप्ति
2. माय ताय बन्धव बहिन मिलियउ सहु परिवार
   कामकदला संगतइ, सुख माणइ ससार ॥ 643 ॥
   कुशललाभ कृत 'माधवानल कामकंदला चौपई' गायकवाड़ आरियन्टल सीरिज बड़ौदा पृ. 440
3. भीमसेन राजहंस चौपई ला. द. ग्र. 1217 दोहा संख्या 562
4. तेजसार रास ग्रंथाक 26546 रा. प्रा. वि. प्र. जोधपुर दोहा संख्या 354
5. दोहा संख्या 34
6. दो सं. 114
7. दो. सं. 115, 116

दोष अथवा पाप, अपराध का निवारण होता है ।[1] मनु का कहना हैं–'द्वि जातियों के बीज तथा गर्भ से उत्पन्न पाप गर्भावस्था में किये गये होम के द्वारा और जन्म लेने के पश्चात् जात कर्म चोल आदि के द्वारा शान्त हो जाते है ।[2] संस्कार शुद्धि और योग्यता के लिये किये जाते हैं । याज्ञवल्क्य की यही धारणा है—"एवमेन शमयांति बीज गर्भ समुद्भवम् ।"[3] मानव मन प्रसन्नता प्रिय होता है, नाच, गाना उत्सव मनाना हृदय के स्नेह एवं उमंग का परिचायक है । अतः संस्कारों का यही आशय है ।[4] गौतम ने संस्कारों की संख्या 40 मानी है ।[5] परन्तु मुख्य सस्कार 16 ही माने गये हैं ।

कुशललाभ के कथा काव्यों मे इन संस्कारों का प्रसंगवश यत्र तत्र उल्लेख मिलता है । तत्कालीन समाज में गर्भवती के दोहृदों को पूर्ण करना पति का कर्तव्य होता था ।[6] गर्भवती के गर्भ मे पुत्र है या पुत्री उसके लिए स्वप्न ज्योतिषियों से पूछा जाता था । तेजसार मे ऐसा ही प्रसग है ज्योतिषि गर्भ के बारे में बताता है–

पुत्र नही छै उदर सुंदरी, जाणिस्ये पुत्री ते सुन्दरी ।। 264 ।।

तत्कालीन समाज में 'जन्मोत्सव' भी धूमधाम के साथ मनाने की प्रथा प्रचलित थी । 'ढोला मारवणी चौपई' में ढोला के जन्म पर नल राजा प्रसन्न होता है और घर घर में मगल बधावे गाये जाते हैं ।[7] पुत्र के जन्म पर ही नही कन्या के जन्म पर भी उत्सव मनाया जाता था । ढोला मारवणी चौपई मे मारवणी के जन्म पर नगर में बधावे एवं मंगल गीत गाये जाते हैं ।

माता पिता मनि आणँद धणउँ, जनम हूओ मारुवणी तणउ
कीया बधावा नगर मझारि पुत्र तणी परि मगलाचार ।। 133 ।।

तेजसार के जन्म पर राजा उत्सव मनाता है ।[8] भीमसेन राजहँस सम्बन्ध चौपई मे भीमसेन के यहाँ राजहस का जन्म होने पर सारा परिवार संतुष्ट होता है वाद्य बज रहे है, याचक जन जयकार कर रहे है, राजा बड़े बड़े दान कर रहा है तथा नगर मे नये नये उत्सव मनाये जा रहे हैं—

---

1. धर्मशास्त्र का इतिहास, लेखक श्री काण अध्याय 6 पृ. संख्या 191
2. मनुस्मृति 2/27, 28
3. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/13
4. कवि कालीदास के ग्रंथों पर आधारित भारतीय संस्कृति डा० गायत्री वर्मा पृ. 53
5. धर्मसूत्र गौतम 8/14, 24
6. भीमसेन राजहंस चौपई दोहा संख्या 263
7. पुत्र जनमि हरख्यउ राजान, मनि आणंद्यौ नल राजान ।
   घरि घरि उछव मंगल घणा, कीया बधावा पुत्रह तणा ।।
   ढोला मारवणी चौपई ।। 150
8. दोहा संख्या 10

पुत्र जनमउ परम आणंद संतोष्या परीयण सहू
वेद नाद वाजित्र वाजइ याचक जन जय जय करइ
दीयइ दान मोटइ दीवाजइ नगर महोच्छव नव नवा
सफल मनोरथ सार राजहंस नामइ कुमर अति सुन्दर आकार ।। 371 ।।

विवाह

सस्कारो में सबसे अधिक महत्वपूर्ण संस्कार विवाह माना गया है। ऋग्वेद के अनुसार विवाह का उद्देश्य गृहस्था श्रम गृहण कर देव कार्य करते हुये वंशानुक्रम में सन्तान प्राप्ति थी ।[1] ऐतरेय ब्राह्मण[2] तथा शतपथ ब्राह्मण[3] में भी सन्तान प्राप्ति के कारण ही विवाह को महत्व दिया है। मनु के अनुसार विवाह का लक्ष्य निम्नलिखित है—

अपत्यं धर्म कामाणि शुश्रूषा रति रुत्तमा ।
दाराधी नस्त था स्वर्गः पितृणामात्मनश्चह ।।
(मनुस्मृति 9/28)

कुशललाभ के कथा काव्यो मे भी विवाह का उद्देश्य धर्म, काम मोक्ष की प्राप्ति माना गया है। संतानोत्पत्ति पर इन कथाकारो ने विशेष बल दिया है। 'माधवानल कामकंदला चौपई' मे कुशललाभ ने विवाह का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति और भोग बतलाया है तथा यह दोनो कार्य पुण्य के फल बतलाये गये है ।[4]

ढोला मारवणी चौपई' मे नायक नायिका का सामाजिक मानमर्यादा एव परम्परा के अनुसार विवाह होता है। विवाह के पूर्व प्रेम जैसी कोई बात नही होनी ढोला मारू व माधवानल की कथा मे स्वकीय प्रेम को ही विशिष्ट स्थान दिया गया है ।

विवाह से पूर्व वर और वधू का अनेक सामाजिक व व्यक्तिगत दृष्टियो से परीक्षण किया जाता है। वर वधू के निर्वाचन मे कुल व गुण दोष देखे जाते है। कन्याओ के वर चयन मे प्रमुख भाग माता पिता का ही होता था ।[5] कभी कभी

1. ऋग्वेद 10, 85, 326, 5, 3, 2, 5, 28, 3
2. ऐतरेय ब्राह्मण 33, 1, 1 का 2, 4
3. शतपथ ब्राह्मण 5, 2, 1, 10
4 च्यारि पुत्र जायाँ सन्तान प्रगटां मन्दिर नवइ निधान
विविध विषय सुख भोगवइ राजऋद्धि भंडाण
कुशललाभ इणि परिकहइ ऐ सविपुण्य प्रमाण
'कुशललाभ कृत माधवानल कामकंदला गायकवाड आरियन्टल सीरिज बड़ौदा'
5. मारवणी किणि कारणि आज, धणु लडावइ काइ महाराजा
पिंगल राजा हसि बोलियो, नाव साल्ह कुमरि सु ँकियो ।। 177 ।।
ढोला मारवणी चौपई हु. प्र.

ब्राह्मण, नाई अथवा अन्य कोई सन्देश वाहक की सूचना के आधार पर ही वर और वधू का चयन कर लिया जाता था ।[1]

किन्तु इन कथाओं से यह भी ज्ञात होता है कि कन्याओं को वर चयन की पूरी स्वतन्त्रता भी थी । 'भीमसेन राजहंस चौपई' में उल्लेख है कि जब रूपमजरी के पिता रिणकेसरी उसकी इच्छा जानते हुये भी सगरराय से उसका रिश्ता कर लेते हैं तो वह अपनी प्रतिज्ञा का स्पष्ट संकेत देते हुये कहती है, कि सगरराय उसके भाई के समान है । अपनी इच्छा के विरुद्ध विवाह कर देने पर वह अग्नि में जलने की धमकी भी देती है ।[2] ऐसी प्रतिज्ञा 'तेजसार रास चौपई' मे एणामुखी करती है । एणामुखी वन में तेजसार को देख लेती है और घर आकर रोती है । माँ जब रुदन का कारण पूछती है तो वह बताती है—

आज गई थी अटवी मझार इक मैं पेख्यउ राजकुमार
ते मुझने परणावे मात, नही तर करसु आतम घात ।।84।।

और पुत्री की इच्छा पूर्ण करने के लिए माता उस राजकुमार को चारो दिशाओं मे ढू ढती फिरती है ।[3]

धर्म सूत्र, गृह्य सूत्र स्मृतियो मे विवाह के आठ प्रकार बताये गये हैं—ब्राह्म, प्रजापत्य, आर्य, दैव, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच । डा. रामगोपाल गोयल ने इन विवाहो को दो वर्गों में विभक्त किया है । पहले वर्ग मे प्रथम चार प्रकार के विवाह मे विवाह का समस्त उत्तरदायित्व पिता का रहता है और वह अपनी इच्छा अनुसार योग्य वर ढूंढकर कन्या का विवाह कर देता है । दूसरे वर्ग के विवाह मे पिता लड़की को अपना वर ढू ढने की अनुमति दे देता है और लड़की अपनी इच्छानुसार वर ढू ढकर विवाह कर लेती है या कोई पुरुष उसका हरण कर लेता है ।[4]

---

1. (क) भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई ह. प्र ला. द ग. 1217 दोहासंख्या 70-80

(ख) भीमसेन मोटउ भूपाल राजहंस युवराज विशाल
ते तेड़वा दूत तिण ठाम आवी राय नइ कीयउ प्रणाम
वही दोहा संख्या 469

2 माहरइ मनि जे मइवर वरउ, अगज सहित भइ अगी करयउ
वर सूं भीमसेन भरतार अथवा अगनि प्रवेस अपार ।। 156 ।।
भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई ह. ग. ग. 1217

3. तेजसार रास चौप ह ग्रं मुनिश्री कल्याण विजयजी संग्रहालय जालौर, ग्रं. 2039
दोहा सख्य 85

4. राजस्थानी प्रेमाख्यान परंपरा और प्रगति : डा. रामगोपाल गोयल पृ० 476
प्रथम संस्करण 1969

कुशललाभ के कथा काव्यों में हमें दोनों वर्गों के विवाह के उदाहरण मिलते हैं। 'ढोला मारवणी चौपई'[1] तथा 'भीमसेन राजहस सम्बन्ध चौपई'[2] में प्रजापत्य विवाह का ही वर्णन है।

'माधवानल कामकंदला चौपई' में हमें विवाह का नवीनतम रूप देखने को मिलता है। बालक नदी तीर पर शिलारूपी स्त्री को देखते हैं और माधव का उस नारी से पूर्ण विधि-विधान से विवाह कर देते हैं।[3] 'तेजसार रास' वे दूसरे वर्ग के विवाह आते हैं। यहाँ कन्या स्वयं अपनी इच्छा से तेजसार को वरण करने का सकल्प करती है[4] तो कहीं तेजसार विपत्ति में पडी कन्या को छुड़ाकर विवाह कर लेता है।[5]

बाल-विवाह प्रथा भी उस समय समाज मे प्रचलित थी। ढोला मारवणी का विवाह क्रमश. तीन व डेढ़ वर्ष की अबोधावस्था में ही हो जाता है।[6] ढोला के पिता नल का विवाह सोलह वर्ष की आयु मे हुआ था। उस समय उमा देवडी बारह वर्ष की थी।[7] 'माधवानल कामकदला' के माधव का विवाह भी बारह वर्ष की अवस्था मे ही होता है।[8]

सामाजिक व असामाजिक कई कारणो से बहुपत्नी विवाह प्रथा ने भी जन्म ले लिया था। 'ढोला मारवणी चौपई' मे मध्ययुगीन सामन्त समाज मे इस विलासिता का आभास मिलता है। ढोला का दूसरा विवाह मालवा देश की कुमारी मालवणी से होता है।[9] 'माधवानल कामकदला' मे भी माधव के पिता अपने पुत्र को दुखी देखकर उसका दूसरा विवाह कर देते है।[10] 'भीमसेन राजहस चौपई' मे तो रानी स्वय कहकर राजा का दूसरा विवाह करवाती है।[11] 'तेजसार रास' के नायक तजसार के तो सात रानियाँ थी और आठवी रानी एणामुखी थी—

आवी साते अतेउरी, सासू प्रणमी आणद धरी
नारि आठमी एणामुखी प्रीय ने मन सघली सारखी ।। 339 ।।

---

1. दोहा संख्या 167 ढो. मा. चौ. ह. प्र.
2. ,, ,, 71 भीमसेन राजहस चौ ह प्र.
3. सिला साथि लेइ बाधि उछेह तुझ बिहु होज्यो अविहड़ नेह
   अगनि जगाडि होम विधि करइ बालक विप्रवेद ऊच्चरइ ।। 70 ।।
4. दोहा संख्या 285 तेजसार रास चौ ग. 26546
5. ,, ,, 52
6. ,, ,, 450 ढो. मा. चौ.
7. ,, ,, 71
8. ,, ,, 66 माधवानल कामकंदला च.
9. ,, ,, 199 ढो मा. चौ.
10. दोहा संख्या 126 मा. का. चौ.
11. ,, ,, 329 भीमसेन राजहंस चौ. ग. 1217

पुत्र प्राप्ति की कामना हेतु भी बहु-विवाह किये जाते थे।'माधवानल काम-कंदला चौपई' में प्रोहित शंकरदास सब प्रकार से सुखी होते हुए भी पुत्र के अभाव मे दुःखी हैं। पुत्र प्राप्ति के लिये वह देवी-देवताओ को मनाने के अतिरिक्त अपार धन तो खर्च करता ही है और बत्तीस रमणियो से विवाह भी करता है—

> तिणि परणी रमणी बत्तीस, तुहिन पूगी पुत्र जगीस
> संत तिविण आपण दूमणउ, करइ उपाय धन खरचइ घणउ ।।48।।

स्वयंवर प्रथा

विवाह में स्वयंवर प्रथा भी उस समय प्रचलित थी। स्वयवर में वधू अपनी इच्छानुसार वर चयन करने के लिये स्वतन्त्र थी। इसमे वर द्वारा किसी प्रकार की शर्त को पूर्ण करने की रस्म नहीं होती थी। 'भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई' में राजहंस भी अन्य राजाओं की भांति रूपमंजरी के स्वयवर के लिए जाता है।[1] एक सखी स्वयवर मे आये हुये प्रत्येक राजा का गुणगान करती है।[2] राजकुमारी रूपमती देवी से इच्छानुकूल वर प्राप्ति का सकेत पाकर राजहंस के कंठ मे कुसुम माला डालती है—

> रूपमती मननीरली कुसुम माल करिलेइ
> कुमर तणइ कठइ ठवी नरपति सहू निरषेय ।। 527 ।।

मनसा वरण की प्रथा

उस युग में मनसा वरण की प्रथा भी प्रचलित थी। कन्या किसी पथिक, शुक अथवा अन्य सन्देश वाहक से किसी राजकुमार के रूप गुण सौन्दर्य का वर्णन सुनकर उसी से विवाह करने का सकल्प कर लेती थी।

'भीमसेन राजहंस चौपई' मे मदनमजरी शुक से भीमसेन के रूप सौन्दर्य का वर्णन सुनती है .

> कीर सन्यासी जे परिकही, मदनमंजरी ते सग्रही
> पूरव भव सनेह प्रमाण, कुमरी ते वर कीयउ प्रणाम ।। 84 ।।

वह पति रूप मे उसे मानकर प्रणाम ही नही करती वरन् प्रतिज्ञा भी करती है—

> भीमसेन राजा वर वरूं अथवा अगनिदाह अणुसरु
> पंखी वचने लागी प्रीति चद्र चकोरी रातो चीत ।। 85 ।।

स्त्री को भी कभी-कभी किन्ही विशेष परिस्थितियों में दूसरा विवाह करने की अनुमति मिल जाया करती थी। 'अगड़दत्त रास चौपई' में नायिका मदनमंजरी का पति व्यापार करने के लिये बाहर गया हुआ है[3] इसी बीच मदनमंजरी अगड़दत्त

---

1. दोहा संख्या 498
2. ,, ,, 513 से 521
3. दोहा संख्या 38 अगड़दत्त रास चौ. पं. 605

को देखती है और उससे प्रणय निवेदन करती है।[1] अगड़दत्त अपना अध्ययन समाप्त कर उससे विवाह कर लेने की प्रतिज्ञा करता है।[2]

दहेज

उस समय समाज में दहेज प्रथा भी प्रचलित थी। हथलेवे में राजा अपनी कन्या को वस्त्राभूषणों के अतिरिक्त हाथी-घोड़े तथा सैकड़ो दासियाँ देता था। मारवणी की माता एक राजा की रानी की हैसियत से खूब दहेज देने को कहती है—

सोवन रतन जड़ित सिणगार पट्टकूल मुगता फल हार
सोल सिंगार सुन्दर सुषवेस ए सगल प्रिय हूँ आपेसि ।। 554 ।।

अरथ गरथ करइ केकाण षाग भयग सुद्ध खुरसाण
ए सगलउ ही पिंगल तणउ मांडयउ समहू रति उभंणउ ।। 555 ।।

'भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई' मे राजहस का रूपमती के साथ विवाह होता है और विदाई के समय उन्हें बहुत कुछ दहेज मे मिलता है—

मत्तमइगल एकसठ आठ तरल कुरगम सहसइ कार
वर वहिल्लसउ रथ सुषासण सोवन मइ भाजन कलस

हीर चीर सोवन शंघासन आठ धतृ उत्तम आभरण
दासी दास बहुत कुशललाभ वाचक कहइ आव्या अगले वित ।। 541 ।।

दास-दासियों के अतिरिक्त कई बार राजा पुत्र के अभाव मे अपने जामाता को अपना राज्य दे देता था। 'तेजसार रास' मे भी ब्रजकेसरी पुत्री का विवाह तेजसार के साथ करके पुत्र अभाव मे अपना राज्य भी तेजसार को दे देता है।[3] यह भी दहेज रूप में ही माना जा सकता है।

एणामुखी के विवाह मे हथलेवे में उसकी माता अपार रत्न जड़ित आभूषण, बीस करोड़ धन और सब प्रकार की रिद्धि-सिद्धि देती है जिसका कोई अन्त नहीं है। इसके अतिरिक्त एक विशेष प्रकार का पलग भी दिया जाता है जो आकाश मे निशक उड़ता है।[4]

---

1. ,, ,, 47
2. ,, ,, 50
3. बयर केसरि राजा भणे नही पुत्र सन्तान अम्ह तणे
   हाथ मेलावण लक्षमी घणी, एह राज दीधउ तुझ भणी ।। 206 ।।
   ते. रा. चौ. ह. ग्रं. ग्रं. 26546 रा. प्रा. वि. प्र. जोधपुर
4. हथलेवे बहु सोवनतणी, कोडि बीस धन लषमी धणी
   रतन जडित आभरण अनंत, दीधी रिद्धि तणो नही अन्त ।। 307 ।।
   एक दियो सुन्दर पलग उडै आकाशि निसंक ।। 308 ।।

वधू को माता की सीख

विवाह के कुछ दिन बाद वर अपनी वधू के साथ अपने नगर को प्रस्थान करना चाहता है। ऐसे समय माता अपनी पुत्री को सीख देती है। जैसे पति से पहले उठना, सास, नणद, जेठानी के चरण स्पर्श करना, पति के भोजन करने के बाद भोजन करना और कुल की लाज रखना।[1]

माता जानती है कि लड़की नये घर मे जायेगी कही कुछ भूल न कर बैठे जिसले कुल की मान-मर्यादा को कोई लाछन लगे। यही सोच कर माता उसे शिक्षा देती है।

कुशललाभ कृत 'भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई' मे रानी कमलावती अपनी पुत्री मदनमंजरी को विदा करते समय कहती है कि हे पुत्री तू ऐसा कार्य करना जिससे यश प्राप्त हो। जब कभी भी पति को क्रोध आये तो तू क्रोध मत करना। अपने कुल की प्रतिष्ठा को रखते हुये नीच व्यक्तियो का सग त्याग देना, प्रेम से अपने पति का स्नेह प्राप्त करने पर ही तू सदैवसुखी रह सकती है।[2]

इसी कथा मे अन्यत्र भी माता की सीख का उल्लेख हुआ है। रूपमती अभी अबोधावस्था मे है, अत चित्त का चचल होना भी स्वाभाविक ही है। माता को डर है कि कही ससुराल मे भी वह चचलता न कर बैठे, अत उससे कहती है।[3]

कुमरी प्रतइ माइ इम कहइ कर्‌यो तिम जिम जस गहगहइ
प्री सू धर्‌यो अधिकी प्रीति चचल पण्उ मथराया चीत ।। 544 ।।

वधू के आगमन पर नगरवासियों का खुशियाँ मनाना

राजकुमार या कथानायक वधू को लेकर जब अपने नगर मे आता था तो पिता पुत्र के स्वागतार्थ सामने आता था, दान दिया जाता था। भट्ट लोग जयकार करते थे। मदमस्त हाथियों को सजाया जाता था और वर व वधू को उस पर बैठाया जाता था, नगर मे पच-शब्दी बाजे बजाये जाते थे, तथा वर-वधू के मस्तक पर

---

1. प्रिय पहिली उठनो प्रभाते
   देव गुरु नाम गहण संभाते
   सासू जेठाणी नणंद पाए पड़िजे
   पीव पहली भोजन मत कीजे
   उत्तम कुल आचार आदरिजै।

   समय सुन्दर कृत नलराज चौ. हु. ग.
   राजस्थानी के प्रेमाख्यान परम्परा और प्रगति पृ. 482 डा रामगोपाल गोयल

2. भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौ. दोहा सख्या 196 ग. 1227 ला द. 5', अहमदाबाद
3. दोहा संख्या 544

चँवर एवं छत्र ढाले जाते थे, मंगल गीत गाये जाते थे। विप्र वेदों का उच्चारण करते थे।[1]

'माधव कामकंदला चउपई' में तो माधव और कंदला के आगमन पर नगर वासियों के मनों में उत्साह है। उन्होंने सम्पूर्ण नगर को सजाया है—

नगर सहु सिणगारियउ समल लोक उच्छाह कीधउ
सपत भूमि मदिर सहित सुजस समल संसारिलीधउ ।। 642 ।।

'भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई' में भी भीमसेन व मदन मंजरी के आगमन पर नगर में महान् उत्सव मनाये जाते है तथा प्रजा जयजयकार करती है।[2]

'अगड़दत्त रास चौपई' मे अगड़दत्त के आगमन पर राजा स्वयं उसके स्वागतार्थ जाता है।[3] यही नही पुत्र के आगमन पर माता स्वर्णहार भी पुत्र को देती है।[4]

समाज में नारी का स्थान

इस समय तक नारी के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाया था। समाज में पुरुष के समक्ष नारी को व्यक्तित्वहीन समझा जाता था। नारी पुरुष की कृपाकांक्षिणी थी। उसके सुख दुःख एव भाग्य का निर्माता उसका पति ही हुआ करता था, परन्तु इसका यह आशय कदापि नही कि नारी पुरुष की दृष्टि मे तुच्छ समझी जाती थी। नारी पुरुष को ही अपना सर्वस्व समझती थी। नारी की इस भावना मे आदर मिश्रित प्रेम होता था। पति पत्नी का प्रेम सच्चा होता था।

'हू सज्जण पग पानही, सज्जण मो गलहार'

वह अपने आपको पति की जूती के समान समझ कर भी गौरवन्वित है। इसमे नारी की दयनीयता नही अपितु उसकी विनम्रता प्रतिनिष्ठा एव शील का परिचय है। नारी की शोभा पुरुष की अधीनता मे ही है। पति के बिना नारी का जीवन दु:खमय था। उसके चरित्र पर अनेक कलक लगने की सम्भावना थी। पति के बिना उसकी स्थिति वैसी होती थी जैसी चन्द्रमा के बिना रात, सूर्य के बिना दिन नदी के बिना पानी ऐसे ही बिना नर के नारी शोभा नही पाती।[5]

1. ढोला मारवणी चौपाई ह. लि. डा जावलिया के निजी संग्रह से प्राप्त
दोहा संख्या 666 से 669
2. दोहा संख्या 242 भीमसेन राजहंस चौपई ग्रं. 1217
3. श्री वसन्तपुर आव्य जिसिहं, सनमुख राजा धाविउ तिसि ।। 224 ।।
अगडदत्त रास चौपई ग. 605
4 दोहा संख्या 230
5. नर बिण नारी एकली लग्गई कोडि कलंक ।। 151 ।।
\+ \+ \+ \+
शशि बिण निशि दिशि दिवस विणु खिम नदी विणु वारि
तिय सूदा नर विणु न सोहइ नारि ।। 152 ।।
सदयवत्सवीर प्रबन्ध पृ स. 22

तत्कालीन समाज में नारी के प्रति जहाँ हीन दृष्टि कोण था वहाँ नारी के प्रति स्वस्थ्य दृष्टिकोण भी था। नारी को पटरानी बना कर उसे जो सम्मान दिया जाता था उससे नारी के उच्च व्यक्तित्व होने का आभास मिलता है। अनेक नारियाँ तो विवाह ही इस शर्त पर करती थी कि उसे पटरानी बनाया जाये।[1]

'भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई' में भीमसेन मदमकेरी से विवाह कर नगर लौटते हैं और उसे पटरानी का स्थान देते हैं—

ते पटराणी थापी ताम महिमा वाधी नगर महिमाय
राज्य सुषइ पालइ राज्यंद प्रजातणइ मनि परमाणंद ।। 245 ।।

राजाओ के कई रानियाँ तो होती ही थी परन्तु सम्मान उसी रानी को मिलता था जो पटरानी होती थी। उसी का पुत्र उत्तराधिकारी बनने का अधिकार रखता था। तेजसार के भी अनेक रानियाँ थी। सामान्यत राज्य का उत्तराधिकारी पटरानी का पुत्र ही होता था वैराग्य की स्थिति उत्पन्न होने पर राजा तेजसार पटरानी के पुत्र को ही राज्य सौप देता है—

पटराणी श्रीमतीय कुमार ते थाप्यो निज पाट अपार
एक सुनरवर साथि करी दान पुण्य सबिहुँ उपगरी ।। 400 ।।

नारी का सम्मान समाज मे भी बहुत अधिक था 'ढोला मारवणी चउपई से ढोला अपनी रानी मारवणी के लिए 'आत्मदाह' करने के लिये तैयार हो जाता है।[2] इसी भाति वह मारवणी के बिना व्यतीत दिनो को अपने पूर्व जन्म का फल समझता हुआ प्रायश्चित करता है—

पहिलइ भवे पाप मइ किया, तउ तुझ विन एता दिन गया
सय मुषि पछइ निरांते तुझ लही, पाछइ परवसि रहियो सही ।। 525 ।।

तत्कालीन समाज की नारियाँ अपने शील धर्म के कारण भी आदर की पात्र थी। मालवणी मारवणी से अधिक सुन्दर है परन्तु शील मारु की बराबरी नही कर सकती।[3]

नारी को वर चयन की भी स्वतन्त्रता थी। इसका प्रमाण स्वयवर प्रथा है।[4] इसके अतिरिक्त कन्या अपनी इच्छा माता पिता को भी बता देती थी।

---

1. जउ पटराणी थापइ मुझ, तउ च्यारे परणावुं तुझ
कुमर बोल बन्ध तस कीयउ, विद्याधरी नु रंज्यउ हीयु ।। 151 ।।
'तेजसार रास' ह. लि गन्थांक 26546 रा. प्रा वि. प्र जोधपुर.
2. दोहा संख्या 579,5?1 ढोला मारवणी चौपई
3. दोहा संख्या 699 ढोला मारवणी चौपई
4. सहु सखी साथइ धाथि हाथइ कुसममाल करइ ग्रही
रूपमति कूमारी आवी तिहां ऊभी रही ।। 500 ।।
भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई ह. लि. ग. 1217

'तेजसार रास' में 'एणामुखी' तेजसार को वर रूप में पाने की इच्छा माता को बताती है और माता उसकी इस कामना को पूर्ण भी करती हैं ।[1]

तत्कालीन समाज में पतिव्रता धर्म की भी प्रधानता थी । इसके कई उदाहरण मिलते हैं । 'ढोला मारवणी चौपई' मे मालवणी ऐसी ही एक निष्ठा पतिव्रता स्त्री है । वह अपनी सौत मारवणी के बारे में सुनकर विकल हो जाती है और बार बार प्रयत्न कर ढोला को रोके रखती है । ढोला के चले जाने पर भी शुक द्वारा अपना मृत्यु सन्देश भेजकर ढोला को बुला लेना चाहती है । उसकी यह सब चेष्टायें पति प्रेम की द्योतक हैं । प्रेम का उज्जवल पक्ष मालवणी की विरहावस्था में भी निखरा है । पति के वियोग मे उसे कुछ भी अच्छा नही लगता । पानी उसे नाग सदृश लगता है—

ढोला हूं तुज बाहिरी, झीलण गइय नलास
ऊ जल काला नाग जिऊँ लहिरी ले ले खाइ ।। 415 ।।

कामकंदला माधव के साथ खेल ही खेल मे किये गये पाणिग्रहण से शाप मुक्त हो जाती है परन्तु वह अपने पति को भूल नही पाती और रात्रि मे उससे मिलने आती है । माधव उसे देखकर उसके बारे में पूछता है—

माधव सूतु धरि आपणइ अपछर देखी नइ इम भणइ
'कुण नारी तूँ किहइ कामि' हूँ तुझ धरणी, तू मुझ सामि ।। 79 ।।

तब वह अपने आपको माधव की पत्नी तथा माधव को अपना स्वामी बताती है यही नही माधव का मरण सुनते ही कामकदला मूर्च्छित होकर गिर पडती है । जिसका पति ही यमपुर पहुँच गया है वह अब बिना आधार कैसे जियेगी ।[2]

'भीमसेन राजहस सम्बन्ध चौपई' में मदनभंजरी भीमसेन को ही पति मानती है । अन्य पुरुष उसके भाई के समान है ।[3]

तत्कालीन समाज मे राजवशो के अनुकूल कन्या को समुचित शिक्षा भी दी जाती है । इस युग की शिक्षा विशेष विचार धारा तथा उद्देश्य पर आधारित थी । उस समय घरेलू शिक्षा का बहुत महत्व था । पिता अपने पुत्र को ऊँची शिक्षा घर मे ही दिलवाया करता था । 'पिंगल शिरोमणि' मे राजकुमार हरराज की शिक्षा के लिगे कुशललाभ को प्रध्यापक रूप मे रखा जाता है । स्त्रियों को ललित कलाओं की

---

1 दोहा संख्या 285 तेजसार रास चौपई ग 26546

2 अेह वात वेस्या सांभली, आवी मूर्च्छा धरणी ढली
जमपुरि पहुतउ जउ भारतार हिवहूं जीवूं किण आधारि ?
माधवानल कामकदला चौपई ।। 575 ।।

3. दोहा संख्या ।। 155 ।।

शिक्षा दी जाती थी। ये नायिकायें नृत्या कला संगीत कला, काव्य आदि में निपुण हुआ करती थीं।

शिक्षा का प्राथमिक ध्येय आर्थिक सामाजिक और बौद्धिक होने के साथ साथ नैतिक तथा आध्यात्मिक भी था। अर्थ एवं बौद्धिक विकास के साथ शिक्षा द्वारा शांति भी प्राप्त की जाती थी।

इन उद्देश्यों की पूर्ति विभिन्न स्तर के शिक्षा-सस्थाओं द्वारा की जाती थी।[1]

तेजसार गगदत्त ओझा के घर रहकर उसकी सेवा करता है और बदले में विद्या सीख कर अपना पेट भरता है—

तेजसार तेहनइ धरि रहयन, भणिवा भणी चित गेहगहयउ
ओझा तणी सेव तव करइ विद्या भणइ पेट पिण भरइ ।। 22 ।।

'ढोला मारवणी चौपई' मे मारु की संगीत प्रियता का बोध उसके द्वारा मारु राग मे सदेश के दोहो से होता है।[2] मारु ढोला के न आने पर चर्चरी नृत्य खेलते हुये होली मे जल मरने को कहती है।[3] यह मारु की नृत्य कला का द्योतक है। 'माधवानल कामकदला' की नायिका कदला तो चौसठ कलाओ मे निपुण है।[4] कामकदला जब आठ वर्ष की थी तभी से नाटक एव गीत सगीत आदि का अभ्यास करती थी।[4] माधव भी चौदह विद्याओ का ज्ञाता, बत्तीस लक्षण वाला तथा बहत्तर कलाओ मे निपुण है।[6]

घर मे भी पुस्तको की प्रतिलिपियाँ तैयार करके शिक्षा प्राप्त की जाती थी। स्वय लेखक कुशललाभ ने 'हंसदूत काव्य' क्री पुष्पिका मे लिखा है—

सवत 1600 वर्षे माधवदि पंचम्यां दिने श्री खरतगच्छे श्री
जिनमाणिक्यसूरि विजराज्ये श्री अभयधर्मोपाध्यायानां शिष्य पं०
कुशललाभ मुनिना स्ववाचनार्थं विलेखे। शुभमस्तु लेखक
पाठकयो: ।। श्री।[7]

इससे स्पष्ट है कि अच्छी पुस्तको की प्रतिलिपियाँ करके भी शिक्षा प्राप्त की जाती थी। उच्च शिक्षा के लिये राजा, सामन्त आदि अपनी सन्तान को दूसरे देश में भी अध्ययन के लिए भेज दिया करते थे। 'अगड़दत्त रास चौपई' में अगड़दत्त की माता

---

1. सोम सौभाग्य काव्य सर्ग 2 श्लोक 45, 55
2. ढोला मारवणी चौपई ह. लि. दोहा संख्या 260 डा० वाबलिया के निजि संगह से प्राप्त
3. वही दोहा संख्या 283
4. माधवानल कामकंदला चउपई दोहा संख्या 118 व 166
5. दोहा संख्या 116, 117
6. माधवानल कामकदला चउपई दोहा संख्या 2
7. श्री अभय जैन गंथालय से प्राप्त प्रति का फोटोगाफ परिशिष्ट में संलग्न है।

पति की मृत्यु के बाद अगड़दत्त को योग्य बनाने के लिये उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु चंपापुर भेजती है ।[1]

पर्दा प्रथा

तत्कालीन समाज में पर्दा प्रथा भी प्रचलित थी । राजा का रनिवास होता था । रानियां उसी रनिवास में रहती थी । राजा के अतिरिक्त अन्तःपुर में अन्य पुरुष का प्रवेश वर्जित था । ढोला मारवणी चौपई, माधवानल कामकंदला, तेजसार रास, भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई आदि सभी कथा काव्यों मे हमे अन्तःपुर का संकेत मिलता है जिससे पर्दा प्रथा का आभास होता है ।

वेश्या वृत्ति

समाज मे वेश्यावृत्ति प्राचीन काल से ही चली आ रही थी । प्रारम्भ मे वेश्या को भी प्रतिष्ठित नारी ही समझा जाता था । कुछ वेश्यायें शील धर्म का पालन करके समाज मे प्रतिष्ठा पाती थी । 'माधवानल कामकदला चउपई' की नायिका कामकंदला भी गणिका है और कामसेन के यहाँ राज नर्तकी होने से उसकी समाज में बहुत प्रतिष्ठा भी है । कामकंदला वेश्या है फिर भी उसे केवल माधव से ही प्रेम है । वह माता द्वारा अपने कुल कर्म का ज्ञान कराने पर भी अपना शील खंडित नहीं करती ।[2]

कामकदला के वेश्या होने पर भी हमे उसके चरित्र मे प्रेम निष्ठा त्याग समर्पण एव शीलता का आभास मिलता है । इन्ही गुणो से प्रभावित राजा विक्रमादित्य माधव के लिये कदला दिलवाने हेतु कामावती के राजा कामसेन से संघर्ष करता है । विक्रमादित्य गणिका प्रेम को हीन बताता है तब माधव गणिका की चारित्रिक उज्जवलता के बारे में कहता है—

> माधव कहइ 'सुणउ राजान नारी सगली नहीं समान
> त्रिणि भवन मइं जोया सही कामकंदला उपमा नही' ।। 518 ।।

कुशललाभ ने कामकंदला के शील के बारे में कहा है—

> इक वेश्या कुलि ऊपजी भर जोवन धन लील
> तउ ही निर्मल पालियउ कामकंदला सील ।। 648 ।।

समाज मे वेश्याओ का बाहुल्य दुश्चरित्रता का द्योतक है, किन्तु तत्कालीन समाज में वेश्याओं का बाहुल्य वेश्यावृत्ति के कारण ही था । कुशललाभ ने नगरी का

---

2. माता अजवानी परिकाइ देसि विदेसि भणिउंजिहा आई
   पुत्र तणु अति आगह जाणि माता बोलइ मधुरी वाणी ।। 24 ।।
   अगड़दत्त रास चौपई ग. ।। 605 ।।
   भण्डारकर आरियन्ट रिसर्च इंस्टीटयूट, पूना

1. 'माधवानल कामकंदला चौपई' दोहा संख्या 370 गायकवाड़ आरियन्टल सीरिज, बड़ौदा ।

वर्णन करते हुए लिखा है कि राजा के अन्तःपुर में सोलह सौ स्त्रियाँ थी और नगर में छः सौ वेश्यायें निवास करती थीं ।[1] विरही माधव का पता लगाने वाली भी भोग विलासिनी नाम की गणिका ही थी ।[2] 'अगड़दत्त रास चौपई' मे भी वेश्या घर का उल्लेख हुआ है ।[3] इससे यह भी स्पष्ट होता है । कि वेश्याओं के घर जन साधारण के घरों से दूर एवं अलग होते थे ।

सामाजिक रीति रिवाज और मान्यतायें

ब्राह्मण, बालक, स्त्री वध निषेध—

तत्कालीन समाज में ब्राह्मण, गाय, स्त्री, बालक एवं तपस्वी शरण देने योग्य समझे जाते थे इन्हें मारना निषिद्ध था । सस्कृत मे भी एक श्लोक है—

> अवध्या ब्राह्मणा गाव. स्त्रियो बाल स्तपस्विन ।।
> तेषा चान्नं न भुंजीत, ये चान्ये शरणंगताः ।।

यही रूप हमें 'माधवानल कामकन्दला चउपई' मे उस समय मिलता है जब कामसेन क्रुध हो खड्ग उठाकर माधव का वध करना चाहता है उसी समय राज्य सभा में बैठे सभी सभासद बोल उठते हैं कि ब्राह्मण-पुत्र को कोई नहीं मारता ।[4]

पूर्व जन्म में विश्वास

उस समय लोगों का विश्वास पूर्व जन्म में भी था कुशललाभ के सभी कथा काव्यो में पूर्व जन्म सम्बन्धी अनेक उदाहरण मिल जाते हैं । 'माधवानल कामकदला' की नायिका कामकंदला अपने पूर्व जन्म मे इन्द्र के यहाँ जयन्ती नाम की अप्सरा थी ।[5]

जैन कथा काव्यो की यह विशेषता है कि नायक या नायिका पर जो संकट आते हैं वे पूर्व जन्म के कार्यों के अनुरूप ही होते हैं । 'तेजसार रास' की व्यंतरी पूर्व जन्म में श्री दत्ता नाम की रानी थी ।[6] तेजसार को भी केवली पूर्व भव का वृतांत सुनाते हैं कि तेजसार पूर्व जन्म मे विमला नामक ब्राह्मण कन्या थी और शुद्ध ध्यान

---

1. 'माधवानल कामकंदला चौपई, दो. स. 377 गायकवाड़ आरियन्टल सीरिज, बड़ौदा
2. दोहा संख्या 499
3. गुरुवारइ जउ दिनवि रहि, साहसवंत आप परिलहि
   जोइ वेशा घर हुं वटइ सुन हरइ चाचरि चउ वटइ ।। 62 ।।
   अगडदत्त रास चौपई ग्रं. 605
4. दोहा संख्या 222 माधवानल कामकंदला चौपई
5. माधवानल कामकंदला चउपई दोहा संख्या 14, 204
6. तेजसार रास दोहा संख्या 297

को धारण करते हुये इस जन्म में तेजसार राजा के रूप में यहाँ जन्म लिया है।[1] 'भीमसेन राजहंस चौपई' मे रूप मंजरी शुक व सन्यासी से भीमसेन के बारे में सुनकर तथा अपने पूर्व जन्म के कर्म फलों के अनुसार उसे पति जानकर रूप मंजरी भीमसेन को मन ही मन प्रणाम करती है।[2]

स्वप्न पर विश्वास

स्वप्न में घटित घटनाओं को सत्य माना जाता था, उन पर विश्वास किया जाता था। 'तेजसार रास' मे ज्ञात होता है कि रानी स्वप्न में घृत से परिपूर्ण एवं प्रज्वलित दीपक देखती है जो दीप के समान तेजस्वी पुत्र का द्योतक बतलाया गया है।[3] स्वप्न मे भगवान द्वारा या अपने ईष्ट देवता द्वारा वरदान देने का विश्वास भी प्रचलित था—

एक राति प्रोहित दुख धरी, सूतउ सुहणइं आव्यउ हरि
'सम्मलि प्रोहित सकरदास। हूँ त्रूठउ तुझ पूरउ आस'[4] ।। 50 ।।

स्वप्न द्वारा भावी घटनाओ की सूचना भी इन कथाओ मे मिलती है। ढोला से मिलने के पूर्व ही मारवणी को ऐसा ही शुभ स्वप्न आता है। जिसमे वह ढोला से मिलती है[5] जागने पर वह स्वप्न को कोसती है पर सखियाँ उसे समझती है—

इणि परि सुहिणउ लाधउ राति माता इन कहिया परभाति
कही विचार सषीए सही, ढोलउ तेउ पधारइ वही ।। 489 ।।

माधवानल कामकदला मे भी पुरोहित शकरदास स्वप्न में ही पुत्र प्राप्त करता है।[6] 'तेजसार रास' मे रानी पद्मावती घृत से परिपूर्ण एव प्रज्वलित दीप देखती है। यह स्वप्न दीप के समान तेजस्वी पुत्र होने की सूचना देता है जिससे राजा रानी सभी प्रसन्न होते है।[7]

शकुन

जीव जन्तुओ की शकुन सूचक क्रियाओं द्वारा भी अशुभ शकुनों का पता लगाया जाता है। 'रामचरित मानस' मे शकुन सूचक पशुओ मे गाय मृत और लोमड़ी को गिनाया गया है।[8]

---

1. वही दोहा संख्या 372 से 395
2. भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई दौहा संख्या 84
3. तेजसार रास दोहा संख्या 7, 9
4. माधवानल कामकंदला चउपई दोहा संख्या 50
5. जिणि दिन ढोलउ वाटइ वहइ तिणि दिन मारू सहिणउ लहइ
   मिलियो प्रीतम नींद्र मंझारि, माता आगलि कहइ विचार ।। 483 ।।
   ढोला मारवणी चौपई ह. लि.
6. दोहा संख्या 50 माधवानल कामकंदला प्रबन्ध : गायकवाड ओरियन्टल सीरिज
7. तेजसार रास दोहा संख्या 9 ह. लि. रा प्र. वि. प्र. जोधपुर ग. 26546
8. रामचरित मानस बालकाण्ड पृष्ठ 199

कुशललाभ कृत 'भीमसेन राजहंस सम्बन्ध चौपई' में भी पशु पक्षियों से सम्बन्धित अनेक शकुन मिलते है जैसे सध्या के समय बहुत से सियारों का एक साथ बायी दिशा में बोलना[1] मध्यरात्रि में बांयी दिशा में ऊँचे स्थान पर बैठ उल्लू का बोलना[2] चतुर्थ प्रहर में चीबरी का बड़े वृक्ष पर बैठ कर बोलना[3] प्रातः काल के समय तीतर का बोलते हुये बांई दिशा से दाहिनी ओर चले जाना[4] चील का भक्षण सहित दाई दिशा मे बोलते हुए जाना[5] दांयी ओर हिरणो का झुण्ड हो जिसमें मृग नायक भी हो तथा उनकी सध्या ऊनी (विषम) हो तो वह राज्य रिद्धि प्रदान करने वाला होता है।[6] श्यामा चिड़िया हरे वृक्ष पर बैठी स्वर करती वायी दिशा में जाये[7] नीलकण्ठ का जल से पूर्ण सरोवर की पाल पर दिखाई देना[8] आदि शुभ शकुन माने हैं।

तत्कालीन समाज मे जन साधारण का शकुन पर भी विश्वास था। उनका जीवन व कार्य शुभ शकुनो द्वारा गतिमान था। घर से जाते समय, शुभ शकुनों को ध्यान मे रखा जाता था। समाज मे शकुन के प्रति प्राचीन काल से ही प्रगाढ़ आस्था रही है। शकुन अपशकुन साहित्य में भावी घटनाओं की पूर्व सूचना देने के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं। जैसे शरीर के विविध अगों का फड़कना, स्वप्न देखना, पशु पक्षी विशेष का दिखाई देना या बोलना आदि।

स्त्री का बाया अग एव पुरुष का दाहिना अंग फड़कना शुभ माना जाता है। इन अगो म भुजा नैत्र मुख्य रूप से मगल सूचक माने जाते है। तुलसीदास ने इसी तरह के शकुनों को 'रामचरित मानस' मे भी स्थान दिया है।[9]

'ढोला मारवणी चौपई' मे भी इसी प्रकार के शरीर सूचक शकुनो का उल्लेख हुआ है। मारवणी का बाया नैत्र फडकता है। उसका मन प्रफुल्लित है वह अपनी

---

1. दोहा संख्या 475 भीमसेन राजहंस चौपई ग. 1217 ला. द. ग. अहमदाबाद
2. ,, ,, 476
3. ,, ,, 477
4. ,, ,, 478
5. ,, ,, 479
6. ,, ,, 480
7. ,, ,, 481
8. ,, ,, 484
9. भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बार
   जानि सगुन मन हरष अति लागे करन विचार
   —रामचरित मानस उत्तरकांड प्रारम्भिक दोहा

सखियों से कहती है' हे सखि आज अवश्य ही प्रियतम से मिलन होगा ।[1]

अपशकुन

ऐसे कार्य व्यापार जो भावी सकट की सूचना देते हैं अपशकुन माने जाते है । जैसे स्त्री का दाया नेत्र फड़कना अथवा पुरुष का बाया नेत्र फड़कना । तुलसीदास जी ने भी मानस मे इन अपशकुनो का प्रयोग किया है । दशरथ मरण पर भरत का भयानक स्वप्न देखना, भरत का अयोध्या मे प्रवेश करते ही अपशकुन होना, खर' सियार का प्रतिकूल बोलना जिसे सुन कर भरत का मन आगत विपत्ति की शंका से त्रसित हो जाता है ।[2]

'भीमसेन राजहस चौपई' मे भी अपशकुन का वर्णन किया है । यदि नेवला नीचाई से ऊँची दिशा की ओर जाता हुआ बार बार मुड़ कर देखता हो, तो वह मन को चिंतित करने वाला होता है ।[3]

ज्योतिष एवं ज्योतिषियों में विश्वास

ज्योतिष एवं भविष्य फल में लोगों की आस्था तत्कालीन समाज मे भी थी । समाज मे ज्योतिषी व भविष्य वक्ता का बहुत सम्मान होता था ।

'तेजसार रास' मे यह विश्वास कई स्थानो पर प्रयुक्त हुआ है । स्वप्न वक्ता तेजसार के जन्म की भविष्यवाणी करता है ।[4] विजयश्री के होने वाले पति के बारे मे बताना[5] पद्मावती से विवाह करने वाला व्यक्ति चार राज्यों का अधिकारी होगा । ऐसी भविष्यवाणी सत्य होती है और तेजसार चार राज्य प्राप्त करता है[6]—

एतलै पाम्याच्यारे राज हय गय रथ पायकदल साज
अरथ गरथ अरि गंजण आण जोवो पुण्य तणो परमाण ।। 259 ।।

तेजसार को अपने पूर्व भव के बारे मे केवली सब कुछ सत्य बताते है ।[6] 'भीमसेन राजहस चौपई' मे अभगसेन शकुनो के आधार पर भविष्यवाणी करता है

---

1. डावउ नेत्र फरुकयउ तिसइ, सहियर आगइ कहिनइ हुसह
मनि सन्तोष चीति उल्हस आज सखी प्रिय मेलउ हुस्यइ ।। 491 ।।
ढोला मारवणी चौपई ह. लि.
2. असगुन होय नगर पैठारा, रटहि कुभांति कुखेत करारा
खर सियार बोलहि प्रतिकूला सुनि सुनि होइ भरत मन सूला
मानस पृष्ठ 318 अयोध्या काण्ड
3. नीची दिसी थी नवलीयउ ऊंची दिसिऊ जाइ
जातउ जोयइ द्रिष्टि सूं तउमन चितउ थाइ ।। 482 ।।
'भीमसेन राजहंस चौपई' ह. लि. ग्र 1217 लालभाई दलपत भाई ग्रंथालय, अहमदाबाद
4. दोहा संख्या 9 तेजसार रास गं. 26546
5. ,, ,, 104
6. ,, ,, 172

कि आज से सातवें दिन वह कन्या (भीमसेन की पत्नी) मिल जायेगी।[1] इसी तरह की भविष्यवाणी हंसी आकाशवाणी द्वारा करती है।[2]

इच्छित वर या फल प्राप्ति हेतु देवी देवताओं की आराधना

कन्यायें उत्तम वर प्राप्ति के लिये गौरी की पूजा किया करती थीं। तुलसीदास की सीता को भी माता गौरी पूजा के लिये भेजती है।[3] 'ढोला मारवणी' की मारवणी भी अपनी सखियो के साथ पूजार्थ ही जाती है।[4]

'माधवानल कामकन्दाला चउपई' में कथाकार ने वर प्राप्ति की पूजा कन्या से न करवा कर माधव से कराई है। माधव शिव मन्दिर में जाता है[5] और अपनी विरह गाथा शिव मन्दिर में ही लिखता है।[6] 'भीमसेन राजहंस चौपई' में तो एक ऐसी देवी का ही उल्लेख आया है कि जो कन्या उस देवी की पूजा करती है वह मनवाछित वर प्राप्त करती है।[7] मदनमजरी भी यह जानती है, अतः वह उस देवी के मन्दिर मे जाकर देवी की सच्चे मन से सेवा व भक्ति करती है।[8] मदनमजरी देवी से कहती है—

कर जोडी देवीनइ कहइ भीम मेल वउ जीवित रहइ
एहनी पूजइ माहरी आस, तउ तुझ आगइ धालू गल पास ॥ 104 ॥

राजा भीमसेन भी त्रिपुरा देवी के उसी मन्दिर में अपने मनोरथ पूर्ण करने की प्रार्थना करता है।[9] प्रतिमती राजकुमारी भी गौरी पूजा के लिये ही जाती है—

गउरि पूजिवा ते वनि गई नदो परइ तब सघ्या थई ॥ 454 ॥

रूपमजरी भी योग्य वर प्राप्त करने के लिये चक्रेश्वरी देवी की अराधना ही नही करती वरन् वह तो यहाँ तक भी कहती है कि देवी आप स्वय अपने श्रीमुख से होने वाले पति का कुछ चिह्न बताओ।[10] और देवी राजकुमारी को बताती है कि जिस कुमार के सिर पर पुष्पवृष्टि होगी वही तेरा पति होगा।[11]

---

1. दोहा संख्या 206 भीमसेन राजहंस चौपई ग्रंथाक 1217 ला. द. प्र. अहमदाबाद
2. ,, ,, 496, 97
3. रामचरित मानस बालकाण्ड पृ. 160
4. ढोला मारवणी चौपई संख्या 227 ह. प्र.
5. दोहा संख्या 476 माधवानल कामकंदला चउपई हं. ग्रं.
6. ,, ,, 476, 483, 486
7. ,, ,, 102 भीमसेन राजहंस चौपई ग्रं. 1217
8. ,, ,, 103
9. ,, ,, 142
10. ,, ,, 495
11. दोहा संख्या 497 भीमसेन राजहस सम्बन्ध चौपई ग्रंथाक 1217 ला. द. ग्रं. अहमदाबाद

साधु संतों व मेहमानों का सम्मान

तत्कालीन समाज में जन साधारण में साधुओं के प्रति भक्तिभाव था तथा अतिथि सत्कार श्रद्धा पूर्वक किया जाता था। साधु भी अपने भक्त की रक्षा करते थे।

'ढोला मारवणी चौपई' मे ढोला मारवणी का सन्देश लाने वाले 'मांगणहारो' को बुलाता है और उनका बहुत मान करता है।[1] यही नही ढोला उनका निम्न प्रकार से सत्कार करता है—

बीस तुरी आपिया अह्रास फदिया दिया सहस पंचास
वागा वस्त्र अपूरव वली सतोषीय, पूगो मन रली ॥ 314 ॥

कुशललाभ जैन कवि थे इसी कारण उनकी कथाओं में जैन मुनियों का उल्लेख अधिक हुआ है। जैन मुनि के आगमन पर नगर मे घर-घर मे मगल गीत गाये जाते थे तथा सभी नर एव नारी प्रभु की वन्दना करने जाते थे।[2] राजा भी मुनि के दर्शनार्थ जाता था।[3]

साधु सन्यासी सत्यवक्ता होते थे। लोगों को उन पर अटूट विश्वास था। तेजसार इसी विश्वास के आधार पर केवली से अपने पूर्व जन्म के बारे मे जानने की इच्छा प्रकट करते है।[4] सुव्रत स्वामी के सानिध्य से ही तेजसार वैराग्य ले लेते है एव उत्तम कार्यों के योग से अत मे शिवपुरी को प्राप्त होते है।[5]

'भीमसेन राजहस चौपई' मे भी हमे इसी तरह के अनेक उदाहरण मिलते है विशालपुरी मे अवधूत के आगमन[6] पर राजा उसे सब प्रकार से योग्य जानकर भक्तिभाव से प्रणाम् करता है[7] तथा उसे आदर सहित बुलाकर भोजन भी कराता है।[8] भीमसेन अवधूत को बचाकर उसकी प्राण रक्षा करता है।[9] राजहस को आकाश मे आते हुये दो मुनिवर दिखाई देते हैं वह उन्हे आदर सहित आहार देता है।[10] गुरु का नगर में आगमन सुनकर राजहंस एव भीमसेन दोनो ही गुरु की वदना करने पहुँचते है।[11]

1. दोहा संख्या 300 ढोला मारवणी चौपई
2. ,, ,, 361 तेजसार रास ग्रंथांक 26546
3. ,, ,, 664
4. ,, ,, 372
5. ,, ,, 406
6. ,, ,, 66 भीमसेन राजहस चौपई ग्रं. 1217
7. ,, ,, 67
8. ,, ,, 69
9. ,, ,, 127
10. ,, ,, 549
11. ,, ,, 567

आत्म हत्या

समाज में आत्म हत्या और आत्मदाह की प्रथा भी प्रचलित थीं। यह प्रथा एक प्रकार से प्रायश्चित करने के रूप में प्रचलित थी। मारवणी की सर्पदंश से मृत्यु हो जाने पर ढोला भी अग्नि में प्रवेश करना चाहता है।[1] राजा विक्रमादित्य माधव व कन्दला की मृत्यु हो जाने पर स्वय प्रायश्चित करने के लिये तलवार प्रहार करने को तैयार हो जाता है।[2] 'तेजसार रास' की नायिका एणामुखी भी प्रतिज्ञा पूर्ण न होने पर आत्मदाह की धमकी देती है।[3] मदनमंजरी भी भीमसेन को पति रूप में प्राप्त करना चाहती है अन्यथा अग्नि में प्रवेश करने की बात कहती है।[4] मदनमंजरी की आशा जब फलीभूत नहीं होती तो वह गले में फांसी लगाकर आत्महत्या करना चाहती है।[5] विवाह के बाद भी जब वन मार्ग में भीमसेन से मदनमंजरी का बिछोह हो जाता है तब वह विषफल खा लेती है।[6]

अंध-विश्वास

समाज मे नाना प्रकार के अन्धविश्वास प्रचलित थे। जन साधारण तंत्र मंत्र टोने टोटके मे विश्वास करता था। भूत, प्रेत, डायन, सीकोत्तरी, राक्षसी व व्यंतरी आदि आलौकिक शक्तियो मे भी अटूट विश्वास था।[7]

सकति कइ व्यतर साकिनी, राक्षसि सीकोत्तरी डाकिनी
आयी पुत्र लेयण नई काजि, मोटउ कष्ट टलिउ छइ आजि ।। 73 ।।

इनसे बचने के लिये तंत्र मत्र का सहारा लिया जाता था और बहुत सा धन भी खर्च किया जाता था।[8]

आकाश मार्ग से उड़ना, रूप परिवर्तन करना, अदृश्य हो जाना आदि अनेक सिद्धियों की प्राप्ति के तो अनेक उदाहरण इन कथाओ मे मिलते है जिनसे तत्कालीन समाज की अन्ध विश्वास की मनोवृत्ति का पता लगता है। 'ढोला मारवणी चौपई' मे भी तत्र मंत्र का उल्लेख हुआ है। साप के काटे जाने पर उसके विष को तंत्र मत्र पढ़ कर उतारा जाता है, ऐसा लौकिक विश्वास आज भी प्रचलित है। मारवणी को अभिमन्त्रित जल पिलाया जाता है।[9] मंत्र पढ़ कर मुष्टि प्रहार

1. दोहा संख्या 579, 581 ढोला मारवणी चौपई
2. ,, ,, 593 माधवानल कामकंदला चउपई
3. ,, ,, 285 तेजसार रास ग्रं. 26546
4. ,, ,, 85 भीमसेन राजहंस चौपई ग्रं. 1217
5. ,, ,, 169
6. ,, ,, 227
7. ,, ,, 73 माधवानल कामकंदला प्रबन्ध
8. ,, ,, 74
9. ,, ,, 595 ढोला मारवणी चौपई

करने से व्यक्ति प्राण छोड़ देता है। मंत्र की शक्ति से सेना को स्तम्भित कर देना[1] विद्याबल से रूप परिवर्तन[2], बलि देकर सिद्धि प्राप्त करना[3], रूप परिवर्तन तथा विद्याबल से अदृश्य होना[4] आदि अनेक अन्ध विश्वास आज भी समाज में इसी रूप में प्रचलित हैं लोगों की आज भी इन पर उतनी ही आस्था है।

रहन-सहन

तत्कालीन समाज मे राजा का स्तर ऊँचा था। किन्तु जनसाधारण का जीवन सरल एव सादगीयुक्त था। प्रत्यक्षत. इन कथाओ में राजा के आवासों का उल्लेख बहुत ही कम हुआ है। राजा महलो मे रहता था। राजा के लिए आनन्दोपयोग की सभी साधन सामग्री महल में ही उपलब्ध होती थी।

'ढोला मारवणी चौपई' मे ढोला के महल के लिये 'सात भूमि मंदिर उत्तंग' (सात मंजिल ऊँचे महल) आया है। माधवानल कामकंदला में कदला के आवास का वर्णन भी ऐसा ही है। रानियों की सेवा के लिये सैकड़ों दासियाँ रहती थी।[5] रानियाँ अथवा राजकुमारियाँ सखियो के साथ बाहर निकालती थी।[6] ढोला के निवास स्थान का इस प्रकार वर्णन आया है—

मोटा महल अनइ मालीया, छोहपंक काचें ढालिया
गउप अपूरव चदण तणा, रतन जडित मोती झूमणा ॥ 695 ॥

राजा गोविन्दचन्द के रनिवास मे सात सौ नारियाँ थी।[7] वीरसेन की नगरी वाराणसी को इद्रपुरी के समान सुन्दर बताया है।[8] ऊँचे गढ और महलो का भी वर्णन तेजसार मे आया है।[9] स्वर्ण निर्मित सुन्दर आवास मे तेजसार भोग विलासो मे जीवन बिता रहा है।[10] नगरो का विस्तार नौ या बारह योजन तक होता है।[11] नगर मे सरोवर कूप, बावड़ी, वन, गढ मन्दिर आदि होते थे।[12] राजा के प्रासाद मे

1. दोहा संख्या 51, 52 तेजसार रास ह. 26546
2. ,, ,, 56
3. ,, ,, 85
4. ,, ,, 94
5. दासी तास पंचसइ पासि मारू मनि अति पूगी आस ॥ 670 ॥
ढोला मारवणी चौपई
6. दोहा संख्या 218
7. ,, ,, 45 माधवानल कामकदला चउपई
8. ,, ,, 5 तेजसार रास ह. लि. प्र. 26546
9. ,, ,, 73
10. ,, ,, 317
11. ,, ,, 335
12. ,, ,, 303

पंच शब्द बाजे बजते रहते थे ।[1]

नगर में बड़े-बड़े उपवन होते थे । कथा नायक अथवा नायिकाएं अपने साथियों के साथ उपवन में भ्रमणार्थ निकलती थी । भीमसेन प्रजा के हितार्थ एक अपूर्व वन का निर्माण कराते हैं ।[2] अच्छे अवसर पर राजा अपने मित्रों रनिवास एवं नृत्याकारो सहित उपवन में रहता था ।[3] उपवन मे सरोवर के पास ही राजा अपना प्रासाद बनवाता था । 'नंदन वन' बहुत ही सुन्दर उपवन था जहाँ राजा वांछित भोग विलास करता था ।[4] राजाओं के पास हाथी घोड़े रथ ऊँट आदि सवारी के लिये होते थे ।

महलों मे गवाक्ष (झरोखे) भी होते थे । सौदागर मारवणी को गवाक्ष पर ही बैठी देखता है और खवास से उसके बारे में पूछता है ।[5] 'अगड़दत्त रास' की नायिका मदनमजरी अगड़दत्त को अपने गवाक्ष से ही देखती है ।[6]

वस्त्र आभूषण एवं शृंगार

कुशललाभ की कथाओ के अधिक पात्र राज कुटुम्ब के हैं । अतः उनके वस्त्रों में विविधता है । पुरुषों के वस्त्र अलग होते थे और नारियों के अलग होते थे ।

पुरुषो के वस्त्रों मे पगड़ी का उल्लेख विशेष रूप से हुआ है—

सकती बाँधे वीटुली ढीली मेल्हे लज्ज
सरढी पेट न लेटिउ मूंध न मेलउ अज्ज ॥ 480 ॥

'तेजसार रास' मे 'धोती' का भी उल्लेख हुआ है ।[7] ढोला 'मागणहारो' को वस्त्र देता है जिसमें 'बागा' का उल्लेख आया है ।[8] मारवणी व मालवणी नित्य प्रति नये-नये 'वेस' अर्थात् वस्त्र बदलती है । उन वस्त्रो मे वे दोनों इन्द्रलोक की अप्सराये लगती है ।[9]

---

1. दोहा संख्या 244 भीमसेन राजहंस चौपई
2. ,, ,, 20, 21
3. ,, ,, 38
4. ,, ,, 33
5. सांझ समै सउदागरी बाप तणै उतारि
   बइठी गउखै तिणि समइ नयणे नरखी नारि ॥ 204 ॥
   ढोला मारवणी चौपई ह. लि.
6. ते गुखइ बइठी सुंदरी पेखिउ कुमार प्रीति मनि धरी ॥ 39 ॥
   अगड़दत्त रास चौपई ग्रं. 605
   भण्डारक आरियन्त रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना
7. दोहा संख्या 32 तेजसार रास ग्रं. 26546
8. बागा वस्त्र अपूरव वाली, संतोषीया पूगो मनरली ॥314 ॥
   ढोला मारवणी चौपई
9. दोहा संख्या 698

ऊनी वस्त्रों में कबल का उल्लेख ढोला मारवणी चोपई में हुआ है। मालवणी मारवाड़ की निंदा करती हुई कहती है कि वहाँ तो ओढ़ने पहिनने को केवल कंबल ही मिलता है।[1] कामकंदला को बालक 'कोरा चीर' पहनाते हैं[2] जिससे यह भी स्पष्ट होता है कि विवाह के समय कोरे वस्त्र पहनाये जाते थे। वेश्या कामकंदला नृत्य के समय रेशमी दुपट्टा ओढती है।[3] वेश्याये नृत्य के समय अगों पर चन्दन का लेप इस प्रकार से करती थी कि वे निर्वस्त्र दिखाई न दे—

चंदन तनु बिलेपन चीर कोई न देखई नग्न शरीर ॥ 177 ॥

स्त्रियो के वस्त्रो मे कचुकी का उल्लेख भी हुआ है। कामकदला माधव को भ्रमर बनाकर अपनी कचुकी मे अवस्थित कर लेती है।[4] कदला 'अनोपम चीर' भी धारण करती है।[5]

इन कथाओ मे दक्षिणी चीर का भी उल्लेख हुआ है। ढोला मालवणी को दक्षिणी चीर लाकर देने को कहता है[6] माधव के वियोग मे कामकदाला दक्षिणी चीर पहिनना भी छोड़ देती है।[7]

विधवा स्त्री का परिधान अलग होता था। इसका परिचय कदला की वियोगावस्था मे होता है—

विधवा वेसि ते विरहिणी
दुर्बल देह कीउ पीउ भणी ॥ 367 ॥

स्त्रियाँ साड़ी भी पहनती थी। 'तेजसार रास' मे रानी मृत्यु के समय साड़ी पहने होती है।[8]

आभूषण

प्राचीन काल से ही स्त्रियो की आभूषण प्रियता प्रसिद्ध रही है। स्त्रियाँ ही नही पुरुष भी आभूषण पहनते थे। माधवानल कामकंदाला मे राजा कामसेन माधव

---

1. दोहा संख्या 686
2. ,, ,, 69 माधवानल कामकंदला चौपइ
3. ,, ,, 168
4. भमरा रूप माधव कीयउ, कचू विचि छानउ राखीयउ
विविध प्रकारि नाटिक करइ कंचू विचि प्रीउडो मनि संभरइ ॥ 106 ॥
माधवानल कामकंदला चोपई 106
5. दोहा संख्या 239
6. ,, ,, 339 ढोला मारवणी चोपई
7. ,, ,. 365 माधवानल कामकंदला चोपई
8. ,, ,, 273 'तेजसार रास' पृ. 26546

की कला से प्रसन्न होकर उसे अपने आभूषण देता है पर मुकुट नहीं देता ।[1] आभूषणों का उल्लेख मात्र है नाम नहीं गिनाये गये हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि राजा लोग ही आभूषणों का प्रयोग करते थे।

रानियों के आभूषणों की तो गिनती ही नहीं थी। इनके आभूषणों में रत्न जड़ित बहिरखा, सीसफूल, एकावल, रखडी, नवसर हार, कंकण, नेउर चूडियाँ, मेखला आदि का उल्लेख मिलता है।[2] बहिरखा बाहु पर पहना जाता था। सिर पर शशिफूल सोने की रत्नजडित रखडी लगाई जाती थी। गले के आभूषणों में नवसर हार और एकावली का उल्लेख हुआ है। कंकण और नेऊर बजने वाले आभूषण थे। हाथो में सोने की चूड़िया और कमर मे छोटी घंटिकाओ से युक्त करधनी पहनी जाती थी।

ढोला मारवणी के लिये गहने भेजता है।[3] मारवणी की माता उसे स्वर्ण के रत्न जडित आभूषण तथा मोतियो का हार देती है।[4] मारवणी को जोगी द्वारा जीवन दान दिये जाने पर ढोला जोगिन को नवसर हार उपहार में देता है।[5] मारवणी सास के चरण स्पर्श करती है और सास उसे स्वर्ण के आभूषण देती है।[6]

आभूषणों का उल्लेख कुशललाभ ने बहुत किया है। इससे नारी का आभूषणों के प्रति मोह तो ज्ञात होता ही है साथ ही उनके माध्यम से तत्कालीन समाज की समृद्धि का भी ज्ञान होना है।

शृंगार

शृंगार सोलह माने जाते है।[7] मारवणी[8] और कदला[9] दोनो ही चन्दन

---

1. दोहा संख्या 187 माधवानल कामकंदला चौपई
2. नाक जिसी दीवानी सिषा, बाहे रतन जडित बहिरखा
   सीस फूल, सोवन राखडी, कंकन मयधडी रतने जडी ॥ 195 ॥
   गले एकावल नवसर हार, कंकण नेअर रुण झुणकार ॥ 196 ॥
   खलके चूडी सोवन तणी, शुद्र घंटिका सोहामणी ॥ 198 ॥
   केहरसिंह जिसी कटिलंक रतन जडित करि मेखलांक ॥ 199 ॥
3. दोहा संख्या 365 ढोला मारवाणी चौपई
4. ,, ,, 554
5. ढोलउ प्राणदियउ अपार, जोगिणि दीधउ नवसर हार ॥ 596 ॥
6. दोहा संख्या 671 ढोला मारवणी चपई
7. उबटन, मंजन मस्मी, स्नान, सुवसन, केश विन्यास, नांग भरना, अंजन, महावर, बिंदी, तिल बनाना, मेहंदी, गंध द्रव्य, आभूषण, फूलमाला और पान खाना ये सोलह शृंगार कहे गये है।

   श्री रामचन्द्र वर्मा, प्रामाणिक हिन्दी कोश : पृ. 1228
8. दोहा संख्या 515 ढोला मारवणी चौपई
9. दोहा संख्या 200 माधवानल कामकंदला चौपई

और केसर का उबटन करती हैं ।

स्त्रियाँ शरीर में चन्दन का लेप करती थी । नेत्रों में अंजन या काजल डाला जाता था । हथेलियों को सुन्दर बनाने के लिये लाल रंग से रगा जाता था । अधर ताम्बूल से रंगे रहते थे ।

> अंगइ चंदन केसर खोलि, अधर दसण रंगिल तंबोल
> अंजन सिउ अंजित आंखडी, जाणि विकच कमल पांखडी ।। 200 ।।

सुरभित तेल का प्रयोग भी किया जाता था ।[1] ग्रंथ द्रव्यों में फूल मृगमद, चोवा[2] का भी उल्लेख हुआ है ।

मारवणी एव कामकदला दोनो ही सोलह शृंगार कर प्रिय मिलन को जाती है ।[3]

मस्तक पर बिन्दी भी लगाई जाती थी वह तिलक के रूप में भी होती थी । संयोग के समय नारियाँ सभी शृंगार करती है किन्तु वियोग मे उन्हे शृंगार भी अच्छा नही लगता ।[4]

खान-पान

ढोला मारवणी की कथा राजस्थान की कथा है अत उसमें राजस्थानी खाद्यान्न का उल्लेख होना स्वाभाविक है । बाजरी[5], मुरट[6] का उल्लेख विशेष रूप से

---

1. सुरभि तेल चपक तनु भरइ सइ हथि अंगइ मंजण करइ
   निरमल जल अंघोलइ नीर, सुन्दर प्रहिरू अनोपम चीर ।। 239 ।।
2. दोहा संख्या 238
3. (क) हरषित थयो सहू परिवार सामइ कीजइ सहू सिणगार
   सोल सिंगार मभाई मारूई, जाणे तरतणि अपछइ हुई ।। 516 ।।
   ढोला मारवणी चौपई
   (ख) केसरीसिंह बनइ पाखर्यउ, एक पन्नग नइ पखइ भर्यउ
   कामकंदला रिति अणुहार, सज्या वली सोलह सिणगार ।। 173 ।।
   माधवानल कामकदला चौपई
   (ग) सुन्दरि सोलसिंगार सजि सेज पधारी सखि
   प्राण नाथ प्रीतम मिल्यउ उर सरि बइठउ सखि ।। 128 ।।
   ढोला मारवणी चौपई
4. तिजइ तिलक कज्जल तंबोल मंजण नाहण घोल अघोल
   जिमइ नहीं सरस आहार, जाँ न मिलइ माधव भरतार ।।366 ।।
   माधवानल कामकदला चौ.ई
5. दोहा संख्या 350 ढौला मारवणी चौपई
6. ,, ,, 685

हुग्रा है। ढोला मारवणी के संदेष प्रेषकों को भोजन कराता है।[1] ग्रौर स्वयं भी ससुराल में पन्द्रह दिन रहकर नित्य नवीन भोजन करता है।[2]

शराब का भी सेवन किया जाता था। ढोला उमर सूमरा के साथ छक कर पीता है—

साथइ साभा मद ग्रपराक मने द्रोहनइ पाई छाक
ढोलउ ग्रति परिघल मद पीयइ बीजा ग्राछी छाका बहइ ॥ 619 ॥

मनोरंजन के साधन

मानव मन जब किसी कार्य से ऊब जाता है तो वह मनोरजन चाहता है। मन के रंजनार्थ मानव ने ग्रनेक साधनों का सृजन किया है। तत्कालीन समाज में भी नाना प्रकार के मनोविनोद के साधन प्रचलित थे। राजा लोग ग्राखेट खेलते थे।[3] ग्रौर स्त्रियाँ सरोवर मे जलक्रीडा करती थी कभी-कभी राजा भी जल क्रीड़ा साथ ही करता था।[4]

मनोरंजन के ग्रन्य साधनो मे नृत्य संगीत एव नाटक का बहुत प्रचार था। नृत्य समूह के रूप मे भी होते थे। राजकुमार सोहाग सुन्दरी ग्रौर मत्री विद्या विलास ने नाटक मे 'समूह नृत्य' किया था।[5] इन्द्र की सभा मे नाटक मनोरजन का प्रमुख साधन था। नाटको मे स्त्रियाँ भी ग्रभिनय करती थी। इन्द्र प्रसन्न होकर ग्रप्सरा को विशेष नाटक का ग्रादेश देता है—[6]

एक दिवसि मनि घरि ग्राणंद इंद्र समाई बइठउ छइ इंद्र
ग्रपछर न दीधउ ग्रादेश 'रचउ ग्राज नाटक नउ वेस' ॥ 12 ॥

---

1. दोहा सख्या 364
2. भोजन नित नित नवला करइ अधिकी भगति जुगति आदरइ
   मारवणी मनि भावइ, पनरह दीह रहयउ सासरइ ॥551 ॥
3. कुमर ते साथ देषी करी हणउ बाण प्रहार रे
   अश्वनइ कुमर ऊगरया साथ नउ कीधउ संघार रे ॥ 415 ॥
   भीमसेन राजहंस चौपई ह. लि. ग्रं. 1217
4. (क) सुंदरि मदनमंजरी माथि निर्भय थई बइठा नर नाथ
   पहिली मदन वन पेषति सरवर तटि जल केलि करंत ॥ 265 ॥
   (ख) नारी कहै सरोवर जिहाँ जल क्रीडा जइ कीजै तिहाँ
   सरोवर क्रीडा करी अतोल, तिहा पेरवै केली हुर ओलि ॥ 119 ॥
   तेजसार रास ह. लि. ग्रं. 26546 रा. प्रा. वि. प्र. जोधपुर
5. राजस्थान के प्रेमाख्यान परम्परा और प्रगति : डा० रामगोपाल गोयल पृ 504
6. दोहा संख्या 12 माधवानल कामकदला चौपई : गायकवाड़ ओरियन्टल सीरिज VOL XCIII

वीणा वादन भी मनोरंजन का ही साधन थी। माधव की वीणा पर नगर की स्त्रियाँ अपनी सुध बुध खो बैठती थीं और माधव को देखते ही उसके पीछे चल देती थीं।[1]

माधव के वीणा वादन पर राजा उसे आदर देता है।[2] वीणा वादन सुनकर राजा की सात सौ अन्त:पुर की रानियां मोहित हो जाती हैं।[3]

नृत्य भी मनोरंजन का प्रमुख साधन था। मारवणी चर्चरी नृत्य की ज्ञाता थी। इससे ज्ञात होता है कि उत्सवो पर भी नृत्य होते थे। राजकुमारियाँ केवल मनोरंजनार्थ नृत्य करती थीं। राज सभाओ मे राज-नर्तकियो का नृत्य होता था। ये नर्तकियाँ वेश्या भी होती थी।[4] कामकदला अपनी सखियों सहित सामूहिक नृत्य करती है।[5] होली पर चर्चरी नृत्य का आयोजन किया जाता था।[6]

मनोविनोद का एक साधन पहेली कहना और पूछना भी था जैसे—

कामकंदला इम कहइ, 'अजी अछइ बहुराति
गाहा गूढ़ा, गीयरस, कहइ को नवली वाति[7] ॥ 260 ॥

प्रहेलिका आयोजन में मनो-विनोद के साथ मानसिक विकास भी होता था। मानसिक विकास के साधनो मे गाहा गूढा गीत, नई-वात कहानी अथवा हास्य व्यग्य आदि उल्लेखनीय हैं। पहेली और समस्या विनोद बुद्धि विकास के प्रमुख अंग थे। कुशललाभ ने लिखा है कि 'मूर्ख व्यक्ति तो निद्रा में या कलह मे अपना अमूल्य समय खो देते हैं किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति उस समय को गीतों व शास्त्रो की चर्चा करके ही व्यतीत करते हैं।[8]

जिस प्रकार चतुर व्यक्ति पान खाकर प्रसन्न होता है उसी प्रकार बुद्धिमान

---

1. सेरी मांहि जातु सांभलइ, धरि मुंकी नइ पुठइ पुलइ
धरना स्वामी पालइ घणुं सहिजि न छंडइ रखी आपणु ॥ 131 ॥ वही पृ० 392
2. दोहा सख्या 143
3. ,, ,, 150, 151
4. बलती वेश्या कहइ विवेक, माहरइ मनि छइ निश्चय एक
कामसेन जे नगरी नरेस, तस आगइ हुं नृत्य करेसि ॥ 169 ॥
माधवानल कामकंदला चोपई
5. दोहा संख्या 172
6. फागुण मास बसंत रुत आयउ जइ न सुणेसि
चाचरिकइ मिस खेलती, होली झंपावेसि ॥ 283 ॥ ढोला मारवणी चौपई ह. लि.
7. दोहा संख्या 260 माधवानल कामकदला चौपई
8. ,, ,, 262

व्यक्ति कथा श्रवण से ही प्रसन्न होता है ।[1]

पहेलियाँ पूछना प्रारम्भ से हीं मनुष्य के मनोरंजन का साधन रहा है । इनका उपयोग नायिका नायक के चातुर्य का पता लगाने के लिये भी करती थी । कुशललाभ कृत 'माधवानल कामकंदला चउपई' में समस्या भी प्रस्तुत की गई है । कंदला माधव से पूछती है कि चोर ने सुंदरी का सब श्रृंगार उतार लिया, किन्तु नाक फूली नही उतारी इसका क्या कारण है ।[2] चतुर माधव इस समस्या का निदान इस प्रकार करता है—

> अहर रगि रत्तउ हुउ मुखि कज्जल मसिवन्न
> जाणिउं गु जाहल अछइ, तेणि न ढूकउ मन्न ।। 282 ।।

सार्वजनिक उत्सव, पर्व एवं त्यौहार

तत्कालीन समाज उत्सव प्रिय समाज था । पुत्र व पुत्री जन्मोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता था ।[3] विवाह उत्सव भी धूमधाम से मनाया जाता था । धार्मिक उत्सवों में इन्द्र महोत्सव मनाये जाने का वर्णन मिलता है—

> इन्द्र महोच्छव आव्यउ इसइ, राय मंडाविउ नाटिका तिसइ ।। 172 ।।

उत्सव एव पर्व के समान त्यौहार भी भारतीय सस्कृति के अभिन्न अंग रहे है । त्यौहार पर नारी अपनी समस्त चेतना से अपना हर्षोल्लास व्यक्त करती है ।

---

1. "मानुतु ग मानवती रास"
राजस्थानी प्रेमाख्यान पृ० 506 से उद्धृत डा० गोयल

2. सुंदरि चोर संग्रही सवि लिधा सिणगार
नकफूली लिधी नही, कही प्रिउ कवण विचार ॥ 281 ॥
माधवानल कामकंदला चौपई

3. (क) माता पिता मनि आणंद घणउ जनम हुओ मारवणी तणउ
कीया बधावा नगर मझारि पुत्री तणी घरि मंगलाचार ।। 133 ।।
ढोला मारवणी चौपई

(ख) पुत्र जनमि हरख्यउ राजान मनि आणंदी नल राजान
घरि घरि उछब मंगल घणा कीया बधावा पुत्रह तणा ।। 150 ।।

(ग) कीयउ उछव कीयउ अच्छव हुयउ आणंद
कुटुम्ब सहुइं संतोषीयउ नगरमाहि उच्छाह कीधउ ।। 63 ।।
माधवानल कामकंदला चौपई

(घ) पूरे दिन पुत्र जनमीयउ राजा घणउ महोच्छव कीयउ ।। 10 ॥
तेजसार रास ग्रं. 26546

(ङ) पुत्र जनमउ परम आणंद संतोष्या परीयण सहु
वेद नाद वाजित्र वाजइ याचक जन जय जय करइ
दीयइ दान मोटइ दीवाजइ नयर महोछव नव नवा
सफल मनोरथ सार राजहंस नामइ कुमार अति सुंदर आकार ॥ 371 ॥
भीमसेन राजहंस चौपई ग्रं. 1217

'ढोला मारवणी चौपई' में होली, सावन की तीज, दशहरा आदि त्यौहारों का वर्णन हुआ है।

श्रावण मास स्त्रियों के लिये आनन्द एवं मंगल प्रदान करने वाला है। परदेश गये हुये पति भी इसी माह मे लौट आते है। मारवणी का भी प्रिय परदेश में है और अभी तक नहीं आया है उस समय मारवणी के भाव देखने योग्य हैं—

जउ तू साहिब नावियउ, सावन पहली तीज
बीजल तणइ झबूकडइ मूंघ मरेसी खीज ।। 280 ।।

होली एक ऐसा त्यौहार है जिसे प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण स्वच्छन्दता के साथ मनाता है। मारवणी भी ऐसे त्यौहार को ढोला के साथ मनाना चाहती है वह ढोला से कहती है कि यदि तुम वसंत ऋतु के फागुन मास में नही आये तो मारवणी चर्चरी नृत्य के बहाने होली की ज्वाला मे कूद पड़ेगी।[1]

मालवणी ढोला को रोके रखना चाहती है और वह उससे कहती है—

ढोला रहिसि निवारियउ मिलिसि दई कइ लेखि
पूगल हुसइ ज प्राहुणउ दसराहा लग देखि ।। 359 ।।

मालवणी से अपार स्नेह एव प्रेम होने के कारण वह रुक जाता है और तब तक दशहरा आ जाता है।[2]

आर्थिक जीवन

तत्कालीन समाज आर्थिक दृष्टि से बहुत ही सम्पन्न था। देश में बड़े बड़े नगर और ग्राम बसे हुये थे। नगरों मे कई मंजिलें ऊँचे आवास थे, उपवन सरोवर आदि थे[3] प्रासादों मे अगर धूप चूआ चंदन कुसुम कपूर महकते थे, तथा रत्नो का प्रकाश सूर्य का भान कराता था।[4]

---

1. दोहा संख्या 283 ढोला मारवणी चौपई
2. इणि प्रस्तावइ साल्ह कुमार चिता पालण तणी अपार
   मालवणी मनि भगतावीयो तेतलइ दस राहउ आवीयउ ।। 367 ।।
   ढोला मारवणी चौपई ह. लि.
3. मधुकर परिमल लोमइ भमइ रगइ नगर लोक तिहा रमइ
   ऊँचा राज्य योग्य आवास एक कराव्यो सरवर पासि ।। 32 ।।
   पद्म सरोवर थाप्योनाम नंदन वन नामइ अभिराम
   राजा रमइती यइ आवासि बिलसइ वांछित भोग विलास ।। 33 ।।
   भीमसेन राजहंस चौपई प्र'. 1217
4. अंधु सप्त भूमि आ वस बहुकइ अगर धूप सुखवास
   चूआ चंदन कुसुम कपूर रतन तेज झलकइ जिमिसूर ।। 237 ।।
   माधवानल कामकंदला चौपई

राजाओं के यहाँ बहुत से दास एवं दासियाँ भी होती थी जो उनकी समृद्धि सूचक है ।[1]

'तेजसार रास' में वन देवी एक नगर का निर्माण करती है जिसमें सरोवर कूप वन तथा बावड़ी हैं, गढ सुरंग मन्दिर देहुरा तथा भिन्न-भिन्न चौरासी प्रकार के व्यवसायों के बाजार थे जो 'चौरासी चौहटे' कहलाते थे ।[2] असंख्य लोग वहाँ व्यापार करते थे । नारियाँ रूपवंत थी और किन्नर बालायें सरस भाषा में गीत गाती थीं । सभी एक दूसरे को जानते थे पाँच प्रकार के वाद्य यंत्र बजते थे । बीस करोड़ लक्ष्मी हथलेवे में देना तथा रत्न जडित आभूषण देना रिद्धि सिद्ध सूचक हैं ।[3]

नगर सभ्यता पूर्ण विकसित हो चुकी थी । कुशललाभ ने तत्कालीन नगर जीवन में व्याप्त अजनबीपन की भावना को व्यक्त करते हुये लिखा है कि माधव दिन भर नगर मे घूमता रहा पर कोई उससे बात नहीं करता ।[4] सत्य भी है—

तत्र देशे न गन्तव्य, यत्रात्मीयजनो नहि ।
मार्गे हि गच्छतां तेषा कुशल को नु पृच्छति ।।

कुशललाम ने भी कहा है—

तिणि देसइ नवि जाईयइ जिहा अप्पणउ न कोई
सेरी सेरी हीडता वत्त न पूछइ कोई ।। 382 ।।

वाणिज्य एवं व्यवसाय

कुशललाभ ने चौरासी प्रकार के व्यवसायों का उल्लेख मात्र किया है ।[5] गणपति ने भी चौरासी प्रकार के व्यवसायों में किराना, कपड़े का व्यवसाय, स्वर्णकारी, लोहारी, चित्रकारी लेखन आदि प्रमुख बताये हैं ।[6] यह व्यवसाय पैतृक भी हुआ करते थे । माधव भी अपने पिता के साथ राज्य द्वार में पूजार्थ जाता है ।[7]

---

1. दोहा संख्या 670 ढोला मारवणी चौपई
2. नवो एकज नी-पाव्यो नगर, सरोवर कुवा वनि वन
   गढ दुरंग मन्दिर देहुरा, चोरासी चौहटा चाचरा ।। 303 ।।
   'तेजसार रास' ग्रथांक 26546
3. दोहा संख्या 304, 305, 306
4. माधव हिंडइ नयर मझारी, रूपवंत दीसइ नर नारी
   सारउ दिन तिणि नगरी फिरी, कोई न पूछइ आदर करी ।। 380 ।।
   माधवानल कामकन्दला चौपई
5. दोहा संख्या 303 तेजसार रास ग्रं 26546
6. ,, ,, 159 से 222 माधवानल कामकंदला प्रबन्ध गायकवाड़ आरियन्टल सीरिज, बड़ौदा
7. ,, ,, 128 माधवानल कामकंदला चौपई

इन व्यवसायों के अतिरिक्त पशुओं का धन्धा भी होता था। 'ढोला मारवणी चौपई' एवं 'भीमसेन राजहंस चौपई' से विदित होता है कि तत्कालीन समाज में पशुओं का भी व्यापार होता था। पशुओं के व्यापार मे 'घोड़ों' का व्यवसाय अधिक प्रचलित था। उस समय अच्छे-अच्छे ऊँटों व घोड़ों की राजा व सामन्तों द्वारा खरीद होती थी। ढोला मारवणी के सम्मुख कच्छ के 'बड़ी थूही' वाले ऊँट खरीद कर लाने की इच्छा प्रकट करता है।[1] इसी तरह ढोला मुलतान के सेलार घोड़े खरीदने की भी इच्छा व्यक्त करता है।[2]

घोड़ों का सौदागर नरवर से आकर पूगल मे घोड़े बेचता है और वहीं मालवणी के रहस्य को उद्‌घाटित करता है।[3] ईडर के आभूषण[4] तथा दक्षिणी चीर तथा रेशमी वस्त्र का भी व्यवसाय होता था—

सहसे लाषे साट विसु परिघल आणां वेसु
घरि बइठा ही प्रीतमा, पट्टोला पहिरेसु ।। 357 ।।

मोतियों के व्यापार का उल्लेख भी ढोला मारवणी चौपई में हुआ है।[5] 'जिन रक्षित जिन पालित रास' में जिनपाल व जिनरक्ष व्यापार के लिए समुद्र पार जाते हैं।[6]

तत्कालीन समाज मे कृषि ही आय का प्रमुख साधन थी। अकाल पड़ने पर एक प्रदेश का राजा दूसरे प्रदेश के राजा की सहायता करता था। 'ढोला मारवणी चौपई मे पूगल राजा अकाल पड़ने पर पुष्कर आते हैं—

पूगल थी ऊचाला कीया, धण गोवल सवि साथइं लीया
नगर सकल लोकि परवरया, आवीपुरिपुष्करि उत्तर्‌या ।। 139 ।।

विवाह अवसर पर अपार धन खर्च होता था गौने मे अमूल्य आभूषण व दास दासी दिये जाना तत्कालीन समाज की समृद्धि का द्योतक है।

---

1. काछी करह बिमूं मिया बखियाल चोइए चाह
मालवणी जे तुं कहैं, तउ आणुं ए व्यवसाय ।। 354 ।।
ढोला मारवणी चौपई
2. हरणाषि हसने कहे, तो आणो हेड तोषार
मुलताणी मोमन सभा सोहे तुम्ह असवार ।। 348 ।।
3. दोहा संख्या 253 ढोला मारवणी चौपई
4. ,, ,, 235
5. ,, ,, 352
6. वे बंधव व्यापार करता विघन रहित प्रहुणे बिचरंता
बारह ग्योर समुद्र प्रहुता आथ्या अणमल धन मनि गमतां
जिनरक्षित जिनपालित रास प्र. 2570
महिमा भक्ति जैन ज्ञान भण्डार बड़ा उपाश्रय बीकानेर

राजनीतिक स्थिति

राज्य का सबसे बड़ा अधिकारी राजा होता था। राजा निरंकुश होता था उसकी आज्ञा ही कानून होती थी। राजा गोविन्द चन्द माधव को देश छोड़ने की आज्ञा देता है[1] और माधव को स्वीकार करना पड़ता है।[2] कुशललाभ ने इसके लिये लिखा है कि 'यदि माता पुत्र को विष दे और पिता उसे बेच दे और राजा यदि सर्वस्व ही हरण कर लें तो इसमे दुःख क्या है ?[3]

यद्यपि राजा को भी लोक रीति नीति का भय बना रहता था।[4]

उस युग मे राजा लोग अपना आधा राज्य राजकुमारियों के दहेज मे दे देते थे।[5] ऐसे भी कई उदाहरण मिलते हैं कि राजा प्रसन्न होकर अपनी पुत्री तो देता ही था साथ ही अपना राज्य भी दे देता था। 'ढोला मारवणी' चौपई' में ऊमर सूमरा अपने सैनिकों से कहता है कि 'जो कोई ढोला को पकड़ लेगा उसे मैं अपना आधा राज्य दूँगा, जो ढोला को मार देगा अथवा उसे रोक लेगा वह मेरी बेटी से विवाह करेगा।[6]

न्याय व्यवस्था

इन नरेशो की न्याय व्यवस्था सर्व सुलभ थी। जनसाधारण भी किसी भी समय राजा के सामने अपनी फरियाद लेकर पहुंच सकता था और राजा उसकी प्रत्येक बात सुनना अपना कर्तव्य समझता था ।[7]

सभा मे भी लोग अपनी समस्यायें राजा के सामने रखते थे। भीमसेन की सभा मे परदेसी आता है और वह नगर में बाड़ी का अभाव बताता है। राजा उसकी

---

1. दोहा संख्या 153 माधवानल कामकदला चौपई
2. ,, ,, 159
3. माता यदि विषं दद्यातु पिता विक्रयते सुतम्
राजा हरति सर्वस्वं, तत्र का परिवेदना ॥ 155 ॥
4. दोहा संख्या 222
5. ,, ,, 206 तेजसार रास' प्र. 26546
6. ढोलानइ आपडइ जि कोइ, अधरा जियो हमारो होइ
के मारइ कइ वाडउ फिरइ, ते बेटी माहरइ वरइ ॥ 638 ॥
ढोला मारवणी चौपई
7. मली महाजन पुहुता राजि पूछइ राय कहउ किणि काजि
संभलि गोविंद चंद नरेस अहिम छंडिसि तुम्हारू देस
किणि मुहव्यां संताप्या आज ? वसउ सुखि पाउ माहरउ राज
बलतउं कहिइ महाजन बात संभलि राजा जग विख्यात ॥ 134 ॥
माधवानल कामकंदला चौपई

बात पर चिंतन करता है तथा शुभ दिन शुभ वार तथा अच्छी भूमि देखकर बाड़ी का निर्माण कराता है ।[1]

राजा अपनी प्रजा के सुख दु:ख का स्वयं ध्यान रखता था । महाकाल के मन्दिर मे विरह गाथा लिखी देखकर राजा सोचता है—

माहरइ नगरइ सहु को सुखी, पणि ए कोई मोटउ दुखी
परदुख भंजण विरद माहरू कहइ मन्त्रिनइ पिरि करू ।। 480 ।।

विक्रमादित्य उसे महान् दुःखी समझता है और जब तक उसका दु.ख दूर नहीं होता वह अपने आपको राजा नहीं मानता ।[2] अपने प्रधान से राजा इस विषय में बात करता है और नगर मे यह घोषणा करवाता है कि जो कोई इस विरही को ढूँढेगा उसे एक लाख दीनार ईनाम स्वरूप दी जायेगी ।[3]

गुप्तचर

जिस तरह चोर डकैत का पता लगाने के लिये गुप्तचर होते थे उसी तरह दीन दुखियो का पता गणिकायें भी लगाती थी । 'माधवानल कामकदला चउपई' मे गोगविलासनी वेश्या राजा विक्रमादित्य से कहती है कि वह उस दु:खी नर को लाकर देगी ।[4] माधव का पता वही लगाती है ।

प्रधान

राजा का अपना प्रधान या मन्त्री होता था । वह राजा का विश्वास पात्र होता था । राजा सभी प्रकार के विमर्श प्रधान से करता था । उसके कहने से राजा युवराज तक को गृह त्यागने के लिए बाध्य कर देता था । 'तेजसार रास' का नायक राजकुमार तेजसार मन्त्री और सौतेले भाई के कुचक्र का शिकार होता है और पिता का कोप भाजन बनता है और एक रात्रि घर छोड़कर चला जाता है ।[5]

---

1. दोहा संख्या 21 भीमसेन हंसराज चौपई प्र, 1217
2. दोहा संख्या 484 माधवानल कामकदला चौपई
3. ,, ,, 491, 492
4. (क) गणिका गोगविलासिणी पउहु छबियु आय
   दुखिउ नर हूं लहि दियु सभलि विक्मराय ।। 493 ।।
   माधवानल कामकंदला चौपई, गायकवाड़ आरियन्टल सीरिज VOL. XCIII
   (ख) वेस्यॉ कहणे मूंकी शोध नृपति में प्रतिहार रे बीच
   हिवे मुखी वेश्या करीरे चोर पकड़वा दाव रे एहवी
   रूपसेन कुमार नो चरित्र पृ—60 राजस्थानी के प्रेमाख्यान डॉ० रामगोपाल पृ० 514
5. दोहा संख्या 15 से 18 'तेजसार रास' ह. लि. प्र. 26546

पुरोहित

राजा का एक राज पुरोहित भी होता था। राजा पुरोहित राजा तथा रनिवास के धार्मिक कृत्य करता था। ढोला मारवणी चौपई में भी पुरोहित को उच्च जाति का कहा गया है।[1] राजा विक्रमादित्य भी अपने प्रधान को विचार विमर्श के लिये बुलाता है।[2] पुष्पावती के राजा गोविन्दचन्द का पुरोहित शंकरदास ऐश्वर्य सम्पन्न था।[3]

चारण भाट

तत्कालीन राज्य में चारण भाट आदि भी होते थे, जो राजा की विरुदावली गाते थे और राजा को शौर्य प्रदर्शन के लिए उत्साहित करते थे। पिंगल राजा के पूगल पहुँचने पर भाट राजा की जय जयकार करते हैं।[4] भाट लोग राजाओं को विवाह योग्य एव सुन्दर कन्यायें भी बताते थे।[5] भाट ही ढोला को मारवणी की निरति कराते हैं।[6] चारण भाटों को वस्त्र धन आदि देकर सतुष्ट किया जाता था।[7]

चारण द्वारा भ्रामक सूचना का निराकरण मारवणी का भाट इस प्रकार करता है—

दउढ बरसरी, मारूवी त्रिहुँ बरसाँरिउ कंत
जणरउ जोवन वहि गयउ तूँ किउ जोबन वन्त ॥ 450 ॥

द्वारपाल

राज्य परिवार तथा धन की रक्षार्थ राजद्वार पर प्रतिहारी या द्वारपाल होता था।[8] 'तेजसार रास' मे द्वार रक्षक का कार्य नारी भी करती है जो हाथ से उत्कृष्ट

---

1. राजा प्रोहित राखि जइ, जिण की उत्तमि जाति
मोकलि घरराा मंगता विरहु जगावइ राति ॥ 267 ॥
ढोला मारवणी चौपई
2. दोहा संख्या 487 माधवानल कामकदला चौपई
3. तेह नउ प्रोहित संकरदास ऋद्धिवंत नइ शील विलास
बार कोडि धन सोवन तणी हुय गलय-खमी पोना तणी ॥ 46 ॥
4. दोहा संख्या 123 ढोला मारवणी चौपई
5. ,, ,, 32, 33
6. ,, ,, 303
7. बीस तुरी आपि बहुास फदियां दिया सहुस पंचास
वागा वस्त्र अपूरव वली संतोषीया पुगो मनरली ॥ 314 ॥
8. द्वारपाल पूछइ करिरीम कांइ परदेसी धूणइ सीस
बलतु माधव तेहनइ कहइ नाटक तणउ नाद मुझ दहइ ॥ 181 ॥
माधवानल कामकंदला चौपई

कोटि के लोहे से बनी तलवार लिये बैठी है । ये नारियाँ सुन्दर भी होती थीं ।[1]

राजा प्रजा का हाल जानने के लिये स्वयं वेश बदल कर घूमा करता था । राजा विक्रमादित्य तो इसके लिये प्रसिद्ध था । सही तथ्य जानने के लिए आगिया वेताल, खापरा चोर और काडिया जुआरी आदि अन्तरंग मित्रों का उसे सहयोग प्राप्त था ।[2]

राजा की निःसंतान मृत्यु हो जाने पर गर्भ स्थित बालक यदि लड़का होगा तो वह राज्याधिकारी बनेगा और तब तक के लिये भानजे को राज्याधिकारी भी बनाया जाता था ।[3]

न्याय व्यवस्था बड़ी ही कठोर थी । माधव को देश निकाला देना,[4] इसका सबसे बड़ा प्रमाण है । भीमसेन राजहंस चौपई में एक अवधूत के वध का आदेश मिलता है, परन्तु भीमसेन उसे बचा लेता है । संन्यासी अपना प्राण राजा द्वारा बचाये जाने के कारण अपने प्रति किये गये उपकार को भूल नही पाता ।[5]

सैन्य-शक्ति

तत्कालीन देश छोटे-छोटे भागों मे विभक्त था । प्रत्येक राजा के पास अपनी और राज्य की सुरक्षा चे लिए सेना होती थी । राजा सदैव अपनी चतुरंग सेना के

---

1. बइठी द्वार एक वरबाला हाथि ककलोह करवाल
नव यौवन अति सुन्दरि नारि, जाणै अपछर नै अणुहारि ।। 136 ।।
तेजसार रास ग्र , 36546

2. (क) खापर चोर सगलइ प्रसिद्ध कउडीउ जूयारी वाचा वद्ध
तिहां माधनाम पंडित सुजाण वर दीध सरसती गुण निहाण ।। 378 ।।
माधवानल कामकंदला चोपई

(ख) सोल सहस अतेउरी नारी छ सहसवेश नगर मझारी
आगीउ ताल वेनाभि जास नित सेव करइ आणि करिदास ।। 377 ।।

3. पुत्र नही को राजा तणै मिलीयौ नगर लोक इम भणै
पटराणी पिण छै गर्भणी पुत्र हुस्यै तब थास्यै धणी
तांलगि भाणेजा नै राज दीजै तो सीझै सहुकाज ।। 258 ।।
'तेजसार रास' ह. लि. ग्रं. 26546

4. दोहा सख्या 155 मा. का. चौ.

5. नगर लोक नृप पास जइ तसकर जिमताणउ
दीयो वध्य आदेश राय तुम प्रिष्ठइ अणाट
मूकाव्यउ तुम्हें मृत्यू थकी कीधउ उपगार
पोपट बपंई राय प्रतइ थव तुम अवतार ।। 127 ।।
भीमसेन राज. चौ. ग्रं. 1217

साथ चलता था। सेना का पड़ाव नगर के पास डाला जाता था।[1] माधव की सेना को देखकर राजा कहता है—

दल असंख दीसइ छइ सही
संग्रमइ पहुंचेस्यां नहीं ।। 635 ।।

युद्ध को रोकने के लिये राजा दण्डस्वरूप ग्राम भी देने के लिए तैयार रहते थे।[2] इससे ज्ञात होता है कि राजा लोग बेकार की खून-खराबी नहीं चाहते थे।

कभी-कभी छोटी-छोटी सी बातों पर युद्ध हो जाता था। युद्ध का प्रमुख कारण कोई सुन्दरी या राज्य प्राप्ति की लालसा या प्रतिशोध की भावना होती थी।

'ढोला मारवणी चउपई' में ऊमर सूमरा रमणी मारवणी को प्राप्त करने के लिये ही ढोला को शराब पिलाकर मारना चाहता है।[3]

राज्य की लालसा भी व्यक्ति को युद्ध के लिये प्रेरित करती है। 'तेजसार रास' मे पद्मावती राजकुमारी के लिये भविष्यवाणी की जाती है कि जो कोई इसे प्राप्त करेगा वह चार राज्यों का अधिकारी होगा।[4] पिता अपनी पुत्री को किसी को नही देना चाहता इसलिते सभी उसके शत्रु हो गये है। और उन सबने मिलकर चपावती नगरी को प्रतिशोध एवं राज्य की लालसा से घेर लिया है।[5] युद्ध में मुख्य रूप से तलवार[6] और भाले[7] काम मे आते थे।

राजा कुशल शासक होता था, अपने वैरियों का दमन कर राज्य मे सुख-शांति बनाये रखता था।[8] अपनी सेना दूर से आते देख लोग भ्रम में पड़ जाते थे और सोचते थे[9]—

---

1. ढो. स 537–538 मा. का. चौ
2. प्रोहित नइ राजा इम कहइ जिम तिम करिराज मुझ रहइ
देस्यां दइ नहितरि गाम, रखे तुम्हे थापइ संग्रमि ।। 636 ।।
3. कता ए ऊमर सूमरउ तुझ मारिवा मन कीधउ परउ
गीत माहि कहियउ डूंमणी मद पावे तो मारण भणी ।।। 631 ।।
ढो. मा. चौ.
4. जन्म कालि मिलीया जोतिषी तिण जोइ जन्मोत्री लिखी
परणेस्यै एह राजकुमारि ते पामस्यै राज चियार ।। 180 ।।
'तेजसार रास' जि. ग्रं. 26546 रा. प्रा. वि. प्र. जोधपुर
5. दोहा संख्या 182–184 ते. रा, ह. लि. ग्रं. 26546
6. ,, ,, 136
7. ,, ,, 419 ढो. मा. चौ,
8. ,, ,, 15
9. ,, ,, 634 मा. का. चौ.

की सभा में अप्सराओं के नृत्य और संगीत का सरस वर्णन किया है ।[1] नाट्य कला भी विकसित अवस्था में थी ।[2] वाद्य और शास्त्रीय संगीत भी प्रचलित था । माधव संगीत का पारखी था । वीणा वादन में स्वय तो कुशल था ही किन्तु संगीत सभा से दूर रह कर वाद्यों की ध्वनि मे ताल भग को भी पहचान लेता था ।[3] संगीत के सात स्वर और बत्तीस राग-रागनियाँ प्रसिद्ध थी ।[4] 'ढोला मारवणी चउपई' में भी मारू एवं मल्हार राग का उल्लेख हुआ है ।[5] उस समय गाने वाली जातियाँ भी होती थीं । ढाढी, माँगणहार आदि का उल्लेख 'ढोला मारवणी चौपाई में कई स्थानों पर हुआ है । वाद्य यन्त्रों मे वीणा, परवावज तथा पंच शब्द वाद्यों का उल्लेख हुआ ।

काव्य कला

सस्कृत अपभ्र श एव प्रादेशिक भाषाओं मे सरस काव्य लिखे जाते थे । इससे ज्ञात होता है कि काव्य कला का भी समुचित विकास था । कुशललाभ के काव्यों में उस युग की साहित्यिक परम्पराओ और मान्यताओ का सकेत मिलता है । गाथा, गीत, कथा व पहेली आदि का प्रचलन कदला के इस कथन से ज्ञात होता है—

कामकदला इम कहइ, अजी अछइ बहु राति
गाहा गूढा गीयरस, कहइ को नवली बाति ।। 260 ।।

कामकदला यह भी कहती है कि बुद्धिमान व्यक्ति गीत गाथा कहते और विनोद करते हुये समय व्यतीत करते है जबकि मूर्ख नीद या कलह मे समय बरबाद करते है ।[6]

विद्वान व्यक्ति को यश और आदर मिलता था । माधव को राजा कामसेन उसकी कला चतुराई से प्रसन्न होकर मुकुट के अलावा सभी शृंगार (आभूषण) दे देता है और देश विदेशों मे माधव का बहुत सम्मान होता है ।[7]

---

1. जोवइ इन्द्र सभा सुर मिली, नाचइ बाल प्रेम पूतली
   बाजइ तन्त्री बीणि सरताल बत्री सइ मिलि अपछर बाल ।। 107 ।।
   मोडइ अंग नइ तोडइ ताल, मनि संकर अपछर तत्तकाल ।। 108 ।।
2. दोहा स ख्या ।। 105, 112
3. बार परवाजि बजावण हार, जिण्हि त्रिण्हि अेकण दिसि सार
   पूरब साहमुं ऊभउ सही बाबउ ताम अंगूठउ नही ।। 183 ।।
4. सात स्वर षटराग विशाल मिलि छत्रीसइं रागिणी बाल
   चउरासी श्रुति तणा प्रकार, ग्राम अठारह तणा विचार ।। 145 ।।
   मा. का. चौ.
5. मारवणी मगता विया मारू राग निपाइ ।। 270 ।।
   ढो मा. चौ.
6. गीत विनोद रस पंडित दीह लीहंति
   कइ निद्रा कइ कलह करि मूरख दीह गमति ।। 263 ।।
   मा. का, चौ.
7. मुगट टालि दीजउ सिणगार, दीधउ माधव नइ तिणिवार
   चतुराइ विद्या परिमाणि देसि विदेसि हुय बहुमाण ।। 187 ।।

धर्म

कुशललाभ के कथा-साहित्य में हमे जैन धर्म का विस्तृत वर्णत मिलता है। प्रारम्भ से ही जैन लेखकों का रचना करने का मुख्य उद्देश्य ही यही था कि सुन्दर कथाओं का आश्रय लेकर जैन धर्म को जनसाधारण तक पहुँचाया जाये। अतः इन कथाओं में जैन सिद्धान्तों के प्रतिपादन के साथ-साथ दान, शील, तप के माहात्म्य का प्रमुख रूप से उल्लेख मिलता है।

माधवानल कामकंदला व ढोला मारवणी चौपई के पात्र हिन्दू पात्र है और वे हिन्दू-धर्म प्रवृत्ति से परिचालित है। इनमे धर्म का वाह्य रूप अधिक दिखाई देता है। साधारण लोग धार्मिक अन्ध-विश्वासो से जकड़े हुए थे। तन्त्र-मन्त्र के अतिरिक्त पौराणिक अवतारों और देवी देवताओं के प्रति जनता की गहरी आस्था थी। पौराणिक अवतारो और देवी देवताओ मे विश्वास था।' 'माधवानल कामकंदला चौपई' मे भगवान पुरोहित को स्वप्न मे पुत्र प्राप्त होने का वरदान देते हैं।[1] माधवानल कामकदला चौपई' मे महाकाल के मन्दिर का उल्लेख मिलता है।[2] इससे ज्ञात होता है कि जनता ही नही राजा लोग भी मन्दिरों मे पूजार्थ जाते थे। महाकाल के मन्दिर को देखने मात्र से दुख और विषाद नष्ट हो जाता है इसीलिये राजा विक्रमादित्य प्रात. काल ही देव की वन्दना हेतु आता है और वह महाकाल के शिव को प्रणाम कर परिक्रमा करता है—[3]

> महाकाल ईश्वर प्रसाद, दीठइ जायइ दुख विषाद
> राजा देव जुहारण भणी सुप्रभाति आविउ पुर धणी ॥ 478 ॥

भारतीय नारी की भी भगवान के प्रति प्रारम्भ से ही दृढ़ आस्था रही है। कुमारिया अच्छे व मनवाछित वर प्राप्ति के लिए गौरी देवी की पूजा किया करती थी। मारवणी भी मन्दिर जाती है।[4] परन्तु कवि ने यह स्पष्ट नही किया है कि वह मन्दिर किस देवता का था, अवश्य ही शिव मन्दिर रहा होगा। 'भीमसेन राजहंस चौपई, मे तो त्रिपुरा देवी को मनवाछित वर देने वाली कहा गया है।[5]

---

1 अेक राति प्रोहित दुखधरी सूनउ, सुहणंइ आव्यउ हरि
साभलि प्रोहित संकरदास। हूं तूठउ तुझ पूरउ आस ॥ 50 ॥
माधवानल कामकंदला चौपई

2. दोहा संख्या 474

3. महाकाल हर प्रणमी करी, भमती दियइ फिरइ देहुरी ॥ 479 ॥

4 सही समांणी साथि करि, मन्दिर कूं मल्ह पत्त
ढोला मारवणी चौपई ॥ 228 ॥

5. इण अवसरि तिणि पुर आरांम, तिण महि त्रिपुरा देवी ठांम
कंत काजिजे सेवा करइ, ते कन्या वांछित वर वरइ ॥ 102 ॥
भीमसेन राजहंस चौपई ई. 1217

मनवांछित वर देने वाली देवी की पूजा और सेवा राजकुमारी मदन मंजरी करती है[1] प्रतिमती राजकुमारी भी इंद्र महोत्सव पर गोरी पूजा के लिये जाती है।[2] ऐसी ही एक देवी चक्रेश्वरी का नाम भी भीमसेन राजहंस में आया है। रूपमती कुमारी भी मनवांछित वर के लिए उस देवी की पूजा करती है और अपने भावी पति के चिह्न देवी से पूछती है।[3] आकाश वाणी से देवी संकेत करती है—

जस मस्तकि रे कुसम वृष्टि अंबर थकी
वर सन्ता रे देषइ ते वर पारषी ।। 497 ।।

सामान्य जनता पूजा अर्चना के अतिरिक्त तीर्थाटन में भी विश्वास करती थी। 'ढोला मारवणी चौपई' में राजा नल पुत्र प्राप्ति के लिए पुष्कर यात्रा करता है—

इक परदेसी इम ऊचरइ जउ पुष्कर तणी जात्रपति करी
कुटुँब सहित पहुचउ तिणि थानि तो सही हुवे पुत्र सन्तान ।। 148 ।।

काव्यारम्भ में सरस्वती वंदना[4] से या शत्रुँजय तीर्थ यात्रा महत्व[5] तथा जिनेश्वर स्वामी की वंदना[6] से किया गया है। मूर्ति पूजा का उस समय महत्व था। मन्दिर जाना तो मूर्ति पूजा का द्योतक है ही साथ ही कवि ने बताया है कि जिन स्वामी की प्रतिमा की पूजा करने से इस जन्म मे तथा दूसरे जन्म मे भी सुख प्राप्त होता है।[7] इसमे कवि ने जन्म जन्मान्तर बाद और पूर्व भव के पाप पुण्यो मे अटूट आस्था भी व्यक्त की है।[8]

---

1. दोहा संख्या 103 भीमसेन राजहंस चोपई ग्र. 1217
2. गउरी पूजिवा ते वनि गई नदी परइ तव सध्या थई ।। 454 ।।
3. दोहा संख्या 494, 495
4. देवि सरसति देवि सरसति सुमति दाताव
   सकल सुरासर सामिनी सुणि माता सरसति
   विनय करीनइ वीनवुँ मुझ धउ अविरल मत्ति
   ढोला मारवणी चोपई
5. श्री सित्रंजय गिरि सिखरि रिख यादव जिनराज
   पहिली प्रणम तासु पय जिम सीझइ सवि काज
   भीमसेन राजहुस चोपई ग्र' 1217
6. श्री सिद्धारथ कुल तिलक चरम जिणे सरवीर
   पाय जुगल प्रणमी करी, सोवन वर्ण सरीर
   तेजसार रास ग्र' 26546।
7. प्रतिमा जिननी जिन परइ आराहइ एकंत
   इस भवि पर भवि सुख लहै, इम भाखई अरिहंत ।। 3 ।।
8. तेजसार पूछै प्रभु पासि प्रभु मुझ पूरवभव परकासि
   कहइ केवली सांभली भूप, पूरव भव ताहरूँ सरूप ।। 372 ।।

कर्म तणी गति अति कठिन मन चींतवै कुमार
किहां राज रिद्धिपुर नयर, किहा अटवी कंतार ।। 76 ।।
जिण अवसर जेणइ समइ जीवकमायु' जेह
तिणि तिणि बेला ते लहै सुख दुख नहीं सन्देह ।। 77 ।।

जैन मुनि स्वयं तो वीतराग होते ही हैं अतः ससार की नश्वरता और क्षणिकता का बोध कराते हुये अपने श्रावकों को भी वीतराग होने का उपदेश देते है। 'तेजसार रास' मे राजकुमार तेजसार मुनि सुव्रत स्वामी से दीक्षा लेते हैं।[1] 'भीमसेन राजहंस चौपई' में भीमसेन तथा राजहंस रिषि श्रीराम से दीक्षा ग्रहण करते हैं।[2] शुद्ध ध्यान, संयम, निर्मल मन शुद्ध भाव, दान, शील तप, दया आदि का महत्व ही इन कथाओं में मुख्य रहा है।[3]

दर्शन

कुशललाभ का समस्त कथा-साहित्य लौकिक प्रेम से सम्बद्ध ईश्वर की प्रार्थना से प्रारम्भ होता है। मंगलाचारण में निराकार ब्रह्म की आराधना मिलती है। सरस्वती ब्रह्मा शिव देवी जिनेश्वर आदि की बन्दनायें जैन और सनातन धर्म के सामंजस्य की प्रतीक हैं। इन कथाओं मे धार्मिक सहिष्णुता का भारतीय दृष्टिकोण लक्षित होता है।

इन कथाओं मे सूफियो की तरह कट्टर एकेश्वरवाद या अद्वैतवाद नहीं मिलता उन्होंने सभी देवीदेवताओ की आराघना साकार निराकार दोनों रूपों में की है—

देवि सरसति देवि सरसति सुमति दातार
कास मीर मुख मंडणी ब्रह्म पुत्रिकरिवीण सोहइ
मोहण तरुवर मंजरी मुख मयक त्रिहु भुवन मोहइ
पय पंकय प्रणमि करी आणी मनि आणंद
सरस चरित शृंगार रस पभिणि सिउ परमाणंद ।। 1 ।।

---

1. जिनवर वाणी सुणी विसाल प्रतिबूधउ तत्रिखण भूपाल
जाण्यो एह अथिर संसारि अति दुरलभ मानव अवतार ।। 398 ।।
श्री मुनि सुव्रत स्वामी पासि चारित्र लीधउ उल्हासि
छठ छठ तप करइ पारणंउ सुखि पालइ संयम आपणु ।। 401 ।।
2. रिषि श्रीराम अंत निजल ही साथ ही भीमसेन रिषि सही
सिद्धाचलइ संथारव करी शुद्ध भावि पांमी सिवपुरी ।। 603 ।।
आउ कर्म सपूरउ करी निर्मल भाव आप मनि धरी
सिद्धशिला प्रभु उत्तम ठांमणां राजहंस पाम्यउ निर्वाण ।। 61९ ।।
भीमसेन राजहंस चौपई प्रे. 1217
3. दोहा संख्या 574 से 618 तक

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि ये कथा काव्य अध्यात्मिक पक्ष से सर्वथा शून्य हों । इन आख्यानों में कर्म और भाग्य को प्रधान माना गया है, जो भारतीय धार्मिक दृष्टिकोण का एक प्रधान अंग है । प्रारब्ध पर विश्वास और ईश्वर पर आस्था दोनों ही इन काव्यों में एक रूप में देखने को मिलते हैं । यही विश्वास आगे चलकर संसार की अस्थिरता और क्षणिकता के विश्वास मे परिणत हो जाता है—

जाण्यो एह अथिर संसारि अति दुर्लभ मानव अवतार ।। 398 ।।
'तेजसार रास'

कथा के अंत में इनका आध्यात्मिक पक्ष महात्म्य वर्णन में निखरा है—

श्री गुरु मुखि जेणी परि सुण्यउ तिणि परिएह चारितमइ भण्यइ
गुण भणइ गुणइ श्रवणे सामलइ तेहना सहू मनोरथ फलइ ।। 623 ।।
भीमसेन राजहंस चौपई

कुशललाभ के समस्त कथा काव्यो मे इसी बात की ओर सकेत किया गया है, कि इनके पढने सुनने वालों को मनोवांछित सुखो की प्राप्ति होती है ।

इसके अतिरिक्त इन कथाओ में सुनने वाले को मन्त्र, भूत प्रेन, शक्ति, सिकोत्तरी व्यंतरी तथा अन्य कई सिद्धियों भी प्राप्त होती हैं ।

'ढोला मारवणी चौपई' में योगी योगिन अभिमन्त्रित जल से ही मारू को जीवित करते हैं—

पाणी पयउ गुणनइ मत्र वली अनेरा कीया तन्त्र
मारवणी तिहां साजी थई जोगिणि मनि हरषि महमही ।। 595 ।।

'माधवानल कामकंदला चौपई' मे बेताल पाताल लोक से अमृत लाकर नायक नायिका को जीवित करता है ।[1]

'तेजसार रास' में तो मन्त्र तन्त्र जनित विद्याओं का अनेक बार उल्लेख हुआ है । राक्षस तेजसार को दो विद्या सिखाता है—

मन्त्र भणी नइ बांधइ मूंठि प्राण करी मूंकसी जस पूठि ।। 51 ।।
वीजीवली कटक थंभिणी मन्त्र सकति न सकइ हो हणी ।। 52 ।।

इस प्रकार कवि कुशललाभ अपने समस्त कथा काव्यो में समाज व सस्कृति का सजीव एवं वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करने में पूर्णत: सफल हुये हैं ।

---

1. पातालइ पहुतउ बेताल, आण्यउ अमृतरस असराल
लेई माधव नइ मुखि दीयउ तिसइ विप्र माधव जीवीयउ ।। 598 ।।
माधवानल कामकंदला चौपई

अष्ठम अध्याय

कथानक रूढ़ियाँ

कथानक-रूढ़ि

अनुकरण मानव की प्रवृति है। विभिन्न कथा-कहानियों में बार-बार प्रयुक्त होने वाली एक जैसी घटनाओं एवं विचारों की, जो लोक को रुचिकर लगते हैं, एक परम्परा चल पड़ती है। साहित्य एवं समाज में प्रयोग की यह प्रचुरता एवं अनुकरण की प्रवृत्ति विभिन्न रूढ़ियों की जनक बन जाती है। साहित्य में भी पूर्व परम्परा का पालन एवं घटना का निर्वाह होता है जिन्हें रूढ़ि या अभिप्राय कहा जाता है।

कथानक रूढ़ियाँ कथा से सम्बन्ध रखने वाली रूढ़ियाँ हैं, जिनका घटना संयोजन में अधिक हाथ रहता है। कथा के सुयोजन के लिये कृतिकार जहाँ अपने विवरण आदि से संतुष्ट नहीं होता, वहाँ वह कथानक में विभिन्न प्रकार की रूढ़ियों का प्रयोग कर देता है, जिससे कथा प्रवाह तो अक्षुण्ण रहता ही है, साथ ही कृतिकार का कार्य भी सरल हो जाता है। अतः इसमे यह संभावना भले ही रहे कि इन कथानक रूढ़ियों की बौद्धिक व्याख्या समझ में न आये, किन्तु पाठक साहित्यिक सौन्दर्य की सर्जना एवं प्रभावोत्पादकता से प्रभावित हुये बिना नहीं रह पाते। इसी कारण इनकी नियोजना हर प्रकार के साहित्य में पाई जाती है, विशेष रूप से लोकोन्मुखी साहित्य में।

इन कथानक विशिष्टियों के लिये पाश्चात्य साहित्य में 'मोटिफ' शब्द प्रयुक्त हुआ है। हिन्दी में इसके लिये कथा-परिधान, मूल अभिप्राय, रूढ-तंतु, प्रयुक्ति, प्ररूढ़ि आदि संज्ञायें कतिपय विद्वानों ने दी है। नवीनता प्रेमियों द्वारा प्रतीक, प्रयोजना, उपलक्षणा आदि सांकेतिक शब्द भी कथानक रूढ़ि के स्थानापन्न रूप में प्रयुक्त हुये हैं।[1] किन्तु 'मोटिफ' शब्द के अनुकूल अर्थ का प्रकाश न करने के कारण ये शब्द अधिक प्रचलित नहीं हुये हैं।

---

1. डा० नामवरसिंह : साहित्य के विकास में अपभ्रंश का योगदान पृ० 313

हिन्दी में 'कथानक-रूढ़ि' शब्द अंग्रेजी के 'फिक्शन-मोटिफ' का पर्याय होकर आया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' में ऐतिहासिक चरित काव्यों पर विचार करते हुये लिखा है—'ऐतिहासिक चरित का लेखक संभावनाओं पर अधिक बल देता है। संभावनाओं पर बल देने का परिणाम यह हुआ कि हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति और घुमाव देने के लिये कुछ ऐसे अभिप्राय दीर्घकाल से व्यवहृत होते आ रहे हैं, जो बहुत थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक-रूढ़ि में बदल गये हैं।[1] इसी प्रसंग में द्विवेदी जी ने सर्वप्रथम विद्वानों का ध्यान भारतीय कथानकों की कतिपय अत्यन्त प्रचलित रूढ़ियों की ओर आकृष्ट किया है।

'शिप्ले' के शब्दों में 'अभिप्राय छोटे से छोटा और पहचान में न आने वाला वह तत्व होता है जिसके उपयोग से अपने आप मे एक कहानी तैयार हो जाती है'।[2] भारतीय कथानकों में विद्यमान ऐसे अभिप्रायों पर वे आगे लिखते हैं कि भारतीय कथाओं मे ऐसे अनेक लघु-कथा व्यंजक प्रतीकों के प्रयोग हुये हैं। कथाओं मे प्रयुक्त होने वाले इन प्रतीकों को कथात्मक 'मोटिफ' अभिप्राय या कथानक रूढ़ि कहा जाने लगा है। धीरे-धीरे कथाओं में ऐसे अनेक सजातीय कथात्मक प्रतीकों के संयोग से कथात्मक 'टाइप' बन जाते हैं।[3] कीथ के मतानुसार जिस प्रकार परम्परा प्राप्त अलौकिक विचारों ने अनेक काव्य सम्बन्धी अभिप्रायों को उत्पन्न किया, उसी प्रकार कथाओं में इससे कुछ अधिक व्यापक विचारों की प्रायः होने वाली आवृत्ति ने भारतीय काल्पनिक कहानियो में अनेक अभिप्रायों को जन्म दिया है।[4] डा० धीरेन्द्र वर्मा एवं उनके सहयोगियों का विचार है कि प्रत्येक देश के साहित्य में भी अनुकरण तथा अत्यधिक प्रयोग के कारण कुछ साहित्य-सम्बन्धी रूढ़ियाँ बन जाती हैं और यांत्रिक ढंग से उनका प्रयोग साहित्य में होने लगता है। इन सब रूढ़ियों को साहित्यिक-अभिप्राय कहते हैं।[5]

लोक साहित्य के अनन्य शोधक डा० सत्येन्द्र ने रूढ़ि की व्याख्या इस प्रकार की है—'रूढ़ि और अभिप्राय शब्द का प्रयोग एक दूसरे के पर्याय के रूप मे किया जाता है। अभिप्राय जिसे अंग्रेजी में 'मोटिफ' कहते हैं, उस शब्द अथवा एक ही ढाचे मे ढले हुये उस विचार को कहते हैं जो समान परिस्थितियों में अथवा समान मनः स्थिति में और प्रभाव उत्पन्न करने के लिये किसी एक कृति अथवा एक ही

---

1. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना 1952 ई० पृ० 74
2. शिप्ले : डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिट्रेचर. पृष्ठ 247
3. डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिट्रेचर : पृ० 248
4. ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर : पृ० 343 आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1948
5. हिन्दी साहित्य कोष भाग 16 पृष्ठ 186

जाति की विभिन्न कृतियों में बार-बार आता है ।[1] इस प्रकार किसी अभिजात अथवा लोक साहित्य की कृति में कथा अथवा कथा का बोध कराने वाला अभिव्यंजक तत्व 'कथानक-रूढ़ि' कहलाता है ।[2]

साहित्य के क्षेत्र में अनुकरण तथा अत्यधिक प्रयोग के कारण जो रूढ़ियाँ प्रचलित हो जाती हैं और यांत्रिक ढग से जिनका प्रयोग होने लगता है, उन्हें प्रायः 'साहित्यिक अभिप्राय' के नाम से जाना जाता है ।

संस्कृत कवियों द्वारा ग्रहण की गई जिन रूढ़ियों को 'कवि-समय' कहा गया है वे वस्तुतः भारतीय साहित्य की काव्य रूढ़ियाँ ही हैं । कीथ ने सस्कृत साहित्य में कवि शिक्षा पर विचार करते हुये भारतीय साहित्य में प्रचलित 'कवि-समय' के लिये मौटिफ शब्द का ही प्रयोग किया है । इसी प्रकार मूर्ति, चित्र और सगीत कलाओं की भी अपनी विभिन्न रूढ़ियाँ होती है और इनमे बराबर इनका उपयोग होता रहता है । लोक कथाओं में रेखांकन और रूपावतरण की विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित होती हैं, जिनकी पुनरावृत्ति अथवा जिनके संस्करण द्वारा उक्त कथाओं में नूतन शैलियों का विकास होता रहता है । इन पद्धतियों को कथा-रूढ़ि की संज्ञा दी जा सकती है । इस प्रकार लोक-सगीत और लोक-गीतों की भी अपनी स्वतन्त्र रूढ़ियाँ अथवा परम्परागत विशिष्ट प्रणालियाँ होती हैं । रूढ़ियो का सर्वाधिक प्रचलन लौकिक कथा कहानियो के क्षेत्र मे हुआ है और इस रूप मे इन्होंने विद्वानों का ध्यान बहुत अधिक मात्रा मे आकृष्ट किया है ।[3]

किसी देश की साहित्यिक रूढियो के अध्ययन के लिये उस देश के साहित्य मे प्रचलित साहित्य सम्बन्धी अभिप्रायों का अध्ययन आवश्यक होता है । सामान्यतः साहित्यिक अभिप्राय और साहित्य-रूढ़ि शब्द का प्रयोग एक दूसरे के पर्याय के रूप मे ही किया जाता है ।

कथानक रूढ़ियों का उद्भव संभावना को लेकर हुआ है । शुक मानव वाणी का अनुकरण कर सकता है । इसी सभावना को लेकर काव्य में उसे 'सकलशास्त्र विलक्षण' ही बना दिया है । कालान्तर मे इसे अन्य सर्जकों ने भी स्वीकार किया और यह पुनरावृत्ति कथानक रूढ़ि बन गई ।

कथानक रूढियों का काव्य में समुचित प्रयोग न होने पर इनसे अहित की सम्भावना रहती है । अलकार काव्य की सुषमा है किन्तु जिस प्रकार उसके कृत्रिम प्रयास से काव्य के प्रेत बन जाने का भय होता है, उसी प्रकार कथानक-रूढ़ियों का अलंकृति मात्र के लिये प्रयोग काव्य प्रयोजन में साधक की अपेक्षा बाधक बन जाता है ।

1. लोक साहित्य विज्ञान : डा० सत्येन्द्र पृ० 71
2. लोक कथाओं की कुछ प्ररूढ़ियाँ (डा० कन्हैया लाल सहल की पुस्तक की भूमिका) पृ० 9
3. स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फोक-लोर, न्यूयार्क 1949 वाल्यूम 2, मोटिफ, पृ० 753

भारतीय कथा साहित्य को लेकर इन कथानक रूढ़ियों के वैज्ञानिक अध्ययन का सूत्रपात अर्थात् प्राच्य विद्या विशारद् जर्मन मनीषी बेनिफी एवं वेबर तथा विन्टर नित्स आदि ने किया। इस क्षेत्र में विशेष रूप से अध्ययन एवं अन्वेषण करने वालों में मॉरिस ब्लूम फील्ड, पेंजर, टॉनी जैकोबी तथा डब्लू. नॉरमन ब्राऊन आदि उल्लेखनीय विद्वान रहे हैं। कथानक रूढ़ियों के प्रचुर प्रयोग की बात भारतीय साहित्य तक ही सीमित नहीं है, अपितु फारसी, यूनानी एवं अन्य पाश्चात्य देशों के साहित्य में भी ये प्राप्य हैं। श्री ए. बी. कीथ ने भारतीय एवं यूनानी प्रेमाख्यानों में समान रूप से उपलब्ध ऐसी अनेक कथानक रूढ़ियों की ओर संकेत किया है। हिन्दी में भी इस ओर काफी प्रगति हो चुकी है।

कथा सम्बन्धी अभिप्रायों की डा० ब्रजविलास श्रीवास्तव ने दो कोटियाँ बताई हैं।[1] कुछ अभिप्राय प्राय: किसी न किसी ऐसे लोक-विश्वास तथा धारणा पर आधारित होते हैं, जिन्हें वैज्ञानिक दृष्टि से यथार्थ नहीं कहा जा सकता। कवि समयों की तरह वे भी अलौकिक होते हैं और परम्परा प्राप्त होते हैं। 'परकाय प्रवेश' लिंग परिवर्तन 'सत्यक्रिया' किसी बाह्य वस्तु में प्राण का बसना' आदि ऐसे ही अभिप्राय हैं। इनका उपयोग मुख्यरूप से लोक कथाओं मे होता है और साहित्य में जहाँ कहीं भी इनका उपयोग हुआ है, लोक कथाओं के प्रभाव के कारण ही हुआ है।

इनके अतिरिक्त कुछ अभिप्राय ऐसे भी होते हैं जिन्हें बिल्कुल असत्य तो नहीं कहा जा सकता किन्तु वास्तविकता की दृष्टि से उन्हें बिल्कुल सच्चा भी नहीं कहा जा सकता। हाँ, यथार्थ से इनका सम्बन्ध कुछ न कुछ अवश्य रहता है। 'किसी विशाल पक्षी की पूंछ पर बैठकर यात्रा करना', देवदूत, श्वेतकेश, स्वप्न में भावी नायिका का दर्शन, समुद्र यात्रा के समय जलपोत का टूटना या डूबना और काष्ठ-फलक के सहारे नायक नायिका की जीवन रक्षा, उजाड़ नगर का मिलना, आदि ऐसे ही अभिप्राय हैं। इस प्रकार के अभिप्राय मुख्य रूप से कवि कल्पित होते है। अनुकरण तथा अत्यधिक प्रयोग के कारण ही वे रूढ़ि बन जाते हैं। इन अभिप्रायों के आधार पर हमें ज्ञात होता है कि हिन्दी के मध्यकालीन प्रेमाख्यानक काव्यों की कथायें न तो अरब, फारस, तुर्किस्तान आदि इस्लामी देशों में प्रचलित सूफी प्रेमाख्यानों का अनुकरण हैं और न तत्कालीन लोक प्रचलित कथाओं का साहित्यिक रूपान्तर। वे भारतीय शिष्ट कथा साहित्य की जीवन परम्परा की देन है और भारतीय साहित्य के परम्परागत अभिप्रायों को ही लेकर उनकी कथावस्तु का निर्माण किया गया है, यही कारण है कि सूफी और हिन्दू प्रेमाख्यानक काव्यों में उद्देश्यगत और साम्प्रदायिक भेद होते हुये भी उनकी कथावस्तु का रूपाकार बिल्कुल समान है। रोमांचक कथा प्रबन्धों के रूढ़ अभिप्रायों को समान रूप से कथा-संगठन का

---

1. मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक रूढ़ियाँ : ले. ब्रजविलास श्रीवास्तव—पृ० 3, प्रथम संस्करण 1968

आधार बनाने के कारण इस प्रकार की एक स्वतन्त्र रूढ़ि का जन्म स्वाभाविक ही है।

डा० ब्रज विलास श्रीवास्तव ने 'मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक रूढ़ियाँ' में मुख्य रूप से कथानक रूढ़ियो को दो भागों में विभाजित किया है—

1. (क) प्रेम मूलक अभिप्राय
   (ख) रोमांचक अभिप्राय

2. लोकाश्रित अभिप्राय।[1]

डा. कन्हैयालाल सहल ने भी कथानक रूढ़ियों का बड़ा ही सारगर्भित विवेचन किया है।[2]

शिष्ट कोटि के साहित्य में मिलने वाली कथानक रूढ़ियाँ मूलत: लोक साहित्य और मुख्यत: लोक कथाओं की देन है। ऐसी रूढ़ियाँ कम ही मिलेगी जिनका परम्परा से प्रचलित लोक-कथाओं से कोई सम्बन्ध न हो। कथानक रूढ़ियों के आदि स्रोत के रूप में कथानकों का मूलाधार प्रचलित लोक कथा होती है।

डा. सत्येन्द्र[3] के शब्दों में इन लोक कथाओं का आधार लोक-मानस होता है। इनमें हमारी आदिम मनोवृत्तियाँ, आस्था और विश्वास वंशानुक्रम से संचरित होती रहती हैं। इस प्रकार ये हमारे सांस्कृतिक इतिहास, आदिम मानव की मनोवृत्तियाँ उनकी आस्थाओं और विश्वासों रीति-रिवाजों और सामाजिक संस्थाओं के अध्ययन की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण होती हैं। लोक साहित्य के सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान स्टिथ थामसन ने लोककथाओं की महत्ता को व्यक्त करते हुये उन्हें मानव जाति के सांस्कृतिक इतिहास का महत्वपूर्ण भाग बतलाया है।[4]

इन लोककथाओं के क्षितिज का विस्तार भी बहुत व्यापक होता है। देश, काल के अनुरूप वातावरण एवं मानसिक स्थितियों की भिन्नता के फलस्वरूप एक ही लोककथा के अनेक रूपान्तर हो जाते हैं। इस दृष्टि से 'भारतीय लोक-कथाओं का अपना विशेष महत्व है। उनकी प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध है कि

---

1. मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक रूढ़ियाँ—पृ० 111
2. देखिये—लोककथाओ की कुछ रूढ़ियाँ
3. लोक साहित्य का विज्ञान : डा० सत्येन्द्र पृ० 71
4. "The Folk tale is an important part of the cultural history of the race. The anthropologist and all students of human institution should be able to use the growing mass of life histories of various tales to clarify their own findings. The number of the stories which they understand thoroughly, the Clearer and more accurate becomes, their view of the entire intellectual and aesthetic life of man."

   The Folk tale—By Stith Thomson Pg. 448

उनके प्रमुख लक्षणों की पुनरावृत्ति प्रायः अन्य कथाओं में होती रहती है। यह एक वास्तविकता है। पंजाब, बंगाल, बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र अथवा मालवा आदि स्थानों में अनेक कथायें एक दूसरे से वस्तु पात्र-चित्रण और शैली मे समान होती हैं।"[1]

लोक-कथाओं की लोकप्रियता, उनकी जीवन शक्ति, जनमानस को सहज रूप से आकर्षित करने की शक्ति एव व्यापकता को ध्यान मे रखकर ही राजस्थानी कथाकारो ने अपने कथानकों का आधार लोक-कथाओ को बनाया। कथानको के आदि स्रोत के रूप मे नाना प्रकार के लोकाचारो, लौकिक विश्वासों और लोक चिन्ता द्वारा उत्पन्न आश्चर्य जनक कल्पनाओं को भी स्वीकार किया जा सकता है। इन सबका उपयोग लौकिक एव निजन्धरी कथा कहानियो में बराबर होता रहा है और फिर लोक साहित्य मे अनेक बार प्रयुक्त एवं रूढ़ होकर यही विश्वास एवं कल्पना के अभिजात साहित्य तक पहुँचा हैं और यहाँ आकर निश्चित प्रकार की कथानक रूढ़ियो के रूप मे परिवर्तित हो गया है। लोकाचारों, लोक-विश्वासो और लोक-कथाओं से ग्रहण की जाने वाली रूढियो के अतिरिक्त भारतीय कथानको मे कुछ रूढियाँ कवि-कल्पित भी मिलती हैं।

तात्पर्य यह है कि, "प्रत्येक देश के साहित्य मे अनुकरण तथा अत्यधिक प्रयोग के कारण कुछ साहित्य सम्बन्धी रूढ़ियाँ बन जाती है और यांत्रिक ढंग से उनका प्रयोग साहित्य में होने लगता है, इन सभी रूढ़ियो को साहित्यिक-अभिप्राय कहते हैं।"[2]

कथानक शिल्प के तत्वों के साथ ही कुशललाभ के कथा-साहित्य में कथा-विकास में प्रयुक्त कथानक-रूढ़ियो का भी विशिष्ट महत्व है। कवि के कथा-गठन में परम्परागत काव्य रूढ़ियो का गुम्फन वैशिट्य अत्यन्त ही सार्थक है। कथानक को गति प्रदान करने एव एक निश्चित दिशा की ओर अग्रसर करने के लिये कवि ने परम्परागत कथानक रूढियो का आश्रय लिया है। कथा के वर्णन तथा गठन शिल्प की दृष्टि से इन कथानक रूढ़ियों का अत्यधिक महत्व है। ये कथानक रूढियाँ भारतीय काव्य की परम्परागत निधि है। ये रूढ़िगाँ कथानक मे वांछित विकास, विस्तार तथा मोड़ देने सर्वत्र सहायक सिद्ध हुई है।

ढोला मारू की कथानक रूढ़ियाँ

1. स्वप्न दर्शन जन्य प्रेमासक्ति

अपरिचित और अपूर्व दृष्ट नायक नायिका को स्वप्न या चित्र में देखकर नायक या नायिका के मन मे प्रेम का उदय भारतीय कथाओं का एक अत्यन्त प्रचलित

---

1. भारतीय लोक साहित्य ; डा. श्याम परमार : पृ. 167
2. हिन्दी साहित्य कोश : भाग 16 । 186

अभिप्राय है। भारतीय साहित्य में नायक-नायिका के पूर्वानुराग को बहुत महत्व दिया गया है। अतः प्रत्यक्ष मिलन के पूर्व ही प्रेमियों में अनुराग उत्पन्न कराने के लिये कथाकारों ने स्वप्न या चित्र दर्शन जन्य प्रेम के अभिप्राय का सहारा लिया है। यथार्थ में देखा जाये तो स्वप्न-दर्शन-जन्य-प्रेम कुछ अजीब सा लगता है। स्वप्न में देखे गये नायक नायिका की वास्तविक उपस्थिति पूर्ण यथार्थ नहीं है। जिसको पहले कभी देखा ही नहीं उसके लिये इस बोध के पूर्व ही प्रेमोन्माद की स्थिति असंभव सी प्रतीत होती है।

मध्यकालीन हिन्दी प्रेमाख्यानों में अधिकांश नायक नायिका का पहले प्रत्यक्ष मिलन हुआ, फिर स्वप्न दर्शन या चित्र दर्शन-प्रेम और विरह-जन्य उन्माद का भी विस्तृत वर्णन हुआ है। उदाहरण के लिये नूरमुहम्मद की इन्द्रावती, पुहुकर कृत रस रतन, कासिमसाह् दरियावादी कृत हंस जवाहर, मुरलीदास कृत उषा चरित और जीवन लाल नागर के उषाहरण को लिया जा सकता है। इन्द्रावती में नायक कुमार को स्वप्न में एक उज्जवल दर्पण दिखाई देता है। उस दर्पण में चन्द्रमा से भी अधिक उज्जवल एक सुन्दरी को वह देखता है—

एक रात मह कुवर सरेखा। सपन बीच दर्पण एक देखा

× × × × ×

दर्पण मो एक सुन्दर नारी। देखेहु चन्द हुते उजियारी।। 3।।

बुद्धिमान मन्त्रियों द्वारा स्वप्न की अविश्वसनीयता का उपदेश दिये जाने पर भी उसके इस उन्माद मे कोई कमी नही होती। यही स्वप्न दर्शित-कन्या बाद में वास्तविक राजकुमारी सिद्ध होती है और उसके देश नाम आदि का पता राजकुंवर को एक सिद्ध योगी द्वारा मालूम होता है।[1] काव्य रस रतन में स्वप्न में ही नायक और नायिका को एक दूसरे के नाम, वेश, देश आदि का ज्ञान भी करा दिया है।[2] रस रतन में वर्णित स्वप्न दर्शन जन्य प्रेम की विशेषता यह है कि इसमें कामदेव और रीति नायक सूरसेन और नायिका रंभावती का रूप धारण कर स्वप्न में उनके सम्मुख उपस्थित होकर एक दूसरे के हृदय में प्रेम उत्पन्न करते हैं।

उषा की कथा, उषा हरण और उषा चरित मे भी उषा अनिरुद्ध को स्वप्न में देखती है और विरह व्याकुल हो जाती है। यहाँ पार्वती के वरदान के कारण[3] उषा को अनिरुद्ध की वास्तविक स्थिति का निश्चय तो रहता ही है साथ ही यह भी विश्वास रहता है कि यही व्यक्ति उसका पति होगा। अतः प्रत्यक्ष मिलन के पूर्व ही

1. इन्द्रावती स्वप्न खण्ड, दो. 14-38
2. रसरतन स्वप्न खंड
3. पार्वती ने उषा को वरदान दिया था कि जिसे तुम स्वप्न में देखोगी वही तुम्हारा पति होगा।

उषा के मन में अनिरुद्ध के प्रति आकर्षण को अस्वाभाविक और अविश्वसनीय नहीं कहा जा सकता।

रोमानी कथाओं के लिये अत्यन्त उपयोगी यह अभिप्राय हिन्दी प्रेमाख्यानों की अपनी निजी देन नही है। संस्कृत कथा साहित्य में प्रारम्भ से ही इसका उपयोग होता आ रहा है और सस्कृत साहित्य में ही इसने कथानक रूढ़ि का रूप ग्रहण कर लिया था। बाद में प्राकृत और हिन्दी कथा साहित्य मे इसका अनेक कथाकारों ने उपयोग किया।

कुतूहलकृत प्राकृत ग्रंथ 'लीलाबई कहा' में चित्रदर्शन और स्वप्न दर्शन दोनों का एक साथ प्रयोग है। लीलावती 'सातवाहन हाल' को पहले चित्र मे देखती है और चित्र में देखकर वह उससे प्रेम भी करने लगती है किन्तु विरह की भयंकर व्यथा उसे 'हाल' से स्वप्न में मिलने के बाद ही होती है।[1] यही इस अभिप्राय की विशिष्टता है। कुतूहल ने लीलावती और हाल के स्वप्न मिलन का बहुत ही श्रृंगारिक वर्णन किया है। अपनी सखी विचित्र लेखा के आग्रह पर लीलावती उस स्वप्न मिलन का वर्णन करती है।[2] लीलावती का स्वप्न दर्शन अन्य उदाहरणों से भिन्न है। यहाँ स्वप्न के लिये न तो कोई अलौकिक और चमत्कारिक आधार ग्रहण किया गया है, न स्वप्न की यथार्थता के विश्वास को ही आधार बनाया गया है। चित्र मे सातवाहन को देखने और प्रेम विभोर होने पर, चित्रकार द्वारा उसका परिचय पाने के बाद उसी की स्मृति में लीन रहने के कारण वह उसे स्वप्न मे देखती है। चित्र दर्शन की योजना के कारण नायिका का स्वप्न दर्शन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वाभाविक और यथार्थ है।

वासवदत्ता में भी इसी प्रकार नायक और नायिका दोनों एक दूसरे को स्वप्न में देखते हैं और परस्पर आकृष्ट होते हैं। नायक कन्दर्प केतु के स्वप्न का वर्णन करते हुये सुबन्धु ने स्वप्न कन्या वासवदत्ता के रूप सौन्दर्य का बहुत ही काव्यात्मक और अलंकारिक चित्रण किया है।[3]

मुल्ला जामीनुद्दीन अब्दुर रहमान रचित यूसुफ जुलेखा की कथा को आधार बनाकर लिखे गये सस्कृत काव्य कथा कौतुक में भी इसी प्रकार अदृष्टा और अज्ञात कुल नायक की नायिका जुलेखा स्वयं आश्चर्य चकित है कि अज्ञात देश के प्रिय को उसने स्वप्न में कैसे देखा और नाम से भी अपरिचित व्यक्ति को ढूंढेंगी कहां ?

अज्ञातवसतिं कान्तं स्वप्ने कस्माद्विलोकितम्।
अव्यक्त नामधेयं तं कथमन्वेषयाम्यहम् ।। 2/69 ।।

---

1. लीलाबई कहा, 828-855
2. „ „ 848-54
३. वासवदत्ता पृ. 56-79

स्वप्न जन्य अभिप्राय भारतीय व फारसी कथा साहित्य में ही नहीं पाश्चात्य कथा साहित्य में भी कथाकारों द्वारा प्रयुक्त हुआ है। 'रोमान्स ऑफ आर्ट्स डेले ब्रेटेन'[1] में नायक आर्थर एक सुन्दरी को स्वप्न में देखता है और उसके प्रेम में व्याकुल हो जाता है। टेम्पल् का 'लिजेण्ड्स ऑफ द पंजाब'[2] में राजकुमारी 'अधिक अनूप और जालालि' की कथा को देखा जा सकता है। कन्याओं के स्वप्न पुरुषों के प्रति आकर्षण और प्रेम का अभिप्राय फ्रीयर 'ओल्ड डेकन डेज'[3] तथा स्विनर्टन द्वारा संगृहीत 'इन्डियन नाइट्स इन्टरटेनमेंट' में अपने शुद्ध और चमत्कारिक रूप में प्रयुक्त हुआ है। 'इन्डियन नाइट्स इन्टरटेनमेंट' में वासवदत्ता की तरह ही नायक नायिका दोनों एक दूसरे को स्वप्न में देखते और प्रेम करने लगते हैं।

कुशललाभ कृत 'ढोला मारवणी चौपई' में भी मारवणी के हृदय में ढोला के प्रति प्रेम उसे स्वप्न मे देख लेने के बाद हुआ। सौदागर से सुनने के बाद ही मारवणी को स्वप्न मे ढोला दिखाई देता है तभी उसे विरह व्याप्त होता है जो कि स्वाभाविक व मनोवैज्ञानिक है। स्वप्न से जागते ही मारवणी प्रेमासक्त होकर ढोला के विरह से सन्तप्त हो निश्वासें भरने लगती है—

साल्हू कुंवर सुपनऊं मिल्यउ, जागि निसासउ खाय।

व्यापक दृष्टि से विचार करने पर 'भावी-प्रिय अथवा प्रिया का स्वप्न में दर्शन और आकर्षण' भविष्य सूचक स्वप्न के अभिप्राय के अन्तर्गत ही आता है। भारतीय कथाकार कथा मे चमत्कार या कुतहल उत्पन्न करने के लिये अथवा गत्यावरोध को दूर करने के लिये, जटिल स्थितियों को सुलझाने तथा कथा को नई दिशा देने के लिए प्रायः इस अभिप्राय का सहारा लेते रहे हैं।

2. प्रेम के अंकुरण में सहायक सूत्र-शुक, कुरंजा, हंस, सौदागर आदि

इस अभिप्राय का मूल तत्व रूप वर्णन करने वाले पात्र में नहीं बल्कि उस वर्णन को सुनकर नायक नायिका के प्रेमाकुल और प्राप्ति के लिये दृढ़ संकल्प होने मे निहित है। प्रेम कथाओं में नायक नायिका में प्रेम उत्पन्न करने और कथा को प्रयत्न की अवस्था तक ले जाने के लिये ही यह अभिप्राय प्रयुक्त होता है, अतः कथाकार किसी प्राणी द्वारा किसी सुन्दरी की या सुन्दर नायक की सूचना देकर प्राप्त करने की प्रेरणा दे सकता है। इस अभिप्राय की विशेषता यही है कि नायक नायिका रूप, गुण, श्रवण मात्र से ही प्रेमोन्माद और विरह की उस मनःस्थिति में पहुँच जाते है जिसमें अपने प्रिय की खोज और उसे किसी प्रकार पाने का प्रयत्न आवश्यक हो जाता है।

1, History of Fress Fiction-L. Dunlop Vol. 1, P. 258
2. लिजेन्ड्स अन्फ दी पंजाब—टेम्पल
3. ओल्ड डेकनडेज—फ्रीयर पृ. 219, 248-251

कथा सरित्सागर की कई कथायें इसी अभिप्राय से प्रारम्भ होती हैं। प्रायः किसी भिक्षु, भिक्षुणी या सन्यासिनी द्वारा किसी राजकुमारी या गन्धर्व कन्या के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर नरवाहनदत्त उसके प्रेम में व्याकुल हो उठते हैं और उसे प्राप्त करने के लिए चल पड़ते हैं। जो कार्य पद्मावत आदि प्रेमाख्यानों में शुक या हंस करता है, वही कार्य कथा सरित्सागर की अनेक कथाओं में भिक्षुणी या सन्यासिनी करती है। किन्तु 'ढोला मारू री चौपई' मे यह कार्य कथाकार ने बड़े ही कौशल से घोड़े के सौदागर से कराया है। सौदागर भी पक्षियों की तरह सर्वत्र गमन करते रहते हैं।

सौदागर का नरवर में घोड़े बेचकर पूगल आना और मारवणी के बारे मे जानकर ढोला के पुनःविवाह के विषय में रहस्योद्घाटन करना कथा में नया मोड़ देता है। यह कार्य पद्मावत मे हीरामन शुक द्वारा सम्पन्न होता है, जबकि ढोला मारू में इसके लिए सौदागर का प्रयोग हुआ है। शुक द्वारा परम्परारूढ़ तथ्य-सूचक के प्रसंग का यह राजस्थानी रूपान्तर ही है जो स्थानीय जीवन-परिवेश के संदर्भ में अधिक सजीव, स्वाभाविक और विश्वसनीय हो गया है। मध्ययुगीन राजस्थान मे घोड़ों के सौदागरो का एक राज्य से दूसरे राज्य में घोड़े लिये घूमना और राजाओं के घनिष्ट सम्पर्क में आकर उन्हें देश विदेश की खबरों से सूचित करना—सामान्य जीवन—व्यापार था। ढोला मारू में अन्य काव्यो के शुक अथवा भिक्षु-भिक्षुणी का प्रतिरूप सौदागर आता है[1] :

घोड़ा नित फेरे परभात, मास पंच सूदागर सधि
बहुत व हूंतो पुगली अवियो, लेई मोल घराने बह्यो ।। 5 ।।

मारवणी को देख वह उसके वारे मे पूछता है और ढोला के दूसरे विवाह का रहस्योद्घाटन करता है[2] .

तणी घर छै मालवणी नार, अपछर तणे जाणे उणीहार
ढोला की तणी रउ बहुप्रीत चतुर पणा लगी लागो चीत ।। 13 ।।

यही नही वह ढोला की सुन्दरता, उदारता एवं दानशीलता का भी वर्णन करता है जिसे मारवणी छुपकर सुन लेती है जिसे सुनकर मारवणी का मन ईर्ष्या-जन्य अग्नि से दग्ध हो जाता है वह वासी चदन के समान हो गई और आहें भरने लगी। उसे पपीहे के पीउ-पींउ बोलने से प्रीतम का ध्यान आता है।

3. संदेश प्रेषण में सहायक सूत्र—ढाढी, खवास, ब्राह्मण आदि

काव्यो में प्रायः पक्षियों के द्वारा नायिका के सन्देश-प्रेषण की रूढ़ि का प्रयोग

---

1. ढोला मारवणी चौपई ह. प्र.
2. वही

मिलता है । उदाहरण के लिये नल दमयन्ती काव्य में हंस नल के पास दमयन्ती का सन्देश ले जाता है । पद्मावत में यह कार्य शास्त्रज्ञ शुक द्वारा सम्पन्न होता है । नायक-नायिका के प्रेम-व्यापारों में सहायक और कथा के प्रमुख पात्र के रूप में शुक का उपयोग मुख्यतः लोक कथाओं और लोकवार्ताओं का प्रचलित अभिप्राय है ।

पक्षियो द्वारा संदेश भेजने का अभिप्राय तो मिस्र तथा ग्रीक के कथा-साहित्य में भी मिलता है, किन्तु कथाओं मे विविध रूप में पाये जाने वाले शुक-शुकी विशुद्ध भारतीय अभिप्राय है । पाश्चात्य कथा-साहित्य में किसी पक्षी के शास्त्रज्ञ होने की धारणा को अभिव्यक्ति नहीं मिली है । पशु-पक्षियो की अपनी भाषा होती है और मनुष्य उस भाषा को समझ भी सकता है ।[1]

परन्तु इस प्रकार का भी कथा-साहित्य उपलब्ध है जिसमें संदेश-प्रेषण का कार्य मनुष्यो द्वारा कराया जाता है । वह ब्राह्मण, नाई, ढाढी कोई भी हो सकता है । 'बीसलदेवरास' मे राजमती का संदेश लेजाने का कार्य ब्राह्मण करता है । 'सदेशरासक' मे इसके लिये एक पथचारी की सयोग-सिद्ध योजना की गई है, परन्तु अन्त मे नायक के अकस्मात् आगमन से उसकी आवश्यकता नहीं पड़ती । ढोला-मारू में भी मारवणी का संदेश-प्रेषण के लिये पुरोहित को बुलाया जाता है । परन्तु मारवणी के मना करने पर पुरोहित को रोक कर माँगने वालों के द्वारा सदेश भेजने को पुंगल राज तैयार हो जाते है ·

पछें प्रोहित राषीयो तेड़्या मंगणहार
जाणें भेदग गीतातणा बात करे सो विचार ।। 74 ।।

मारवणी अपना संदेश ढोला तक पहुँचाने के लिये ढाढ़ियों से अनुग्रह करती है—

मांगण हाथ संदेसडो, लख ढोला पहुँचाय
जोवन हस्ती गुंजीयो, तुं आंकुश देनी आय ।। 94 ।।

4. भावी सौत की चिन्ता

लोक-कथाओं मे और लोक-जीवन मे भी किसी एक व्यक्ति की दो पत्नियों के बीच वैर-भाव और उनके द्वारा उत्पन्न किये गये गृह-कलह की घटनायें यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाती हैं । सौतिया डाह की यह भावना विमाता विद्रोह के दृश्य भी उपस्थित करती चलती है ।

जायसी कृत 'पद्मावत' मे सपत्नियो के बीच विवाद और कलह के चित्र उपस्थित किये गये हैं । नागमती पहले तो भावी सौत की चिन्ता से सत्रस्त होकर

1- Birds and beasts have a language of their own which can sometimes be understood by human beings. is a most natural and universal motif of folk tales.Ocean of the history Panzer P. 107

हीरामन शुक का वध करना चाहती है[1] और अन्त में जब रत्नसेन पद्मावती से विवाह कर लेता है तो नागमती उससे झगड़ पड़ती है। जायसी ने सपत्नियों के बीच इस कलह और झगड़े का वर्णन अत्यन्त सरस और शृंगारिक रूप में किया है। आरम्भ में नागमती और पद्मावती के मध्य रूप-रंग आदि की स्पर्धा से सम्बद्ध विवाद चलता है और फिर दोनों झगड पड़ती हैं।[2] इस सौत-संग्राम का अन्त रत्नसेन की मध्यस्थता द्वारा होता है। वह दानो पत्नियो को एक साथ मिलकर रहने और सुख भोगने की सीख देता है।

ढोला-मारू में मालवणी नागमती का प्रतिरूप है। नागमती के समान वह भी पूगल से आने वाले प्रत्येक सदेशवाहक को मार्ग मे ही मरवा डालती है। मालवणी की इस योजना का हेतु भी सौत का ही भय है, जो सत्य है, आशंका मात्र नही। क्योंकि मालवणी जानती थी कि मारवणी ढोला की पूर्व विवाहिता पत्नी है :

पिंगल दिन प्रति पाठवे, ढोला नीरत न होय
मालवणी मारें तिहा, पिंगल पथिज कोय ॥ 59 ॥

परन्तु ढाढी किसी प्रकार मारवणी का सदेश ढोला तक पहुँचा देते है और ढोला भी मालवणी के द्वारा असंख्य बाधा डाले जाने पर भी पूगल से मारवणी को ले जाता है। मालवणी मारवणी से झगड़ पड़ती है। कुशललाभ ने सपत्नियों के बीच के इस कलह का सजीव वर्णन किया है। आरम्भ मे मालवणी और मारवणी के मध्य मारवाड़ व मालवा प्रदेश की विशेषताओं और अभावो को लेकर विवाद चलता है।[1] मालवणी कहती है—

बब्बा म देसई स मारूआ वली कुंआरी रहेस
हाथ कचोलो, सिरि घड़ो, पाणी बहत मरेस ॥ 16 ॥

× × × ×

अलि अवगुण मारू भुंय तणा, मालवणी कहीआ अतिघणा
ढोलो बात सुणी गहि गहि, हसेने मारवणी प्रते कहि ॥ 20 ॥

ढोला मालवणी से कहता है—

सुणी सुंदरि कंतो कहे मारू देस बखांण
मारवणी मल्या पछे, जाण्या जन्म प्रमाण ॥ 26 ॥

5. सिद्धि मार्ग में अवरोध

नायक-नायिका के सिद्धि मार्ग मे व्यवधान दिखाकर कथानक मे सघर्ष का सृजन किया जाता है जिससे लक्ष्य मे पात्रों की निष्ठा तो परिलक्षित होती ही है,

---

1. पद्मावत : जायसी, नागमती-सुआ संवाद खंड 1
2. पद्मावत : जायसी, नागमती-पद्मावती संवाद खंड 1
3. ढो. मा. री. दू. सं.

साथ ही कथानक में पाठक का कौतूहल एवं जिज्ञासा भी बढ़ती है। प्रत्येक कथा साहित्य में यह रूढ़ि अवश्य मिल जाती है। पद्मावत में रत्नसेन का समुद्र में भटक जाना, बेलि में शिशुपाल का कृष्ण रुक्मिणी के परिणय में रौड़े अटकाना आदि ऐसी ही कथानक रूढ़ियाँ है।

ढोला मारू में मालवणी का पूंगल से आने वाले यात्रियों को मरवा डालना,[1] ढोला के पूगल प्रस्थान के समय ऊँट का लंगड़ा हो जाना[2], पूगल के मार्ग मे ऊमर सूमरा के चारण द्वारा मारू के विषय में ढोला को भ्रामक सूचना देना[3], पूगल से लौटते समय ऊमर सूमरा का षडयन्त्र[4] आदि अनेक विघ्न रूप कथा अभिप्राय प्रयुक्त हुये हैं।

इस कथा रूढि की विशेषता यह है कि नायक इन सभी बाधाओं से बच निकलता है।

6. संदेशवाहक पक्षी या पशु

लोक प्रचलित कथा-कहानियो मे पशु-पक्षी मनुष्य से बातचीत करते हैं; उसका सुख-दुःख समझते हैं और यथा समय सहायता भी करते हैं। लोक मानस ने पशु-पक्षियों से एक स्नेह स्थापित किया है, जिसकी अभिव्यक्ति लोक-साहित्य में पूर्ण रूप से हुई है। 'शकुन्तला मे कालिदास ने मृग-शिशु और वृक्षों के साथ मनुष्य की जिस एकात्मता का चित्र खीच कर अपने को विश्ववन्द्य बना लिया है वह एकात्मता (लोक) गीतो मे (और लोक कथाओ मे भी) सर्वत्र प्रकट है। मेघदूत मे मेघ संदेश-वाहक है। गीतों मे भौरा, कोयल, तोता, चील, श्यामा-पक्षी, घटा, कौआ आदि

---

1. पिंगल दिन प्रति पाठवें ढोला नीरत न होय
मालवणी मारे तिहां, पिंगल पंथिज कोय ॥ 59 ॥
ढो. मा चौ

2. करहा तो कोडो भरू, म्हाको कह यो करेग
ढोले मारू उमह्‌यो, तु षोडो हीय रहेज ॥ 409 ॥
ढो. मा. चौ.

3. ढोला तु उमाहियो जीणि धण सुन्दरि सेन
तीणि मारू रा तन षीस्या, पंडर हुआ केस ॥ 473 ॥
ढो. मा. चौ.

4. (क) मनि हरष्यो उमर सूमरो मारू षाति कीयो मन षरो
कोमला घोड़ा साधें करी उमर चढीयो आणंद घरी ॥542 ॥
(ख) उमर मनि मारवणी मोह, ढोला उपरि मांडयो द्रोह
कूडे मन आदरि यई धणो करहो पंखी ढोला तणो ॥ 550 ॥
ढो. मा. चौ.

अनेक चर-अचर हैं जो मनुष्य के सहचर की तरह काम करते दिखाये गये हैं।[1]

प्रेम सम्बन्ध घटक के रूप मे भी पशु-पक्षियों का उपयोग किया जाता है। पद्मावत में इसका पर्याप्त उपयोग हुआ है। कल्कि पुराण में सिंघल की पद्मावती के रूप-सौन्दर्य और प्रेमासक्ति का विष्णुयश्म कल्कि के सामने वर्णन सिवदत्त नामक शुक ही करता है। पद्मावती का पालित शुक 'हीरामन' का बहेलिये द्वारा पकड़ा जाना, ब्राह्मण व्यापारी के हाथ बेचा जाना, वहाँ से चित्तौड़ के राजा रत्नसेन के दरबार मे जाना और राजा का स्नेह भाजन बनना, राजा से पद्मावती के अद्वितीय रूप का वर्णन करना जिससे राजा के मन मे पद्मावती के प्रति आकर्षण-जन्य प्रेम उत्पन्न होता है और वह उसे प्राप्त करने के लिये सिंघल यात्रा करता है। इस अवसर पर हीरामन प्रेमपथ का अगुआ बनता है और रत्नसेन को सिंघल पहुँचाने और पद्मावती से उसको मिलाने मे सफल होता है।[2]

शुक या किसी अन्य पक्षी द्वारा प्रेम-व्यापार मे इस प्रकार की सहायता के अनेक उदाहरण भारतीय कथा-साहित्य मे आसानी से मिल जाते हैं। यह एक ही रूढ़ि विभिन्न कथानकों में विभिन्न प्रकार से प्रयुक्त हुई है। नल दमयन्ती की कहानी में शुक के स्थान पर हंस यह कार्य करता है। वह नल के पास जाकर दमयन्ती के प्रति प्रेम और उसे प्राप्त करने की चेष्टा उत्पन्न कराता है। पृथ्वीराज रासो के 'पद्मावती-समय' में शुक ही इस कार्य को सम्पन्न कराता है। वह समुद्र शिषरगढ़ की कन्या पद्मावती के मन में पृथ्वीराज के रूप-गुण की प्रशसा द्वारा उसके प्रति आकर्षण और प्रेम उत्पन्न करता है और पद्मावत के हीरामन की भाँति पृथ्वीराज के पास उसका प्रेम-संदेश ले जाता है।

संस्कृत साहित्य में पक्षियों की चर्चा सबसे अधिक हुई है। इस सम्बन्ध मे डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है—"जिन दिनों संस्कृत के काव्य नाटकों का निर्माण अपने पूरे चढाव पर था, उन दिनों केली गृह और अन्त.पुर के प्रासाद प्रांगण से लेकर युद्ध-क्षेत्र और वानप्रस्थों के आश्रम तक कोई न कोई पक्षी भारतीय सहृदय के साथ अवश्य रहा करता था। वह विनोद का, संयोग का योजक था, युद्ध का सदेश वाहक था और जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नही था जहाँ वह मनुष्य का साथ न देता हो।"[3]

ढोलामारू मे करहा शुक आदि का वार्तालाप मिलता है। ढोला जब मालवणी को सोती हुई छोड़कर पूगल के लिए प्रस्थान कर जाता है और मालवणी

---

1. कविता कौमुदी, तीसरा भाग, पं. रामनरेश त्रिपाठी बम्बई, 1955, पृ. 89
2. पद्मावत : जायसी
3. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1952 पृ. 47

जागने पर विरह व्यथा से मूर्छित हो जाती है एवं शुक को ढोला को लौटा लाने के लिये उसके पास भेजती है :—

साल्ह कुमर सूडो कहे, मालवणी मुष जोई
प्राण तजें से पद्मनि, लछन देसे सोई ।। 449 ।।

यहाँ शुक सन्देश-वाहक से अधिक दूत का कार्य करता है । मालवणी ही नही मारवणी भी विरह व्यथा से व्याप्त हो कुरजों से अपना सन्देश ढोला तक पहुँचाने को कहती । उनसे पख मागती है प्रिय से मिलने के लिये :

कु भड़ी दे अने पषड़ी थांको वनो वहेस
सयर उलघि प्रीय मीलु प्रीय मीलि पाछि देस ।। 228 ।।

इस पर कुरझें कहती हैं—

मारू म्हे तो माणस नही म्हे तो कु भड़ी याँह
प्रीय सन्देसो पाठवें, लीष दे पषंडी याँह ।। 231 ।।

करहा ऐसा वाहन है जो न केवल ढोला को उसकी प्रियतमा से ही मिलाता है, वरन् मार्ग मे उसके दु:ख-सुख का साथी भी है—

गाढि बधे वीटली, ढीली मुके लज
सरली पेट न लेटोउ, जो मुध न भेलु अज ।। 513 ।।

मालवणी का करहा से विरह निवेदन आत्मीयता का एक सुन्दर उदाहरण बन कर आया है .

करहा तुम न कुग्रड़ा बे धाऊं करें विछोह
अजी सकेतु वारयोषरइं नही तो कामण मोह ।। 507 ।।
बांधु वडकी छाहडी नीरू नागरवेल
डांम संभालु हाथ सु नित को चोपडु चंपेल ।। 513 ।।

7. योगि योगिन का अविर्भाव

भारतीय कथाओं मे देवी-देवता प्राय. पात्रो की सहायता करते हैं। अति प्राकृत जन्म में निसन्तान राजाओं को पुत्र प्राप्ति प्राय: किसी न किसी देवता के वरदान या कृपा से होती है । ये देवी-देवता संकट के समय सहायता भी करते हैं । 'चित्रावली' नामक एक प्रेम कहानी में नेपाल का राजा सन्तान प्राप्ति के लिये शिवाराधना करता है । शिव-पार्वती उसकी परीक्षा लेने आते हैं और उससे उसका सिर मांगते हैं । राजा सिर देने को तैयार हो जाता है तो महादेवजी प्रसन्न होकर उसे पुत्र प्राप्त होने का वरदान देते हैं ।[1]

1. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन : डॉ० सत्येन्द्र . पृष्ठ 448

हमारी लोक कथाओं में जिस देवी-देवता का उल्लेख सबसे अधिक होता है वे हैं, शिव पार्वती। डॉ० सत्येन्द्र ने ब्रज की लोक-कथाओं के अभिप्रायों पर विचार करते हुये लिखा है कि—"शिव और पार्वती कहानियों में बहुधा रात्रि में प्रदक्षिणा को निकलते हैं। वे दुखियों की समस्या को हल करते मिलते हैं। पार्वती जी हठ करती हैं तो शिवजी को मानना पड़ता है।[1] जायसी कृत 'पद्मावत में सिहंलगढ़ में प्रवेश के लिये शिवजी रत्नसेन को सिद्धि गुटिका देते हैं। इसके अतिरिक्त जब रत्नसेन पकड़ा जाता है और उसे सूली पर चढ़ाने की आज्ञा होती है तब शिवजी का आसन डोल उठता है। पार्वती के निवेदन करने पर शिवजी व पार्वती भाट भाटिन का रूपधारण कर अवतरित होते हैं। गन्धर्व सेन उन्हें पहचान लेता है और पद्मावती की सगाई कर देता है।[2]

लोक-कथाओं में देवी-देवताओं द्वारा नायक अथवा नायिका की परीक्षा लेने की बात अक्सर आती है। पद्मावत में पार्वती एक सुन्दर अप्सरा का वेश बदल कर रत्नसेन के प्रेम की परीक्षा लेती है। लौकिक कथानक की यह प्रचलित रूढ़ि 'राम-चरित-मानस' में भी उपलब्ध होती है। सीता हरण के पश्चात् विरह व्याकुल राम वन में भटक रहे है और इसी समय एक शंका का समाधान करने के लिए पार्वती सीता का रूप धारण करती हैं—

"पुनि पुनि हृदय विचारु करि धरि सीता कर रूप
आगे होइं चलि पंथ तेहि जेहिं आवत नरभूप" ॥[3]

किन्तु राम उन्हे पहचान लेते हैं और प्रणाम करके शिवजी की कुशल-क्षेम पूछते हैं।

दुखहरन की पुहुपावती में समुद्रतट पर मूर्छित पड़ी उप-नायिका रंगीली को पार्वती के आग्रह से शिव अमृत द्वारा चेतन कर देते हैं। पार्वती अपनी नारी सुलभ जिज्ञासा और दयालुता से प्रेरित होकर शिव को किसी व्यक्ति का कष्ट दूर करने या किसी मृत पात्र के पुन जीवन प्रदान करने के लिए बाध्य करती है।

ढोला मारू में मारवणी को जब पीवणा सांप पी जाता है, और उसकी मृत्यु हो जाती है तो ढोला भी चिता बनाकर आत्म-हत्या करना चाहता है। तभी योगी योगिन के रूप मे शिव पार्वती प्रकट होते है—

तिरण वेला कोई जोग्यंद्र आयो तिहां करतो आणंद
मंत्र जत्र जाणे अति घणा उपद पनंग पीवणा तणा ॥622॥

---

1. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन : डॉ० सत्येन्द्र पृ० 500
2. पद्मावत · जायसी · रत्न सेन सूली खंड
3. रामचरित मानस : तुलसीदास : अरण्य कांड दोहा संख्या 52

योगिन (पार्वती) ढोला की परीक्षा लेती हुई कहती है—

जोगणि ढोलो प्रतें उचरे कायरे कायर फोकट मरे
प्री पुठ अस्त्री पर जले, नारी पुठें पुरुष नवी बले ।। 624 ।।

ढोला नहीं मानता । योगिन उसकी सत्य प्रीति को देखकर शिवजी से उसे जीवित करने के लिये विनती ही नहीं करती वरन् स्वयं प्राण तजने की बात भी कहती है—

जो ऐ स्त्री जीवाउसी नहीं, तो हुँ प्राण तजे सू सही
पाईय योषध पीवणा तणा, मत्र जत्र तुझ पासे घणा ।। 627 ।।

नारी हठ के आगे शिवजी झुकते हैं और—

पाणी पाउ गु णी ने मत्र, वली अनेरा कीधा तंत्र
मारवणी तीहां साजी थई, जोगणी मन हरषत गहगही ।। 629 ।।

योगी योगिन के द्वारा मारवणी के जिन्दा होने पर ढोला आनन्दित हो जाता है और नवसर हार देता है—

ढोला मनी आणदीउ अपार जोगण ने द्यो नवसर हार
जोगी ने सोवन साकला, पही राव्या अती उतावला ।।630 ।।

8. प्रकृति वर्णन और विरह निवेदन

प्रकृति के उद्दीपन रूप का विरहाभिव्यक्ति मे तीव्रता लाने की दृष्टि से बहुत प्रयोग किया जाता है । इसके लिए कथाकार षडऋतु-वर्णन तथा बारहमासा का आयोजन करते है । शृंगार वर्णन में विरह उद्दीप्त करने के लिए विभिन्न प्राकृतिक चित्रो एवं घटनाओ को काव्य बद्ध कर लेना हमारे साहित्य की एक प्राचीन प्रथा है । इसका विकास अभिजात और लोक-साहित्य दोनो मे हुआ है । षट्ऋतु वर्णन प्रणाली अभिजात साहित्य की है और बारहमासा वर्णन की पद्धति लोक-साहित्य से होती हुई अब इस साहित्य तक आ पहुँची है । मानस के राम का उद्वेलित हृदय पावस में 'घनघमड गरजत धन घोरा' से और भी उद्दीप्त हो जाता है । तो उधर पद्मावत के बारहमासा मे नागमती की वेदना स्वयं वार्तालाप कर रही प्रतीत होती है ।

ढोला मारू में भी प्रकृति के माध्यम से मारवणी की विरह वेदना को वाणी दी गई है । यद्यपि षट्ऋतु वर्णन और बारहमासा जैसी आयोजना इसमे नहीं की गई है परन्तु मारवणी एवं मालवणी की अपनी-अपनी व्यंजना प्रकृति की पृष्ठभूमि से पोषित है—

जे तु ढोला नावियो श्रावण पहिली त्रीज
बीजलीयां वीललाईयां मुंध मरेसी षीज ।। 289 ।।
(मारवणी)

वीछड़ता ही सजना राता कीश्रा रतन
वारी वेत्रीहु राषीश्रा श्रासूमति श्रंत
रुनी रोडी चढे ह–जोई दीस जाता तणी
उभी हाथ मसलेह–जोई वीलषी हुई वलह ।। 433 ।।
(मालवणी)

9. नखशिख वर्णन रूढ़ि

नायिका के सौन्दर्य-चित्रण के लिये इस रूढि का सहारा लिया जाता है। यह कथानक रूढ़ि के साथ-साथ वर्णन रूढि भी है। काव्य मे इसका प्रयोग अलङ्कृति के लिये भी किया जाता है। ढोलामारू मे भी नायिका मारू का नख शिख सौन्दर्य वर्णन हुआ है। ढोला से भेट के समय ढाढियो के कथन मे मारू के नखशिख लघु रूप में वर्णित है—

सुंदर सोहग सुन्दरी अधर अलता रग
केसर लकी षग कटी कोमल नेत्र कुरग ।। 209 ।।

10. नायिका का अवरोध

आगत विरह व्यथा से बचने के लिये नायिका नायक को अनेक प्रलोभन तथा विभिन्न ऋतुओ के यात्रा संकट आदि का आभास देकर उसका प्रस्थान स्थगित करवाती है। 'पृथ्वीराज रासो' मे पृथ्वीराज की रानियाँ उसे विभिन्न ऋतुओ मे इसी तरह प्रवास से रोकती है।

'ढोला मारू री चउपई' मे सहनायिका मालवणी ढोला से वरदान माग लेती है—

जे पुगल थी आवे कोई ते पंथी मो वस होई
ढोले तेहज कीयो पसाव, मालवणी ईम माडया दाव ।। 267 ।।

यह प्रबन्ध इसलिये किया गया जिससे ढोला को मारवणी का पता न लगे और वह आगत विरह से बच सके। इसी तरह मालवणी ढोला को ग्रीष्म, वर्षा और शीत तीनों ऋतुओ मे यात्रा संकट बतलाकर रोके रखती है:

सीआले सी पड़े उन्हाले लू वाय
वरसाले मुई चीकणी, कीण रित ढोलो जाय ।। 383 ।।

जब भी ढोला चलने के लिये कहता है मालवणी की दशा को देखकर रुक जाता है। मालवणी की दशा वास्तव में दयनीय है—

ढोलो चालण चालण करे, धन चलवा न देस
झब झब छोडो पागडा डबडब नयणा भरेस ।। 396 ।।

चालू , चालू मत करो हिग्रा वहीम देसी
जो साच्यां हि चालसो तो सुता पलायेस ।। 397 ।।

11. बीड़ा उठाना

किसी साहसिक कार्य को स्वेच्छा से पूरा करने के लिये समाज में सूचकों द्वारा सार्वजनिक निमंत्रण देने की प्रथा रही है। काव्यों मे इसका कथानक रूढ़ि के रूप मे प्रयोग हुआ है। 'आल्हा खंड' में 'ऊदल' हर कठिन कार्य को करने का बीड़ा उठाता है।

ढोला मारवणी से मिलने हेतु व्यग्र है और वह पूगल शीघ्र पहुँचना चाहता है। करहा को तेज चलने के लिये ही नही कहता वरन् उसे बेतों से मारता भी है। तब करहा इन शब्दों मे मुग्धा मारवणी से मिलवाने का बीड़ा उठाता है—

सकती बाधे वीटुली ढीली मेल्हे लज्ज
मरढी पेट न लेटियउ मूँध न मेलउ अज्ज ।। 513 ।।

12. प्रहेलिका आयोजन

नायक नायिका के परस्पर प्रेमाकर्षण को तीव्रतर बनाने हेतु पहेली बुझाने की कथानक रूढि का आयोजन भी किया जाता है।

ढोला मारू के प्रथम मिलन पर यह कथानक रूढि आयोजित हुई है। ढोला पहेली पूछता है और मारवणी उसका उत्तर देती है। ढोला पूछता है—

काया झब कइ कनक जिम सुन्दर केहे सुख्ख
तेह सुरग जिम हुवई जिण बेहा बहु दुख्ख

तब मारवणी इसका बडा ही सजीव यथार्थ उत्तर देती है—

पहुर हुवउ ज पधारिया, मोचाहती चित्त
डेडरिया खिण यइ हुवइ घण बूठइ सरजित

13 जलकेलि

इस अभिप्राय का प्रयोग भी काव्यों मे बहुत हुआ है। 'ईश्वर दास' की 'सत्यवती कथा' मे सखियो सहित नायिका का सरोवर मे जल क्रीड़ा करने का वर्णन मिलता है। कल्किपुराण मे पद्मनी की जल क्रीडा व पद्मावत मे पद्मिनी की जल-क्रीड़ा का उल्लेख मिलता है।

जल केलि का विस्तृत वर्णन तो ढोला मारू में प्राप्त नही है, परन्तु मालवणी के इस कथन से यह रूढ़ि ध्वनित होती है—

ढोला हूँ तुझ बाहिरी, झीलण गइय तलाइ
ऊजल काला नाग जिऊँ लहिरी ले ले खाइ

14. प्रेम घटक के रूप में सखियों द्वारा कार्य

सामान्यत. हर प्रेम काव्य में प्रेम घटक के रूप में सखियों द्वारा कार्य किये

जाने की कथानक रूढ़ि मिलती हैं। 'मधुमालती' में जैतमाल सखी यह कार्य करती है, तो 'रूप मंजरी' में इन्दुमती।

ढोला मारू में यह रूढि दो स्थानों पर आई है। प्रथम बार तो उस समय जब मुग्धा विरह के उठते हुये महार्णव की थाह खोज रही होती है तब वह सखियों से नींद न आने का कारण बताती है—

मुझनइ नींद न आवइ आज, विरह वियाणी मूंकइ लाज

दूसरी बार जब ढोला के पूगल आगमन पर सखियाँ मारवणी को सजाती हैं और उसके मिलनार्थ सखियाँ ही उसे शयन कक्ष में पहुँचाती है—

सखी वउलावी धरि गई प्रिय मिलियो एकंत।

यह रूढ़ि यहाँ राजस्थानी परिवार का शील और संकोच भी प्रदर्शित करती हैं।

माधवानल चौपई की कथानक रूढ़ियाँ

1. मूर्ति कन्या और प्रेम

'मूर्ति अथवा अन्य किसी जड़ वस्तु के रूप मे सुन्दरी-नायिकाओ का स्थित होना' भारतीय कथा साहित्य का प्रिय और बहु प्रयुक्त अभिप्राय है। इस अभिप्राय मे लोक विश्वास और कवि कल्पना का समान योग दिखाई पड़ता है। इसका नवीन रूप मे प्रयोग 'माधवानल चौपई' मे इस प्रकार हुआ है—

1. नायिका का शाप ग्रस्त होकर पत्थर की मूर्ति मे परिवर्तित हो जाना।
2. नायक के स्पर्श व विवाह से सजीव रूप में प्रकट होना और आकर्षण जन्य प्रेम का प्रारम्भ तथा मिलन का सुख।

किसी सजीव व्यक्ति का शापग्रस्त होकर जड वस्तु के रूप में परिवर्तित होना और शाप मुक्त होने पर सजीव रूप मे प्रकट होना तो लोक आश्रित धारणा हैं, किन्तु इस लोक विश्वास को प्रेमाख्यानो के अनुरूप बनाने के लिये कथाकारो ने कल्पना के आधार पर इसे कुछ विशिष्ट बना दिया है। ऐसी कथाओ मे शाप का पात्र उन्होने सुन्दरी नायिकाओ को ही बनाया है और शाप मुक्ति के उपाय के साथ नायक का सम्बन्ध भी किसी न किसी रूप मे जोड़ दिया है। यहाँ तक कि कुछ कथाओ मे शाप का भी सहारा नहीं लिया गया है। नायिकायें या सुन्दरियाँ अपनी विशिष्ट शक्ति से मूर्ति, प्रस्तर आदि मे स्थित रहती है और स्वेच्छा से प्रकट होती है तथा पुनः उसमे प्रवेश कर जाती है। नायक ऐसी मूर्तियो को देखकर या तो आकृष्ट हो जाते हैं और अन्त मे उस सुन्दरी को प्राप्त कर लेते है या उसके प्रगट होने पर उसे पुनः प्रवेश नही करने देते।

'रामचरितमानस' का अहिल्या प्रसंग इस कल्पना के मूल रूप का उत्कृष्ट उदाहरण है। अहिल्या की कथा में भी अहिल्या इसी प्रकार शाप ग्रस्त होकर शिला के रूप मे स्थित रहती है और राम द्वारा उसका उद्धार होता है। 'शिलायां तिष्ठ' में मूलतः शिला में स्थित होने की ही बात कही गई है जिसे संस्कृत के परवर्ती

राम-साहित्य के आधार पर तुलसीदास ने शिला रूप बना दिया है। किन्तु अहिल्या की कथा मे इस अभिप्राय के रोमानी तत्व नहीं आये है क्योंकि वहाँ उद्देश्य की भिन्नता है।

हिन्दी प्रेमाख्यानों मे माधवानल कामकंदला मे इस अभिप्राय का उपयोग किया गया है। जयन्ती अप्सरा है और वह इन्द्र द्वारा दिये गये शाप के कारण जंगल मे प्रस्तर-शिला हो जाती है।[1]

नामि जयंति अपछरा, सुरपति तणइ सरापि
स्वर्ग लोक सुख छंडियाँ. सिला सहइ संतापि ।। 31 ।।

ईरगइ रूपमद आण्यउ आप, कोप्यउ इद्र तसु दियउ सराप
अंगहीण सिल पाहाण–ह–तणी, पृथवीपीठि हुजे पापिणी ।। 23 ।।

कथाकार ने शाप-मुक्ति के उपाय के साथ नायक का सम्बन्ध भी जोड़ दिया है। जयंती के बार-बार क्षमा मांगने पर इन्द्र कहते है कि शाप तो असत्य नहीं हो सकता परन्तु इसके दूर होने का उपाय बता देता हूँ[2]—

पहुपावती नगरिनइ ठामि, ब्रह्मपुत्र माधव इणिनामि
करि रामति तुझ परिणा विसइ, तदा तुझ काया अपछरहुस्यइ ।। 27 ।।

माधवानल कामकंदला मे उद्धार के साथ ही माधव और जयन्ती मे प्रेम भी हो जाता है और माधव उस अप्सरा के साथ इन्द्र की सभा में जाता है। यह प्रेम इतना घनिष्ट होता है कि जयन्ती को दुबारा इन्द्र के क्रोध का भाजन बनना पड़ता है[3]—

इन्द्र सभा बीजइ दिनि मिली, तेडी अपछर विरहाकुली
कुपिउ इद्र रोसइ धड हडइ, जाणइ वैस्वानर घृत पडइ ।। 112 ।।

यही नही वह दुबारा भी श्राप देता है पर इस बार वह उसे वेश्या के घर जन्म लेने का श्राप देता है। इसी शाप के अनुरूप जयन्ती पृथ्वी पर कामकदला के रूप में अवतरित होती है। आलम ने भी कथा के प्रस्तावक अभिप्राय के रूप मे इसका उपयोग किया है।

शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य दोनों में इस अभिप्राय के उदाहरण मिलते है, किन्तु इसका उत्कृष्ट रूप साहित्यिक कथाओ मे ही मिलता है। लोक कथाओं में प्राय. शापादि से पत्थर हो जाने का ही वर्णन अधिक है, नायक नायिका के साथ इस कल्पना को सम्बद्ध करके उसे रोमानी रग देने, जैसा कि कुशललाभ ने किया है, के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं। शिष्ट साहित्य की सामान्य कथाओं में ही नहीं अलंकृत कथा-काव्यों तक मे इसका प्रयोग हुआ है। संस्कृत कथा साहित्य में कथा

1. माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध–गायकवाड़ आरियन्टल सीरिज बड़ौदा
2. वही
3. वही

सरित्सागर, सुबन्धु कृत वासवदत्ता, बाणभट्ट की कादम्बरी, वीरचरित, जैनकथाकोश आदि में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। कथा सारित्सागर में निश्चयदत्त और विद्याधरी अनुरागपरा की प्रेमकथा इसी अभिप्राय से प्रारम्भ होती है।[1] इस कथा में विद्याधरी स्वेच्छा से स्तम्भ में प्रवेश करती है।

कथासरित्सागर की ही एक अन्य कथा में अप्सरा कलावती इन्द्र के शाप के कारण एक मंदिर के खम्भे पर निर्मित सालमंजिका के रूप में स्थित हो जाती है। मंदिर के गिरने पर ही वह शाप मुक्त हो सकती है। कलावती का प्रेमी ठिण्ठाकराल उस देश के राजा को चतुराई से वश में कर लेता है और मन्दिर गिरवा देता है।

प्रस्तर कन्या से प्रेम का प्रारम्भ वहाँ नही होता अपितु कथा के मध्य पुरस्सरक अभिप्राय के रूप में इसका उपयोग करके कथाकार ने नायक नायिका को वियुक्त करके कथा को आगे बढाया है और विरह वेदना तथा वियुक्त नायिका की प्राप्ति के प्रयत्न की ओर कथा को ले गया है। रोमानी कथाओं मे नायिका-प्राप्ति के बाद कथा का विकास प्राय· अवरुद्ध हो जाता है और लगता है कि फल प्राप्ति के साथ ही अब कथा समाप्त हो जायेगी। किन्तु ऐसे स्थल पर प्राय: भारतीय कथाकार ऐसे अवसरो के लिये निश्चित अभिप्रायो मे से किसी एक का सहारा लेकर बड़ी सरलता से कथा को पुन दूसरी दिशा मे मोड देता है अथवा उसमे नवीन कुतूहल और रोमाचकता उत्पन्न कर देता है। शाप ऐसे अवसरो के लिये बहुत ही सशक्त माध्यम है। अत. नायिका को नायक से वियुक्त करने के लिये उसे शाप ग्रस्त करके उसे जड वस्तु मे स्थित कर देना और पुन. नायक के द्वारा उसके उद्धार से कथा का पर्यवमान करना कथा विकास और रोचकता की दृष्टि से वहुत उपयोगी है। सुबन्धु ने भी अपने कथा काव्य वासवदत्ता मे इसी उद्देश्य से इसका उपयोग किया है।[2]

पुत्तलिकाओ के सजीव होने की तो अनेक कथाये मिलती है। विक्रमादित्य कथाचक्र की सिंहासन पुत्तलिकाओ के अतिरिक्त अन्य कई कथाओ मे पुत्तलिकाओ के सजीव होने का अभिप्राय व्यहृत हुआ है। वीरचरित की एक कथा मे एक पिष्टपुत्तलिका सुन्दरी कन्या के रूप मे प्रकट होती है।[3]

शापादि से पत्थर हो जाने का वर्णन शिष्ट साहित्य से अधिक लोक कथाओं में मिलता है। बगाल की एक लोक-कथा मे नायक का साथी रहस्योद्घाटन के परिणामस्वरूप प्रस्तर मूर्ति मे बदल जाता है और उसे पुन: अपना स्वरूप तभी प्राप्त होता है जव नायक के पुत्र के रक्त से उस मूर्ति को स्नान कराया जाता है।

---

1. कथा सरित्सागर–आविस्तरग 37
2. वासवदत्ता, पृ 350
3. Life and stories of Parcvanath—M. Bloom field P. 194

2. नायिका अप्सरा का अवतार

नायिका को अप्सरा का अवतार बतलाना महत्वपूर्ण अलंकृतिमूलक अभिप्राय है, जिसका उपयोग प्रायः सभी कवियों ने यान्त्रिक ढंग से किया है, चित्रावली की नायिका चित्रावली अप्सरा का अवतार बतलाई गई है—

रूपनगर तहँ बसै सो नारी, पुहुमी विधि अछरी औतारी

इसी तरह इन्द्रावती विद्याधरी का अवतार कही गई है—

है इन्द्रावती विद्याधरी, विद्याधरी आप अवतरी

रत्नसेन की उपनायिका कल्पलता अप्सरा है, जो शाप के कारण इस पृथ्वी पर अवतरित हुई है। माधवानल कामकन्दला की नायिका कन्दला भी अप्सरा है।[1]

एकतिहाँ माहि अभिराम, अपछरतणउ जयंतीनाम
चंपकवर्ण सुकोमल गात्र, प्रेमसंपरित नाचई पात्र ।। 14 ।।

शापग्रस्त अप्सरा का नायिका के रूप मे पृथ्वी पर अवतरित होना भारतीय प्रेमाख्यानों का अत्यन्त प्रिय अभिप्राय है। चन्द्रकृत पृथ्वीराज रासो मे सयोगिता और शशिव्रता दोनों नायिकाओं को अप्सरा का अवतार कहा गया है। इन सभी अप्सराओ को अन्य कोई शाप नही मिलता। मानव योनि मे जन्म लेने का ही शाप मिलता है। इसका कारण यह है कि यही शाप कथाकारो और कवियों के उद्देश्य के अनुकूल है, क्योकि वे अपनी नायिका की मृत्यु लोक की सुन्दरियो मे भी विशिष्ट सिद्ध करना चाहते हैं।

कथा सरित्सागर की अधिकाँश कथाओं मे नायिकायें विद्याधरी अथवा अप्सरा का अवतार कही गई है। अधिकाश कथाओ मे अप्सरा के शापग्रस्त होने का प्रसंग भी वर्णित है। माधवानल कामकन्दला मे इसी परम्परा का निर्वाह किया गया है। जयन्ती के शापग्रस्त होकर शिलारूप मे स्थित होने तथा माधव द्वारा उसके उद्धार का पूर्व प्रसग संस्कृत तथा प्राकृत की प्रेम कथाओं मे वर्णित इस प्रकार की घटनाओं की याद दिलाता है। सभी अप्सरायें इन्द्र के दरवार मे किसी अपराध या त्रुटि के कारण इन्द्र द्वारा मानव योनि मे अवतरित होने का शाप पाती हैं। जयन्ती को भी इसी प्रकार शाप मिलता है :—

देवतणा तू विलसइ भोग, स्वर्ग लोकि नर-सुख सजोग
तउ हि त्रिपति नुहि तुझ तणी, मनुष्य लोकि जामइ नरमणी ।।113।।

---

1. एकतिहा माहि अभिराम, अपछर थकउ जयंती नाम
माधवानल कामकंदला चोपई

आविउ उदय भवतंर पाप, शहमुखि इंद्रइ दीउ सराप
जाइ वेस्या पेटइ अवतरे, थोडइ भोगि घणा दुख भरे ।। 114 ।।

शशिव्रता के रूप मे चित्ररेखा को भी इसी प्रकार शाप मिलता है ।[1]

अप्सरायें रूप सौन्दर्य और गुण की चरम कल्पनायें हैं । अतः कथाकार अपनी नायिका को अलौकिक सुन्दरी और अपार्थिव विभूति के रूप मे उपस्थित करने के लिये प्रायः इस प्रकार के शाप का ही सहारा लेते है ।

3. नायक का अतिप्राकृत जन्म

अति-प्राकृत जन्म की कथाये सारे ससार में प्रचलित हैं । महान् नायकों की उत्पत्ति प्राय असमाध्य बतलाई गई हैं । जैसा कि हार्ट लैण्ड ने लिखा है, यदि नायक साधारण व्यक्तित्व और कृतित्व वाला है, तो उसका जन्म भी अन्य व्यक्तियों से विशिष्ट होना चाहिये, इसलिये प्रत्येक जगह इन नायको के लिये ऐसी कथाये प्रचलित है जिसमे किसी देवी, देवता के रूप मे या देवी फल आदि से इनकी उत्पत्ति बताई गई है ।[2]

भारतीय कथाओं में तो कथाकारो ने जैसे राजा के निस्संतान होने और किसी देवी, देवता के वरदान या उनके द्वारा दिये गये फल से पुत्र प्राप्त करने के प्रसंग से ही कथा का प्रारम्भ किया है । हिन्दी के मध्यकाल के प्राय. सभी कथा नायक इसी प्रकार पृथ्वी पर अवतरित होते हैं । कुछ काव्यो और कथाओ में किसी देवी-देवता के वरदान से नायक की उत्पत्ति वर्णित है और किसी मे ऋषि मुनियों द्वारा दिये गये फल के खाने से रानी के गर्भ धारण की कथा कही गई है ।

रामचरित मानस मे दशरथ पुत्र-प्राप्ति के लिये वशिष्ठ से प्रार्थना करते हैं । वशिष्ठ शृंगी ऋषि को बुलाकर पुत्र काम-यज्ञ करवाते है ।[3]

अग्नि देव स्वय प्रकट होकर चरू देते है । यज्ञ के उस हवि को खाने से रानियाँ गर्भवती होती है और चार पुत्र उत्पन्न होते हैं । मधुमालती मे तपस्वी द्वारा दिये गये पिण्ड से नायक का जन्म होता है । पहुपावती मे राजपुर नरेश पुत्र प्राप्ति के लिये सात वर्ष भवानी की तपस्या करते है किन्तु तब भी इच्छा पूर्ण नही होती अन्त मे राजा अपना मस्तष्क ही काट कर देवी को अर्पित कर देता है । भवानी को

---

1. तिहि गरब इन्दु समय कलङ्करि, क्रोध देव बंडी सुरमं
दच्छिन नरेस नृप तान बंधु पुंज गहै अवतार सुम
—शशिव्रता प्रस्ताव
2. Primitive Paternity—E. S. Hart Land Vol. 1 P. 1
3. शृंगी रिषिहि वशिष्ठ बोलावा, पुत्र काम सुभ जग्य करावा
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे, प्रकटे अगिनि चरु कर लीन्हे
—बालकाण्ड

अपनी निन्दा का भय होता है और वे अमृत देकर राजा को जिन्दा करती हैं साथ ही विधि से मांग कर पुत्र भी देती है—

तै सेवा कीन्हें सुतलागी,
देएउ पुत्र तोहि विधि से मांगी ।

रसरतन के नायक की उत्पत्ति शिव की कृपा से होती है। साथ ही नायिका का जन्म भी दुर्गा की आराधना के परिणाम स्वरूप होता है। चित्रावली में पुत्र प्राप्ति के लिये धर्मार्थ कार्य करने वाले राजा के पास शिव और पार्वती रूप बदल कर जाते हैं और राजा का मस्तक मांगते हैं। राजा अपना मस्तष्क देने को तैयार हो जाता है, तब शिव प्रसन्न होकर उसे पुत्र प्राप्ति का वरदान देते हैं तब नायक का जन्म होता है। ढोला मारू में ढोला का जन्म पुष्कर यात्रा के पुण्य रूप से होता है। नायको की तरह नायिकाये भी देवी-देवताओ की देन बतलाई गई हैं। इन्द्रावती का जन्म देवी के वरदान से होता है और सत्यवती शिव की उपासना से मानव योनि में अवतरित होती है।

नायक के किसी देवी-देवता का वरदत्त पुत्र होने का अभिप्राय कथाओं और कथा काव्यो में प्राचीन काल से रूढ़िवत व्यवहृत होता चला आ रहा है। महाभारत मे अधिकाश राजाओ को इसी प्रकार सन्तान प्राप्ति होती है। कथासरित्सागर के नायक नरवाहनदत्त शिव के वरदान स्वरूप वासवदत्ता के गर्भ से जन्म लेते है। दश-कुमार चरित के नायक राजवाहन की उत्पत्ति विष्णु की आराधना के बाद होती है। कादम्बरी के नायक कुमार चन्द्रापीड के पुत्र रूप मे आगमन की सूचना फल के स्वप्न द्वारा पहले से ही मिल जाती है।

माधवानल कामकन्दला मे यह अभिप्राय कुछ भिन्नता लिये हुये है। शिव समाधिस्थ है। मन के चंचल हो जाने से उमा रमण की इच्छा से स्वलित हो जाते है। विष्णु उनके पृथ्वी पर गिरने की आशंका एव उत्पन्न भय से उस बिन्दु को अंजुली मे लेकर कमलिनी नाल मे रख देते है। माधव के नाम से वही बिन्दु शकरदास को प्राप्त होता है। उसे स्वप्न मे भगवान कहते है--

संकर प्रति कहइ त्रिपुरारि, देमिउपुत्र गगनइ पारि ।। 57 ।।

इस तरह माधवानल कामकन्दला मे नायक का जन्म शिव के बिंदु द्वारा कमलिनी नाल मे होता है।

4. रूप परिवर्तन

लोकाश्रित कथा अभिप्रायो मे रूप परिवर्तन सम्भवत: सबसे अधिक प्रचलित रहा है। पौराणिक और निजन्धरी सभी प्रकार की कथाओ में इसका समान रूप से उपयोग किया गया है। कथाकारो ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये इस अभिप्राय को कई रूपों एवं प्रकारों में प्रयुक्त किया है। मैक्युलश ने लिखा है, यह अभिप्राय

आदिम मनोविज्ञान से निसृत विचारों एवं धारणाओं पर आधारित है और रूप परिवर्तन की संभावना भी आदिम विश्वास की एक प्रमुख धारणा रही है। लोक कथाओ मे प्राप्त अभिप्राय के अनेक उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।[1]

सुविधा के लिये रूप परिवर्तन के प्रकारो के आधार पर इस अभिप्राय को डा. ब्रज विलास श्रीवास्तव ने तीन भागों में विभाजित किया है :[2]

(1) अलौकिक शक्ति या विद्या द्वारा स्वयं रूप परिवर्तन।
(2) किसी मन्त्रविद् तान्त्रिक आदि के द्वारा रूप परिवर्तन
(3) किसी सरोवर मे स्नान करने या किसी वस्तु के खाने पीने से रूप परिवर्तन।

अलौकिक और अति मानव प्राणी स्वेच्छा से जब जो रूप चाहे धारण कर सकते है और धारण करवा सकते हैं। ऐसे अलौकिक प्राणियों की सख्या भारतीय कथा साहित्य मे सबसे अधिक है।

भारतीय देवताओ मे इन्द्र, शिव पार्वती सूर्य देवता आदि के रूप परिवर्तन की कथाये शास्त्रीय महत्व की हो गई है। इन्द्र का ब्राह्मण बन कर दानी राजा की परीक्षा लेना। महाभारत मे ब्राह्मण वेषधारी सूर्य देव द्वारा कर्ण को चेतावनी देना, रामचरितमानस मे शिव के कहने पर पार्वती का सीता बनकर राम की परीक्षा लेना, पद्मावत मे लक्ष्मी का पद्मावती बनकर तथा शिव पार्वती द्वारा रत्नसेन की परीक्षा लेना रूप परिवर्तन कथा अभिप्राय का दूसरा ही रूप है।

मानव विरोधी शक्तियाँ अर्थात् अमानव शक्तियाँ भी रूप बदल कर नायक को पशु पक्षी या सुन्दर स्त्री बनकर सकट मे डालते हैं। रामचरितमानस पे रामायण मे रावण ब्राह्मण का रूप बनाकर सीता का हरण करता है। सूर्पनखा का रूप परिवर्तन भी महत्वपूर्ण है। राक्षसो के अलावा हनुमान जी भी कई बार रूप परिवर्तन करते हैं। कभी वन्दर तो कभी भूधराकर। सुरसा के साथ हनुमान का रूप परिवर्तन का युद्ध इस अभिप्राय के लोक रूप का उत्कृष्ट उदाहरण है। राक्षस स्त्रियो का सुन्दरी कन्या का रूप धारण करके नायक के सम्मुख आना और उसकी पत्नी बनने का प्रस्ताव करना लोक कथाओ का प्रिय अभिप्राय है।[3]

मन्त्र-तंत्र के द्वारा नायक-नायिका को पशु पक्षी बना देने की कथायें शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य दोनों में बहुत मिलती हैं। कथा-सरित्सागर में शशिप्रभा कही से शाकिनीसिद्धिसवरा विद्या से अपने पति वामदत्त को महिष बना देती है।

---

1. Child hood of fiction P. 149
2. मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक रुढ़ियाँ : पृष्ठ 273
3. फोक टेल्स ऑव बंगाल—डे, पृ॰ 181

वामदत्त भी अभिमंत्रित सरसों से अपनी पत्नी को अश्व बना देता है।[1]

मंत्र-तंत्र द्वारा रूप परिवर्तन का दूसरा महत्वपूर्ण कथा रूप उन कथाओं में दिखलाई पड़ता है, जिनमें गुप्त प्रेम के लिए नायक को पशु-पक्षी के रूप में बदलकर कोई स्त्री अपने पास रखती है। इन कथाओं में मंत्र सूत्र द्वारा रूप परिवर्तन होता है। काश्मीर की एक कथा में योगिन राजकुमार को मेड़ा बना देती है। यह मंत्र रात मे हटा दिया जाता है। सात वर्ष तक राजकुमार योगिनी की इच्छापूर्ति का साधन बना रहता है।[2] कुशललाभ कृत माधवानल कामकंदला में भी नायिका जयति अपने प्रेमी नायक माधव को इन्द्र सभा में भ्रमर बनाकर कंचुकी में रख लेती है।[3]

5. आकाश गमन अथवा खेचरी विद्या

रूप परिवर्तन के अतिरिक्त आकाश मार्ग से गमन और अदृश्यता का वर्णन भी कथा काव्यो मे प्राय आता है। योग और सिद्धियों ने भारतीय कथा साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया है। ये सभी चमत्कारिक घटनायें महाभारत से लेकर मध्यकाल के हिन्दी प्रबधों मे बराबर प्रयुक्त होती आई हैं। इस प्रकार की शक्तियों को मानव भी प्राप्त कर सकता है। रामचरित मानस मे अतिप्राकृत प्राणी तो आकाश मार्ग से उड़कर ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते है। हनुमान भी आकाश मार्ग मे उडकर सजीवनी जडी लाते है। यहाँ हनुमान की अलौकिक शक्ति द्वारा प्रभावपूर्ण एव चमत्कारिक प्रयोग हुआ है। कथाकार ने कुतूहल शात करने के लिये कथा कौशल के रूप मे आकाश मार्ग से भेजकर सजीवनी मगाकर स्थिति की जटिलता को सरलता से सुलझा दिया है।

इस अभिप्राय का विशिष्ट रूप उन कथाओं में दिखलाई देता है, जिनमें नायक-नायिका आकाश मार्ग से यात्रा करते है। माधवानल कामकन्दला की नायिका जयन्ती अप्सरा होने के कारण नित्य प्रति आकाश मार्ग से आकर माधव से मिल लेती थी पर एक बार शापग्रस्त होने पर वह पुन आने मे डरती हुई माधव से ही निवेदन करती है कि यदि उसका प्रेम सच्चा है तो वह स्वय उससे मिलने उसके घर आवे :

साचउ नेह जाणउ तुहि्म सामि, जउ आवू प्रिउ महारइं ठामि
मन लागउ माधव न रहाइं, नित छानउ अपछर धरि जाइ ॥ 104 ॥

---

1. कथा सारित्सागर—आदिस्तरंग 68
2. फोकटेल्स काश्मीर नोलस पृ० 71
3. भमरा रूपइ माधव कीयउ, कंचू-विधि छानउ राखीयउ
   विविध प्रकार नाटिक करइ कंचू विचि प्रीउडो मनि संमरइ ॥ 106 ॥
   माधवानल कामकंदला, चउपई

माधव जयन्ती का वियोग सहन नहीं कर सकता। उसका प्रेम भी सच्चा है, अतः वह छुपकर आकाश मार्ग से अप्सरा के घर जाता है। यहाँ माधव यह विद्या किसी से सीखता नहीं है स्वय ही चला जाता है।

यद्यपि काव्य में यह निर्देश नहीं है कि उसे यह विद्या कैसे और कहाँ से प्राप्त हुई, पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अतिप्राकृत जन्म के प्रभाव से वह जन्म से ही उक्त विद्या प्राप्त रहा हो, जिसका उल्लेख करना कथाकार ने उचित नहीं समझा।

लोक-कथाओं मे प्रायः ऐसी पादुकाओं का वर्णन मिलता है जिन्हें धारण करके कोई भी व्यक्ति आकाश मे उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकता है।[1]

6. अदृश्य होने की शक्ति

आकाश गमन की शक्ति की तरह अदृश्य होने की शक्ति का भी कथाओं मे बहुत उपयोग किया गया है। अदृश्य होने के लिए प्राचीन कथाओ में अजन, गुटिका, मंत्र या पादुका प्रयोग आदि के विवरण मिलते है। चित्रावली में नायक सुजान नैत्रो मे अजन लगाकर और मुख मे गोटिका रखकर योगी के साथ अदृश्य रूप से रत्नावली की खोज मे निकलता है। वे दोनो सबको देखते है किन्तु उन्हें कोई नही देखता—

नैनन्ह मह लुक अंजन दीन्हा, औ मुख घालि गोटिका लीन्हा
डंडा ठोकि चले उठि दोऊ, वै देखहिं उन्ह देख न कोऊ[2]

किन्तु दिव्य वस्तुओं की सहायता के बिना विद्या द्वारा भी अदृश्य हुआ जा सकता है। वत्सराज उदयन के बन्दी बना लिये जाने पर मत्री योगन्धरायण इस विद्या द्वारा ही महाचण्ड सेन के राजमहल में पहुँचता है और इस प्रकार अदृश्य होता है कि वत्सराज के अतिरिक्त और कोई उसे देख नही पाता।[3] दशकुमार चरित में वीरशेखर इस विद्या के द्वारा अदृश्य रूप से अवन्ति सुन्दरी के महल में प्रवेश करता है। कथासारित्सागर में 'प्रतिलोमा-नुलोमा' नामक एक ऐसी विद्या का उल्लेख जिसमे केवल सात अक्षर हैं और जिसका अनुलोम अर्थात् सीधा पाठ करने पर व्यक्ति अदृश्य हो सकता है और प्रतिलोम पाठ करने पर जो रूप चाहे धारण कर सकता है। भीमदत्त को गंगा द्वारा यह विद्या दी जाती है और इस विद्या को प्राप्त करके वह अनेक साहसिक और रोमांचक कार्य करता है।[4]

---

1. फोकटेल्स ऑव हिन्दुस्तान, पृ० 76
2. चित्रावली—दो. सं. 222
3. कथासारित्सागर-आदिस्तरंग 12
4. कथासारित्सागर-आदि स्तरंग —74 पृ० 133–135

पश्चात्य कथाओं में भी इस अभिप्राय का बहुत अधिक प्रयोग किया है। ब्रैंड ने अपनी पुस्तक 'पापुलर एन्टिक्विटीज' में यूरोपीय कथाओं में अदृश्यता से सम्बद्ध विविध पद्धतियों का उल्लेख किया है।[1]

माधवानल कामकन्दला मे भी इसी प्रकार का अभिप्राय मिलता है। कामकन्दला कामसेन के राज-दरबार मे नृत्य कर रही है—इतने मे एक भ्रमर आता है और नृत्य करती हुई कामकंदला के कुच पर दशन करता है। नृत्य में बिना किसी प्रकार के व्यतिक्रम के कामकन्दला उस भ्रमर को पवन स्रोत से उड़ा देती है—इस कला को केवल माधव ही देख पाता है।[2]

यहाँ यह अभिप्राय पूर्व जन्म की स्मृति भी कराता है। भ्रमर को कुच पर बैठा देखकर कन्दला की स्मरण शक्ति जागृत होती है और वह माधव को पहचान लेती है—

बिहु कुचविचि भमरू आवीयूं पूरव भव तिणि जाणवीउ
जाति स्मरण लहइ वरतंत, हूँ अपछर, अे माधवकत ॥ 206 ॥

7. मृत व्यक्ति का जीवित होना

मृत व्यक्तियों को जीवित कर देने का अभिप्राय भी कथाओ मे बहुत प्रयुक्त हुआ है। इसका सम्बन्ध एक ओर तो मत्र तत्र तथा योग विद्या मे विश्वास से है और दूसरी ओर मनुष्य की इच्छा पूर्ति से। प्रिय व्यक्तियो के मर जाने पर मनुष्य यह जानते हुये भी कि यह पुन जीवित नही हो सकता, यह इच्छा करता है कि किसी तरह यह जीवित हो जाये। मनुष्य की इस इच्छा की पूर्ति चूंकि वास्तविकता मे नही हो पाती, इसलिए वह विविध उपायो की कल्पना द्वारा कथाओ मे इसकी पूर्ति करता है।[3] कभी अतिमानव शक्तियों को सहायक बनाकर उसने अपनी इस कल्पना को कथाओ मे वास्तविकना का रूप दिया है, तो कभी मृत-संजीवनी, मंत्र-

---

1. पापुलर ऐन्टिक्विटीज, वाल्यूम 1, पृ० 315
2. बीजइ किण हि न जाण्यउ नही, अहे बात माधवि साबिलही
धन्य धन्य अे नाटिक कला, गणिका धन्य अे कामकन्दला ॥ 216 ॥
माधवानल कामकन्दला चउपई
3. After the death of a dear friend neither we, nor primitive People speculate as to what may have become of his soul, but we feel the ardent desire to undo what has happened and in the free play of fancy we see the dead come back to life.
Mythology and Folklore Franz Boas Fg. 611

तथा अमृत आदि के द्वारा उसने मृत्यु पर विजय पाने की इच्छा को अभिव्यक्ति दी है।

रामचरित मानस में मेघनाथ से युद्ध करते हुये लक्ष्मण को शक्ति लग जाती है। वैद्य-सुषेण संजीवनी बूटी मंगाकर लक्ष्मण को पुन: जीवन प्रदान करते हैं।

माधवानल कामकन्दला की दुखान्त कथा को इस अभिप्राय द्वारा सुखान्त बनाया गया है। निजन्धरी कथाओं के नायक महाराजा विक्रमादित्य उज्जेन के शासक हैं। वे माधव को उसका विरह दूर करने का वचन देते है और कामकंदला की प्राप्ति के लिए कामावती आते है। विक्रमादित्य कन्दला के प्रेम की परीक्षा लेने के लिये उसे माधवानल की मृत्यु का झूठा समाचार देते हैं—

> नगर-मांहि सगलइ जाणीयउ, ब्राह्मण मिली बाहिरि आणीयउ
> मइ दीण्उ अतिरूप सरीरि, दाध दियउ सिप्रा-नइ तीरि ।। 574 ।।

यह सुनते ही कामकन्दला भी मूर्छित हो जाती है। राजा विक्रमादित्य माधव को भी कन्दला की मृत्यु का समाचार इस प्रकार देते है—

> ताहरउ मरण सुणी ततकाल, कामकन्दला कीधउकाल
> ग्रेह बात माधव सभली ग्रडयउ हस गयउ नीकली ।। 585 ।।

प्रिया की मृत्यु का समाचार सुनकर माधवानल का भी प्राणान्त हो जाता है। विक्रमादित्य अपने इस भयकर अपराध के प्रायश्चित मे चिता जलाकर मरने के लिये तैयार होते हैं कि वेताल आकर उन्हे रोकता है और मरने का कारण पूछता है। सारा वृतान्त सुनकर वह पाताल से अमृत लाकर नायक-नायिका को पुन. जीवित करता है --

> मृतक रूप ते देखि नारिंद, सइंहथि मुखि घइ अमृत बिंद
> ते जीवी मनि आणंदीयउ कहइ, कुडू मइ हासउ कीयउ ।। 600 ।।

'वेताल पंच विंशति' मे विक्रमादित्य की तांत्रिक योगी से रक्षा करने वाले इसी वेताल द्वारा जो कथाये कही गई हैं, उनमे से कई कहानियां राजा, प्रेमी या पत्नी के प्राणोत्सर्ग के लिए प्रस्तुत होने पर दैवी शक्तियों द्वारा उनके मृत प्रियजनो को पुन: जीवित कर देने के इसी अभिप्राय को लेकर कही गई है। वेताल पंच बिंशति के अन्य रूपान्तरों में देवी स्वयं वहाँ उपस्थित होती है और वेताल की तरह पाताल से अमृत लाकर मृत लोगों को जीवित करती है।

इसी अभिप्राय में ऐसी लतायें और जड़ी बूटियाँ भी होती हैं, जिनमें संजीवनी शक्ति होती है। फ्रीयर के 'ओल्ड डेकनडेज' में मृत राजकुमार को लेकर जंगल में वृक्ष के नीचे बैठी हुई राजकुमारी को दो श्रृंगालों की बातचीत से यह सूचना मिलती है कि राजकुमारी जिस वृक्ष के नीचे बैठी है, उसकी पत्तियों का रस यदि राजकुमार के कान, होठ तथा घावों पर लगा दिया जावे तो राजकुमार

जीवित हो जायेगा ।[1] रामचरित मानस के हनुमान भी संजीवनी लाकर लक्ष्मण को जीवित करते हैं ।

ढोलामारू में भी मारवणी को पीना साँप पी लेता है तो शिव पार्वती उसे जड़ी-बूटी व मंत्र-तंत्र से ही पुनः जीवित कर देते हैं ।

8. अज्ञान में अपराध और शाप

ऋषि, मुनि, देवी-देवता अथवा किसी अलौकिक-शक्ति सम्पन्न व्यक्ति का कथन कभी मिथ्या नही हो सकता । इस विश्वास से भारतीय जीवन अत्यन्त प्राचीन काल से प्रभावित और प्रेरित होता रहा है । इस प्रकार के व्यक्ति प्रसन्न होकर यदि कठिन और असम्भव कार्यों मे की सिद्धि मे सहायक हो सकते हैं तो किसी कारण से उनके रूष्ट होने पर किसी का अनिष्ट भी हो सकता है ।

भारतीय ऋषियों मुनियो तथा सात्विक ब्राह्मणो का सात्विक शेष हो शाप के रूप मे समूचे भारतीय साहित्य मे दिखाई पडता है । भौतिक शक्ति की तुलना मे में आत्मिक शक्ति की महत्ता और श्रेष्ठता भी शाप की धारणा के मूल मे निहित दिखलाई पड़ती है । आत्मिक और दिव्य शक्ति रखने वाले व्यक्तियो को जानबूझ कर कष्ट पहुँचाने के अपराध मे शाप तो मिलता ही है अज्ञान मे कोई अपराध हो जाने पर भी उनके क्रोध का पात्र बनना पड़ता है । क्रुद्ध होकर यदि किसी ऐसे व्यक्ति ने शाप दे दिया तो उसका घटित होना निश्चित है, कोई उसे टाल नहीं सकता, शाप की अवधि मे कमी अवश्य कर सकता है या उसकी मुक्ति का उपाय बता सकता है । शाप का प्रभाव व्यक्ति पर समान रूपसे पड़ता है ।

ऐसे उपयोगी अभिप्राय से कथाकार को जहाँ कही भी कथा को दूसरी दिशा मे मोड़ना हो, इस अभिप्राय से सहायता मिल सकती है, नायक नायिका के सामान्य सुखमय जीवन में विषमता लानी हो, उन्हे शाप का पात्र बनाया जा सकता है । भारतीय पौराणिक और निजधरी कथा के इस प्रकार के शापों से भारी हुई है । कभी जान पात्र बूझकर ऐसा अपराध करता है, जिसके कारण उसे शाप मिलता है और कभी अनजान मे ही उससे कोई ऐसी गलती हो जाती है जिसके लिये उसे शाप का फल भुगतान पड़ता है । इस अभिप्राय के दो रूप हो गये हैं—

1. जानबूझ कर अपराध और शाप

2. अज्ञान मे अपराध और शाप

रामचरितमानस मे रामावतार की प्रस्तावना इसी शाप की पौराणिक कल्पना को लेकर खड़ी की गई है । रामवतार की की हेतु कथाओं में शाप को ही विष्णु के मानव योनि में जन्म लेने का कारण बतलाया गया है ।

जानबूझ कर अपराध करने के परिणाम स्वरूप शाप का अभिप्राय भी मुख्यत:

---

1. ओल्ड डेकन डेज, पृ० 136

पौराणिक और धार्मिक कथाओं में ही आता है। इन कथाओं में देवताओं, ऋषियो और धार्मिक व्यक्तियों की उपेक्षा करने या उन्हें कष्ट देने के परिणाम रूप धर्मद्रोही और अत्याचारी व्यक्तियो को शाप का भागी बनाकर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से धर्म पर चलने का उपदेश देना ही कथा का मुख्य उद्देश्य रहा है।

निजन्धरी कथाओं, कथा-काव्यों आदि में अज्ञान में अपराध और शाप का ही अभिप्राय रूप में प्रयोग हुआ है। अज्ञान मे पात्रो से ऐसे कार्य हो जाते है जो किसी के क्रोध को जागृत कर दें। अतः कथाकार पात्र और चरित्र किसी को भी शाप का भागी बनाकर कथा को अभीष्ट दिशा मे ले जा सकता है। रामचरितमानस में राजा भानुप्रताप को बिना किसी अपराध के शाप मिल जाता है इसका दूसरा उदाहरण श्रवणकुमार के अन्धे पिता द्वारा दशरथ को दिया गया शाप है। मृग के भ्रम में अनजान मे दशरथ के बाण से श्रवण कुमार की मृत्यु होती है जिसमे दशरथ को अत्यधिक कष्ट होता है। किन्तु अन्धे पिता द्वारा उन्हे अपनी ही तरह पुत्र-वियोग में जाने का शाप मिलता है। इस शाप के परिणाम स्वरूप दशरथ की राम के वियोग मे मृत्यु होती है। तुलसीदास ने शाप का सकेत मात्र दिया है—

तापस अन्ध साप सुध आई। कौसल्यहिं सब कथा सुनाई।

शाप का यही कथा रूप कथाओ मे विशेष रूप से मिलता है। पाण्डु को भी इसी प्रकार शाप मिलता है। पाण्डु ने दशरथ की तरह ही आखेट के समय मृग-मृगी को बाण से मार दिया, किन्तु वे ऋषि व उनकी पत्नी मृग रूप मे आनन्द में मग्न थे। पाण्डु को यह पता नही था। ऋषि ने राजा को शाप दे दिया—'अपनी पत्नी के साथ सहवास करते हुए जिस अवस्था मे मेरी मृत्यु हो रही है, उसी अवस्था तुम्हारी मृत्यु होगी। शाप का ऐसा कथा रूप दशकुमारचरित मे राजा साम्ब की कथा मे भी दिखाई देता है। कथामरित्सागर मे विद्याधर चित्रांगद को इसी प्रकार का शाप मिलता है।

कथा शिल्प के रूप मे इस अभिप्राय का सबसे सुन्दर उपयोग कालिदास के के अभिज्ञान शाकुन्तल में मिलता है। अज्ञान मे अपराध के कारण ही शकुन्तला को दुर्वासा का शाप मिलता है। महाभारत के शकुन्तलोपख्यान मे दुर्वासा शाप की घटना नही है। कालिदास की घटना द्वारा दुष्यन्त के चरित्र को निष्कलंक बना दिया है, क्योंकि दुष्यन्त शाप के कारण शकुन्तला को नहीं पहचान पाता।

माधवानल कामकन्दला में भी यह अभिप्राय: दो जगह प्रयुक्त हुआ है। नायिका जयन्ती को इन्द्र से अपने रूप की प्रशंसा सुनकर गर्व हो जाता है और वह बीच मे ही नाटक भंग कर देती है, जिससे इन्द्र कुपित होकर शाप देता है—

ईणइ रूपमद आण्यउ आप, कोप्यउ इन्द्र तसु दियउ सराप
अंगहीण सिल पाहाण हुतणी, पृथ्वी पीठि हुजे पापिणी

जयन्ती के बार बार क्षमा मांगने पर इन्द्र उसे शाप से मुक्त होने का उपाय भी बताते हैं—

पद्मावती नगरिनइ ठामि, ब्रह्मपुत्र माधव इणि नामि
करि रामति तुझ परणाविसइ, तदा तुझ काया अपछर हुस्यइ
॥ 27 ॥

दूसरी बार इस अभिप्राय का प्रयोग कथाकार ने नायक नायिका के सुखी जीवन को विषम बनाने के लिये किया है। माधव जयन्ति के यहाँ सुख से रहता है, परन्तु इन्द्र की सभा मे नृत्य करते समय जयन्ती उसे भ्रमर बना कर कंचुकी मे छुपा लेती है। यह जयन्ती का अज्ञान था। इन्द्र सब बात जान जाता है और माधव से नेह तथा स्वर्ग लोक मे उसे लाने के अपराध मे जयन्ती को कुपित होकर वेश्या के यहाँ जन्म लेने का शाप देता है। शाप के कारण ही जयन्ती कामावती नगरी मे वेश्या के यहाँ कामकंदला गणिका के रूप मे जन्म लेती है।

इस अभिप्राय के प्रयोग से कथाकार को माधव के विरह को प्रस्तुत करने का अच्छा अवसर मिला है। साथ ही अप्सरा का मानव योनि में जन्म और उसके गुणों को असामान्य बताया गया है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी यह अभिप्राय बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। कथाकार को इस अभिप्राय से नायक नायिका के चरित्र को विकसित एवं प्रभावशाली बनाने का अवसर मिलता है। इसके प्रयोग से सामान्य सुखी नायक नायिका के जीवन मे संघर्ष आता है फिर उनका विद्रोह हो जाता है और दोनो एक दूसरे को प्राप्त करने के प्रयत्न करते है। माधवानल कामकंदला का नायक माधव भी जयन्ती को ढूँढने के लिए विरह-व्यथित अवस्था मे निकल पड़ता है। कथाकार ने माधव की विरहावस्था का बहुत ही सजीव वर्णन किया है। वह विक्रमादित्य के समझाये जाने पर भी कामकंदला को छोड़ने को तैयार नही होता। यहाँ नायक के चरित्र की श्रेष्ठता मिलती है। अन्त मे कथाकार नायक नायिका का मिलन कामसेन राजा के यहाँ करा कर कथा को सुखान्त बनाता है।

9. देवी देवता (आविष्य पात्र)

भारतीय कथाओं मे देवी देवता प्राय पात्रों की सहायता करते है। देवी देवताओं मे इन्द्र एव शिव पार्वती की चर्चा अधिक मिलती है। लोककथाओं मे तो प्राय: शिव पार्वती भ्रमण के लिये निकलते है और किसी दुख मे पड़े व्यक्ति को देखकर पार्वती अपनी दयालुता से प्रेरित होकर शिव को उसका दु:ख दूर करने के लिए बाध्य करती है।

कुशललाभ ने इस अभिप्राय का प्रयोग कुछ नवीनता के साथ किया है। विरह व्यथित माधव शिव मन्दिर मे अपनी 'विरह गाथा' लिखता है जिसे पढ़कर विक्रमादित्य उस विरही को ढूँढने एव उसके दु:ख दूर करने का वचन देते हैं। विक्रमादित्य ही शिव पार्वती की तरह माधव और कंदला के प्रेम की परीक्षा लेते हैं।

नायक नायिका एक दूसरे का मरण सुनकर प्राण त्याग देते हैं। राजा विक्रमादित्य अपने कृत के प्रायश्चित स्वरूप स्वयं भी आत्महत्या करना चाहते हैं। वे मानव हैं, इसलिये जीवित तो कर नही सकते। उसी समय राजा का सहायक मित्र बेताल आता है जो राजा की सहायता करने के लिए 'विक्रमचक्र की कथाओं' में प्रसिद्ध है। बेताल देवी देवताओं की तरह ठीक समय पर आकार पाताल से अमृत लाता है और कामकदला व माधव को पुनःजीवित करता है। अन्य कथाओं में बेताल शव मे प्रविष्ट होकर कौतुक दिखाता है।

इस तरह कथाकार ने अलौकिक पात्रो मे दिव्य-पात्र शिव पार्वती अर्थात् देवी देवता का सहारा न लेकर अदिव्य पात्र वेताल का ही उपयोग किया है।

10. भविष्य सूचक स्वप्न

स्वप्न भविष्य की सूचना देते है—यह विश्वास किसी न किसी रूप मे सभी देशो मे वर्तमान रहा है। कथाकारो को यह अभिप्राय बहुत ही प्रिय रहा है। यही कारण है कि भारतीय कथायें भविष्य मे घटित होने वाली घटनाओं की सूचना देने वाले विविध प्रकार के स्वप्नों से भरी हुई हैं। कथा-सरित्सागर मे स्वप्न तीन प्रकार के बताये गये हैं – अन्यार्थ, यथार्थ और अयार्थ। जिस स्वप्न के फल का तुरन्त पता चल जाये उसे अन्यार्थ, जिसमे देवता द्वारा कोई आदेश दिया जाये वह यथार्थ तथा गाढ अनुभव और चिन्ता आदि के कारण देखा हुआ स्वप्न अयार्थ कहलाता हैं।[1] साथ ही स्वप्नफल का शीघ्र या देर से प्राप्त होना स्वप्न देखने के काल पर निर्भर करता है। यह विश्वास किया जाता है कि रात्रि के अन्तिम प्रहर मे देखा हुआ स्वप्न शीघ्र फल देने वाला होता है।[2] यह अभिप्राय रामचरितमानस तथा अन्य काव्यो मे किसी न किसी रूप मे प्रयुक्त हुआ है। कही तो कथा को इससे गति मिलती है और कही शुद्ध चमत्कार उत्पन्न करने और आश्चर्य तत्व ले आने के लिए इसका उपयोग हुआ है। रामचरितमानस मे राक्षसो के वध, रावण की मृत्यु और विभीषण को राज्य प्राप्ति के सम्बन्ध मे त्रिजटा द्वारा देखा गया स्वप्न चमत्कारिकता के साथ साथ भविष्य की भी सूचना देता है।

---

1. स्वप्नश्चानेकधान्यार्थो यथार्थोऽयार्थ एव च।
   यः सद्यः सूचयत्यर्थमन्यार्थः सोऽभिधीयते॥
   प्रसन्नदेवता देशरूपः स्वप्नो यथार्थकः।
   गाढानुभव चिन्ताविकृतमाहुर पार्थकम्॥
   46/147-148
2. चिरशीघ्रफलत्वं च तस्य काल विशेषत।
   एष रात्र्यन्तदृष्टस्तु स्वप्नः शीघ्र फलप्रद॥ 46/151

माधवानल कामकन्दला में भी इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है। पुरोहित शंकरदास पुत्राभाव से सदैव दुःखी रहता हैं। पुरोहित शंकरदास यहाँ यथार्थ स्वप्न देखता है—

अेक राति प्रोहित दुखधरी, सूतउ सुहणंक प्राव्यउ हरिः
संभलि प्रोहित संकरदास। हूं त्रूठउ तुभ पूरउ आस ।। 50 ।।

शिवजी स्वप्न में पुत्र प्राप्ति का उपाय बताते है जिससे शंकरदास को गंगातट पर स्वप्न के अनुसार ही पुत्र की प्राप्ति होती है। इस अभिप्राय के प्रयोग से कही तो कथा की गति मिलती है और कही शुद्ध चमत्कार उत्पन्न करने और आश्चर्य तत्व ले आने के लिये इसका उपयोग होता है।

कुशललाभ ने इस अभिप्राय का प्रयोग कथा को गति प्रदान करने के उद्देश्य से किया है। स्वप्न से प्राप्त पुत्र ही कथा का नायक है और उसी के सहारे पूर्ण कथा चलती है। पुत्र प्राप्ति के बाद माधव के जन्म उत्सव व शिलारूपी अप्सरा से विवाह विछोह और माधव का विरह व्यथित हो घूमता आदि कथा मोड़ों से कथा को गति मिली है। कथाकार अपने उद्देश्य के अनुसार कथा मे इस अभिप्राय का प्रयोग करता है।

11. किसी स्त्री के प्रेम का तिरस्कार और मिथ्या लांछन

हिन्दी प्रबन्धो मे गणपति कृत माधवानल कामकदला मे नायक का देश निष्कासन इसी प्रकार होता है। माधव पुष्पावती के महाराज गोविन्दचन्द का रक्षित पुत्र था, जिस पर महाराज की पटरानी रुद्रादेवी आसक्त हो गई। एक दिन उन्होने अपना प्रेम माधव पर प्रकट किन्तु माधव ने इस प्रेम को अनुचित बतलाया। रूद्रादेवी ने माधव के इस व्यवहार पर क्रुद्ध होकर प्रतिशोध लेने का निश्चय किया और कोप भवन मे जा पहुंची। राजा के पूछने पर उन्होने बताया कि माधव बड़ा कामी है और उसकी दृष्टि रनिवास की प्रत्येक नारी पर है। आज उसने मेरे साथ भी कुत्सित व्यवहार करना चाहा था। राजा ने माधव को अपने राज्य से निकाल दिया जो कि स्वाभाविक ही था।[1]

जैसा कि पेंजर ने लिखा है—'किसी स्त्री के प्रेम का तिरस्कार होने पर उसका प्रतिशोध के लिये षड़यत्र करना स्वाभाविक है और यह अभिप्राय ससार के प्रत्येक कथा सग्रह में किसी न किसी रूप मे मिलता हैं।[2]

---

1 माधवानल कामकंदला प्रबन्ध-गायकवाड ओरियन्टल सीरिज पृष्ठ 42–47

2 As is only natural, the Motif of the revenge of a woman whose love has been scorned enters in the nearly collection of steries in the world.

The Ceean of Story Vol. II P. *120*

कुशललाभ कृत माधवानल कामकंदला में कवि ने इस अभिप्राय का प्रयोग परम्परा से कुछ हट कर और नये एवं मौलिक रूप मे किया है। माधव पुष्पावती के राज्य पुरोहित का पुत्र है। वह राजा के यहाँ मन्दिर में पूजा हेतु जाता है। माधव नगर मे जहाँ भी जाता है नारियाँ उसकी सुन्दरता और कला के वशीभूत हो गृह-कार्य छोड़ उसे देखने को आतुर हो जिस मार्ग से माधवजाता है, उसी मार्ग पर चल देती हैं। कथाकार ने यहाँ माधव को इन सब बातों से अनभिज्ञ बताया है।

प्रजा राजा को सब वृतात कह कर अन्त मे फैसला करती है कि या तो माधव को देश से निकाला जाये या प्रजा को। राजा माधव को बुलाकर कला-प्रदर्शन देखता है। माधव के रूप पर राजा की सातो रानियाँ मोहित हो जाती हैं और कुछ तो इतनी कामासक्त हो जाती है, कि राजा उन्हें देखकर क्रोधित होता है और माधव को देश निकाला दे देता है—

> त्रिण्हि पाननउ बीडउ करी, राजा घणूं कोप मनिधरी।
> माधवनइ दीधउ आदेश, तू छंडिजे अह्मारू देस ॥ 153 ॥

यहाँ कथाकार ने न तो किसी स्त्री से प्रेम निवेदन ही कराया, न ही किसी स्त्री ने मिथ्या लांछन ही लगाया है। कवि ने अपने कल्पना चातुर्य से इस अभिप्राय का नूतन रूप प्रस्तुत किया है। उन्होंने माधव की अत्यधिक सुन्दरता को ही इसका दोषी ठहराया है—

> अति रूपइ सीता अपहरी, अति दानइ बलि बंध्यउ हरि
> अति गवइ रावण गंजीउ, अति सर्वत्र सदा वरजीउ ॥ 150 ॥

अति सर्वत्र बुरी होती है। सीता अत्यधिक रूपवान थी, इसलिये रावण ने उसका हरण किया–दान की अधिकता के कारण ही हरि ने बलि को बाधा। रावण को अपनी शक्ति का अति-गर्व था, वह भी चूर हुआ। अत माधव का अत्यधिक रूपवान होना ही उसके लिये कठिनाईयो का कारण बना।

12. कथा के पात्र-प्रेम-संघटक और सन्देश वाहक के रूप में

प्रेम-सघटक के रूप मे कथाकारों ने शुक हंस आदि पक्षियो का सहारा लिया है। कुछ काव्यों मे यह कार्य सखियो द्वारा भी सम्पन्न हुआ है। 'मधुमालती' मे जैतमाल की सखी यह कार्य करती है तो 'रूप मंजरी' मे इन्दुमती।

ढोलामारू मे भी यह-रूढि दो स्थानों पर आई है। प्रथम बार तो उस समय जब मुग्धा नायिका मारू विरह के उठते हुये महार्णव की थाह खोज रही होती है। सखियाँ रानी को मारवणी की विरह व्यथा से अवगत करा कर इस अभिप्राय को सफल बनाती है। दूसरी बार ढोला के पूगल पहुँचने पर मारवणी की सखियाँ ही मारवणी को ढोला से मिलवाकर उसके शयन कक्ष में पहुँचाती हैं।

कुशललाभ ने ढोला मारू में यह कार्य जहाँ सखियों से सम्पन्न कराया है वहाँ माधवानल कामकंदला में यही कार्य उज्जैन के शासक विक्रमादित्य से करवाया है। विरह व्यथित माधव उज्जेन पहुँचता है और शिव मन्दिर में अपनी विरह-गाथा लिखता है। विक्रमादित्य उस गाथा से न केवल बिरही माधव का ही पता लगाते हैं, वरन् उसे कंदला से मिलवाने का वचन भी देते हैं और कामवती नगर में माधव और कंदला का मिलन भी करवा देते हैं।[1]

13. प्रहेलिका-आयोजन

नायक नायिका के परस्पर प्रेमाकर्षण को तीव्र बनाने के लिये पहेली पूछने की कथानक रूढि का प्रयोग किया है। ढोला एव मारू के प्रथम स्नेह मिलन पर यह कथानक रूढि आयोजित हुई है। ढोला पहेली पूछता है और मारू उसका उत्तर देती है।

माधवानल कामकदला में भी इसी प्रकार का प्रयोग हमे मिलता है। कामकंदला कहती है—

कामकदला इम कहइ 'अभी अछइ बहुराति'
गाहा गूढा गीयरस, कहइ को नवली वाति ॥ 260 ॥

माधव कामकंदला से पहेली पूछता है—

सुंदरि। मदिर अप्पणइ, रमणी नाद सलीण
वीण अलापी देखिससि, किण गुण मूकी वीण ? ॥ 283 ॥

कामकदला इस पहेली का उत्तर इस प्रकार देती है—

विरह वियापी रयणि-भरि, प्रितम त्रिणतनु खीण
ससहरथि मृग मोहिउ, तिणि हसि मूकी वीण ॥ 284 ॥

प्रहेलिका आयोजन एक ओर राजस्थान के सामाजिक परिवेश को उद्घाटित करता है तो दूसरी ओर नायक नायिका के चरित्र के विकास में भी पूर्ण रूप से सहायक होता है। इस प्रसग मे साहित्यिक विनोद की यही उपयोगिता है कि इससे रति भाव का उद्दीपन होता है। अधिकांश पहेलियाँ साहित्य विश्रुत हैं। इनमें नायक नायिका की मौलिक कल्पना को ढूंढना व्यर्थ है क्योंकि ऐसे अवसरों पर साहित्य प्रसिद्ध पूर्वागत पहेलियों का प्रयोग ही उचित समझा जाता है। ऐसा प्रयोग प्राचीन भारतीय कहानियों और विशेषत' प्रेम कहानियों में वाक्चातुर्य और विनोद वृत्ति का बहुत सा साहित्य भरा पड़ा है। प्राकृत और अपभ्रंशकाल के दूहा साहित्य में इस प्रकार का कुछ भाग अब भी सुरक्षित मिलता है। माधवानल कामकंदला में

---

1. नगरमांहि महोच्छव कीयउ, राजा विकमघरितेडीयउ
   कामकंदला तेडी करी, माधव दीधी सुन्दरी
   माधवानल कामकंदला चउपई—616

प्रयुक्त अधिकांश प्रहेलिकायें अपभ्रंश साहित्य से लेकर कथा में अनस्यूत कर दी गई हैं।

गाहागीत विनोद रस, सगुणाँ दीह लियंति
कइ निद्रा कह कलह करि मूरखि दोह गमंति ॥ 263 ॥

हितोपदेश के निम्न श्लोक का भाव इस दोहे मे बड़ी सुन्दरता के साथ प्रकट किया गया है—

काव्ययशास्त्र वितोदेन कालोगच्छति धीमताम्
व्यसनेन च मूर्खाणा निद्रया कलहेन वा ॥ 262 ॥

14. प्रेम परीक्षा

कभी कभी नायक अथवा नायिका की मृत्यु पर उसी के समान रूप धारण करके जाना या उसी नायक के समान रूप गुण वाली कन्या से विवाह प्रस्ताव रखकर प्रेम निष्ठा की परीक्षा ली जाती है। इनके अलावा कभी कथाकार नायक नायिका के प्रेम की परीक्षा लेने के लिये एक दूसरे को नायक और नायिका की मृत्यु की झूंठी सूचना दे देता है।

ऐसे ही अभिप्राय का प्रयोग माधवानल कामकंदला मे हुआ है। विक्रमादित्य द्वारा दिये गये प्रलोभनो मे न आकर माधव गणिका कदला को ही प्राप्त करना चाहता है। तब विक्रमादित्य सेना सहित कामावती आता है।[1]

तेजसार रास की कथानक रूढियाँ

1, स्वप्न द्वारा भावी घटनाओं की सूचना

कथानायक या किसी अन्य पात्र द्वारा देखे गये स्वप्नो के अनुरूप भावी घटनाओं की आयोजना भारतीय कथानको की अत्यन्त प्रचलित रूढ़ि है। विभिन्न कथाकारों ने कथानक को गति, विस्तार अथवा मोड़ देने के लिये इस रूढ़ि का प्रयोग विभिन्न प्रकार से किया है। बाणभट्ट के 'हर्षचरित' मे रानी यशोवती ने स्वप्न देखा कि सूर्य मण्डल से दो कुमार और एक कन्या निकल कर पृथ्वी पर उतरे और उसके उदर मे प्रविष्ट हो गये। कालान्तर मे इस स्वप्न-फल के विचारानुसार रानी ने राज्यवर्धन, हर्षवर्धन और राज्यश्री को जन्म दिया।[3] इसी प्रकार 'दशकुमार चरित' में मगध की

---

1. माधवसहित कटक संजती, आव्यउ नगरी कामावती
दल ऊतर्यउ नगर गोयरइ राजाविहू परीक्षा करइ ॥ 538 ॥
2. कामकंदला कामिणी माधव विप्र सुजाण
साचू नेह स्यूं जाणिइ, जै इम छंडइ प्राण ॥ 590 ॥
3. हर्ष चरित (एक सांस्कृतिक अध्ययन) डा० वासुदेवशरण पटना 1953 पृ. 64

पटरानी वसुमति ने रात के अन्तिम प्रहर में एक सुखदायक सपना देखा, कि महाराज राजहंस को कहीं से कल्पवृक्ष का फल मिल गया है।[1] स्त्रियों का स्वप्न में फल देखा जाना सन्तानवती होने का प्रतीक माना जाता है। गर्भवती होने से पूर्व स्वप्न देखा जाना एक प्रचलित अभिप्राय रहा है। यहाँ तक कि लोकगीतों में भी इस अभिप्राय का उल्लेख मिलता है—

पहिल सपन एक देखेउँ, अपने मंदिर मे रे
सासु सपने का करउ विचार सपन सुभ पावँऊँ
सपने ससुर राजा दशरथ बगिया लगावइं हो
सासु बगिया में फुलइ गुलाब भंवर रस बिसलइ हो।[2]

गर्भ या सन्तान से सम्बद्ध सपनों मे फूल, के अलावा किसी योगी द्वारा दिया गया फल खाने से भी संतान प्राप्ति होती है।

तेजसार रास के कथाकार कुशललाभ ने इस अभिप्राय को नवीन रूप दिया है। वीरसेन राजा की रानी पद्मावती स्वप्न में घृत से परिपूर्ण प्रज्वलित दीपक देखती है। रानी यह स्वप्न राजा को बताती है। स्वप्न फल बताने वालों से राजा स्वप्न के बारे में पूछता है तब वे कहते हैं—

तुम्ह कुल माहि दीप समान, हुस्यइ पुत्रते रूप निधान
सुपन कथक सतोव्या सहू, माता पिता मन उच्छव बहू ॥ 9 ॥

2. फल खाने से गर्भस्थिति

यही नहीं कुशललाभ ने प्राचीन प्रचलित अभिप्राय 'फल खाने से गर्भ धारण' को भी अपने कथा काव्य में अपनाया है। अवतीपुर के राजा जय के कोई सन्तान नही होती है और वह इसी दुःख से बहुत दुःखी रहता है। रानी पुत्र प्राप्ति के लिये सभी देवी देवताओ को पूजती है तब एक योगी उसे फल देता है जिसके प्रभाव से रानी को गर्भ रहता है—

देव देवनी पूजा करै, राणी पुत्र काजि बहु फिरै
तिसै एक फल जोगी दीयो, तास प्रमाण गर्भ तस थयो ॥ 55 ॥

3. विमाता विद्रोह या सौतिया डाह

लोक कथाओ में और लोकजीवन मे भी किसी एक व्यक्ति की दो पत्नियों के बीच वैर-भाव और उनके द्वारा उत्पन्न किये गये गृह कलह के उदाहरण बहुत मिल जाते हैं। सौतिया डाह की यह भावना विमाता विद्रोह के दृश्य भी उपस्थित कर देती है।

---

1. दशकुमार चरित, अनुवादक पं० निरंजनदेव, बंबई प्रथम संस्करण—पृ० 18
2. कविता कौमुदी (तीसरा भाग) पं० रामनरेश त्रिपाठी, बंबई 1955 पृ० 195

विमाता के द्वारा सौत की सन्तान के प्रति विद्वेष और उसके विरुद्ध विभिन्न षड्यन्त्रों का आयोजन लोक-कथाओं का एक प्रिय अभिप्राय है। उदाहरण के लिये 'ध्रुव' की कहानी ली जा सकती है। राजा ने बड़ी रानी के आग्रह से सन्तान प्राप्ति के लिये दूसरा विवाह किया। नई रानी ने आते ही बड़ी रानी को निकाल दिया। कुछ समय बाद दोनो के पुत्र पैदा हुये। छोटी रानी ने अपने पुत्र को राजगद्दी का वास्तविक उत्तराधिकारी बताया और बड़ी रानी का पुत्र 'ध्रुव' जंगल मे तपस्या करने चला गया।[1] लोक-कथाओं का यह अभिप्राय थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ मानस में भी चित्रित है। लोक-जीवन की एक साधारण विमाता की भाँति कैकेयी राजा दशरथ से अपने पुत्र भरत के लिये राज्य माँगती है और राम को चौदह वर्ष का वनवास। उसे राजा से दो वरदान लेने थे उनका यथावत् उसने उपयोग किया। वह चाहती तो राजा से और कुछ माँग सकती थी, किन्तु सौत के पुत्र राम को राजा के रूप मे देखना उसे स्वीकार नही था और उसने वही किया जो लोक-कथाओं की विमातायें अपनी सौत के पुत्र के लिये अक्सर करती है। राम निर्वासन का यह प्रसंग वाल्मिकी रामायण के अनुरूप ही है। डा. कामिल बुल्के ने राम के वनवास के कारण को 'सबसे प्राचीन', 'प्रचलित' और 'प्रामाणिक' माना है।[2]

किन्तु लोक प्रचलित कथाओं मे विमाताओं द्वारा इस प्रकार के आचरण के अनेक उल्लेख मिलते है। 'तेजसार रास' में भी हमे यह कथा अभिप्राय देखने को मिलता है। राजा वीरसेन अपनी प्रथम पत्नी की मृत्यु के पश्चात् दूसरा विवाह कर लेते है। पूर्व पत्नी से उनके तेजसार और दूसरी से विक्रमसिंह नाम के दो पुत्र है। विक्रमसिंह की माता जानती है कि तेजसार बड़ा है और राज्याधिकारी भी वही होगा। विमाता यह कब सहन करे कि उसका पुत्र गद्दी पर न बैठे और सौत का पुत्र राज्य सुख भोगे। अतः वह राजा व मन्त्रियो को तेजसार के विरुद्ध भड़काती है। परिणाम-स्वरूप तेजसार गृह कलह के कारण गृह त्याकगर चला जाता है—

जाण्यु रोष पिता मन घणो ते जीतु नसि है ताजणो
मत्र रे कीधु अटकलइ मध्य राति तिहाँ थी नीकलइ ।। 18 ।।

विमाता व विमाता पुत्र के कारण राजा भी तेजसार से नाराज हैं। इसलिये मध्यरात्रि को तेजसार घर छोड़कर चला जाता है। तेजसार रास की कथा मे तेजसार का गृह त्यागना लोक-कथाओं के विमाता विद्रोह या विमाता द्वारा किये गये षड़यन्त्र का ही रूप है।

4. वन में मार्ग भूलना

कथा को नई दिशा देने और रोमांचक घटनाओं की योजना द्वारा चमत्कार और कुतूहल उत्पन्न करने के लिये कथाओं में इस अभिप्रायः का प्रयोग सबसे अधिक

1. आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीते—राहुल सांस्कृत्यायन पटना, 1951 पृ. 12–13
2. रामकथा, डा. कामिल बुल्के प्रयाग 1950, पृ. 320

हुआ है। कलाकार इसके प्रयोग द्वारा अपनी वस्तु योजना के अनुसार कथा को जिस दिशा में चाहे मोड़ सकता है। मध्यकाल के कथानकों के प्रेम और साहसिक कार्यों का प्रारंभ प्रायः इसी घटना से होता है। नायक आखेट के लिये वन में जाते हैं और किसी कारण से मार्ग भी अवश्य भूल जाते है। मार्ग मे राक्षस या सुन्दर स्त्री का मिलना अथवा अन्य घटना के घटित होने से नायक उसका प्रमुख पात्र बन जाता है। जिससे कथा अपने आप आगे बढती हुई दूसरी दिशा को ग्रहण करती है।

तेजसार का गृह त्यागकर जगल मे जाना और वहाँ उसे राक्षस का मिलना कथा को नया मोड़ देता है। राक्षस उसे मार डालने का प्रपच करता है। किन्तु तेजसार अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से अपने बचाव के उपाय सोच लेता है।

अमानवीय शक्तियाँ कभी-कभी नायक के सहायक के रूप मे भी अवतरित होती हैं। तेजसार भी अपनी युक्ति से बच तो निकलता है परन्तु राक्षस उसका पीछा करता है। ऐसे समय पर योगी उसे एक मत्रित दड देता है जिससे वह राक्षस को मारता है—

> झाली दण्ड कुमर नीसरइ देखी से राक्षस मन माहि डरइ
> थाई जेहवइ बाँधे जडयउ, दंड सकति राक्षस भु इ पड़यउ ।। 48 ।।

5. राक्षस द्वारा कन्या हरण

किसी राक्षस द्वारा किसी कन्या का हरण भारतीय साहित्य का एक अत्यन्त प्रचलित अभिप्राय है। राक्षस या जोगी कन्याओ का हरण कर उन्हे बंदिनी के रूप मे रखता है और नायक इन राक्षसो को मारकर उन कन्याओ की रक्षा करता है। इस अभिप्राय का प्रयोग करन वाली कथाओ मे राजकन्याये इन अतिमानव शक्तियो द्वारा अपहृत होकर इन जनशून्य नगरों मे लाई जाती है। इसी का एक अन्य रूप उन कथाओ मे दिखलाई पडता, है, जिनमे नायक-नायिका मिलन और प्राप्ति के बाद नायिका किसी राक्षस-विद्याधर आदि द्वारा हरण होता है और अन्त मे अपहरण करने वाले को मारकर नायक-नायिका को पुन प्राप्त कर लेता है। सीता हरण की घटना इसी अभिप्राय का कथा रूप है।

वाल्मिकी और होमर के महाकाव्यो मे नायिका हरण ही कथा का मूल अभिप्राय हैं। कथासारित्सागर मे नरवाहनदत्त की रानी और कथा की नायिका मदनमचुका का मानसवेग द्वारा उसी प्रकार हरण हुआ जिस प्रकार रावण ने सीता का हरण किया था। सीता की तरह ही माया द्वारा मानसवेग ने मदनमंचुका का हरण कर उसे सेवको से रक्षित उद्यान मे रखा। सीता हरण का पता जहाँ जटायु देता है वहाँ विद्याधरी वेगवती द्वारा मदनमचुका के हरण का वृतांत मालूम होता है। सीता हरण की घटना से ही यह अभिप्राय लिया गया है।

कुतवन कृत 'मृगावती' मे चन्द्रगिरी का राजकुमार रूक्मिणी नाम की राजकुमारी को किसी राक्षस के पजे से छुड़ाता है। मंझनकृत 'मधुमालती' में राजकुमार

मनोहर एक राक्षस को मारकर उसके द्वारा अपहृत कन्या को मुक्त कराता है। सूरसागर में इसी तरह के कई उपाख्यान उपलब्ध होते है जिनमें श्रीकृष्ण किसी न किसी राक्षस को मारकर उसके द्वारा अपहृत कन्याओं का उद्धार करते हैं। उदाहरण के लिये भौमासुर 16 हजार राजकुमारियों को हर ले गया था और उन्हें बन्दिनी बना रखा था लेकिन श्रीकृष्ण ने उसे ससैन्य मारकर उन्हे मुक्त करा दिया।[1]

इस प्रकार राक्षस द्वारा कन्याहरण का अभिप्राय अनेक प्राचीन कथाओं में उपलब्ध होता है, कोई राक्षस या असुर किसी राजा की राजकुमारी को चुरा ले जाता है और फिर कोई राजकुमार उसे मारकर राजकुमारी को मुक्त कराता है।

प्राकृत-अपभ्रंश के जैन चरित काव्यों में भी यह अभिप्राय बहुत प्रयुक्त हुआ है। तेजसार रास मे कथाकार ने इस अभिप्राय को नवीन रूप दिया है योगीराज-कुमारी विजयश्री का अपहरण करता है, और उसे जंगल मे ले जाता है। नायक तेजसार उसके करुण क्रन्दन को सुन उस ओर जाता है और राजकुमारी को बंधी हुई देखता है। वह उसे छोडने को कहता है, योगी और तेजसार में युद्ध होता है और योगी मारा जाता है---

मन्त्र त्रणी नें बांधी मूंठि, प्राणे योगी हणीयउ पूठि
कुमर तणी विद्या नवि सही, पडयउ भूमि मूर्छा गतथई ।। 90 ।।

यहाँ कथाकार ने पूर्वभव का सहारा लिया है। विजयश्री के अपहरण की बात का कथाकार बहुत ही चमत्कारिक ढंग से उद्घाटन कराता है—

ते वलता जपे केवली, साभलि राजा कारण वली
बार जोयण अटवी कतार लहिस्यै योगी मत्र आधार ।। 103 ।।
ते मारेस्ये विद्या ने कामि तेजसार आवेस्यै तिण ठांमि
भूझकरी ते छोडावस्यै, ते भरतार एहनो हुस्यै ।। 104 ।।

6. रूप परिवर्तन

दिव्य शक्ति या विद्या के द्वारा रूप परिवर्तन की कथाओ से सभी देशो का साहित्य भरा पड़ा है। ये अलौकिक और अतिमानव प्राणी स्वेच्छा से जब जो रूप चाहे धारण कर सकते है। भारतीय देवताओं मे इन्द्र, सूर्य और शिव-पार्वती आदि गरीब ब्राह्मण, कोढी आदि का रूप धारण करते हैं। देवताओ के अतिरिक्त अन्य अतिमानव शक्तियाँ, मानव विरोधी शक्तियाँ, राक्षस, पिशाच, भूत-वेताल, विद्याधरी, व्यतरी आदि के कथा रूप विशेष महत्व रखते है। वे दुष्ट अतिमानव प्राय: रूप परिवर्तन कर नायक को संकट मे डालते है।

श्रीमती पुरुष रूप धारण करती है—

मास दिवस लगि जोती फिरी, अनुक्रमि आवी चम्पापुरी
आपनी करी पुरष नो वेस, पूछे कुणपुर कवण नरेस ।। 228 ।।

---

1. सूरसागर नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वितीय संस्करण स. 2009

पंडयाणी विद्याबल से अपना रूप बदलती है—

मूकी वस्त्र लोटइ खड माहि, विद्याबलि ते रासभी
बे पहुर राति बउली जेतलं पडयाणी ऊठी तेतलं ।। 56 ।।

तेजसार रास के नायक तेजसार को योगी अपने प्राणो की भीख के बदले मे उसे रूप परिवर्तन की विद्या सिखाता है—

एह मन्त्र तु जपीनइ जोइ, ताहरू रूप न देखइ कोई
बीजइ मन्त्र तु जपीनइ जोइ, जे चींतवइ तिस्यु रूप करई ।। 194 ।।

योगी उसे एक मन्त्र के जपने से उसके रूप को कोई नही देख पायेगा तथा दूसरे मन्त्र के प्रभाव से वह जैसा रूप चाहेगा, बना सकता है। इस प्रकार दो मन्त्र वह रूप परिवर्तन करने के सीखता है।

तेजसार और विद्याधर का युद्ध होता है और दोनों ही अपने रूप निम्न प्रकार से बदलते है –

विद्याधर बल फेरी रूप, विद्याधर थयउ हाथी रूप
तेजसार पिण मंत्रइ करी सबल रूप थये केसरी
वली विद्याधर फेरी अंग कृष्णवर्ण ते थयुं भुयंग
मोर रूप ते थयो कुमार, पूंछ झालि ऊडयो तेवार ।। 162–63 ।।

7. मन्त्र युद्ध

तन्त्र-मन्त्र देवी शस्त्रास्त्र और माया द्वारा युद्ध के अनेक उदाहरण मानस मे मिलते है। मेघनाद और लक्ष्मण युद्ध के समय मेघनाद युद्ध करते-करते गायब हो जाता है या एक साथ ही विभिन्न रूप धारण करके लड़ता है—

एकहि एक सकइ नहि जीति, निश्चर छलबल करइ अनीति।
क्रोधवत तब भयउ अनन्ता भजेउ रथ सारथी तुरता ।।

रावण राम से युद्ध करते समय प्रबल मर्कटो की सेना को देखकर अपनी माया का विस्तार करता है और वेताल, भूत, पिशाच, योगनियाँ आदि आसुरी शक्तियाँ प्रकट होकर बन्दरो और भालुओ को डराने लगती हैं।

तन्त्र-मंत्र या माया द्वारा युद्ध रचना की यह रूढ़ि भारतीय कथाकारो को अत्यन्त प्रिय रही है। कथासरित्सागर मे इस प्रकार के मन्त्र-युद्ध के कई उदाहरण है। पृथ्वीराज रासो के 'चन्द द्वारिकागमन' नामक 42वें समय मे चन्द मन्त्र-बल से अमरसिंह के रथ को आसमान मे उड़ा देता है। इसी प्रकार 'महोबायुद्ध' के प्रसग में आल्हा निद्रास्त्र का प्रयोग करता है और पृथ्वीराज के सैनिको को नींद आने लगती है।[1]

1· पृथ्वीराज रासो की कथानक रूढ़िया—डा. ब्रजविलास श्रीवास्तव, बम्बई 1955 पृष्ठ 112

'तेजसार रास' मे इस अभिप्राय का कई स्थानों पर प्रयोग हुआ है। प्रथम बार जब तेजसार राक्षस के चंगुल से छूटकर एक योगी के यहाँ शरण लेता है तब योगी उसे एक दण्ड देता है—

एह दण्ड जेहनर हुवइ पास, भूत प्रेत सवि जाइ नासि ।। 47 ।।

राक्षस तेजसार को दो विद्या देता है—

मन्त्र भणीनइ बाँधइ मूँठि प्राण करी मू कासि जस पूठि
ते पडस्यइ मूर्छा गत थही, विद्या ते कुमरइं संग्रही ।। 51 ।।
बीजीवली कटक थंमणी मन्त्र सकति न सकइ को हणी
विद्या सीखावि राक्षस गयउ, कुमर हीयउ अति हरषित थयउ ।। 52 ।।

तीसरी जगह जब विद्याधर के साथ तेजसार का युद्ध होता है और दोनों रूप परिवर्तन करके लड़ते हैं तब विद्याधर समझ जाता है कि यह कोई साधारण व्यक्ति नही है

तब विद्याधर चिंतइ खरो, पुरुष एह नही पाधरो ।। 63 ।।

तब वह युद्ध छोड़कर शक्ति देव की उपासना करता है—

तेह मन्त्र तिण समरयौ जिसे ते प्रज्ञपति आनी तिसै
कुमर एकलउ एकइ पासि, देवी झूझ चढी आकासि ।। 65 ।।

8. मन्त्र द्वारा स्थान परिवर्तन

इस रूढि का प्रयोग शेख कुतुबन ने 'मृगावती' में दो स्थानो पर किया है। मृगावती मन्त्र शक्ति द्वारा स्थान परिवर्तन की विद्या जानती है और जब कंचन नगर का राजकुमार उस पर मोहित होता है तो वह उसे धोखा देकर अन्य स्थान को चली जाती है। राजकुमार किसी तरह उसे ढूँढ लेता है और दोनों का विवाह हो जाता है, किन्तु मृगावती राजकुमार को फिर धोखा देती है और वह अपनी मन्त्र शक्ति से उड़ जाती है। राजकुमार उसकी खोज मे योगी बन जाता है।[1]

कुशललाभ कृत 'तेजसार रास' मे कथाकार ने इस अभिप्राय का नवीनतम प्रयोग किया है। विद्याधरी श्रीमती तेजसार का पता लगाने जाती है तब अपनी अन्य बहिनो के लिए मन्त्र बल से प्रसाद आदि बनाती है—

श्रीमती ये विद्या परमाणि, कीयउ नवो मन्दिर तिण ठाणि
अन्न घृत परथल सग्रही, आविवा श्रवण अवधि मासनी कही ।। 225 ।।

ऐसा ही प्रयोग कथाकार ने राजकुमारी एणामुखी के विवाह के समय किया है। व्यंतरी अपनी मंत्रशक्ति द्वारा एक ऐसे आवास का निर्माण करती है जो सब प्रकार के साधनों से सम्पन्न है—

तिणं पिण तेजसार पेखीयो, विकस्यौ हृस्यौ बहूनौ हीयो
मातानी मन पूगी आस तिहां विकूर्व्यंउ नवउ आवास ।। 289 ।।

1. हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य डा० कमल कुल श्रेष्ठ अजमेर 1953 पृ. 33

सतर भक्ष भोजन आहार, वन देवी नेवइइति बार
हीर चीर सोवन पटकूल आण्या बहू आभरण अमूलि ।। 290 ।।

इसके अतिरिक्त तेजसार की माता जो मर कर व्यंतरी हो गई थी तेजसार के विवाह अवसर पर एक नगर का ही निर्माण मन्त्र द्वारा करती हैं—

नबो एक नीपाव्यो नगर, सरोवर वावि कूप बन पवर
गढ दुरंग मन्दिर देहरा, चौरासी चौहटा चावरा ।। 303 ।।

समरसेन से युद्ध में विजय प्राप्त कर तेजसार ने अवंतीपुर में अपना राज्य स्थापित किया । तेजसार अपनी सास से कहता है कि ऐसा कार्य करो जिससे आपका नाम सदैव बना रहे । तब वह भी एक नगर बसाती है जो सुरपुर के समान है ।[1]

9. स्थानान्तरण द्वारा प्रेम संघटन

कई कथा काव्यों मे स्थानान्तरण द्वारा प्रेम सघटन के अभिप्राय का भी सहारा लिया गया है । इन काव्यो मे नायक नायिका के परस्पर आकर्षण और प्रेम द्वारा कथा का प्रारम्भ करने के लिए प्रस्तावक रूप मे ही इसका भी उपयोग किया गया है । इस अभिप्राय के आधार पर निर्मित कथा इस प्रकार है—

जब तेजसार मृगो के साथ जाती हुई राजकुमारी को देखता है तो वह उसकी ओर आकर्षित होता है, एणामुखी राजकुमारी तेजसार को देखकर केवल आकर्षित ही नहीं होती वरन् उसमे काम व्याप्त हो जाता है और भविष्य में वह उसी व्यक्ति को वरण करने का निश्चय करती है । एणामुखी अपनी माता जो कि व्यंतरी है, उससे भी यही कहती है—

ते मुझने परणावो मात, नही तर करिसुं आतमघात
पुत्री नो मन जाणी करी, तुझ जोवा हुं चिहुं दिशिफिरी ।। 385 ।।

रात्रि मे सोये हुये नायक को यक्ष अप्सरा गंधर्व व्यंतरी आदि अति मानव प्राणी उठा लाते हैं और वाँछित नायिका राजकुमारी से विवाह कर देते हैं ।

तेजसार में भी एणामुखी की माता व्यंतरी है और वह अपनी पुत्री की इच्छानुसार शादी करने के लिये तेजसार को चंपावती नगरी से रात्रि में उठा लाती है—

---

1. तेजसार सासू प्रति कहै कीजै तेय नाम जिम रहे
अटवी माँहि नगर एक नवो, जइ वास्यो सुरपुर जेहवो
तेजसार रास ग्रं. 26546 ।। 333 ।।
तिण वातइ सासू गहगही आण्या लाख लोक तिहा सही
गढ मठ मन्दिर पौलि प्रगाड नव बारह जोयण विस्तार ।। 335 ।।
तेजलपुर तिण नगरी नाम पुण्यैं सीझे सगला कांम
एतलै पाम्यो वीयो राज करइ अनेक धर्मना काज ।। 336 ।।

तेजसार तुझ लेवा काज चंपानगरी आवी आज
पउढयो दीठउ मदिर माँहि मइं ऊपाड्यउ बाहे साहि ।। 386 ।।

अन्य कथा काव्यो मे अतिमानव शक्तियाँ लक्ष्य सिद्धि के पश्चात् नायक या नायिका को यथा स्थान पहुँचा देते है । परन्तु तेजसार मे कथाकार ने इसे नवीन रूप देने के लिये व्यतरी द्वारा एक नये आवास का निर्माण कराता है और वही पर नायक नायिका आनन्द से रहते हैं ।

मंझन ने मधुमालती मे नायक नायिका के परस्पर आकर्षण और प्रेम के लिये इसी अभिप्राय का सहारा लिया है ।[1] चित्रावली में भी चित्र दर्शन जन्य आकर्षण के लिये इसी अभिप्राय को आधार बनाया गया है ।[2] इन्द्रावती मे माणिक की अवान्तर कथा मे भी नायक के अज्ञान मे स्थानान्तरण द्वारा ही नायिका से मिलन और प्रेम का प्रारम्भ होता है ।[3]

संस्कृत साहित्य के कथाकाव्यो मे ही नही नाटिकाओं मे भी संघटक अभिप्राय के रूप मे इसको कथा का आधार बनाया गया है । राजशेखर की नाटिका कर्पूर मंजरी की कथावस्तु मुख्यत इसी अभिप्राय पर आधारित है । किन्तु इसमें नायक के स्थान पर नायिका ही योगबल से स्थानान्तरण करती है ।[4] हिन्दू कथाओ में देव-अप्सरा राक्षस योगी कापालिक आदि दिव्य व्यक्ति अथवा अलौकिक शक्ति सम्पन्न व्यक्ति स्थानान्तरण का कार्य करते हैं, जबकि जैन कथाओ मे विद्याधर, व्यतरी खेचर खेचरी आदि नायक नायिका के मिलन मे इसी प्रकार सहायता करते है । जिनदत्त-ख्यान मे एक विद्याधर जिनदत्त को अशोकश्री के महल पहुँचा देता है ।[5] करकण्ड-चरिउ मे एक खेचरी करकण्ड को उडा ले जाती है किन्तु यहा वह अभिप्राय देवासुरो द्वारा नायक नायिका हरण की ओर चला जाता है ।[6]

10. भविष्यवाणी या ज्योतिषियों द्वारा पूर्व सूचना

इस अभिप्राय का प्रयोग प्रत्येक कथा काव्य मे किसी न किसी रूप मे अवश्य मिलता है । कही युवावस्था मे किसी सुन्दरी पर अनुरक्त होकर देश छोड़ने और योगी होने की ज्योतिषियो द्वारा पूर्व सूचना होती है ता कही गर्भ स्थित बालक या बालिका होने को सूचना होती है । इसके अतिरिक्त कन्या का विवाह अमुक राजकुमार से होगा या राजकुमार वहाँ का शासक होगा आदि भविष्यवाणी के अनेक

1 मधुमालती, अपछरा खण्ड पृ 22—25
2. चित्रावली देवखण्ड पृ 27
3 इन्द्रावती पृ. 146
4. कर्पूरमंजरी प्रथम अंक
5. जिनदत्ताख्यान पृ. 28
6. करकण्डचरिउ प 158

उदाहरण हमें इन कथाकाव्यो मे देखने को मिलते है। रसरतन में नायक नायिका प्रेम और विवाह कामदेव और रति के संवाद द्वारा पूर्व निश्चिय हो जाता है।[1]

मधुमालती मे चौदह वर्ष ग्यारह मास पर बुधवार या वृहस्पति की रात्रि मे कुमार के मन मे प्रेम उत्पन्न होने की सूचना दी गई है और उस प्रेम के कारण नायिका के वियोग मे एक वर्ष तक योगी रूप मे जाने का भी पूर्व कथन है।[2] चित्रावली मे भी निस्सतान राजा के ऊपर कृपालु होकर सतान की कामना पूर्ण होने का वरदान देते समय शिव नायक के योगी होने की पूर्व सूचना भी देते हैं।[3]

तेजसार रास मे भी इस कथा अभिप्राय का कथाकार ने कई जगह प्रयोग किया है। जैन कथाकाव्यों मे पूर्वभव को मुख्य माना जाता है और पूर्वभव के आधार पर ही भविष्यवाणी या ज्योतिषियों द्वारा किसी कार्य के होने की पूर्व सूचना दी जाती है।

तेजसार रास में तेजसार के जन्म की सूचना पहले ही दे दी जाती है—

तुम्ह कुल माहि दीप ममान, हुस्यइ पुत्र ते रूप निधान
सुपन कथक सतोख्या मह, माता पिता मन उच्छव बहू

चंपावती नगरी का राजा कनककेतु अपनी पुत्री विजयश्री के विवाह के बारे मे केवली (मुनिवर) से पूछता है तब केवली मुनि कहते हैं—

ते वलतु जपं केवली, साभली राजा कारणवली
बार जोयण अटवी कतार लहिस्ये जोगी मन्त्र आधार ॥ 103 ॥
ते मारिस्यैं विद्या ने कांमि, तेजसार आवस्यैं, तिण ठांमि
भूझ करी ते छोडावस्यैं, तै भरतार एहनो हुस्ये ॥ 104 ॥

राजा वयरकेसरी की कन्या पुष्पावती के लिये ज्योतिषी भविष्यवाणी करते है—

जम्मकालि मिलीया ज्योतिषी, तिण जोइ जम्मोत्री लिखी
परणेस्यै एह राजकुमारि, ते पामस्यैं राज चियारी ॥ 180 ॥

11. निर्जन स्थान मे सुन्दरी का मिलना

किसी राजकुमार का मार्ग भूलकर या किसी अन्य प्रकार से किसी निर्जन स्थान या किसी उजाड नगर मे पहुँचना और किसी सुन्दरी से उसकी भेंट होना लोक-कथानको का एक अत्यन्त प्रचलित अभिप्राय है। इस अभिप्राय का उपयोग बहुधा किसी रोमांस की सृष्टि के लिये किया गया है। राजकुमार उस सुन्दरी को किसी संकट से मुक्त कराता है और फिर दोनों में प्रेम हो जाता है।

---

1. रसरतन—स्वप्नखण्ड 13
2. मधुमालती . जन्मौती खण्ड
3. चित्रावली जन्म खण्ड पृ. 19

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संभावना पक्ष पर आश्रित कतिपय कथानक रुढियों की चर्चा करते हुये इस कथाभिप्राय का उल्लेख किया है।[1]

कथासरित्सागर मे उपलब्ध शक्तिदेव और इन्दीवर की कहानियाँ इसी अभिप्राय पर आधारित है। इन्दीवर एक उजाड नगर मे पहुंचता है और वहा एक राक्षस को मारकर उसके द्वारा अपहृत दो राजकुमारियों को मुक्त कराता है। शेख मंझन ने भी अपनी मधुमालती मे कथा विस्तार की दृष्टि से इस अभिप्राय का सहारा लिया है।

तेजसार रास मे भी तेजसार जब मार्ग भूल जाता है और वह वन मे घूमता रहता है तब उसे नारी के रोने का शब्द सुनाई देता है -

रोवती नारी अणुसारि वहितु जोवे रन्न ममारि
घणुं दुखे ते रोवइ सही आव्यो कुमर तिहा किण वही ।। 79 ।।
एकण झाड तणै अतरै निरखै कुमर चित्त नाहि डरै
अति सरूप सुन्दर आकार के अपछर कै देव कुमार ।। 80 ।।

तेजसार इस नारी को योगी से छुड़ाता है और अपने ही साथ लेकर जगल मे घूमता फिरता है। यहाँ अन्य कथा-काव्यो की तरह नायक को प्यास नही लगती। नायिका प्यासी है और तेजसार पानी लाने जाता है और नायिका के पानी पीकर सो जाने के बाद वह तलवार हाथ मे ले वन मे घूमने लगता है और देखता है कि—

तिहा परवै हरिणा नु टोल कूदै रमै नै करै कलोल
नवयौवन तिण माहै नारि अपछर नही दीसै अणुसारि ।। 122 ।।

उस कन्या को देखकर राजकुमार तेजसार सोचता है कि यह वन मे अकेली कैसे रहती है। यह कोई अप्सरा है या राजकुमारी। तेजसार कन्या का नाम तथा माता-पिता के कुल और स्थान के बारे मे भी पूछता है किन्तु वह बाला शर्माती हुई मृगों के साथ चली जाती है। नारी भी पुरुष को देखकर काम के वशीभूत हो जाती है और सोचती है—

जाण्यु रूपवंत नर ऐह, हुवै भरतार मुझ साथि सनेह
स्नेह दृष्टि जोवती गई दीसै नही वनतरी थई ।। 126 ।।

कुमार भी यही सोचता है --

बलतउ कुमर विलखौ थई चितवै किमइ एह अस्त्री मुझ हुवै
तन मन तणा मनोरथ फलै इम चितवतउ पाछउ वलै ।। 127 ।।

तेजसार वापस उसी स्थान पर आकर देखता है तो उसे विजयश्री दिखाई नहीं देती और वह उसी को खोजने निकलता है तब वह क्या देखता है कि—

बइठी द्वार एक बरबाल हाथि ककोहल करवाल
नव यौवन अति सुन्दरि नारि जाणै अपछर नै अणुहारि ।। 136 ।।

तेजसार उस विद्याधरी से विजयश्री के बारे में पूछता है तब वह कहती है—

1. हिन्दी साहित्य का आदि-काल . डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पटना 1952, पृ. 74

तब ते हसी बोलइ वर नारि, इए केलिहर कन्या प्यार
ते बैठी छइ राजकुंवरी जोवउ जउ होवइ कंता ताहरी ।। 140 ।।

तेजसार उन पांचों कन्याओं से विवाह कर लेता है और आनन्द से रहता है किन्तु कथाकार कथा को फिर एक नवीन मोड़ देता है और विद्याधर के साथ तेजसार का युद्ध करवाता है। विद्याधर प्रज्ञपति-विद्या शक्ति से तेजसार को दूर ले जाकर नदी में गिरा देता है। तेजसार पाँचों नारियों के विछोह से दुखित हुआ घूमता रहता है तब वह एक नगर में आता है वहाँ युद्ध के बाजे रहे हैं तथा धूल आकाश में उड़ती हुई देख तेजसार युद्ध होने का अनुमान करता है। वह नगर के समीप पहुँच कर क्या देखता है—

पहुतउ नगर समीपि जिसै तिण दीठं एक नारी तिसै
सबलउ एक कंधेरी कुंज, पाषतिया कटालउ पुंज ।। 176 ।।

नारि एक तेहनइ बारणै रोवे छै अति दुख धणै
कुमरै पूछी तेड़ो करी कहउवात मुझ हेते करी ।। 177 ।।

तब कुमारी पद्मावती की दासी सब वृतात बताती है कि पद्मावती को प्राप्त करने के लिए ही यह सब युद्ध हो रहा है। तेजसार अपनी विद्या के बल से विजय प्राप्त करता है। पद्मावती का पिता व्रज-केसरी अपने पुत्र-अभाव में कन्या का विवाह तेजसार से कर देते है और उसे अपना राज्य भी दे देते हैं—

भलै दिवस महूरत वार मेली देश लोक परिवार
दीधी घन सोवन नी धाट तेजसार नृप थाप्यो पाटि ।। 207 ।।

इस प्रकार तेजसार रास मे जगल वन व सरोवर के पास तेजसार आठ राजकुमारियो को देखता है और उन सभी से वह विवाह भी करता है ।

कथा साहित्य मे प्रेम-सघटक के रूप मे इस अभिप्राय को लिया है। लोक-कथाओं व शिष्ट साहित्य मे नायक-नायिका के मिलन और प्रेम के लिये प्राय: इसी अभिप्राय का सहारा लिया गया है। वन में मार्ग भूलकर या जल की तलाश मे जाकर नायक ऐसे स्थान पर पहुँच जाता है जहाँ उसे अवश्य ही किसी सुन्दरी कन्या के दर्शन होते है। ईश्वरदास ने सत्यवती कथा मे और कुतुबन ने मृगावती मे नायक-नायिका के प्रथम दर्शन द्वारा कथा का प्रारम्भ करने के लिए इसी घटना को आधार बनाया है। इस अभिप्राय का क्षेत्र नायक-नायिका के मिलन तक ही सीमित है। मिलन के बाद कथाकार अपने उद्देश्य के अनुरूप अन्य अभिप्रायों का सहारा लेकर जिधर चाहे कथा को ले जा सकता है।

संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश के कथा-काव्यो मे प्रेम-संघटन के लिये इसी अभिप्राय का सबसे अधिक उपयोग किया गया है। जैन कथाकारों ने इस अभिप्राय का बहुत अधिक प्रयोग किया है। 'बंभदत्तो में नायक ब्रह्मदत्त को वन मे भटकते

समय एक महासरोवर के पास वर कन्या श्रीकान्ता दिखलाई पड़ती है जो तेजसार रास की एणामुखी की तरह प्रेम भरी दृष्टि से देखती हुई चली जाती है और बाद में दोनों का विवाह हो जाता है।[1] जैसा कि तेजसार रास मे भी होता है। करकण्डु चरिउ में प्यास से व्याकुल होकर जल की तलाश करते समय करकण्डु का सरोवर के पास स्वर्णकांति वाली रत्नलेखा से मिलन और प्रेम होता है।[2] तेजसार रास के कथाकार ने परम्परा से थोड़ा हट कर इस अभिप्राय का प्रयोग किया है। तेजसार रास के नायक तेजसार को प्यास नहीं लगती यहाँ नायिका विजयश्री को प्यास लगती है और नायक के पानी लाने और नायिका के पानी पीकर सो जाने के बाद ही नायक को उस सरोवर के पास वन मे अपने उद्देश्य पूर्ति हेतु घुमाता है और वहीं कथाकार नायक एणामुखी राजकुमारी को मृगों के साथ जाते हुये देखता है और आसक्त हो जाता है। नायिका भी उसी से विवाह करने की प्रतिज्ञा ही नही करती वरन् आत्मघात करने की धमकी भी देती है :

ते मुझने परणावो मात नहीं तर करिसु' आतमघात
पुत्री नो मन जाणी करी तुझ जोवा हुं चिहु दिशिफिरी ।। 285 ।।

पउमचरिउ मे सगर और तिलक केशा का मिलन और प्रेम सरोवर के निकट ही होता है।[3]

इसी अभिप्राय के सहायक अभिप्राय के रूप मे कही-कही नायक राक्षस योगी अतिमानव शक्तियों द्वारा वन्दिनी नायिका का उद्धार भी करता है और यही परिचय प्रेम और विवाह मे परिणत हो जाता है। किसी कथा मे कथाकार बिना युद्ध के ही नायक को राक्षस से नायिका दिलवा देता है, तो कही युद्ध के बाद। भारतीय कथाकारो ने अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार नई पद्धतियों का उपयोग किया है। जैन कथाकारो ने अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के कारण राक्षस को पूर्वजन्म मे नायक द्वारा किये गये उपकारो का स्मरण दिलाकर नायिका की मुक्ति को सहज साध्य बना दिया है। ऐसी कथाओ मे इस धार्मिक-रग के कारण इस अभिप्राय की रोमाचकता और चमत्कारिकता नष्ट हो गई है। सघर्ष को बचाने के लिये कुछ जैन कथाकारों ने नायिका की मुक्ति के लिये 'दिव्याजनो' के अभिप्राय का सहारा लिया है।

किन्तु लोक-कथाओं में नायिकाओ की मुक्ति इतनी सरल नही होती है। कठिन सघर्ष के बाद ही नायक इनकी मुक्ति में सफल होते हैं। प्रायः नायकों की ही सहायता से उनकी मुक्ति सम्भव हो पाती है।

---

1. बभवतो-स० एन. बी. वैद्या 1956 पृ० 11
2. करकण्ड चरिउ 8-10
3. पउमचरिउ सन्धि-5

तेजसार रास का नायक तेजसार विजयश्री की मुक्ति योगी से संघर्ष के बाद ही कर पाता है। योगी अपने प्राणो की भिक्षा तेजसार से मांगता है और बदले में उसे रूप परिवर्तन की विद्या सिखाता है।[1]

नायिकाओं की सहायता से भी नायक-नायिकाओं को प्राप्त करता है। तेजसार विद्याधर से युद्ध में पराजित हो जाता है और दूर फेंक दिया जाता है तब नायिका श्रीमती विद्याधर का शीश काटकर तेजसार से मिलने का मार्ग साफ करती है—

विजयसिरी ते अवसरि लही, खडग झालि तगु पूठि रही
कते वैर वालवा जागीस, विद्याधर नउ छेद्योसीस ।। 221 ।।

विजयश्री द्वारा विद्याधर का शीश काटने के बाद ही उन पाँचों कन्याओं को मुक्ति सम्भव होती है। पद्मावती की रक्षा करने से पद्मावती से तो उसका विवाह होता ही है, साथ ही सूरसेन भी अपनी पुत्री सुरसुन्दरी का विवाह तेजसार से कर देता है। पद्मावती और उसकी दासी जब कहती है कि यदि उनकी रक्षा न हुई तो वे आत्महत्या कर लेगी तब तेजसार कहता है—

कुमरै जोइ राजकुमारी। अति सरूप सुन्दर आकारि ।।
कहै कुमर कोई भव्य नही। हिव तुम्ह नै ऊगा रिस सही ।। 192 ।।

वन में मार्ग भूलने के कारण घटित होने वाली आश्चर्यजनक और रोमांचक घटनाओं का वास्तविक सौन्दर्य और चमत्कार लोक-कथाओ में ही देखने को मिलता है। इन कथाओ मे ऐसे अवसर पर प्राय. रोमाचक और दुखद घटनायें ही घटित होती है।

इन सभी उदाहरणो से स्पष्ट है कि कथाकार अपनी कथानक योजना के अनुरूप किसी भी रोमाचक और आश्चर्यजनक घटना की ओर कथा को ले जाने के लिये इस अभिप्राय का सहारा लेता है।

12. दिव्य विद्या—

रूप परिवर्तन के साथ दिव्य विद्या का वर्णन भी कथाओं में आता है। अभिप्राय के मूल स्रोतो से ज्ञात होता है कि योग और सिद्धियों ने भारतीय कथा साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया है। योगी की प्रायः सभी चमत्कारिक शक्तियों का महाभारत से लेकर मध्यकाल तक के कथा-काव्यों में उपयोग किया गया है। योगी और तपस्वी या राक्षस आदि अतिमानव शक्तियो और उनकी सर्वज्ञता के उपयोग से कथा की जटिल स्थितियों को सुलझाने और उनके कार्यों द्वारा कथा में चमत्कार और आश्चर्य तत्व ले आने में कथाकारों को बहुत अधिक सहायता मिली है।

---

1. तेजसार रास दूहा-94

तेजसार रास का नायक राक्षस को युद्ध मे परास्त कर उससे दो विद्याएँ सीखता है। उस विद्या का प्रयोग वह सिकोतरी पर करता है—

मंत्र भणी नैं बांधी मूंठि तिण रास भी हणी इक मूंठि ।। 72 ।।

दूसरी विद्या का प्रयोग वह सेना को स्तम्भित करने मे करता है—

कुमर वीटया मत्र प्रमाणि, थंम्यउ कटक रहयउ तिण ठाणि
तैंजसार ऊगारी बाल, रिपु सेना भाजी ततकाल ।। 194 ।।

13. आकाश गमन

अतिमानव शक्तियाँ ही आकाश मे उड़ती है परन्तु कहीं-कही मानव भी आकाश मे उड़ते दिखाये गये हैं। रामचरितमानस के हनुमान आकाश मार्ग से ही उड़कर संजीवनी बूटी लाते हैं। इस अभिप्राय का प्रयोग पाठक को चमत्कृत और प्रभावित करने के अतिरिक्त पाठक के कुतूहल को शान्त करने के लिए भी किया गया है।

किसी योगी-योगिन से विद्या सीखने के उदाहरण भी बहुत मिलते है। कथासरित्सागर मे कालरात्री की पूरी कथा उडने की विद्या को लेकर कही गई है।[1] तेजसार रास के प्राय. सभी पात्र आकाशगामी है। विद्याधर अपने मत्र प्रमाण से प्रज्ञपति विद्या का आह्वान करता है—

तेहमत्र तिण समरयौ जिसें, ते प्रज्ञपति आवी तिसैं
कुमर एकलउ एकलइ पासि देवी भूफ चढी आकाास ।। 165 ।।

यही नही विद्याधरी तेजसार का पता लगाने आकाश मार्ग से ही जाती है—

इम कहि ते ऊडी आकासी च्यारे राखी तिण आवासि
जोवैंदेश नगर वन घणा, गिरि कदर जोवै छै घणा ।। 227 ।।

तेजसार से मिलकर वह आकाश मार्ग से ही अपने आवास स्थान वापस आती है—

इम कहि ते अडी आकासि, आवी पिण एकै आवासि ।। 239 ।।

यही नही तेजसार रास के सभी पात्र अतिमानव है जो आकाश गमन ही करते हैं। व्यंतरियाँ आकाश मार्ग से ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती है। विद्याधरी तो एक आकाश विमान की भी रचना करती है जिसमे बैठकर वे तेजसार से मिलने जाती है।

विद्याधरी रच्यों विमान, जाणे इंद्र विमान समान ।। 241 ।।

तेजसार की माता तथा एक अन्य व्यंतरी तेजसार को एक पलंग भी देती है जो आकाश मे भी उड़ता है—

---

1. कथासरित्सागर आदितरग 20

एक दियो सुन्दर पलंक, उडैते आकासि निसंक
इम विवाह थयो अति चंग, जानी मानी बाध्यो रंग ।। 308 ।।

14. अदृश्यता

आकाश गमन की तरह अदृश्यता का भी कथाओं में बहुत उपयोग किया गया है। कहीं अदृश्याजन तो कही मुख मे गोटिका रखकर या पादुका पहन कर कथा पात्र अदृश्य हो जाते हैं। किन्तु दिव्य वस्तुओं की सहायता के बिना विद्या द्वारा भी अदृश्य हुआ जा सकता है। इस विद्या को किसी से सीख लेने पर तांत्रिक-अंजन आदि की आवश्यकता नही रहती। वत्सराज उदयन के बन्दी बना लिये जाने पर मन्त्री योगन्धरायण इस विद्या द्वारा ही महाचण्ड सेन के राजमहल में पहुँचता है और इस प्रकार अदृश्य होता है कि वत्सराज के अतिरिक्त और कोई उसे देख नही पाता।[1]

तेजसार रास के नायक तेजसार को योगी अदृश्य होने की विद्या सिखाता है—

एह मंत्र तु जपी नइ जोई ताहरू रूप न देखइ कोई
बीजइ मत्र जपै अणुसरै जे चीतवइतिस्यु रूप करइ ।। 94 ।।

योगी तेजसार को यह दो विद्यायें सिखाता तो है परन्तु कथाकार नायक तेजसार से इनका प्रयोग कही भी नही करवाता। कथासरित्सागर मे 'प्रतिलोमानुलोम' नामक एक ऐसी विद्या का उल्लेख है जिसमे केवल सात अक्षर है और जिसका सीधा पाठ करने पर व्यक्ति अदृश्य हो सकता है और प्रतिलोम पाठ करने पर जो रूप चाहे धारण कर मकता है। भीमदत्त को यह विद्या दी जाती है और इस विद्या को प्राप्त करके वह अनेक साहसी और रोमाचक कार्य करता है।[2]

पाश्चात्य कथाओं मे भी इस अभिप्राय का बहुत अधिक प्रयोग किया गया है। ब्रैंड ने अपनी पुस्तक 'पापुलर एन्टिक्विटीज' में यूरोपीय कथाओं मे अदृश्यता से सम्बद्ध विविध पद्धतियो का उल्लेख किया है।[3]

15. किसी राक्षस द्वारा कोई विघ्न उपस्थित किया जाना

लोक-कथाओ और उनसे अनुप्राणित होने वाले साहित्य में किसी राक्षस योगी आदि द्वारा कोई प्रपंच रचना अथवा कोई विघ्न उपस्थित किये जाने की रूढ़ि का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। कथानक को विस्तार देने अथवा उसे अभिलाषित दिशा में मोड़ने के लिये अमानवीय शक्तियो द्वारा उत्पन्न की गई विघ्न बाधाएँ लोक साहित्य में भरी पड़ी हैं।

---

1. कथासरित्सागर—आदितरंग-12
2. कथासारित्सागर आदितरंग 74/133-135
3. पापुलर ऐन्टिक्विटीज, वाल्यूम 1, पृ॰ 315

तेजसार रास में इस अभिप्राय का प्रयोग कथाकार ने दो जगह कथा-विस्तार की दृष्टि से किया है। प्रथम बार जब तेजसार मार्ग भूल जाता है और रास्ते में उसे राक्षस मिलता है राक्षस उसको भक्षण करना चाहता है परन्तु कथाकार ने नायक को चतुराई से राक्षस के पंजे से मुक्त करवा दिया है। राक्षस और नायक का वार्तालाप रोचक और कुतूहल बढ़ाने वाले है। इसी वार्तालाप के दौरान नायक अपने बचाव की युक्ति भी सोच लेता है।[1] अपनी इस सूझबूझ से वह राक्षस के चगुल से बच निकलता है। राक्षस उसका पीछा करता है तब एक योगी द्वारा उसकी रक्षा कथाकार करा देता है। राक्षस के प्रपंच से बचने के बाद तेजसार फिर सिकोतरी के प्रपच मे पड़ जाता है। वह सिकोतरी पूजाअली के लिए तैयारी करती है और सभी बालको के सहार का प्रपच करती है किन्तु तेजसार अपनी बुद्धि से उस प्रपच को जान जाता है तथा राक्षस द्वारा दी गई विद्या से अपनी तथा अन्य बालकों की उस प्रपच से रक्षा करता है।

बालक सहु नाठा वीहता, जाण्यु सही रहीयै जीवता
ते नासी वड रूखड चडइ, तेजसार सनमुख जाइभिडै ।। 69 ।।

विद्या बलि रासभि खडहली, मूर्छाआवी धरणी पडी
तेजसार तिहाथी ऊतरी, जौवै नदी तिहा गोदावरी ।। 73 ।।

16. अतिमानव शक्तियों द्वारा सहायता

अमानवीय शक्तियाँ कही-कही सहायक रूप मे भी अवतरित हुई हैं। ये शक्तियाँ नायक-नायिका की प्राण रक्षा अथवा प्रेम व्यापार मे वियोग के पश्चात् मिलन कार्य मे भी सहायक हुये हैं। अधिकतर कथा-काव्यो मे नायक को उड़ाकर नायिका के पास पहुँचाया गया है। प्रेम जागृत होना और फिर नायक को यथा-स्थान पहुँचा देने के अनेक उदाहरण कथाकाव्यो मे मिलते हैं। उसमानकृत चित्रावली मे कोई दैत्य सुजान को चित्रावली की चित्रशाला मे रख जाता है और राजकुमारी उस चित्र को देखकर मोहित हो जाती है।[2] मजन कृत 'मधुमालती' मे कुछ अप्सराये मनोहर को निद्रावस्था मे मधुमालती की चित्रसारी मे रख जाती है। दोनों जागते हैं और एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होत हैं। फिर सो जाते हैं और तब अप्सराये राजकुमार को यथा-स्थान वापस पहुँचा आती है।[3]

कुशललाभ कृत 'तेजसार रास' के नायक को भी व्यंतरी चम्पापुर से उठा लाती है—

---

1. जब राक्षस थानक जोइस्यइ मुझ नइ मू कि पग धोइस्यइ
हूँ नासिक उगमणी दिसइ, विचपग सूकई गम नहु खिसई ।। 40 ।।
तेजसार रास ग्रं. 26546

2. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य दिल्ली 1952 पृ० 277

3. हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य, डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ अजमेर 1953 पृ० 36

एक दिवस मंदिर आपणइ, पढयौ नृप आणंदइ घणइ
मध्यराति बउली जेतलं किणही ऊपाडग्यौ तेतलं ।। 248 ।।

यहाँ व्यंतरी अपनी पुत्री का विवाह तेजसार के साथ करने के लिए उसे उठा लाती है परन्तु छोड़कर नहीं आती वरन् वहीं एक नगर का निर्माण करती है जो सब प्रकार के साधनो से युक्त है । वह वही रहता है और राज्य करता है ।

17. सर्प दंशन

अनेक प्रेम-कथाओं में सर्प दंशन एवं मृत्यु होने की कथानक रूढि भी मिलती है। राजस्थानी लोक-काव्य निहालदे सुल्तान एव सूफी प्रेमाख्यान चदायन में भी इस रूढ़ि का प्रयोग मिलता है । ढोला मारू री चौपाई मे भी इसका प्रयोग हुआ है । पूगल से लौटते समय मारवणी को पीवणा साँप पी लेता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है ।

ऐसा ही प्रयोग कुशललाभ कृत 'तेजसार रास' मे भी मिलता है । अवंतीपुर के राजा जय के कोई सन्तान नही थी । सन्तान प्राप्ति के लिए राजा ने बड़े यत्न किये । तब एक फल योगी ने राजा को दिया उसके प्रभाव से रानी को गर्भ रहा जिससे राजा-रानी दोनों को प्रसन्नता हुई । एक रात राजा-रानी दोनो ही प्रसन्न चित्त अपने आवास मे सो रहे थे कि एक सर्प आया और उसने राजा को डस लिया–

कालै सर्प डस्यो तब राय राजा पखँ देश न रहाय
पुत्र नही को राजा तणै, मिलीयो नगर लोक इम भणै ।। 257 ।।

18. जल केलि

इस अभिप्राय का वर्णन भी काव्यो में रूढ सा हो गया है । ईश्वरदास की 'सत्यवती कथा' मे सखियो सहित नायिका की सरोवर मे जल क्रीड़ा का वर्णन मिलता है । जल केलि का विस्तृत वर्णन तो ढोला मारू मे नही मिलता लेकिन कथाकार के मालवणी द्वारा कहलवाये गये इस कथन से जल केलि अभिप्राय की स्पष्ट झांकी मिलती है—

ढोला हूँ तुझ बाहिरी झीलण गइय तलाइ
अजल काला नाग जिऊ लहिरी लेले खाइ ।। 393 ।।

इस अभिप्राय का प्रयोग कथाकारों ने अपनी रूचि के अनुरूप किया है । कहीं नायिका के विरह वर्णन के साथ इस रूढ़ि को लिया गया है तो कहीं सयोग क समय । ढोला मारू मे मारवणी को ढोला के चले जाने के बाद जल की लहरे काले नाग सी प्रतीत होती है । वही लहरे संयोग मे आनन्द प्रदान करती है ।

कुशललाभ कृत तेजसार रास में इस अभिप्राय का प्रयोग बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है । नायिका विजयश्री को प्यास लगती है नायक पानी लेने जाता है पानी

इतना शीतल और मधुर होता है कि उसे पीकर नायिका नायक को जल केलि के लिये आग्रह करती है—

नारी कहै सरोवर जिहां जलक्रीडा जइ कीजै तिहा
सरोवर क्रीडा करी अंघोल तिहा पैरवै केली हर ओलि ।। 119 ।।

विजयश्री कहती है कि जहाँ ऐसा सरोवर है जिसका पानी पीने से ही आत्मा और शरीर तृप्त हो गये है उस सरोवर मे तो क्रीड़ा करनी चाहिये । नायिका के कहने से नायक और नायिका प्रभूत जल क्रीडा करते है वह सरोवर केलि की ओट मे हैं ।

19. प्रेम घटक के रूप में अन्य पात्रों द्वारा सहयोग

सामान्यत: प्रत्येक प्रेम काव्य मे प्रेम घटक के रूप मे सखियों द्वारा कार्य किये जाने की कथानक रूढि मिलती है । मधुमालती मे जैतमाल की सखी यह कार्य करती है तो रूपमंजरी मे इंदुमती ।

ढोला मारू में यह अभिप्राय दो स्थानों पर आया है । प्रथम बार तो उस समय जब मुग्धा मारू विरह के उठते हुये महार्णव की थाह खोज रही होती है । सखियाँ ही यहाँ रानी से मारवणी की विरह व्यथा निवेदित करती है । दूसरी बार ढोला के पूगल आने पर मारवणी को उससे मिलनार्थ सखियाँ ही उसके शयन कक्ष मे पहुँचाती है ।

कुशललाभ ने तेजसार रास मे इस अभिप्राय का प्रयोग परम्परा से हटकर नवीनता के साथ किया है । तेजसार रास मे प्रेम घटक के रूप मे तेजसार की रानियाँ व्यतरी आदि ही आती है । एक जगह यह कार्य राजकुमारी एणामुखी की माता भी करती है ।

एक दिन एणामुखी मृगों के साथ वन मे जाती हुई सरोवर पर तेजसार का देखती है उसे देखकर एणा-मुखी का हृदय काम के वशीभूत हो वह घर आकर दु:खी रहने लगती है और रोती है । माता के बहुत पूछने पर बताती है[1] ।

माता पुत्री की दशा को जानती है और जब पुत्री आत्महत्या की धमकी देती है तो माँ का हृदय पिघल जाता है और वह तेजसार के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर देती है—

---

1. घरि आवि आमण दूमणी मइ पूछी न कहै मुझ भणी
नविणी मैं नवि रोती रहे. कारि आग्रह पूछी इम केहे
आज गई थी अटवी मझार एक पेखयउ राजकुमार ।। 284 ।।
ते मुझने परणावो मात नही तर करिसुं आतमघात
पुत्री नो मन जाणीकरी तुझ जोशा छुं चिहुं दिशिफिरी ।। 285 ।।
तेजसार रास प्र. 26546 रा. प्रा. वि. प्र. जोधपुर

'सामग्री परणेवा तणी, वन देवी लिह्वा आणी घणी
लगन तणी बेला जब थई बैठो राय गौखि गह गही ॥ 291 ॥

दुर्गा सात्तसी की कथानक रूढ़ियाँ

1. नायक का अति प्रकृत जन्म

देवी का जन्म अलौकिक माना गया है । दुर्गा सप्तशती मे, भगवान विष्णु के मुख से एक महान् तेज प्रकट होता है, इसी प्रकार का तेज ब्रह्मा, शकर तथा इन्द्र आदि देवताओ के शरीर से भी निकलता है । एकत्रित होने पर वह तेज नारी के रूप मे परिणत हो जाता है और वही तेज नारी के रूप में जाना जाता है ।[1]

कुशललाभ कृत 'दुर्गासात्तमी' मे भी इसी प्रकार का अभिप्राय प्रयुक्त हुआ है । तेतीस करोड देवता देवी की स्तुति करते है । राक्षसों के द्वारा दी गई यातनाओ को सुन करणीगर अर्थात् ईश्वर को क्रोध आता है और उनके क्रोध से तेजपुंज देवी का जन्म होता है

करणीगर त्यारह की यइ विषम कोप विकराल
हु तसहू देव्या हुई देजपुँज तिणताल[2] ॥ 70 ॥

2. वरदान देना

देवी देवता प्रसन्न होने पर वरदान देते है और क्रोधित होने पर अभिशाप । इन्द्र से त्रिलोकी का राज्य छीन लेने से स्वर्ग मे राक्षसो का आधिपत्य हो गया । उनके द्वारा दी गई प्रताडनाओं से दुखित देवतागण देवी की स्तुति करते है । देवी देवताओ द्वारा की गई वदना से प्रसन्न होकर प्रकट होती है और देवताओ को रक्षा का वरदान देती है—

श्याम वरण सुरी एकदम कुसम अर्चना किद्ध
तब देवी वर द्विघ अधटी बार अह आधार[3] ॥ 143 ॥

3. वन में नायिका का देखना : रूप श्रवण द्वारा आसक्ति

इस अभिप्राय का प्रयोग जहाँ अन्य काव्यों में नायक द्वारा नायिका को देखने के रूप में हुआ है वहाँ दुर्गा सप्तशती में इस अभिप्राय का प्रयोग परम्परा से थोड़ा हट कर नवीन रूप मे किया गया है ।

---

1. सचित्र दुर्गासप्तशती-अनुवादक पाण्डेय पं. रामनारायण दत्त शास्त्री 'राम' अष्टादश संस्करण स 2027 पृ. 78 द्वितीय अध्याय
2. दुर्गासात्तसी हस्तलिखित ग्रंथ —अनुप सस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर
3. हस्तलिखित ग्रंथ—गाहा—143

दुर्गासप्तशती के समान ही कुशललाभ ने इस अभिप्राय का प्रयोग किया है। चंडमुंड वन में देवी को देखते हैं—

तखर छाह निव्वाण तट षेल षंडण षंतेषडी
विचरंता जन आषेट वर चंड मुंड दृष्ट इ चढ़ी ।। 169 ।।

वन मे देवी को देख चड मुंड वापस असुरो के पास आते हैं और देवी के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हैं—

अगह वन एकज अवल मयत्ती मन मोह
कई आकासा ऊतरी कइ कन्या नागक योह ।। 172 ।।

इसी प्रकार वे साश्चर्य आगे कहते हैं कि या तो वह नाग कन्या है या इन्द्राणी या श्री या सम्पत्ति अर्थात् लक्ष्मीजी हैं या ब्रह्माणी है या कोई पद्मनी है। उस अबला का तो रूप ही अनूप है, इस कारण हे राक्षस राज मैं आपसे कह रहा हूं कि आप छत्रपति कहलाते है अतः उसे आपके पास होना चाहिये।[1] चंड मुंड द्वारा देवी के रूप सौन्दर्य का वर्णन सुन कर शुभ हर्षित होता है और उसे प्राप्त करने के लिये सुग्रीव को बुलाता है—

कजि कामिण आलोचकीय जोधवचन सुग्गिजीव
हुवइ हरष तेडावीयउ शंभ राय सुग्रीव ।। 174 ।।

4. सन्देश वाहक

सन्देश वाहक के रूप मे पशु पक्षी, ब्राह्मण, नाई, ढाढी व दूत आदि का प्रयोग आदि काल से होता आया है। 'दुर्गा सात्तमी' मे कुशललाभ ने सन्देश वाहक के रूप मे सुग्रीव को दूत बनाकर देवी के पास शुंभ निशुंभ का सन्देश भिजवाया है।[2]

दुर्गा सप्तशती मे शुंभ निशुंभ द्वारा दिये गये सन्देश का वर्णन नहीं है वहाँ प्रत्यक्ष रूप मे ही सुग्रीव देवी को सन्देश सुनाता है।[3]

5. तंत्र मंत्र युद्ध

देवी का राक्षसो के साथ युद्ध तान्त्रिक युद्ध है। देवी तांत्रिक शक्ति से अपने कई रूप बना कर शुभ निशुंभ के साथ युद्ध करती है। मंत्र शक्ति से कितने योद्धा निस्तेज हो भाग खडे होते है कितने ही योद्धाओं पर अभिमंत्रित जल छिड़ककर निस्तेज कर दिया जाता है।

---

1. दुर्गासात्तसी—हस्तलिखित ग्रंथ—कवित्त 173
2. दुर्गासात्तमी हस्तलिखित ग्रंथ गाहा 176 से 184
3 दुर्गासात्तसी-अनुवादक पाण्डेय प. रामनारायण-दत्तशास्त्री 'राम' पंचम अध्याय पृ. 118-120

6. रूप परिवर्तन

रूप परिवर्तन की रूढ़ि कुशललाभ को बहुत ही प्रिय रही है। अलौकिक शक्तियाँ मे देवता तो अपना रूप बदलते ही है, परन्तु अतिमानव शक्तियों मे राक्षस भी कभी सिंह, भैंसा, शेर, पुरुष व गज आदि के रूप बदल कर देवी से युद्ध करते है। रक्तबीज के रक्त की एक-एक बूंद से उसी के समान महान् बलवान राक्षस पैदा होकर देवी से युद्ध करने लगते है।

7. पुष्प वृष्टि

पुष्पो की वर्षा करना हर्ष एव प्रसन्नता सूचक कथा अभिप्राय है। रामायण मे तुलसीदासजी देवताओ से रामचन्द्र जी के धनुष तोड़ने पर पुष्पवृष्टि करवाते हैं—

बरसहिं सुमन रंग बहु माला

दुर्गा सप्तशती मे भी देवता पुष्पवृष्टि करना नही भूलते। देवी जहाँ-जहाँ राक्षसो का सहारा करती है देवता हर्ष से उन्मत्त हो देवी पर फूल बरसाते है—

देव्या गणेश्च तैस्तत्र कृत युद्ध महासुरै

यथैषा तुतुषुर्देवाः पुष्पवृष्टि मुचौ दिवि[1] ।। 69 ।।

कुशललाभ ने सभी असुरो के मारे जाने व सब आतक समाप्त हो जाने पर पुष्प-वृष्टि कराई है—

दुष भागा भगतां तणा असुरा तणउ करिअत

पुहुप विष्ट होवइ प्रघल वयणे थदतं ।। 337 ।।

भीमसेन हंसराज चौपई की कथासक रूढ़ियाँ

1 फल खाने से गर्भाधान

अन्य काव्यो की तरह कवि ने यहाँ भी परम्परा से थोडा हट कर तथा अभिप्राय को नवीन रूप देते हुये कथानक रूढ़ि का प्रयोग किया है। अन्य कथाकाव्यों मे योगी द्वारा दिये गये फल खाने से नायिका को पुत्र प्राप्ति होती है। यहाँ वृक्षों की विशेषता बताते समय उस वृक्ष विशेष के बारे मे कवि कहता है—

भणियइ भोज वृक्ष ए भूपति भखइ सहू फल भूत

पाको फल प्रमुदाजड़ पासइ तउ पामइ बध्या पूत ।। 51 ।।

2. रूप श्रवण

नायिका रूपमंजरी शुक से मधुरवाणी में भीमसेन के बारे मे पूछती है—

कुमरी शुक सूं क्रीड़ा करइ, अमृत वाणी मुखइ अचरइ

पूछइ भीमसेन नउ रूप, शुक सिघलोते कहइ सरूप ।। 89 ।।

---

1. दुर्गा सप्तशती-द्वितीय अध्याय पृ. 88

3. वर प्राप्ति के लिये देवी पूजा

इस अभिप्राय को कवि ने नवीन रूप से अपनाया है । परवर्ती कथा काव्यों मे नायक, नायिका को मंदिर मे ही देखता है या पूजा करने के बहाने आई हुई नायिका को अपहरण कर ले जाता है । भीमसेन राजहंस चौपई की नायिका मदनमंदरी को जब यह ज्ञात होता है कि इसी नगर मे त्रिपुरादेवी का मदिर है जो कन्याओं की इच्छा पूर्ण करती है—यह जानकर रूपमजरी देवी मदिर मे जाती है—

इण अवसरि तिण पुर आराम तिणमहि त्रिपुरा देवी ठाम
कंत कजि जे सेवा करइ ते कन्या वाछित वर वरइ ।। 102 ।।

आगह घणा लोकनी आस पूरी छइ प्रकट्यउ असवास
इम जाणी कुमरी तिह जाइ, सेवा भगति करइ मन भाइ ।। 103 ।।

4. संदेशवाहक

प्रस्तुत कथा मे शुक कई रूपो मे कथा-प्रवाह को आगे बढ़ाने मे योग देता है । रानी कमलावती को पुत्री के लिये योग्य वर शुक ही बताता है—

कीर हसी राणी नइ कहइ, साच कहू जउतू सद्दहइ
भीमसेन आवइ भूपाल, तउ तुझ फलइ मनोरथ माल ।। 72 ।।

राजकुमारी जब भीमसेन को अपना पति होना सुनती है तो वह शुक से भीमसेन के रूप सौन्दर्य के बारे मे पूछती है—

कुमरी शुक सूं क्रीड़ा करइ अमृत वाणी मुखइ ऊचरइ
पूछइ भीमसेन नउ रूप, शुक सिघलोते कहइ सरूप ।। 89 ।।

और उसे सदेशा ले जाने के लिए कहती है—

मया करउ मुझ मीनति भार बहउ विहंगम दीठी बात
भेटउ भीमसेन भरतार संदेसा कहियो सुविचार ।। 106 ।।

शुक उसे भीमसेन से मिलाने की प्रतिज्ञा करता है और उसका पत्र भी ले जाता है—

करी प्रतज्ञा कुमरी प्रतइ महीपति मेलिसु माहरी मतइ
सदेसा कागल मुझ साथि, आयउ आपि सिहाद्यो हाथि ।। 108 ।।

पत्र वह भीमसेन के पास पहुँचाता है और उसे राजकुमारी से मिलने एव जीवनदान देने को कहता है—

ए कागल नइ एह संदेश, वाचीनइ आवउ उणदेश
मया करी नइ आपउ मान, दउ कुमरी नइ जीवनदान ।। 110 ।।

5. रूप परिवर्तन

अलौकिक शक्ति या दिव्य विद्या द्वारा स्वयं का रूप परिवर्तन करके कथा में कौतूहल की वृद्धि करना है। हस-राज भीमसेन के यहा पुत्र रूप मे जन्म लेता है। हसी उससे अर्थात् अपने प्रियतम से मिलने आती है। बालक हस राजहसी का परिचित स्वर सुनकर चौकता है और वह चारों ओर देखता हुआ पूर्व प्रीति का स्मरण कर मन ही मन हँसता है। राजा-रानी भी हँसी के उस स्वर को सुनकर पहचान जाते हैं और आदर सहित हंसी को बुलाते है। वह हसी रूप को छोड़कर नारी रूप मे आकर अपने सास-ससुर अर्थात् राजा भीमसेन व रानी मदनमंजरी के चरणो में प्रणाम करती है—

रायराणी आदर करी तेडी हसी तांम
आवी रूपइ आपणइ प्री नइ करइ प्रणाम ।। 381 ।।

पषी रूपइ ते परहरी रचीयइ नारी रूप
सासु सुसरा पय नमी सांचउ कहइ सरूप ।। 382 ।।

कुशललाभ ने हस एव हसी को देवता रूप मे चित्रित किया है जैसा कि हसी के कथन से स्पष्ट होता है—

मइ परणावीए पदमिणी करज्यो अधिक नेह अम्हमणी
मानव तुम्हे अम्हे देवता भोग करता लागइ षता ।। 535 ।।

देवता पात्रो को रूप परिवर्तन के लिये किसी विद्या या मत्र-तंत्र की आवश्यकता नही होती क्योकि यह सिद्धि उन्हे जन्म से ही प्राप्त होती है।

6. दिव्य विद्या (आकाश गमन)

दिव्य विद्या देवताओ, योगियो या व्यतरियो आदि के पास होती है। देवता जहाँ इस विद्या का प्रयोग शुभ कार्य के लिये ही करते है वहाँ अतिमानव शक्तियाँ इस विद्या का प्रयोग दोनो रूपो मे करती है। इस विद्या द्वारा वे किसी का अनिष्ट भी करते है तो प्रसन्न होने पर उसे सब प्रकार से सम्पन्न भी कर देते है। ऋषि हंसराज को धर्म का उपदेश दे आकाश मे उड जाते हैं—

वर्तमान योगइ जाणासइ इम कहि रिषि उड्या आकासइ
कुमरे तिहा थी करी प्रयाण आव्या निज नगरी अहिठाण ।। 560 ।।

'भीमसेन राजहस चौपई' मे कुशललाभ ने इस विद्या का प्रयोग कथा प्रवाह के लिये अनूठे एव नवीन रूप मे किया है। हस हसी तो देव पात्र होने के कारण आकाश मार्ग से ही आते-जाते है—

अबर थी नीची ऊतरी बइठा हंस महल ऊपरी ।। 247 ।।

इसी तरह मदनमंजरी की दोहद पूर्ण करने के लिये अमृत फल लेने हंसी व्यंतरी आकाश मार्ग से ही जाते हैं—

इम कही ते तरवर सिरि गई अजरामर फल आणउ सही
ते तीनइ उड़्या आकासि अनुक्रमि आव्या तिणि आवासि ।। 358

हसराज रूपमजरी से विवाह करना चाहता है और वह इस कार्य में अपनी प्रिय पत्नी हसी की सहायता चाहता है वह उसे सकेत से बुलाता है—

सकेतइ रे आराधी हसी सुरी शघासन रे कपित कारण मनधरी
निज वल्लभरे मिलवा ऊमाहउ करी आकासइ रे हसी रूपइ अवतारी
।। 491 ।।

7. अदृश्यता

राजा भीमसेन को एक तपस्वी यह विद्या सिखाता है—

लक जून काजल रेखइ नर भमता कोई न देषइ
विषधर विष अलगा वारइ मत्र आप ऊपर उपगारइ ।। 337 ।।

काजग की रेखा खीचने से वह व्यक्ति अदृश्य हो जायेगा तथा मत्र के जाप से विषधर का विष भी दूर हो जायेगा।

रूपमजरी के स्वयवर मे आये सभी राजकुमार सोचते हैं कि यह कन्या किसे अपना वर (चुनेगी) वरेगी उसी समय अदृश्य रूप मे हसी वहाँ आती है और अपने पूर्व कथनानुसार राजहस पर पुष्पवर्षा करती है—

तिण बेला हसी तिहाँ रूप अद्रिष्ट रचेइ
राजहस सिर ऊपरइ कुसमह वृष्टि करेइ ।। 524 ।।

8. शाप देना

शाप अनजान मे या जानबूझ कर भी दिया जाता है। 'भीमसेन राजहस' मे सन्यासी भिक्षा लेने जाता है और कठोर वचन सुनकर उसे क्रोध आ जाता है और वह उसे शाप देता है। कर्म योग से उसी समय उस व्यक्ति को सर्प डस लेता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है—

तू छइ अति जसही कोई दीसइ अनुमान
वांभू रहि रे वे गलउ ए आव्यउ अभिमान

कुवचन सुणता चड्यउ कोप तस श्रापज दीधउ
कर्मि योगि ते डसउ काल कहइ एणइ कीधउ ।। 126 ।।

कथाकार ने श्राप के साथ-साथ कर्मयोग को भी महत्व दिया है।

9. आकाशवाणी

राजकुमारी रूपमजरी अपनी इष्टदेवी से प्रार्थना करती है और अपने होने वाले पति के बारे मे सोचती है। उसी समय हंसी गुप्त रूप से वहाँ आती है और आकाशवाणी से कहती है—

तिण बेला रे सावधान रहज्यो सही
जस मस्तकि रे कुसम वृष्टि अंबर थकी

वरस तां रे देषइ ते वर पारषी
पारषूं जाणी थई हर्षित सत्यवाणी सुरकही ।। 497 ।।

नायक अथवा किसी अन्य पात्र को किसी भावी दुर्घटना के प्रति सतर्क करने के लिये अथवा किसी रहस्य की सूचना देने के लिये 'आकाशवाणी' का प्रयोग एकाधिक स्थलों पर उपलब्ध होता है। प्रचलित विश्वासो के अनुसार 'आकशावाणी' का अर्थ है देववाणी अर्थात् वह अलौकिक आवाज जो आकाश में अपने आप गूँज गई हो और जिसके आदेशों के प्रति कोई अविश्वास न किया जा सके। आकाशवाणी कथानक की गति को सहायता प्रदान करने वाले विभिन्न उपायों मे से एक माना गया है। जहाँ कहीं भी कथानक के बीच में कोई ऐसी समस्या खड़ी होती है जिसका निराकरण स्वयं पात्र नही कर पाते वही कवि आकाशवाणी करवा देता है। कालिदास कृत 'शाकुन्तल' मे कण्व को यह सूचना आकाशवाणी द्वारा प्राप्त होती है कि शकुन्तला का विवाह हो गया है और वह शीघ्र ही माता बनने वाली है।[1]

10. शुभ-अशुभ शकुनों द्वारा भावी सकेत

शकुन या अपशकुन वर्णन की रूढ़ि कथाकारो को अत्यन्त प्रिय रही है। इसका प्रयोग अनेक प्रकार से किया गया है। कोई नायक किसी महत्वपूर्ण कार्य के लिये प्रस्थान करता है, लड़ाई पर जाते समय, बारात साज कर विवाह के लिये जाते समय कथाकार शुभ-अशुभ शकुनो का वर्णन बहुधा कर देते हैं।

शकुन (सगुन) शब्द का अर्थ पक्षी होता है। वाराह मिहर ने शकुन सूचक पक्षियो की सख्या 21 (इक्कीस) बताई है।[2]

पडित रामनरेश त्रिपाठी ने अपने ग्राम साहित्य मे लोक जीव के शकुन अपशकुनो से सम्बन्धित कई प्रकार की प्रचलित उक्तियो का उल्लेख किया है।[3]

---

1. कालिदास—'शाकुन्तल'

2.

1 श्यामा	2. श्येन	3. शशघ्न
4. वंगुल	5. मयूर	6. श्रीकर्ण
7 चक्रवाक	8. चाष	9. माण्डरीक
10 खंजन	11. शुक	12 काक
13. कबूतर (तीन प्रकार के)	14. कुलाल	15 कुक्कुट
16. भारद्वाज	17. हारीत	18. खर
19, गृद्ध	20. पणकट	21. चटक

बृहत्संहिता 88/1

3. पं० रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम साहित्य, तीसरा भाग, 1952 पृ० 191

जायसी ने भी 'पद्मावत' मे शुभ और अशुभ शकुनों का वर्णन किया है।[1] जायसी की तरह तुलसी ने भी शकुन रूढ़ि का पूर्णतया पालन किया है। रामचन्द्रजी की बारात का वर्णन करते हुए उसने अनेक प्रकार के शुभ शकुनो का उल्लेख किया है।[2]

इस प्रकार के शुभ शकुनों की यह रूढ़ि भारतीय भक्ति साहित्य में भी प्रयुक्त है और इसी के माध्यम से एक ओर तो भावी घटनाओं के प्रति शुभाशा प्रकट की गई है, दूसरी ओर कथानक को थोड़ा बहुत विस्तार भी दिया गया है।

इसी प्रकार के शुभ व अशुभ शकुनो का वर्णन कुशललाभ ने 'भीमसेन राजहस चौपई' मे किया है। राजहस बारात सजाकर रूपमजरी से विवाह के लिए प्रस्थान करते समय सोचता है, पता नही वह कन्या किसे वरण करेगी यदि वह राजहंस से विवाह करती है तो कुमार के सभी वांछित पूर्ण हो जायेंगे। जो शकुन रात्रि मे देखा जाता है उसका फल प्रातः काल मे ही मिल जाता है—ऐसा कह कर कवि ने शुभ शकुनो का वर्णन किया है—

> सबी साझि डावा सीयाल बोल्या धणा मिली समकालि
> बाहपुर विहू वार जगीस वांछित पामइ विश्वा वीस ।। 475 ।।

इसी तरह उल्लू, चीबरी, तीतर, समली (चील), हरिण, श्यामा, नीलकण्ठ आदि पक्षियो के क्रियाकलापो द्वारा शुभ शकुनों के सकेत कथाकार ने दिये है।[3]

शुभ शकुनो के साथ कथाकार अशुभ शकुनो के बारे मे बताना भी नहीं भूला है। अपशकुन का वर्णन भावी अमगल का सूचक होता है कुशललाभ ने बताया है कि यदि नेवला नीची दिशा से ऊँची दिशा की ओर जाते हुये बार-बार मुड़ कर देखता हो तो अवश्य ही चिंता का कारण होता है –

> नीची दिसी थी नउलीयउ ऊँची दिसिऊ जाइ
> जातउ जोयइ द्रिष्टि सूं तउ मन चिंतउ थाइ ।। 482 ।।

इन शुभ शकुनो को जानकर राजहस अपने चतुरग दल सहित अवंतीपुर आता है जहाँ स्वयवर मे उसे ही माला पहनाई जाती है।

11· दोहद कामना

प्रिया की 'दोहद कामना' की पूर्ति के लिये प्रिय द्वारा दुस्तर और कठिन कार्यों का किया जाना एक पूर्व प्रचलित अभिप्राय रहा है। स्त्री की दोहद कामना जीवन की साधारण एवं चिरपरिचित घटना है किन्तु कहानीकार के हाथ मे पड़कर

---

1 रामचन्द्र शुक्ल (सम्पादक) जायसी ग्रंथावली पद्मावत, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं 2008 वि. जोगी खंड

2 तुलसीदास, 'रामचरित मानस' प्रथम सोपान 1-4/303

3. कुशललाभ, भीमसेन राजहंस चौपई ह. प. ला द ग्रंथालय अहमदाबाद ग्रंथांक 1217 चौपाई संख्या 475 से 484

यही साधारण घटना अद्‌भुत बन जाती है। इसी घटना को कहानीकार ने अभिप्राय के रूप में प्रयुक्त किया है। कहानीकार जिस दिशा मे कहानी को मोड़ना चाहता है अपने पात्र से वैसी ही दोहद कामना करवाता है। उदाहरण के लिये 'कथा-सरित्सागर' में मृगावती रुधिर से पूर्ण लीला-वापी मे स्नान करने की इच्छा व्यक्त करती है—

ततस्तस्यापि दिवसैं सहस्रानीक भूपतेः
बभार गर्भ पाण्डुमुखी राज्ञी मृगावती।
ययाचे साथ भर्तार दर्शनातृप्त लोचनं।
दोहदं रूधिरापूर्ण लीलावापी निमज्जनं।[1]

जैन कथाकारों का तो यह अत्यन्त ही प्रिय अभिप्राय रहा है। शायद ही कोई ऐसा जैन कथाकार हो जिसने किसी अर्हत् या चक्रवर्तिन् की उत्पत्ति के पूर्व उनकी माता द्वारा उत्तम और पवित्र कार्य करने की दोहद कामना न व्यक्त करवाई हो। कुशललाभ भी जैन कथाकार थे और उन पर भी परम्परा से प्रचलित अभिप्रायों के प्रयोग का प्रभाव पडना अवश्यम्भावी था।

कुशललाभ ने 'भीमसेन राजहंस चौपई' मे इस अभिप्राय का प्रयोग अवसरा-नुकूल कई जगह किया है। रानी मदनमंजरी गर्भवती है। गर्भ के कारण उसे दोहद होती है कि शृंगार करके राजा सहित हाथी पर बैठकर जहाँ नदी हो वहाँ रमण किया जाये—

अनुक्रमि गर्भ थयउ आधान प्रेम प्रसंग राय बहुमान
पाच सात डोहला प्रकार इम अभिलाषा थई यतिवार ।। 261 ।।
पर हस्ति पूरण सिणगार सिरइ छत्र चामर अतिसार
राय सहित वञ्छू मनी रगि सपरिवार अतेउर सगि ।। 262 ।।
नदी जिहां निभरण निर्वाण रमीयइ तिहा रंग मंडाण
महुवात कही राजा भणी परिवा मांडी पूरेवा तणी ।। 263 ।।

प्रिया की दोहद कामना पूर्ण करने मे कई कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता है हाथी क्रोध मे भरा हुआ जा रहा है और भय से रानी का मुख कुम्हला जाता है। भीमसेन उसे समझाता है कि जो होनी है वह होकर रहती है तब रानी कहती है—

देषउ माहरा डोहला भणी तुम्ह नइ आपद आवी घणी
कहिसइ लोक नारि नइ काजि मृत्यु कष्टि पडियउ महाराज ।। 274 ।।

कि संसार यही कहेगा कि नारी के कारण आप मृत्यु के मुह में पड़े हैं, मेरी दोहद कामना पूर्ण करने में आपको कितनी बाधायें आई है।

---

1. कथा सरित्सागर—2-2

कभी-कभी कथाकार अपने पात्रों से किसी फल आदि के खाने की 'दोहद' करवाता है। मदनमंजरी गर्भवती है और वह 'अमृत फल' खाने की दोहद व्यक्त करती है—

स्वामी जी मुझ गर्भ प्रमाण एक डोहलउ थयउ असमान
अमृत फल नउ करूं आहार तउ मुझ थायइ हर्ष अपार ।। 343 ।।

12. जलक्रीड़ा

'भीमसेन हंसराज चौपई' मे कथाकार ने इस अभिप्राय का संकेत मात्र दिया है। राजा-रानी हाथी पर भ्रमण करने को निकलते हैं। वे नदनवन को देखकर फिर सरोवर के तट पर आकर जलक्रीड़ा करते हैं :

सुंदरि मदनमंजरी साथि निर्भय थइ बइठा नरनाथ
पहिली नंदन वन पेषंति सरवर तटि जलकेलि करंत ।। 265 ।।

13. सौदागर आगमन

ढोलामारू के समान 'भीमसेन राजहस चौपई' मे भी सौदागर घोड़े बेचने के लिते आता है—

इण अवसर आव्या घणा ताजा घणा तुरंग
सबल साथ सउदागरी वेचण काजि विडंग ।। 398 ।।

14. गौरी पूजा

गौरी पूजा का महत्व राजस्थानी लोक जीवन का प्रमुख अग रहा है। गौरी की पूजा कन्या योग्य वर की प्राप्ति तथा कामनाओ को पूर्ण करने के लिये करती है। 'छिताई वारता' की छिताई शिव-मदिर मे जाकर शिव-पूजा करती है। 'बेलि' की रुक्मिणी भी शिव-गौरी पूजनार्थ जाती है जहाँ कृष्ण उसका अपहरण करते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' की संयोगिता भी पूजा क'ते समय ही अपहृत की जाती है। 'रामचरित मानस' में तुलसीदास ने सीता को वाटिका में भवानी पूजा के लिये भेजकर इस अभिप्राय का पालन किया है।

'ढोलामारू' की मारवणी सखियों सहित मन्दिर जाती हुई सौदागर से अपने प्रियतम के बारे मे सुनती है। मारू के इस प्रकार देव-पूजा हेतु मन्दिर जाने मे हमे इस रूढ़ि की झलक मिलती है।

'भीमसेन राजहंस चौपई' में त्रिपुरा देवी मन वाछित वर देने वाली कही गई है—

इण अवसरि तिणिपुर आरांम, तिणमहि त्रिपुरादेवी ठांम
कंत काजि जे सेवा करइ ते कन्या वांछित वर वरइ ।। 102 ।।

राजा भीमसेन भी त्रिपुरापुरी पहुंच कर देवी की कन्या (पत्नी) प्राप्ति हेतु वन्दना करता है—

जय जय माता जगदीस्वरी भेटी भावइ भवनेश्वरी
हुं हुं तुम्ह सेवक हिंगलाज कृपा करी मुझ सारो काज ।। 142 ।।

मदनमंजरी भीमसेन को पति रूप में चाहती है और उसी की प्राप्ति हेतु देवी पूजा करती है । जब कन्या का पिता रिणकेसरी अन्य वर से उसका सम्बन्ध तय कर देता है तो वह देवी मन्दिर मे आती है और कहती है—

ते अनुक्रमि आवी वन माहि, देवी भुवन चडी दुखदाहि
दइ उलमा देवी भणी, माहरी भगति तुम्हें नविगिणी ।। 168 ।।

नारदपुरी के राजा रिणकेसरी की पुत्री सखियों सहित प्रतिमति गौरी पूजा के लिये जाते समय नदी मे गिर जाती है—

गउरि पूजिवा ते वनि गई नदी परइ तब संघ्याथई
इसइ मेघ आव्यउ अपार अधिकउ थया घोर अधार ।। 454 ।।

इसी अभिप्राय का प्रयोग कथाकार ने एक स्थान पर और किया है । रूपमजरी का स्वयवर रचा गया है । रूपमजरी देवी की स्तुति करती है और कहती है कि अपने श्रीमुख से मेरे वर के बारे मे बताओ तब ही मैं तुम्हे सच्ची जानू—

तिण रमणी रे देवी नी पूजा करि जोडि रे
एह वन मुषि ऊचरी, मुझ श्रीमुषि रे
को अहिनाण कहउ षरउ जिम जाणी रे
अवरतेह नर अतरउ ।। 495 ।।

15. पुष्पवृष्टि

रूपमजरी के स्वयवर मे हसी (देवता) राजहस पर पुष्पवृष्टि करती है ।

16. आत्म-हत्या की धमकी

उपेक्षित पात्र द्वारा प्रेमी का ध्यान आकर्षित करने एव प्रेम व्यापार में प्रभावोत्पादकता लाने के लिये इस प्रकार की कथा रूढि का प्रयोग किया जाता है । इसमें पात्र अग्नि मे जलकर अथवा गले मे फांसी डालकर या अन्न जल छोड़कर अथवा विषफल आदि जहरीले पदार्थ खाकर आत्म-हत्या करने के प्रयत्न करते हैं या मात्र धमकी दी जाती है । 'पार्श्वनाथ चरित्र' मे भी यह रूढि मिलती है ।

'ढोलामारू' मे ढोला, मारू के साप द्वारा डसे जाने पर आत्म-हत्या करने को तैयार हो जाता है । इसी प्रकार 'भीमसेन राजहस' की नायिका मदनमजरी तो कई बार आत्महत्या करने के प्रयत्न करती है परन्तु किसी न किसी प्रकार बचाली जाती है ।

रूपमंजरी शुक से भीमसेन के बारे में सुनकर उसे मन ही मन प्रणाम करती है और प्रतिज्ञा करती है—

भीमसेन राजा वर वरू अथवा अगनि दाघअणुसरू ।। 85 ।।

ऐसे ही वचन वह देवी की पूजा करते समय गले में फंदा डालकर आत्म-हत्या करने को भी कहती है—

> कर जोड़ी देवी नइ कहइ भीमसेन मेलवउ जीवित रहइ
> एह न पूजइ माहरी आस तउ तुझ आगइ घालू गलपास ।। 104 ।।

रूपमजरी आत्महत्या की धमकी ही नहीं देती वरन् वह देवी के सामने एक पेड़ पर चढ़कर फासी भी लगा लेती है—

> प्री मेलवा न पूरी आस, हिव हूं घालू हूं गलि पासि
> कही एम तरु साखइ चढी वेणी बंध छोडइ चडवडी ।। 169 ।।

एक अन्य स्थान पर वह विषफल खा कर भी आत्म-हत्या का प्रयत्न करती है—

> तापसणी वहती जब गई रांणी तरवर अंतर रही
> विषफल भष्यण वेगइ करइ ते पेषी तापसो पो करइ ।। 227 ।।

अगड़दत्त कुमार रास की कथानक रूढ़ियाँ

1. रूपदर्शन जन्य प्रेम

अगड़दत्त कुमार के सौन्दर्य को देख मदनमंजरी के मन में प्रेम का उदय होता है। कुशललाभ ने इस अभिप्राय का नवीन ढंग से प्रयोग किया है। जहाँ नायक नायिका मे प्रेम का उदय चित्र अथवा स्वप्न देखकर होता है वहाँ कुशललाभ नायक को प्रत्यक्ष दिखाकर प्रेम का उदय कराते है। नायिका मदनमंजरी नायक अगड़दत्त को देखकर मन में विचार करती है कि किसी तरह यह व्यक्ति मेरा पति हो जाये।[1] अगड़दत्त गुरु से लज्जा के कारण अपना प्रेम प्रकट नहीं कर पाता, तो नायिका विभिन्न प्रकार से उसे आकर्षित करती है और अन्त मे अपना प्रेम निवेदन अगड़दत्त को स्पष्ट कह ही देती है[2]—

> नारी कहि प्रीतम अवधारि मुझ नइ लेई परदेसी पधारी
> आप तणउ कहीउ वरतंत हिव हूउ प्रीय तू मूझ कत ।। 47 ।।

2 बीड़ा उठाना

किसी साहसिक कार्य को करने की जिम्मेवारी लेना ही बीड़ा उठाने के रूप में यह अभिप्राय प्रयुक्त हुआ है। अगड़दत्त चोर पकड़ने का बीडा उठाता है।[3]

---

1. मयण मंजरी इम चीतवइ किम हुइ प्रीय माहरउ हवइ
   तउ कुसमह गूंथइ लेवडू कुमर भणी तिणि नाषिउ दडउ ।। 40 ।।
2. वही
3. दोहा सं. 61 वही

राजा का हाथी जब मदमस्त होकर निकल जाता है तो राजा हाथी को पकड़ने की एक करोड़ दीनार इनाम घोषित करता है। अगड़दत्त कुमार दूसरी बार इस समय हाथी को पकड़ने का बीड़ा उठाता है।[1]

3. मंत्र विद्या

चोर मंत्र पढ़ कर ताला खोल लेता है तथा मंत्र के प्रभाव से लोग निद्रावश हो जाते हैं[2] और मंत्र की ही शक्ति से पूरे नगर में भ्रमण करने पर भी चोर को कोई देख नहीं पाता—

फरइ निशंक नगर मा सही मंत्र शक्ति को देखइ नहीं ॥ 77 ॥

मंत्र विद्या का प्रयोग कुशललाभ दूसरी बार उस समय करते हैं जब मदनमंजरी सर्प देश से मर जाती है और अगड़दत्त भी उसी के साथ मरना चाहता है उसी समय विद्याधर आता है और मदनमजरी के कान में कुछ मत्र कहता है जिससे वह पुनः जीवित हो जाती है।[3]

4. आकाश गमन अथवा खेचरी विद्या

यह भी एक प्रकार की दिव्य विद्या है। 'अगड़दत्त रास चौपई' में सिद्ध व्यक्ति या व्यंतरी आदि ही आकाश मार्ग से आते है। मदनमजरी की धात्री अगड़दत्त को मदनमंजरी का प्रेम सन्देश देने आकाश मार्ग से ही आती है।[4] अगड़दत्त राजा को बताता है कि यह भुजगंम चोर विद्या के बल से आकाश मे उड़ता है—

विद्या सबल चोर नइ पासि, आप बलंइ उडइ आकासि ॥ 108 ॥

5. वन में मार्ग भूलना

कथा में चमत्कार पैदा करने एव रोमाचक घटनाओं को नवीन मोड़ देने के लिये इस अभिप्राय का प्रयोग कवि ने किया है। अगड़दत्त कुमार सुर सुन्दरी एवं मदनमंजरी से विवाह कर बसंतपुर लौट रहा होता है तब रात्रि के कारण व दो मार्ग होने के कारण, कुमार मार्ग भूल जाता है[5] और कुमार की सारी सेना दूसरे मार्ग पर

---

1. जे झाली आपइ गजराय कोडी दीनार देउतस भाय
   अगड़दत्त बीड़उ झालीउ चहूटइ गज झालण चालीउ ॥ 123 ॥
2. वो. सं. 76
3. वो. सं. 258
4. तेवी गैला एक गरडीनार आवी समीसांझ नीं बार —134
5. वो. सं. 151

चली जाती है।[1] मार्ग में अनेक कठिनाईयों का सामना करवाकर कवि ने इस अभिप्राय को सिद्धि मार्ग के अवरोध तत्व के रूप में प्रयुक्त किया है।[2]

6. सन्देश प्रेषण में सहायक धात्री

कवि नायक नायिकाओं के सन्देश जहा शुक, हंस आदि के द्वारा प्रेषण करते थे वहाँ कवि कुशललाभ ने सन्देश-प्रेषण का कार्य धात्री से करवा कर अभिप्राय को नवीन रूप दिया है। मदनमजरी की धात्री अगडदत्त कुमार को सन्देश देती है कि तुमने सुर सुन्दरी से विवाह कर लिया और मदनमजरी को तुमने जो वचन दिया था वह क्या ऐसा ही था।[3] अगड़दत्त सन्देश के उत्तर मे सवा करोड़ का हार अपने सच्चे प्रेम के लिये देता है और धात्री से यह कहना भी नही भूलता कि मदनमंजरी से कहना कि उसने जो वचन दिया है वह सच्चा है और यहाँ से लौटते समय उसे अवश्य ही साथ ले जायेगा।[4] इस प्रकार का सन्देश अगड़दत्त धात्री को देता है।

निष्कर्षत. कथानक रूढ़ियों की दृष्टि से हमे इन कथा काव्यो मे सौन्दर्य का सवर्धन एव नाटकीयता का नियोजन करने वाली उपर्युक्त कथानक रूढियाँ मिलती हैं। इनसे कथा प्रवाह को पर्याप्त गति मिली है साथ ही उसमें चमत्कार एव सरसता का सचार भी हुआ है। काव्य कथा के रूप मे शिल्प निर्माण में इनका समुचित योग है। लघु कथानक के विस्तृत होने का एक कारण इन कथानक रूढियो की उपस्थिति भी है। रूढ़ियो के परिणामस्वरूप कथानक मे जिज्ञासा, आश्चर्य, कुतूहल और सौन्दर्य तत्व का सम्यक् निर्वाह भी हो जाता है। स्वप्नदर्शन जन्य प्रेमासक्ति की रूढि कथा मे एकदम गति का संचार करती है तो सौदागर आगमन एव रहस्योद्घाटन की रूढियाँ कथा को अनूठा मोड़ देती है। विरह-वर्णन, संदेश-प्रेषण एवं नखशिख की कथानक रूढियाँ कथा नायिकाओ की मर्मस्पर्शी मनोभावना से सवलित होकर अपूर्व मनोहारिता एव हृदय द्रवणता ला देती है, तो सिद्धि-मार्ग की बाधाएँ नाटकीयता, सघर्ष एव कुतूहल का सृजन करती हैं। इस तरह इन कथाकाव्यो के लघु कथानको को आद्योपात आकर्षक, रोचक और महत्त्वपूर्ण बनाये रखने मे ये कथानक रूढ़ियाँ परम्पराविहित है परन्तु उनका अनोखा नियोजन कथा में नवीनता एवं चारुता की सृष्टि करता है।

---

1. दो. सं. 152
2. दो. सं. 154 से 159
3. मयण मंजरी इम बीनवइ राजकुमारी ते परणी हवइ
   दीधउ बोहलह तउ मुझ भणी किसी बात ते वाचा तणी ॥ 136 ॥
4. सवा कोडि नउ दीधउ हार साचउ दाषिउ प्रेम अपार
   मन मां प्रीति धरवो अम्हतणी, जातां लेइजा सिउ तम्ह भणी ॥ 138 ॥

कुशललाभ के कथा काव्यों की कथानक रूढ़ियों का वैज्ञानिक अध्ययन

कुशललाभ के कथा काव्यो में प्रयुक्त रूढ़ियों का वर्णन ऊपर विस्तार से किया जा चुका है। किन्तु इस कार्य को वैज्ञानिक आधार देने के लिए आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय विद्वान स्टिथ थामसन की अभिप्राय अनुक्रमणिका (मोटिफ इंडेक्स) प्रणाली के आधार पर इन कथा काव्य रूढ़ियों का सूक्ष्म विश्लेषण वर्गीकरण और क्रमांकन किया जाये।

ब्रज की कुछ लोक कथाओं को लेकर श्रीमती डा. सावित्री सरीन इसी प्रकार का कार्य कर चुकी है। उन्होने थामसन द्वारा वर्गीकरण के प्रयुक्त रोमन अक्षरों के स्थान पर देव नागरी अक्षरो का प्रयोग किया है। अक्षरों मैं उसी रूप को अपनाया जा रहा है। सुविधा के लिये देवनागरी के साथ साथ रोमन अक्षरों को भी कोष्ठक में में दिया जा रहा है ताकि किसी कथानक रूढि को मोटिफ इंडेक्स में ढूंढने में सरलता हो सके। कुशललाभ के कथाकाव्यो में जो नवीन रूढियाँ प्रयुक्त हुई हैं उनके आगे यहाँ + चिह्न दिया जा रहा है। जिन कथानक रूढ़ियो के आगे बिन्दु 0 चिन्ह लगा है वे रूढ़ियाँ पौराणिक स्रोत की कथानक रूढियाँ है।

डा. सरीन द्वारा दिया गया देवनागरी रूप

A	:	क	N	:	त
B	:	ख	O	:	उ
C	:	ग	P	:	थ
D	:	घ	Q	:	द
E	·	च	R	:	ध
F	:	छ	S	:	न
G		ज	T	:	प
H	:	झ	U	:	फ
I	:	ह	V	:	ब
J	:	ट	W	:	भ
K	:	ठ	X	:	म
L	:	ड	Y	:	व
M	:	ढ	Z	:	य

स्टिथ थामसन ने इन अक्षरो का निर्धारण कथानक रूढ़ियों के जिन वर्गों के लिये किया है, वे ये हैं—

ए (क) : धर्म गाथा अभिप्राय

बी (ख) : पशु विषय अभिप्राय

सी (ग) : वर्जन विषय अभिप्राय

डी (घ) : जादुई अभिप्राय

ई (च) : मृतक सम्बन्धी अभिप्राय

एफ (छ) : चमत्कार विषयक अभिप्राय
जी (ज) : दैव विषयक अभिप्राय
एच (झ) : परीक्षा विषयक अभिप्राय
आई (ञ) : ज्ञान एवं बुद्धि विषयक अभिप्राय
जे (ट) : बुद्धिमानी विषयक अभिप्राय
के (ठ) : धोखे विषयक अभिप्राय
एल (ड) : भाग्य परिवर्तन विषयक अभिप्राय
एम (ढ) : भविष्य निर्देशन विषयक अभिप्राय
एन (त) : अवसर तथा भाग्य विषयक अभिप्राय
ओ (उ) : (यह वर्ग अभी अनिर्धारित ही है)
पी (थ) : समाज विषयक अभिप्राय
क्यू (द) : पुरस्कार तथा दण्ड विषयक अभिप्राय
आर (ध) : अपहरण तथा रक्षा (कैदी तथा पलायन) सम्बन्धी अभिप्राय
एस (न) : अप्राकृति क्रूरता–विषयक अभिप्राय
टी (प) : यौन या विवाह और प्रेम सम्बन्धी अभिप्राय
यू (फ): जीवन के रूप सम्बन्धी अभिप्राय
व्ही (ब) : धर्म विषयक अभिप्राय
डब्लू (भ) : चारित्रिक विशेषताओ विषयक अभिप्राय
एक्स (म) : विनोद (हास्य) विषयक अभिप्राय
वाई (व) · (यह वर्ग अभी अनिर्धारित ही है)
जेड़ (य) : अभिप्रायों के अन्य विविध समूह (अवर्गीकृत अभिप्राय आदि)

उपर्युक्त वर्गों में से आई (ह) ओ (उ) यू (फ) एक्स (म) और वाई (व) वर्गों को छोड़ शेष सभी वर्गों की कथानक रूढिया कुशललाभ के कथा काव्यो में प्राप्त हुई हैं।

1. क (ए)–धर्म गाथात्मक अभिप्राय

0 + क (ए) 102, 13	दयालु शिव	ढोला मारु चौपई
0 + क (ए) 102, 13	दयालु पार्वती	,,
0 क (ए) 124, 1	शिव	ढोला मारु चौपई, माधवानल कामकंदला चौ.
0 + क (ए) 287	इन्द्र	माधवानल कामकंदला
0 क (ए) 524	दयालु विक्रम	,,
0 + क (ए) 661	इन्द्र पुरी	,,
0 क (ए) 661, 4	इन्द्र सभा	,,

2. ख (बी)—पशु पक्षी विषयक अभिप्राय

ख (बी) 16, 5, 1, 2, 1 सर्प जो मानव को सास से पीता है।— ढोला मारु चौपई

	ख (बी) 131, 2	चतुर तोता	,,
0	ख (बी) 211	पशु का मानव वाणी में बोलना	भीमसेन राजहंस चौपई
	211·3 4	तोता	तेजसार रास
	211 3 3	हस,	भीमसेन हस राज चौ.
	441·1·1	बानर	
	442	गधा	ढोला मारु चौपई
	443 1	ऊंट	,,
0 +	ख (बी) 219	दूत हस दूत	भीमसेन हसराज चौपई
0	ख (बी) 219, 1, 6,	तोता दूत	ढोलामारु, तेजसार रास अगड़दत्त रास,
0 +	ख (बी) 299	मैत्री निभाने वाले पशु	,,
0 +	ख (बी) 336	पक्षी तोता, हंस ऊँट,	,,
0	ख (बी) 336	कृतज्ञ पक्षी (कैद से छुड़ाने के कारण)	तेजसार रास
0	ख (बी) 441, 1	सहायक बानर	भीमसेन हंसराज चौ.

3. ग (सी)—वर्जन का निषेध विषयक अभिप्राय

0	ग (सी) 69	मानव और परा मानव (अप्सरा) मे यौन ससर्ग निषिद्ध	माधवानल कामकन्दला चौपई।
0 ग +	(सी) 119	पत्नीव्रत व्यापार का निषेध	स्थुलीभद्र छत्तीसी
0 ग +	(सी) 611	वर्जित कक्ष	जिनपालित जिन रक्षित रास तेजसार रास चौपई
0 ग +	(सी) 614	वर्जित मार्ग	,,
0 ग	(सी) 614, 1,	वर्जित दिशा दक्षिण दिशा	जि. जि. रा.
ग +	(सी) 685	लाश न जलाना	माधवानल कामकंदला
0 ग	(सी) 952	अन्य लोक में पहुंचना यात्रा	,, तेजसार रास अगड़दत्त रास, भीमसेन राजहंस चौपई

			स्थूलिभद्र छत्तीसी, जिनपालित रास
0 ग	(सी) 961, 2	पत्थर बनना	माधवानल
0 ग	(सी) 961·2·1.	शाप देकर अप्सरा को पत्थर बना देना	काम कंदला चौ. कामकंदला चौपई
	961 2·2	सेना को स्तम्भित कर देना	तेजसार रास अगड़दत्त रास
0 ग	(सी) 962, 2	निषेध भंग करने के कारण व्यक्ति को दूसरे लोक में रहना ही पड़ेगा	माधवानल कामकन्दला चौपई
0 ग	(सी) 987	शापित होना	,,
0 + ग	(सी) 989	मरना	ढोला मारु चौपई मा का. चौ

4. घ (डी)—जादू और अपान्तर सम्बन्धी अभिप्राय

0	घ (डी) 12	रूपान्तर वेश परिवर्तन	ढो. मा. चौ मा. का. चौ. तेजसार रास अगड़दत्त रास जिन पालित जिन रक्षित रास
0 +	घ (डी) 152·6	रूप परिवर्तन हो जाने पर भी पूर्व स्मृति का बने रहना	मा. का, चौ. भी. हं. चौ.
0 +	घ (डी) 173	योगी की जादू शक्ति	तेजसार रास अगड़दत्त रास
0	घ (डी) 180	मनुष्य को कीड़ा बना	मा. का. चौ.
0 +	घ (डी) 231, 1	स्त्री पत्थर बनी	मा. का. चौ.
	घ (डी) 314, 1, 3,	मृगी का स्त्री रूप में परिवर्तन	तेजसार रास
	घ (डी) 439·3	जन्म फल से	मी' रा. चौ.
0 +	घ (डी) 439· 5.	अप्सरा का नायिका (मानवी) रूप में अवतार	मा. का. चौ.
0	घ (डी) 439· 5.	देवताओं का मानव रूप धारण कर प्रकट होना	,, दुर्गा सात्तसी
	घ (डी) 530	रूप परिवर्तन	तेजसार रास
0	घ (डी) 987.3.	जादू की वस्तु की सहायता	

		से कार्य करना	जिन पालित जिन रक्षित रास मी. हं. चौ.
0 +	घ (डी) 599	जादू तन्त्र मन्त्र का प्रयोग (विद्याधरी शक्ति से)	अगड़दत्त रास तेज सार रास
0	घ (डी) 1346, 1, 2	अमृत लाकर जीवित करना	मा. का. चौ.
0	घ (डी) 1361, 23	अदृश्यता	तेजसार रास अगड़दत्त रास
0	घ (डी) 1420, 4	सहायक का आना (पुकारने या स्मरण करने से)	मा. का. चौ. तेजसार रास अगड़दत्त रास जि. जि. रास दुर्गा सात्तसी
0	घ (डी) 1532.5.	उड़न खटोले पर बैठकर उड़ना	तेजसार रास
0	घ (डी) 1712	ज्योतिषी (भविष्य वक्ता)	तेजसार रास भी ह. चौ. अगड़दत्त रास
0	घ (डी) 1719,3	परामानवीय जाति	"
0	घ (डी) 1719.3.1.	गधर्व	तेजसार रास
0	घ (डी) 1719.4.	अप्सरा,	मा. का. चौ.
0	घ (डी) 1719.4.1	विद्याधर	तेजरास रास
0	घ (डा) 1719.4 2	व्यतरी	भी. ह. चौ.
0	घ (डी) 1810.3.2	देवी देवता का स्वप्न मे दर्शन देना सभी काव्यो मे	जि. जि. रास
0	घ (डी) 1810,3,3,9	भावी पति का स्वप्न मे दर्शन	ढो. मा. चौ.
0	घ (डी) 1812.3.3.0.2.1	प्रतीकात्मक स्वप्नों की व्याख्या	तेजसार रास माधवानल काम कन्दला चौपई
0	घ (डी) 1812, 5.1.2	शकुन से भविष्य ज्ञान	ढो. मा. चौ. मी. ह. चौ. तेजसार रास
0 +	घ (डी) 1812, 5.2.1	दायें व बायें अंग का फड़कना	ढो. मा. चौ.
0 +	घ (डी) 2163, 2.1	युद्ध में देवी की सहायता नायक को	तेजसार रास दुर्गा सात्तसी

5. च (ई) मृतक को पुनर्जीवन देने सम्बन्धी अभिप्राय

0	च (ई) 52.1.7	सर्प डसे को मंत्र से जिलाना	ढो. मा. चौ.
0	च (ई) 80.	अमृत से जिलाना	मा. का. चौ.
+	च (ई) 251.3	वैताल सहायक रूप मे	"
0	च (ई) 601.1.0.1	पूर्व जन्म याद होना	"
0	च (ई) 460.1	नायक का अतिप्राकृत जन्म	भी. रा. चौ. मा. का. चौ. दुर्गा सातसी

6. छ (F) चमत्कार सम्बन्धी अभिप्राय—

0	छ (F) 11.3	इन्द्रपुरी की यात्रा	मा का. चौ.
0	छ (F) 174.	परामानवीय पत्नी द्वारा नायक को अन्य लोक (इन्द्र लोक) में जाना	"
0 +	छ (F) 215	अप्सरा	"
0	छ (F) 234, 3	अप्सरा वस्तु के रूप मे	"
0	छ (F) 252 1.2	इंद्र अप्सराओं का राजा	"
0	छ (F) 252.4.1	अप्सरा का अप्सरा लोक से निष्कासन	"
0	छ (F) 252.4 1.1	अप्सरा दुराचरण के लिये निष्कासित	"
0	छ (F) 301	अप्सरा प्रेमिका	"
0	छ (F) 302 6 2.1	तबला (संगीत के माध्यम से प्रेमिका की प्राप्ति	"
0	छ (F) 531 1.	राक्षस विशाल काय	तेजसार रास
0	छ (F) 575 1	असाधारण सुन्दरी	सभी कथा काव्यो की नायिका असाधारण सुन्दरी है।
0	छ (F) 640	असाधारण संगीतज्ञ (गायक)	मा. का. चौ.
		आकाशवाणी (नायक नायिका कठिनाई हल करने के लिये)	भी. रा. चौ.
0	छ (F) 966	आकाशवाणी (नायिका प्राप्ति	"

		का उपाय बताना)	तेजसार रास अगड़दत्तरास दुर्गा सात्तसी
0	छ (F) 1041.2.2.3	मृत्यु (नायक अथवा नायिका की मृत्यु सुनकर)	मा. का चौ.

7. ज (जी) दैयंत (राक्षस) विषयक अभिप्राय

0	ज (जी) 334.11 3	नरभक्षी राक्षस	तेजसार राय, दुर्गासात्तसी
0	ज (जी)	पिशाच (मानव को कैद कर रखने वाला)	तेजसार रास जि. जि. रास अगड़दत्त रास
0	ज (जी) 530.2	राक्षस की पुत्री सहायक	ते. रास अगड़दत्त रास
0	ज (जी) 534	राक्षस ने अपना रहस्य बताया	तेजसार रास

8. झ (एच) परीक्षा सम्बन्धी अभिप्राय

0	झ (एच) 324	वर कसौटी	भी. रा. चौ.
0 +	झ (एच) 381	वधू कसौटी (सिंहल द्विप की पद्मिनी)	ढो मा. चौ
0	झ (एच) 411	सत् परीक्षा	"
0	झ (एच) 452	मत् परीक्षा (भेष बदल कर)	मा. का. चौ ढो. मा. चौ
0 +	झ (एच) 681.3.2.1	वर कसौटी-कार्य पूरा करना (विवाह की शर्त)	तेजसार रास अ. रास भी. रा चौ.
0 +	झ (एच) 945	पान का बीड़ा उठाना प्रतीक कार्य भार लेने का	मा. का. चौ. तेजसार रास
0 +	झ (एच) 1236 2	खोज में (नायिका) साधु सहायता	अगडदत्त रास
0	झ (एच) 1236 2	खोज में वीहड़ मार्ग	मा. का चौ. तेजसार रास अगड़दत्त रास भी. रा. चौ.

0	झ (एच) 1385.3	खोज खोयी हुई पत्नी और प्रेमिका की	मा. का. चौ. ते. रास
	1561 7.1	नायिका प्राप्ति के लिए युद्ध	अ रास ते. रास मा. का. चौ. ढो. मा. चौ.
0	झ (एच) 1556 4	प्रेम में सत्यता की परीक्षा	मा. का. चौ. ते. रास अ रास ढो. मा. चौ

9. ट (जे) ज्ञान एवं बुद्धि विषयक अभिप्राय

0 +	ट (जे) 882.3.	प्रेम पीड़ित (वियोगी) को ढाढस	मा. का. चौ. ते. रास अा. रास
0 +	ट (जे) 1115 10.2	चतुर मंत्री–पुत्र नायक का साथी	तेजसार रास
0 +	ट (जे) 1145	पक्षी एवं पशु की सहायता से (नायिका) का पता लगाना	अ. रास भी. रा चौ.
0 +	ट (जे) 673 1.2	झूठे स्वयंवर के ढोंग से नायक का पता लगाना	भी. रा चो

10. ठ (के) धोखे विषयक अभिप्राय

0	ठ (के) 714 2	पुरुष को छुपा कर रखना (नायिका द्वारा)	मा का चौ.
0	ठ (के) 1840 0 2	स्त्री का पुरुष वेश	तेजसार रास
0	ठ (के) 1961	कपटी साधु	”
0	ठ (के) 2111.2	प्रेम निवेदन ठुकराये जाने पर झूठा अभियोग	तेजसार रास
0	ठ (के] 2114	नायक पर झूठा अभियोग व्यभिचार का	मा. का. चौ. ते रास
0	ठ (के) 2111.0.1	कपटी भाई	जि. जि. रास
0	ठ (के) 2221	ईर्ष्यालु सौत (सोतिया डाह)	ढो. मा. चौ. तेजसार रास

0 ठ (के) 2289	खल नायक	छो. मा, चौ. ते. रास अगड़दत्त रास दुर्गा सात्तसी, स्थुली भद्र छत्तीसी

11. ड (एल) भाग्य परिर्तत विषयक अभिप्राय

0 + ड (एल) 161	गणिका का किसी के प्रति एक निष्प्रेम	मा. का. चौ.

12. ढ (एम) भविष्य निर्माण, भविष्यवाणी शाप आदि से सम्बन्धित अभिप्राय

0 + ढ (एम) 130	प्रेमिका ढूंढने जाने पर राह मे दूसरी स्त्री से भी विवाह	तेजसार रास
0 + ढ (एम) 149 1	एक साथ विवाह की प्रतिज्ञा	तेजसार रास भी. रा. चौ.
0 + ढ (एम) 302	भविष्यवाणी	भी. रा. चौ. अगड़दत्त रास दुर्गा सात्तसी तेजसार रास
0 + ढ (एम) 310.2	पुत्री के विवाह की भविष्यवाणी	"
0 + ढ (एम) 310 2 2	स्वामी से मिलाप की भविष्यवाणी	" अ रास भी. रा चौ
0 + ढ (एम) 310	खोज मे सफलता (नायक या नायिका को भविष्यवाणी द्वारा	" तेजसार रास अगड़दत्त रास
0 ढ (एम) 314	पुत्र चक्रवर्ती राजा बनेगा	तेजसार रास भी हं चौ.
0 ढ (एम) 314.1	पुत्री रानी बनेगी	तेजसार रास
0 + ढ (एम) 414.13.2·	इन्द्र का शाप अप्सरा को	मा का. चौ.
414.13 3.	इन्द्र का शाप पत्थर बना देना	"
0 + ढ (एम) 4117.6.1	शाप नर्तनी बनी	"
0 + ढ (एम) ·20	स्पर्श से शाप मुक्ति (यहाँ विवाह करने से)	"
0 + ढ (एम) 430	शाप पत्थर बनो	"

0 + ड (एम) 430	शाप मनुष्य योनि मे जन्म लो.	मा का. चौ.

13. त (एन) अवसर तथा भाग्य विषयक अभिप्राय

+ त (एन) 2·5	जुएं मे हार कर सर्वस्व खोना (चोर का)	तेजसार रास
+ त (एन) 211	खोये पति को ही पति रूप में पाना	,,
+ त (एन) 215	जहाज टूटने पर (नायक की प्राण रक्षा भाग्य से)	जिनपालित जिन रक्षित रास
+ त (एन) 215	साप ने काटा यौगिनी ने जिलाया	ढो. मा. चौ.
0 + त (एन) 310	पृथक होना नायिका से	तेज सार रास मा का चौ
0 + त (एन) 310.2	आखेट करने जाना (साथियों से विछोह)	भी रा चौ
त (एन) 711.4.	वृक्ष पर बैठे पशु पक्षियों की बात चीत सुनकर कोई रहस्य जानना	,,
त (एन) 681	मिलाप—अग्नि प्रवेश को तैयार नायक से नायिका का	ढो मा चौ ते. रास
त (एन) 684	अनायास राजा या किसी नि सन्तान राजा के राज्य का उत्तराधिकारी होना	तेजसार रास अगड़दत्त रास
त (एन) 731	मिलाप पुत्र पिता का	तेजसार रास
त (एन) 741.3.	मिलाप खोयी प्रियतमा से	,, मा. का. चौ
0 + त (एन) 810	सहायक परामानवीय शक्ति (शिव देवी)	ढो मा. चौ. दुर्गासात्तसी
0 + त (एन) 811 2.	सहायक ऋटवि तपस्वी	तेजसार रास अगड़दत्त रास
0 + त (एन) 812	सहायक विजित वेताल	मा का. चौ.
0 + त (एन) 812	सहायक राक्षस पुत्री	तेजसार रास
0 + त (एन) 817	देवी सहायिका पार्वती	ढो. मा. चौ.
0 + त (एन) 820 2	नायिका की सहायिका (धात्री)	तेजसार रास
0 + त (एन) 820.2 1	नायिका की सहायिका सखी	ढो. मा. चौ.
+ त (एन) 820.2.2	नायक नायिका का सहायक किसी	मा. का. चौ.

		देश का राजा	तेजसार रास अगड़दत्त रास
0	त (एन) 843	सहायक साधु तपस्वी	तेजसार रास त्रि. त्रि. रास अगड़दत्त रास
	त (एन) 845	सहायक पशु पक्षी (तोता, हंस)	तेजसार रास ढो. मा. चौ. अगड़दत्त रास भी. रा. चौ.
	त (एन) 845.2.	सहायक वन मानुष	,,

14. थ (पी) समाज विषयक अभिप्राय

0 +	थ (पी) 12	पर दुःख भजंनकारी विक्रम (राजा)	मा. का. चौ.
0	थ (पी) 17 0.2	निः सन्तान राजा का दान, तीर्थ, आशीर्वाद द्वारा पुत्र प्राप्त करना	 ढो. मा. चौ. तेजसार रास भी. ह. चौ. अ. रास
	थ (पी) 262 1	सास बहु में बुरा सम्बन्ध	ढो, मा. चौ.
0	थ (पी) 322 1	शरणागत की रक्षा	मा. का चौ
+	थ (पी) 600	रिवाज नाई ब्राह्मण द्वारा वट खोजना	,,
0 +	थ (पी) 600	रिवाज विवाह के समय दहेज देना	,, तेजसार रास अगड़दत्त रास भी. रा. चौ.

15. द (क्यू) पुरस्कार तथा दण्ड सम्बन्धी अभिप्राय

0	द (क्यू) 110	पुरस्कार—नायिका से विवाह बंधन से छुड़ाये जाने पर	तेजसार रास
+	द (क्यू) 112.0 2	पुरस्कार—आधे राज्य का किसी कठिन कार्य के करने पर	,, अगड़दत्त रास
+	द (क्यू) 1120.3	पुरस्कार—किसी असभव कार्य	

		करने पर	अगड़दत्त रास तेजसार रास
+	द (क्यू) 112.3	पुरस्कार--गांव दिये जाना	,,
0 +	द (क्यू) 140	सुप्तावस्था मे दूरस्त प्रेमिका के पास पहुँचाया जाना (व्यंतरी द्वारा)	,,
0	द (क्यू) 213	दान से अहकार	मा का चौ.
+	द (क्यू) 380	दण्डित कार्य (निषिद्ध कार्य करना)	जि. जि. रास
0	द (क्यू) 431	दण्ड-निष्कासन	मा. का चौ.
0	द (क्यू) 433	दण्ड-कैद किया जाना	तेजसार रास
	द (क्यू) 467	दण्ड-नदी में फैंका जाना	,,

16. ध (आर) अपहरण तथा रक्षा विषयक अभिप्राय

0 +	ध (आर) 10	अपहरण नायक का	तेजसार रास
+	ध (आर) 11.1	रक्षा नायिका उपनायिका की (राक्षस की कैद से)	,,
+	ध (आर) 22	अपहरण मन्त्र बल से	,,
+	ध (आर) 111.1.3	रक्षा-राक्षस से नायिका द्वारा नायक की	,,
0	ध (आर) 111.14.	देव (राक्षस) को मारकर नायक द्वारा वदिनी नायिका का उद्धार	तेजसार रास
	ध (आर) 131.10	रक्षा-साधु द्वारा	,,
+	ध (आर) 170	रक्षा पागल हाथी से शेर से	,, भी. ह. चौ.
0 +	ध (आर) 220	रक्षा-वेश बदल कर	तेजसार रास

17. न (एस) अप्राकृतिक क्रूरता विषयक अभिप्राय

0	न (एस) 31	क्रूर सौतेले भाई	तेजसार रास जि. जि. रास
0	न (एस) 31 1	क्रूर सौत	ढो. मा. चौ.

18. प (टी) प्रेम और विवाह यौन सम्बन्धी अभिप्राय

0 +	प (टी) 11	प्रेमोदय प्रत्यक्ष दर्शन से	ढो. मा. चौ. तेजसार रास

0	प (टी) 11.1	प्रेमोदय नायक या नायिका के रूप गुण की प्रशंसा सुनकर	दुर्गा सात्तसी अगड़दत्त रास भी. रा. चौ.
0	प (टी) 11.3	प्रमोद स्वप्न दर्शन से	ढो. मा. चौ.
	प (टी) 12	नायक के जन्मते ही ज्योतिषियों द्वारा भविष्यवाणी	तेजसार रास
0	प (टी) 12.1	नायिका के जन्मते उसके विवाह आदि की ज्योतिषियों द्वारा भविष्यवाणी	,, अगड़दत्त रास ते. रास
0	प (टी) 22	पूर्व निर्धारित पति पत्नी	भी. रा. चौ
0	प (टी) 22.3	पूर्व जन्म की प्रीति की स्मृति	,, मा. का. चौ.
0	प (टी) 22.2.3.	पूर्व निर्धारित पति पत्नी	,, भी. रा. चौ.
0 +	प (टी) 24.	प्रेम वर्णन (सयोग पक्ष मे)	प्रायः सभी
0 +	प (टी) 24.1.	विरह पीड़ित होना	ढो. मा. चौ.
	प (टी)	24.9.2 ग्रीष्म ऋतु	मा का. चौ.
	प (ट)	24.9.2 वर्षा ऋतु	ढो. मा. चौ
	प (ट)	24.9.4 शरद ऋतु	मा. का. चौ.
0	प (टी) 51	प्रेम सम्बन्ध घटक के रूप में-पक्षी तोता हंस	भी रा. चौ. तेजसार रास
+	प (टी) 52	प्रेम सम्बन्ध घटक के रूप में धात्री	,,
0	प (टी) 55.1	प्रिय खोज मे लगी नायिका	,,
0 +	प (टी) 55.2.1.	प्रिय के पास सन्देश भेजना तोता दाढी हंस	ढो. मा चौ. मा. का. चौ.
0	प (टी) 66.	प्रिय प्राप्ति हेतु पूजा	,,
	प (टी) 66 1	देवी (पार्वती)	तेजसार रास
0 +	प (टी) 66.1	चक्रेश्वरी देवी	भी. रा. चौ.
	67.2.	शिव	ढो. मा. चौ.
+	प (टी) 69.2	बचपन में विवाह	ढो. मा. चौ.
	प (टी) 75.	प्रेम वांछिता स्त्री का प्रतिशोध लेना	तेजसार रास

0	प (टी) 75.0.2.	देवता की उपस्थिति मे मानव को वरण करने वाला नायक	ढो. मा. चौ.
0	प (टी) 81	प्रेम में मृत्यु	मा. का. चौ.
0	प (टी) 91.1	राक्षस पुत्री प्रेमिका	तेजसार रास
	प (टी) 91.4	नीच स्त्री से प्रेम	जि. जि. रास
0 +	प (टी) 104	विवाह हेतु युद्ध	ढो. मा. चौ. मा. का. चौ. तेजसार रास
0	प (टी) 111	मानव और परा मानव का विवाह	मा का. चौ.
0	प (टी) 210	सती पत्नी	,, ढो. मा. चौ
	प (टी) 212	वियोग मे मरने वाला प्रेमी युगल	मा का चौ
0 +	प (टी) 212	प्रेमी की मृत्यु सुन मृत्यु	मा. का. चौ.
0	प (टी) 252.2	सौतिया डाह	ढो. मा. चौ.
0 +	प (टी) 257 2.1	सौतिया हाड नही	तेजसार रास
	प (टी) 117 12	मूर्ति से किसी युवक का विवाह	मा. का. चौ
0 +	प (टी) 511 10.3	गर्भाधान-साधुप्रदत्त फल	भी रा चौ.
9	प (टी) 548	जन्म वरदान से (शिव से)	मा का चौ.
0	प (टी) 548.1	जन्म प्रार्थना से यात्रा से	,, ढो. मा. चौ.
0	प (टी) 1515	अति प्राकृत जन्म	मा. का. चौ. दुर्गा सात्तसी तेजसार रास भी. ह. चौ.

19. व (ह्वी) धर्म और धार्मिक अनुष्ठान विषयक अभिप्राय

			अ. रास
+	व (ह्वी) 310	धार्मिक विश्वास (असत्य भाषण से सेलग यक्ष की पूंछ से पानी मे गिरना)	जि. जि. रास
+	व (ह्वी) 420	अज्ञान से नायक के मार्ग में	मा. का. चो

	मुसीबत आना	तेजसार रास अगड़दत्त रास जि. जि. रास
+ व (ह्वी) 420	नाव टूटना जंगल में भटकना	,,
0 व (ह्वी) 462.13	दुष्ट तपस्वी का अपनी जादुई चमत्कारी शक्तियों का, गलत ढंग से प्रयोग	तेजसार रास अगड़दत्त रास दुर्गा सात्तसी
0 + व (ह्वी) 500	संसारी प्रेम झूठा धर्माचरण के लिए संसार से विरक्ति	तेजसार रास अगड़दत्त रास भी. रा. चौ. सबुली भद्र छत्री सी जि. जि. रास

20. (डब्ल्यू) चारित्रिक विशेषतायें विषयक अभिप्राय

टिप्पणी : 'द' वर्ग से इस वर्ग का विभेद 'गुण' और कार्य के आधार पर किया गया है। उदाहरणार्थ परोपकार जब 'गुण' रूप मे है तब 'भ' वर्ग के अन्तर्गत आयेगा। (जैसे राजा विक्रम) और जब कार्य रूप मे है तब 'द' वर्ग के अन्तर्गत। यह विभेद बहुत सूक्ष्म है।

0 + भ (डब्ल्यू) 20	परोपकार (विक्रम वेताल)	मा. का. चौ.
0 + भ (डब्ल्यू) 27	कृतज्ञता (बन्धन मे पड़े मनुष्य को छुड़ाना)	तेजसार रास
0 + भ (डब्ल्यू) 150	ईर्ष्यालू भाई	तेजसार रास
0 + भ (डब्ल्यू) 154,8,	कृतज्ञ पशु-पक्षी	ढो. मा. चौ. तेजसार रास भी. ह. चौ.

21. य (जेड़) अन्य विविध अभिप्राय समूह

य (जेड़) 71.5.2	सात समुद्र पार यात्रा नायक की	जि. जि. रास
0 य (जेड़) 71 6	प्रतीकात्मक संख्या—सात समुद्र सातपुर सात लोक,	,, तेजसार रास मा. का. चौ. अगड़दत्त रास
0 य (जेड़) 175.2	प्रेमियों द्वारा प्रतीकात्मक सन्देश	ढो. मा. चौ. मा. का. चौ.

0	य (जेड़) 220	नायक की असाधारण सफलतायें प्रयास	ढो. मा. चौ. मा. का. चौ. तेजसार रास अगड़दत्त रास मी. ह. चौ. जि. जि. रास दुर्गा सात्तसी
0	य (जेड़) 359	शाप के अनूठे अपवाद (शाप मुक्ति के उपाय)	मा. का. चौ.

स्टिथ थामसन द्वारा वर्गीकृत अभिप्रायो एवं कुशल लाभ के कथा काव्यों के अभिप्रायों का अध्ययन निम्न तालिका द्वारा किया जा सकता है—

अभिप्राय वर्ग	स्टिथ थामसन अभिप्राय	कुशललाभ के काव्यों के अभिप्राय	कुल अभिप्राय
1. धर्म गाथा अभिप्राय	55	7	63
2. पशु पक्षी विषयक अभिप्राय	26	13	39
3. वर्जन या निषेध विषयक अभिप्राय	12	13	25
4. जादू और रूपान्तर	83	28	111
5. मृतक विषयक अभिप्राय	29	5	34
6. चमत्कार विषयक अभिप्राय	26	15	41
7. राक्षस शक्ति विषयक अभिप्राय	7	4–	11
8. परीक्षायें	16	11	27
9. ज्ञान एवं बुद्धि विषयक अभिप्राय	17	5	22
10. धोखे विषयक अभिप्राय	5	8	13
11. भाग्य का पलटना	1	1	2
12. भविष्यवाणी व शाप आदि	16	14	30
13. अवसर तथा भाग्य विषयक	15	22	37
14. समाज विषयक	64	7	71
15. पुरुस्कार तथा दण्ड विषयक	7	10	17
16. अप्राकृतिक क्रूरता	3	2	5
17. अपहरण तथा रक्षा विषयक	—	8	8

18. प्रेम और विवाह यौन सम्बन्धी	13	38	69
19. धर्म एवं धार्मिक अनुष्ठान	54	5	59
20. चारित्रिक विशेषता विषय	6	4	10
21. अन्य विविध समूह	5	5	10

उपरोक्त तालिका के आधार पर हम देखते है कि कुशललाभ के कथा काव्यों मे प्रेम ओर विवाह यौन सम्बन्धी अभिप्रायों का अधिक प्रयोग मिलता है। जादू और रूपान्तर विषय अभिप्राय द्वितीय स्थान पर आते हैं जबकि भविष्यवाणी व शाप विषयक अभिप्रायो का तृतीय स्थान है। भाग्य परिवर्तन, जादू और वर्जना सम्बन्धी अभिप्राय प्राय: समान रूप में प्रयुक्त हुये हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कवि के काव्यों में प्रयुक्त अभिप्राय: के विविध वर्गों द्वारा कथानक ने तद्युगीन काव्य परम्परा में कथा निर्माणक तत्वों का नवीन एव असाधारण प्रयोग किया है जो लोक तत्वों के अन्तर्गत किसी भी रचना को लोकप्रिय और लोकाभिव्यक्ति की दृष्टि से सम्पुष्ट बनाने में समर्थ होते हैं। इन लोक तत्वो की आधार शिला के कारण ही कुशललाभ के कथा काव्यों की गरिया और लोकप्रियता है जो लोक के साथ अभेद्य सम्बन्ध बनाये रखने में समर्थक एवं सक्षम है।

उपसंहार

जैन साहित्य का भण्डार विशाल है। इसमे प्राणी मात्र के कल्याण की भावना निहित है। जैन कथा साहित्य में तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक व आर्थिक परिस्थितियों का प्रतिबिंब तो मिलता ही है साथ ही इन कथाओं में आत्मा का प्रतिबिंब भी बहुत ही स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। सामान्यतः ये जैन कथायें धर्म नीति एवं सदाचार से सम्बन्धित हैं। इन कथाओ का आधार ऐतिहासिक पौराणिक एव काल्पनिक रहा है।

इस युग मे अनेक जैन एव जैनेतर राजस्थानी कवि हुये हैं। इन्होंने राजस्थानी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं मे भी साहित्य रचना की है। वास्तव मे देखा जाये तो हमारे राजस्थानी साहित्य का विकास इन्हीं राजस्थानी कवियों के कारण हुआ है। राजस्थानी साहित्य के प्रणेता जैन कवि एव उनका साहित्य निम्नलिखित है :—

1 विनयसमुद्र : ये उपकेश गच्छीय वाचक हर समुद्र के शिष्य थे। इनका समय वि सं 1583 से 1614 तक है। इनकी अब तक प्राप्त रचनाओ की सख्या बीस है। इन्होंने कथा काव्य अधिक लिखा है।

2. हीर कलश · खरतरगच्छीय सागरचन्द्र सूरि शाखा के कवि थे। इनका जन्म स. 1595 माना जाता है। ये ज्योतिष के ज्ञाता थे। अब तक इनकी 28 रचनाये उपलब्ध हो चुकी है।

3. हेमरत्नसूरि का समय अनुमान से सं 1616 से 1673 माना जाता है। इनकी 'गोरा बादल पद्मिणी चऊपई 1645' प्रसिद्ध है। यह वीर, शृंगार एवं हास्य रस का कथा काव्य है।

4. कुशललाभ के समकालीन जैन साहित्यकारों मे समयसुन्दर प्रमुख हुये है। इनका समय स 1620 से 1702 माना जाता है। इनकी अनेक साहित्यिक रचनायें है। जिनका उल्लेख श्री नाहटा जी ने समय सुन्दर कृत 'कुसुमांजलि' के सपादन मे किया है।

5. ब्रह्म जयसागर का समय 1580 से 1655 तक माना जा सकता है। कवि की प्रमुख रचनाएँ 11 है। इन्होने गीतों की रचना अधिक की है।

6. संत वीरचन्द्र भट्टारक लक्ष्मीचन्द के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनायें आठ है इनमें फागु गीत रास एवं कथा को प्रमुख रूप से लिया गया है।

7. ब्रह्मरायमल उस काल के राजस्थानी विद्वानों में से एक हैं इनका नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी सभी कृतियाँ कथा काव्य है। इनका साहित्य काल 1615 से 1636 रहा है।

इन कवियों के अतिरिक्त भी अनेक जैन कवि हुये हैं जिन्होंने राजस्थानी साहित्य के विकास में योग दिया है। अब हम इस युग के जैनेतर कवियों को देखेंगे।

संत दादू दयाल जी का जन्म 1601 मे माना जाता है। इनकी रचनाओं का सग्रह 'वाणी' के नाम से प्रसिद्ध है इनमे ज्ञान, सत्सग, गुरु-भक्ति, वैराग्य, माया जीव और ब्रह्म आदि की चर्चा है। इनके अतिरिक्त सत रज्जब जी, स्वामीलालदास जी, सन्त मावजी, स्वामी चरणदास जी, श्री जसनाथ जी आदि राजस्थान के सत कवि हुये है। ये सभी दादू सप्रदाय से प्रभावित थे। अत धार्मिक ग्रंथो की रचनाये ही इनके द्वारा समव हुई है।

राजस्थानी के जैन एव जैनेतर कवियो मे कुशललाभ व उनके साहित्य का विशिष्ट स्थान है। कुशललाभ का, जैन कवि होते हुये भी राजस्थानी प्राकृत, अपभ्रंश एव सस्कृत आदि भाषाओ पर पूर्ण अधिकार था। कुशललाभ की अब तक प्राप्त 20 रचनायें लघु और वृहत सभी कोटि की हैं। इन रचनाओ मे कथा काव्य ही कुशललाभ ने अधिक लिखे है। ये कथायें लौकिक प्रेम कथायें होने पर भी काव्य साहित्य मे उच्च कोटि की मानी जाती है। कुशललाभ का कथा साहित्य मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य की अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इनकी कथाये शृंगार रस प्रधान होने पर भी वीर रस को भी स्वय मे समोकर चलती है और इनकी परिणति शात रस मे होती है।

कवि ने राजस्थानी साहित्य मे प्राचीन काल से प्रचलित प्रेमाख्यान परम्परा को नवीन ढग से अपनाया है। इसमे कवि की मौलिकता एवं अनोखी सूझ बूझ का परिचय मिलता है। इन्ही कथाओ को लेकर बाद मे भी अनेक कथाओं का प्रणयन हुआ है। राजस्थानी प्रदेश मे नारी को आदर्श रूप मे ही चित्रित कर कवि ने नारी सौन्दर्य का आदर्श स्थापित किया है।

एक ओर दामपत्य प्रेम का पवित्र सन्देश लेकर 'माधवानल कामकदला' एवं 'ढोला मारवणी' 'तेजसार' 'भीमसेन राजहंस' अगडदत्त' की ये कथाये आई है वहाँ दूसरी ओर धार्मिक उपदेश पूर्वभव सयम आदि धर्म की शिक्षा भी ये प्रदान करती हैं।

राजस्थान के प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन भी इन कथा काव्यों मे यथार्थ एवं कलात्मक रूप में हुआ है। ऋतु, प्रकृति एवं पशुओं का वर्णन कवि ने बड़ा ही सजीव एवं यथार्थ रूप मे किया है।

ये आख्यान काव्य लौकिक हैं और विरह के आर्द्र क्षण, दाम्पत्य का माधुर्य इनमे है। अतः ये कथा काव्य राजस्थानी साहित्य में विप्रलम्भ शृंगार के अनोखे व उच्च कोटि के मील स्तम्भ हैं। छन्दों की विविधता के साथ ही प्रौढ़ कलात्मकता की झलक इनमे अपूर्व रूप से दिखाई देती है। अभिव्यक्ति में कला व भावों का ऐसा समन्वय राजस्थानी साहित्य की अन्य कृतियो में मिलना दुर्लभ है।

कुशललाभ के सभी आख्यान काव्यों के शीर्षक नायक व नायिका को लेकर रखे गये हैं ये कथायें बृहत् होने पर भी श्रुति मधुर एव विषय की अनुभूति एव रसास्वादन के साथ कथानक की अटूट शृंखला के कारण लघु प्रतीत होती है। कहीं भी इनमे अनावश्यक विस्तार नही होने पाया है। लगता है कवि ने पाठकों की रुचि का ध्यान रखते हुये इनकी सरचना की है।

आख्यान काव्यो मे कथानक रूढियो एव काव्य रूढ़ियों का प्रयोग जहाँ परम्परा से प्रचलित है वहाँ कही-कही परम्परा से हटकर नवीन कथानक रूढ़ियों का प्रयोग भी कवि ने किया है जो कवि की अपनी मौलिकता का परिचायक है। इन कथानक रूढ़ियो का प्रयोग बडी ही चारुता से हुआ है जिससे कथानक तो सशक्त एव गतिमान हुआ ही है साथ ही कथा में रोचकता का समावेश भी इन्ही के द्वारा हो पाया है।

कवि के आख्यानों के सभी पात्र उच्चकुल से सम्बन्ध रखने वाले हैं। वे अपने जातीय जीवन का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं। पात्रो के चरित्र चित्रण मे कवि ने सूक्ष्म व्यजना से तो काम नही लिया है फिर भी मानवीय गुणों की चारुता से वे रिक्त नही है। अति मानवीय तत्त्व भी कथा में आये हैं जिनका लोकोन्मुखी कृति में होना स्वाभाविक ही है।

विप्रलंभ रस की प्रधानता के कारण कवि विरही हृदय की गहराईयों को स्पर्श कर विरहिणी के दुःख को व्यक्त करने में सफल हुआ है। दाम्पत्य जीवन के सुख दु ख मे हमें भावों की कोमलता ही सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। वियोग के साथ संयोग को भी अभिव्यक्ति मिली है। परन्तु यह संयोग मर्यादा प्रदान है। मासल सौन्दर्य के लिये मर्यादा का उल्लंघन कही भी नहीं हुआ है। सयोग क्षणों की मधुर चेष्टाओं, हाव भावों व हास्य विनोद का कवि ने कम ही चित्रण किया है परन्तु जो कुछ भी है वह मानव प्रेम का पवित्र एकनिष्ठ व निश्छल स्वरूप है।

इन पद आख्यानों में हमें कर्म एवं फल का संगम मिलता है। पूर्व जन्म में जैसा कर्म किया गया है उसी के अनुरूप फल की प्राप्ति कराना कवि का लक्ष्य रहा है। यह सिद्धान्त जैन धर्म से अनुप्राणित है।

कथा काव्य की रचना शैली उत्कृष्ट है। भाषा में सहज माधुर्य गुण है। लोक की अनूठी सहज मधुर भाषा की रचनायें होने के कारण मध्य युगीन राजस्थानी साहित्य में ये कृतियां अमर हो गई हैं।

कवि के भाषा प्रयोगो मे विविधता है परन्तु क्लिष्टता या कृत्रिमता का समावेश वहां नहीं हो पाया है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों का उचित प्रयोग काव्य के सौन्दर्य एवं सौष्ठव को ही बढ़ाता है। प्रतीकों का सहारा भी कवि ने अपने ही ढंग से लिया है जो कवि की मौलिकता का परिचायक है।

इन कथा काव्यो में सवादों की बहुलता है फिर भी समस्त सवाद सशक्त सप्राण, भावानुकूल एवं अवसरानुकूल है।

राजस्थानी प्रदेश की तत्कालीन सस्कृति एव समाज का चित्रण भी इन कथा-काव्यों में हुआ है। इन कथाओं में हमें स्थापत्य चित्र ललित सगीत एवं नाट्य कला आदि के अनेक संकेत मिलते हैं। सामाजिक जीवन में नारी की स्थिति तथा उसकी उच्च सत्ता का बोध इन कथाओ में होता है। सामाजिक जीवन के आधार, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, पर्व एव त्यौहार, विश्वास एव प्रथायें, वस्त्राभूषण शृंगार प्रसाधान, मनोविनोद, विवाह के प्रकार आदि बहुमुखी जीवन क्रियायें इसमे व्यजित हुई हैं। आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, भौगोलिक जीवन का परिचय भी संक्षिप्त रूप में इन कथाओं मे मिलता है फिर भी ये कथाये तत्कालीन समाज का पूर्ण परिचय देने में सक्षम है। इन कथाओं में मध्ययुगीन सामन्ती जीवन और लोक जीवन का स्पन्दन स्पष्ट दिखाई देता है।

अतः अनेक दृष्टियों से कुशललाभ के आख्यान काव्यों का राजस्थानी साहित्य में महत्व निर्विवाद है। कुशललाभ के यह काव्य ऐसे हैं जहा युगीन साहित्य की प्रवृत्तियों के साथ अन्य प्रवृत्तियों को भी उच्च धरातल पर अभिव्यक्त किया गया है। 'पिंगल शिरोमणि' के आधार पर यदि कुशललाभ को रीति कालीन प्रथम, आचार्य कहा जाय तो कोई अतियुक्ति नहीं होगी। इस ग्रंथ का रीति कालीन कवियों और उनके ग्रंथों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रभाव अवश्य पड़ा है। यह पृथक से भी शोध का विषय हो सकता है।

इस प्रकार हम देखते है कि कुशललाभ अपने समय के राजस्थानी साहित्य के एक सशक्त एवं उच्च कोटि के विद्वान कवि हुये हैं। इनकी रचनाये राजस्थानी साहित्य की अक्षुण्ण निधि हैं।

परिशिष्ट

संदर्भ ग्रंथ

हिन्दी, राजस्थानी एवं गुजराती

1.	अपभ्रंश साहित्य	डॉ० हरिवंश कोछड़
2.	अकबरी दरबार के हिन्दी कवि	डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल
3.	आदि-कालीन हिन्दी साहित्य शोध	डॉ० हरीश
4	आनन्द काव्य महोदधि	
5.	आधुनिक हिन्दी साहित्य	डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
6.	ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह	श्री अगरचन्द नाहटा
7.	ऐतिहासिक निबन्ध राजस्थान	डॉ० गोपीनाथ शर्मा
8.	काव्यादर्श	
9.	काव्य दर्पण	
10.	गुजराती और उसका साहित्य	पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
11.	गुजराती साहित्य का नवीन इतिहास	प्रो० सुरेश चन्द्र त्रिवेदी तथा प्रो. विष्णु प्रसाद जानी
12	चिन्तामणि भाग 1 व 2	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
13.	जातक कथायें	
14.	जातक कालीन भारतीय संस्कृति	प० मोहनलाल मेहता
15.	जायसी ग्रथावली	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
16.	जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेम सागर जैन
17.	जैन कथाओ का सास्कृतिक अध्ययन	श्री चन्द जैन
18.	जैन साहित्य और इतिहास	नाथूराम प्रेमी
19.	जैन ग्रथ और ग्रथकार	फतेहचन्द बेलाणी
20.	जैन कथा साहित्य	प्रो फूलचंद जैन सारग
21,	जैन गुर्जर कविओ	श्री मोहनलाल दलीचद देसाई
22.	जैन धर्म और दर्शन	
23.	जैन साहित्य का वृहद् इतिहास भाग 1, 2, 3 व 4	

24. डिंगल साहित्य — डॉ० जगदीश प्रसाद
25. डिंगल साहित्य — डॉ० गोवर्द्धन शर्मा
26. ढोला मारू रा दूहा — संपादक त्रय
27. ढोला मारू — कृष्ण बिहारी सहल
23. ढोला मारू रा दूहा — प्रो. शंभुसिंह मनोहर
29. ढोला मारू रा दूहा एक प्राचीन प्रेम गीत
30. देव और उनकी कविता — डॉ० नगेन्द्र
31. दक्खिनी हिन्दी का प्रेम गाथा काव्य — डॉ० दशरथराज
32. दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ — डॉ० जगदीश चन्द्र जैन
33 धर्मशास्त्र का इतिहास — काणे
34. धर्मसूत्र
35. धर्मशास्त्र का इतिहास — श्रीकान्त
36. नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट
37. निमाड़ी लोकगीत — श्री रामनारायण उपाध्याय
38 पल्लव — पंत
39. पद्मावत — डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल
40 पद्मावत मे लोक तत्व — श्री रविन्द्र भ्रमर
41. प्रकृति और काव्य — डॉ० रघुवंश
42. प्राकृत विमर्श — डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल
43. पृथ्वीराज रासो मे कथानक रूढियाँ — डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव
44. प्राचीन काव्यो की रूप परम्परा — श्री अगरचन्द नाहटा
45. प्राकृत साहित्य का इतिहास — डॉ० जगदीश चन्द्र जैन
46. प्रामाणिक हिन्दी कोष — श्री रामचन्द्र वर्मा
47. प्राकृत कथा साहित्य और उसकी विशेषतायें — मरुधर केशरी अभिनन्दन ग्रंथ
48. पालि साहित्य का इतिहास — श्री भरतसिंह उपाध्याय
49. ब्रज लोक कहानियाँ — डॉ० सत्येन्द्र
50. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन — डॉ० सत्येन्द्र
51. भारतीय लोक साहित्य — श्री श्याम परमार
52. भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा — श्री परशुराम चतुर्वेदी
53. भारतीय धर्म एवं संस्कृति — श्री बुद्ध प्रकाश
54 भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का विकास — श्री बी एन लूनिया

55. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान	श्री हीरालाल जैन
56. भोजपुरी लोक गाथा का अध्ययन	डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय
57. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य	डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव
58. भारतीय संस्कृति का विकास	डॉ० मंगलदेव शास्त्री
59. मनुस्मृति	
60. मध्यकालीन प्रेम साधना	श्री परशुराम चतुर्वेदी
61. मध्यकालीन धर्म साधना	श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी
62. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक-तात्विक अध्ययन	डॉ० सत्येन्द्र
63. मध्यकालीन हिन्दी काव्य मे भारतीय सस्कृति	श्री मदन गोपाल गुप्त
64. मध्यकालीन प्रबन्ध काव्यों मे कथा-नक रूढ़ियां	श्री ब्रजविलास श्रीवास्तव
65. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति	डॉ० गोरीशंकर हीरानन्द ओझा
66. मध्यकालीन काव्य	विनयकुमार मुरलीधर श्रीवास्तव
67. मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में समाज	डॉ० गायत्री वैश्य
68. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य मे नारी भावना	उषा पाण्डे
69. मध्ययुगीन काव्य साधना	रामचन्द्र तिवारी
70. मध्यकालीन डिंगल काव्य मे नारी (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)	चेतन कुमारी
71 मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रिया	सावित्री सिन्हा
72. मध्यकालीन हिन्दी सन्त विचार और साधना	डॉ० केशनी प्रसाद चौरसिया
73. मध्यकालीन भारत	डॉ० डी. पी. गुप्ता
74. मध्यकालीन भारत	लेनपूल
75. मध्यकालीन भारत का इतिहास	ईश्वरी प्रसाद
76. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान	श्याम मनोहर पाण्डेय
77. माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध	सम्पादक, मजूमदार
78. महाकवि पुष्पदन्त	डॉ० राजनारायण पाण्डेय
79. माधवानल नाटक	कवि केस
80. मालवी लोक गीत	डॉ० श्याम परमार
81. मुगलकालीन भारत	आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव

82. मालवी लोकगीत एक विवेचनात्मक ग्रध्ययन	डॉ० चिन्तामणी उपाध्याय
83. मारवाड़ का इतिहास	विश्वेश्वर नाथ रेउ
84. मुहता नैणसी री ख्यात	नागरी प्रचारिणी सभा
85. मुहता नैणसी री ख्यात	ग्रनु० राम नारायण दूगड़
86. महाभारत	
87. मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास	बी० एस० भार्गव
88. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य मे समाज चित्रण	गणेशदत्त
89. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य मे प्रेम-गाथा काव्य ग्रौर मक्ति के लोक-वार्ता तत्व	गौरी शंकर
90. राजस्थानी भाषा ग्रौर साहित्य	मोतीलाल मेनारिया
91. राजस्थान का इतिहास	डॉ० गोपीनाथ शर्मा
92. राजस्थानी भाषा ग्रौर साहित्य	डॉ० हीरालाल माहेश्वरी
93. राजस्थानी लोककथा के कुछ मूल ग्रभिप्राय	डॉ० कन्हैयालाल सहल
94. राजस्थानी लोक-साहित्य में विरह प्रकृति ग्रौर भक्ति	हनुमन्तसिंह देवरा
95. राजस्थानी साहित्य कुछ प्रवृत्तियां	डॉ० मानावत
96. राजस्थान एव गुजरात के मध्य-कालीन सन्त एवं भक्त कवि	मदन कुमार जैन
97. राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा	ग्रगरचन्द नाहटा
98. राजस्थानी लोक कथायें	डॉ० कन्हैयालाल सहल
99. राजस्थानी शब्द कोष	श्री सीताराम लालस
100. राजस्थान के जैन सन्त व्यक्तित्व एव कृतित्व	डॉ० कासलीवाल
101. रामचरित मानस	तुलसीदास
102. राजस्थानी काव्य मे शृंगार भावना	डॉ० दयाकृष्ण विजयवर्गीय
103 राजस्थानी प्रेमाख्यान परम्परा ग्रौर प्रगति	डॉ० रामगोपाल गोयल
104. राजस्थानी प्रेम कथायें	सं. मोहन लाला पुरोहित
105. राजस्थानी प्रेमाख्यान	सं. लक्ष्मीनारायण गोस्वामी

106.	राजस्थानी भाषा और साहित्य	नरोत्तम दास स्वामी
107	राजस्थानी साहित्य एक परिचय	नरोत्तम दास स्वामी
108	राजस्थानी साहित्य प्रगति और परम्परा	डॉ० मरनामसिंह शर्मा
109	राजस्थानी साहित्य का महत्व	स रामदेव चोरवानी
110.	राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की सूची	जयपुर
111.	राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रथ सूची भाग, 1,2 व 4	स. डॉ० कासलीवाल
112.	राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रथ सूची भाग 3	सं श्री अनूपचन्द न्यायतीर्थ
113	राजस्थानी साहित्य का इतिहास	डॉ० पुरुषोत्तम लाल मेनारिय
114.	राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा	प. मोतीलाल मेनारिया
115	राजस्थानी साहित्यके सदर्भ सहित श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह सबधी राजस्थानी काव्य	डॉ० पुरुषोत्तम लाल मेनारिया
116.	रीति स्वच्छन्द काव्य धारा	डॉ० श्रीकृष्ण चन्द्र शर्मा
117.	लोक साहित्य विज्ञान	डॉ० सत्येन्द्र
118.	लोक-साहित्य	श्री नीलग विलोचन शर्मा
119	लोक-साहित्य की भूमिका	डॉ० कृष्ण देव उपाध्याय
120	साहित्यालोचन	आचार्य श्याम सुन्दर
121.	सिंधी जैन ग्रथमाला	स. हीरानन्द शास्त्री
122.	साहित्य दर्पण	विश्वनाथ
123.	सिद्ध साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारतीय
124.	हिन्दी काव्य धारा में प्रेम प्रवाह	परशुराम चतुर्वेदी
125	हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास	कामता प्रसाद जैन
126	हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन भाग 1 व 2	श्री नेमीचन्द्र जैन
127.	हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि	डॉ० प्रेम सागर जैन
128.	हमारी परम्परा	सं. वियोगी हरि
129	हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य	डॉ० कमलकुल श्रेष्ठ
130	हिन्दी प्रेम गाथा काव्य संग्रह	श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी
131.	हिन्दी के मध्यकालीन खंड काव्य	डॉ० सियाराम तिवारी

132.	हिन्दी जैन साहित्य पर विशद प्रकाश	जुगल किशोर मुख्तार
133.	हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक-तत्व	रविन्द्र भ्रमर
134.	हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास भाग 1, 2, 16	सं. डॉ० राजबली पाण्डेय
135.	हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त
136.	हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य	डॉ० शकरलाल यादव
137.	हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप एवं विकास	डॉ० शंभुनाथसिंह
138.	हिन्दी काव्य में प्रकृति	श्री रामचन्द्र तिवारी
139.	हिन्दी काव्य मे प्रकृति चित्रण	डॉ० किरण कुमारी गुप्ता
140	हिन्दी साहित्य कोष भाग 1	
141.	हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योगदान	
142.	हिन्दी नीति काव्य	डॉ० भोलानाथ तिवारी
143.	हिन्दी महाकाव्यो मे नारी भावना	डॉ० श्याम सुन्दर व्यास
144.	हिन्दी शब्द कल्प द्रुम	सं पं. रामनरेश त्रिपाठी
145.	हिन्दी कथा कोष	डॉ० भोलानाथ तिवारी
146.	हिन्दू सस्कार	राजबली पाण्डेय
147.	राजस्थानी हिन्दी शब्द कोश भाग 1	प्रा० बदरी प्रसाद साकरिया

पत्रिकायें

1.	नागरी प्रचारिणी पत्रिका	वाराणसी
2.	परम्परा	जोधपुर
3.	मरू भारती	पिलानी
4.	मरुवाणी	जयपुर
5.	अणिमा	जयपुर
6.	राजस्थान भारती	बीकानेर
7.	वरदा	बिसाउ
8.	सम्मेलन पत्रिका	इलाहाबाद
9.	शोध पत्रिका	उदयपुर
10.	हिन्दी अनुशीलन	प्रयाग
11.	आलोचना	
12.	जैन भारती	
13.	साहित्य सन्देश	आगरा

14. उत्तर भारती
15. लोक कला — उदयपुर
16. वैचारिकी — बीकानेर
17. मज्झमिका — उदयपुर
18. जैन सिद्धान्त भास्कर

अंग्रेजी सन्दर्भ ग्रंथ

1. Origin and Development of Bengali Language — Dr. S.K· Chatrjee
2. A History of Indian Literature — M. Winternitz
3. Brief History of Jaipur State — Fatch Singh Champawat.
4. Dictionary of World Literature — Joseph T Shiley
5. Folk Tales of Kashmir
6. Pacifism & Jainism — Sukhlal Sanghavi
7· The Jain Religion and Literature Vol I Part I
8 Jeysulmere Report on the administration
9 Papers regarding Jeysulmere
10. Brief account of the Jeysulmere
11 Jainism in Rajasthan — Kailash Chandra Jain
12. Mediaeval India
13 The Folk Tales — Smith Thomson
14. The colden Bough — Frazer
15 Thirty decisive battles of Jaipur — Rao Bahbur Thakur Narendra Singh
16 Gujrat and its Literature — K M Munshi
17. Theory of Asethetice — Croche

Magazines

1. Journal of American Oriental Society
2. Jourual of the Gujrat Research Society Bombay
3. Journal of the Oriental Institute, Baroda.

हस्तलिखित ग्रंथ

क्र.	ग्रंथांक	शीर्षक	रचना काल	कवि
		ग्रहमदाबाद ला. द. ग्रं.		
1	1217	भीमसेन राजहंस चौपई	1643	कुशललाभ
2	975	पार्श्वनाथ दशमव चरित्र	1621	,,
3		ग्रगड़दत्त रास		,,
		उदयपुर रा. प्रा. वि. प्र.		
4	602/2423	जगदबा छन्द		,,
		डा. जावलिया संग्रह		
5	1	ढोला मारू री चौपई	1617	,,
		जयपुर (श्री वियनचन्द्र ज्ञान भण्डार)		
6	37/80	थभण पार्श्वनाथ स्तवन		,,
7	37/31	नवकार मत्र		,,
		रा. प्रा. वि. प्र.		
8	5211	कछवाहो की ख्यात		
9	6060	गौडी पार्श्वनाथ छद		,,
10		सिहासन बत्तीसी		
		श्री कृपा शंकर त्रिपाठी संग्रह		
11	300	गौडी पार्श्वनाथ छद		,,
12	537	ढोला मारवणी चौपई	1617	,,
		जोधपुर रा. प्रा. वि प्र.		
13	26546	तेजसार रास	1624	,,
		जालोर मुनि कल्याण विजय संग्रह		
14	3592	तेजसार नो रास	अपूर्ण	
15	194/1124	तेजसार रास	1624	,,
16	194/1126	तेजसार रास	1592	जयमदिर
17	198/1155	माधवानलनी चौपई	1616	कुशललाभ
18	11/68	खरतरगच्छीय प्रतिक्रमण सूत्र		
19	126/725	श्रावक चार कुशलखरतरगच्छीय		
20	323/2336	खरतर श्रावक		
21	623/44	श्री तेजसार नो रास		
		पूना भण्डारकर ग्रारियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट		
22		ग्रगड़दत्त रास	1624	,,
23	605	ग्रगड़दत्त रास चौपई	1624	,,

	अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर			
24		माधवानल कामकदला चरित्र	1616	कुशललाभ
25		ढोला मारू री चौपई	1617	,,
26		माधवानल कामकदला चोपई	1616	,,
27	49	दुर्गा सात्तसीं	अपूर्ण	,,
28	68	दुर्गा सात्तसी		,,
	रा. प्रा. वि. प्र. बीकानेर			
29	122, 123, 124	खरतरगच्छ गुर्वावली		
30	1557	ढोला मरवण चौपई	1617	,
31	1650	माधवानल कामकदला चौपई	1616	,,
32	8373(31)	नवकार छद		,,
33	6641-8	गौडी पार्श्वनाथ जिनस्तवन		
34	6654-25	स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवन		
35	1948	माधवानल भाषा कथा	17वी शदी	आलम
36	2039	तेजसार चौपई	1622	कुशललाभ
37	2041	अगडदत्त चौपई	1679	ललित कीर्ति
38	6501	ढोला मारू चौपई सचित्र		कुशललाभ
39	1545	तेजसार नृप रास	1592	जयमदिर
40	1569	तेजसार चौपई	1592	जयमदिर
	श्री अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर			
41	7744	शत्रुजय तीर्थ यात्रा वर्णन	अपूर्ण	कुशललाभ
42	87/4209	स्थूल भद्र छत्तीसी		,,
43	32870	कवित्त सवैया		,,
	श्री पूज्य जी का उपासरा बीकानेर			
44		भवानीछद		,,
		गहिमा भक्ति जैन ज्ञान भण्डार बड़ा उपाश्रय		
45	2570	जिनपालित जिनरक्षित सधि	1621	,,
46	2569	जिनरक्षित रास चौपई	1621	,,
		भरतपुर दि. जैन मन्दिर दीवान जी, कामा		
47	270	गुणु सुन्दरी चौपई	1648	,,

———